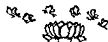


# मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि

## अष्टम शताब्दी
## स्मृति-ग्रन्थ

(सं० १२२३–२०२७)

सम्पादक
अगरचन्द नाहटा,
भँवरलाल नाहटा।



मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी समारोह समिति, दिल्ली

प्रकाशक :—
मणिधारी श्री जिनचंद्रसूरि अष्टम शताब्दी समारोह समिति
५३, रामनगर
नई दिल्ली—५५

सन् १९७१
वीर संवत् २४९७

मूल्य १०)

मुद्रक
श्री शोभाचन्द सुराना
रेफिल आर्ट प्रेस
३१, बड़तल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता—७,

# प्रस्तावना

परमाराध्य प्रातः स्मरणीय दादा साहब योगीन्द्र युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी का प्रभाव जैनजगत में सुप्रसिद्ध है। आप अतिशयधारी, शासन के महान् प्रभावक और क्रान्तिकारी महापुरुष थे। आपने तीर्थंकर महावीर प्रभु के प्रकाशित धर्म को सामाजिक रूप देकर जातियों-गोत्रों की स्थापना की, चैत्यवासी यतिजनों में फैले हुए शिथिलाचार को दूर कर उन्हें विधिमार्गानुगामी बनाया। यह आपके ही सत्प्रयत्नों का फल है कि भगवान् का शासन आज भी जयवन्त है। आप आत्मद्रष्टा और अनेक देव-देवियों द्वारा पूजित थे। आपही के पट्टधर मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि जो अनेक भवों की साधना लिए हुए देवलोक से अवतरित, अद्भुत प्रतिभा-सम्पन्न षट्वर्षायु में दीक्षित अष्टवर्षायु में आचार्यपद और चतुर्दश वर्षायु में युगप्रधान पद प्राप्त महापुरुष थे। उन्होंने ओसवाल, श्रीमाल और महित्तयाण जाति के अनेक गोत्र प्रतिबोध किये। अनेक विधि-चैत्यों की प्रतिष्ठाएं कीं, अनेकों को श्रमणधर्म की दीक्षा दी और दिल्ली के सम्राट मदनपाल तोमर जैसे नरेश्वर को प्रतिबोध दिया[1]। वे सुप्रसिद्ध गुर्जरेश्वर कुमारपाल और महान् जैनाचार्य हेमचन्द्रसूरि के समकालीन थे। त्रिभुवनगिरि के यादव राजा कुमारपाल तो आपके गुरुवर्य दादा श्रीजिनदत्तसूरि द्वारा प्रतिबोधित था[2]।

मणिधारीजी की कीर्ति जगद्विख्यात है। वे अप्रतिम व्यक्तित्व एवं प्रतिभामूर्ति युगप्रधान पुरुष थे। आपका स्वर्गवास सं० १२२३ भाद्रव कृष्ण १४ को भारत की राजधानी दिल्ली में हुआ था। आप दूसरे दादा नामसे प्रसिद्ध हैं। महरौली में जो 'बड़े दादाजी' नाम से प्रसिद्ध आठ सौ वर्ष प्राचीन परमपावन दादावाड़ी अपना महत्वपूर्ण अस्तित्व रखती है, आपही का स्मारक स्थान है। दिल्ली में कितने ही पट परिवर्तन हुए हैं फिर भी इस आध्यात्मिक प्रकाश-स्तंभ की चिरस्थायी ज्योति अवश्य ही एक चमत्कारिक और आश्चर्यपूर्ण है।

युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी के अष्टम शताब्दी महोत्सव सं० २०११ में अजमेर में मनाने के समय से ही मणिधारी जी की अष्टम शताब्दी दिल्ली में मनाने का मनोरथ उद्भूत हुआ था पर देश, काल, भाव के उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में, आध्यात्मिक मूर्धन्य महापुरुष द्वारा विलम्बित समय निर्देश पर परमपूज्या शासन-प्रभाविका प्रवर्तिनी जी श्री विचक्षणश्रीजी महाराज की प्रेरणा से अष्टम शताब्दी महोत्सव समिति ने तिथी निर्धारित अवश्य कर दी और शाम्भोजी तरफ से ग्रन्थ की तैयारी करने की प्रेरणा होते हुए भी प्रकाशन निर्णय अत्यधिक विलम्ब से हुआ। हमने इतःपूर्व विद्वानों को एक आवेदन भी निबन्धादि प्राप्त्यर्थ भेजा जिसमें हमारी योजना थी कि यह ग्रन्थ दादासाहब और उनके अनुगामी महापुरुषों के परिचय के साथ साथ खरतरगच्छ के विषय में एक सर्वाङ्गीण महत्ता प्रकाशक ग्रन्थ हो। उसके लिये कम से कम छः आठ महीने का समय अपेक्षित था पर दो मास पूर्व निर्णय होनेसे हमें इस स्मृति ग्रन्थ को तैयार करने का आदेश मिला।

१ देखिये, हमारी 'मणिधारी श्रीजिनचंद्रसूरि' द्वितीयावृत्ति।

२ इसका प्राचीन काष्ठफलक चित्र जैसलमेर, थाहरूशाहजी के ज्ञानभंडार में है जिसकी प्रतिकृति प्राप्त करने के लिये गत पचीस वर्षों से प्रयत्न करने पर भी पाठकों के समक्ष रखने में हम असफल रहे हैं।

हमारी जिस विभाग क्रम से ग्रन्थ प्रकाशन की योजना थी, लेखों-निबन्धों को प्राप्त करने के लिये बारम्बार प्रेरित करने पर भी थोड़े से लेख आये और वे भी विलम्ब से। उन्हें योजनानुसार क्रमबद्ध प्रकाशित करने में पूर्ति के हेतु हमें हाथोंहाथ लिखकर प्रेस में देना पड़ा। इधर कलकत्ता की विषम परिस्थिति में हड़ताल, मुहर्रम, होली की छुट्टियाँ और चुनाव के चक्कर के साथ साथ मुद्रण यंत्र की हड़ताल खराबी आदि कारणों से हमारी योजनानुसार दिये गये लेख नहीं छप सके और अन्त में वापस लाने पड़े। यद्यपि इस ग्रन्थ में कुछ पूर्वाचार्यों और गत शतक के दिवंगत आचार्यों-मुनियों का परिचय तो हम दे पाये हैं पर खरतर गच्छ की मूलाधार साध्वीमंडल जिसका हमें विशेष गौरव है, उनके कुछ आये हुए लेख भी नहीं दे सके इस बात का हमारे मन में बड़ा भारी खेद है।

इस ग्रन्थ में कुछ ठोस सामग्री जैसे—दीक्षा नन्दी सूची, तीर्थों के विकास में खरतरगच्छ का योगदान, खरतरगच्छाचार्यों द्वारा प्रतिबोधित गोत्र, अप्रकाशित प्राचीन ऐतिहासिक काव्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण निबन्ध तैयार होने पर भी नहीं दिये जा सके। आशा है पाठकगण हमारी विवशता समझेंगे।

हमने इस ग्रन्थ में एक महत्त्वपूर्ण ठोस सामग्री दी है—खरतरगच्छ साहित्य सूची, जो दूसरे विभाग में है। यह कार्य अपने आपमें एक बहुत बड़ा और गत ४० वर्षों से सम्पन्न श्रमसाध्यशोधपूर्ण कार्य है जिसके निर्माण में हमारे सैकड़ों ज्ञानभण्डार आदि के अवलोकन—नोंध का उपयोग सतर्कता के साथ किया गया है। मुद्रित, अमुद्रित के लिये मु० अ० लिखा है। रचनाओं को विषय वार विभक्त करके रचयिता और उनके गुरु का नाम, रचना समय, निर्देश के साथ-साथ प्राप्तिस्थान के उल्लेख में स्थल संकोच वश कुछ संक्षिप्त संकेत व्यवहृत किये गये हैं, जिनका यहाँ दिशा-सूचन करना समीचीन होगा। जैसे राप्राविप्र=राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, बीकानेर आदि, अभय० या अ० बीकानेर=हमारे अभय जैन ग्रन्थालय, वि० कोटा-महो० विनयसागर संग्रह कोटा, धर्म-आगरा=विजय-धर्मसूरि ज्ञानमन्दिर, आगरा, सेठिया=अगरचन्दभैरूदान सेठिया की लायब्रेरी बीकानेर, लींबड़ी=लींबड़ी का ज्ञान-भंडार, वृद्धि-जेसलमेर=यतिवृद्धिचन्द्रजी का भंडार, डूंगर=यतिडुंगरसीजी का भंडार, हरि० लोहावट=श्रीजिनहरि-सागरसूरि ज्ञानभंडार लोहावट, क्षमाबीकानेर=उ० क्षमा-कल्याणजी का भंडार तथा बड़े उपाश्रय में स्थित बड़े ज्ञानभंडार में दस विभाग हैं जिनमें महिमा=महिमा-भक्ति, महर=महरचन्दजी, दान=दानसागर भंडार आदि तथा कांतिछाणी=प्रवर्त्तक श्री कान्तिविजयजी का भंडार, छाणी आदि संक्षिप्त निर्देश, शोधकर्त्ताओं को थोड़ा ध्यान देने से समझ में आ जावेंगे।

इस महत्वपूर्ण श्लाघनीय कार्य सम्पादन के लिए श्रीविनयसागरजी अनेकशः धन्यवादार्ह हैं।

अजमेर में श्रीजिनदत्तसूरि अष्टम शताब्दी के अवसर पर हमारी नम्र प्रार्थना से पूज्य गुरुदेव सद्गत श्रीसहजा-नंदघनजी महाराज ने दादासाहब के लोकोत्तर व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने वाला महत्त्वपूर्ण विस्तृत निबन्ध "अनु-भूति की आवाज" लिखा था, जो अब तक उनकी सारी रचनाओं की भाँति ही अप्रकाशित है, हमने इसमें देने के लिए प्रेसकापी भी तय्यार करायी थी पर सीमित समय में अन्यान्य लेखों की भाँति वह भी अप्रकाशित रह गया।

श्रीमानचन्दजी भंडारी ने हमें कापरड़ाजी तीर्थ के कई ब्लाक, घंघाणी तीर्थ के चित्रादि के साथ कापरड़ाजी का इतिहास और भानाजी भंडारी का परिचयात्मक विस्तृत लेख भेजा था पर उपर्युक्त कारणों से चित्रों को प्रकाशित करके भी लेख नहीं दिया जा सका। इसी प्रकार पूज्य मुनि महाराजों, साध्वीजी महाराज व अन्य विद्वानों के लेखों तथा हमारी योजनान्तर्गत उपरि निर्दिष्ट ठोस

सामग्री के साथ-साथ खरतरगच्छीय प्रतिष्ठा लेख सूची आदि का भी भविष्य में सुअवसर प्राप्त कर उपयोग करने का विचार है। इस प्रकार के महोत्सव सामाजिक संगठन और नवचेतना जागरण के लिए नितान्त आवश्यक हैं। सं० २०३२ में दादा श्रीजिनदत्तसूरिजी के जन्म को ९०० वर्ष एवं सं० २०३७ में दादा श्रीजिनकुशलसूरिजी के जन्म को ७०० वर्ष पूर्ण होते हैं, आशा है भक्तगण प्राप्त सुअवसर का अवश्य लाभ उठायेंगे।

इस ग्रन्थ में दिये गए चित्रों में कई हमारे संग्रह के ब्लाक, श्रीजिनदत्तसूरि सेवा संघ, जैनभवन, जैन श्वे० पंचायती मन्दिर, परमपूज्या प्रवर्तिनीजी श्रीविचक्षणश्रीजी द्वारा श्रीहीरालाल एण्ड कम्पनी मद्रास से प्राप्त महावीर स्वामी के तिरंगे ब्लॉकों का उपयोग किया गया है जिसके लिए सम्बन्धित सज्जनों का आभार प्रकट किया जाता है।

इसकी चित्र सामग्री जुटाने में हमें पूरी चेष्टा करनी पड़ी। गुरुभक्त श्रीलक्ष्मीचन्दजी सेठ का द्वार तो सदा की भांति खुला ही रहता है, साधु-मुनिराजों के व दादावाड़ियों आदि के चित्र उनसे प्राप्त हुए हैं। श्रीहरिसिंहजी श्रीमाल व श्रीमोतीचन्दजी भूरा ने खोयागंज पधार कर वहाँ के दादासाहब सम्बन्धी नगेन्द्र मुरब्बर की चित्र-समृद्धि का फोटो लाये, श्रीमानिकचन्दजी चम्पालालजी डागा, चम्पापुर से मणिधारीजी का चित्र एवं मोतीलाल गोपालजी ने कच्छ-भुज से हमें भद्रेश्वर दादावाड़ी का चित्र भेजा। जैन जर्नल के विद्वान सम्पादक श्रीगणेशजी ललवानी का सहयोग भी अविस्मरणीय है। गुरुदेव के अनन्य भक्त श्री रामलालजी लूनिया तो प्रेरणा स्रोत हैं, प्रत्यक्ष या परोक्ष आत्मीय जनों की सद्भावना और सहयोग से ही कार्य निष्पन्न हुआ है।

भारत के सुप्रसिद्ध चित्रकार श्रीइंद्र दूगड़ जो स्वयं गुरुदेव के अनन्य भक्त हैं, हमारे अनुरोध से दिल्लीपति महाराजा मदनपाल के साथ परमपूज्य मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का एक नयनाभिराम चित्र बनाकर इस शुभ अवसर पर प्रस्तुत किया, जिसके लिए हम किन शब्दों में उनकी प्रशंसा करें, वे शब्द मिलते नहीं। ऋषभदेवप्रभु के जीवन प्रसंगों का तिरंगा चित्र, कलकत्ता दादावाड़ी का जिनदत्तसूरि जीवन-प्रसंग चित्र, सद्गुरुदेव श्रीसहजानन्दघनजी महाराज का रेखा चित्र तथा आपके द्वारा लिए हुए महरोली के फोटोग्राफों से हमारे इस ग्रन्थ की शोभा में बड़ी अभिवृद्धि हुई है। उनके सुपुत्र संजय दूगड़ द्वारा अङ्कित मणिधारीजी के स्वर्णिम रेखा चित्र ने जिल्द की शोभा बढ़ाई है।

इस स्मृतिग्रन्थ के त्वरया प्रकाशन में गुरुदेव की असीम कृपा, हमारे पूज्य साधु-मुनिराजों व साध्वीमण्डल के आशीर्वाद का ही सुफल है। श्री मणिधारीजी अष्टम शताब्दी समारोह समिति ने गुरुदेव की स्मृति स्वरूप यह उत्तम ग्रन्थ प्रकाशन कर जैन समाज का बड़ा उपकार किया है। बंगाल की विषम परिस्थिति व सीमित समय के कारण विशृंखलता व स्खलनादि हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है, इसके लिए हम क्षमा चाहते हुए भविष्य के लिए उचित सुझावों की कामना करते हैं।

सद्गुरु चरणोपासक
अगरचन्द नाहटा,
भँवरलाल नाहटा।

## इस ग्रन्थ में :—

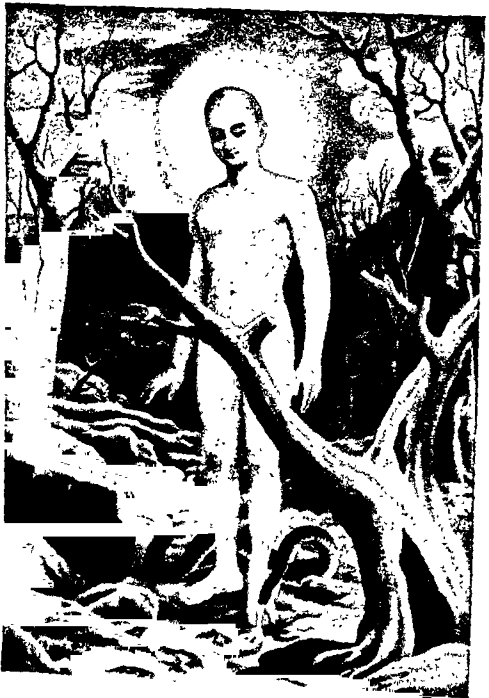
### प्रथम खण्ड

## द्वितीय खण्ड

# मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी-समारोह-समिति, दिल्ली के पदाधिकारी

१ श्रीसितावचन्द फोफलिया, प्रधान
२ श्रीशीतलदासजी रावयान, उपप्रधान
३ श्रीइंद्रचन्दजी भंसाली, उपप्रधान
४ श्रीधनपतसिंहजी भंसाली, संयोजक
५ श्रीदौलतसिंहजी जैन, प्र० मन्त्री
६ श्रीविजयसिंहजी सुराना, ,,
७ श्रीगुलावचन्दजी जैन ,,
८ श्रीलछमनसिंहजी भंसाली, भण्डार मन्त्री
९ श्री डॉ० के० सी० जैन, प्रचार मन्त्री
१० श्रीउमरावसिंहजी सुराना, खजांची

# मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी
# स्मृति ग्रन्थ



क्षमामूर्ति भगवान महावीर का चण्डकौशिक उपसर्ग



मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि और दिल्लीश्वर मदनपाल तोमर (वि० सं० १२२३) दिल्ली

श्री इन्द्रदूगड़ द्वारा चित्रित

# विधिमार्ग प्रकाशक जिनेश्वरसूरि और उनकी विशिष्ट परम्परा

[ पुरातत्त्वाचार्य पद्मश्री मुनि जिनविजयजी ]

श्रीजिनेश्वरसूरि आचार्य श्रीवर्द्धमानसूरि के शिष्य थे। जिनेश्वरसूरि के प्रगुरु एवं श्रीवर्द्धमानसूरि के गुरु श्रीउद्योतनसूरि थे, जो चन्द्रकुल के कोटिक गण की वज्री शाखा परिवार के थे।

( इन जिनेश्वरसूरि के विषय में, जिनदत्तसूरि कृत गणधरसार्द्धशतक की सुमतिगणि कृत बृहद्वृत्ति में, जिनपालोपाध्याय लिखित खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावली में, प्रभाचन्द्राचार्य रचित और किसी अज्ञात प्राचीन पूर्वाचार्य प्रबन्ध एवं अन्यान्य पट्टावलियों आदि अनेक ग्रन्थों-प्रबन्धों में कितना ही ऐतिहासिक वृत्तान्त ग्रथित किया हुआ उपलब्ध होता है।)

## जिनेश्वरसूरि के समय में जैन यतिजनों की अवस्था

इनके समय में श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में उन यति-जनों के समूह का प्राबल्य था जो अधिकतर चैत्यों अर्थात् जिन मन्दिरों में निवास करते थे। ये यतिजन जैन मन्दिर, जो उस समय चैत्य के नाम से विशेष प्रसिद्ध थे, उन्हीं में अहर्निश रहते, भोजनादि करते, धर्मोपदेश देते, पठन-पाठनादि में प्रवृत्त होते और सोते-बैठते। अर्थात् चैत्य ही उनका मठ या वासस्थान था और इसलिए वे चैत्यवासी के नाम से प्रसिद्ध हो रहे थे। इनके साथ इनके आचार-विचार भी बहुत से ऐसे शिथिल अथवा भिन्न प्रकार के थे जो जैन शास्त्रों में वर्णित निर्ग्रन्थ जैनमुनि के आचारों से असंगत दिखाई देते थे। ये एक तरह के मठपति थे। शास्त्रोक्त आचारों का यथावत् पालन करने वाले यति-मुनि उस समय बहुत कम संख्या में नजर आते थे।

## जिनेश्वरसूरि का चैत्यवासियों के विरुद्ध आन्दोलन

शास्त्रोक्त यतिधर्म के आचार और चैत्यवासी यतिजनों के उक्त व्यवहार में, परस्पर बड़ा असामंजस्य देखकर और श्रमण भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट श्रमण धर्म की इस प्रकार प्रचलित विप्लव दशा से उद्विग्न होकर जिनेश्वर सूरि ने प्रतिकार के निमित्त अपना एक सुविहित मार्ग प्रचारक नया गण स्थापित किया और चैत्यवासी यतियों के विरुद्ध एक प्रबल आन्दोलन शुरू किया।

यों तो प्रथम, इनके गुरु श्री वर्द्धमानसूरि स्वयं ही चैत्यवासी यतिजनों के एक प्रमुख सूरि थे। पर जैन शास्त्रों का विशेष अध्ययन करने पर मन में कुछ विरक्त भाव उदित हो जाने से और तत्कालीन जैन यति सम्प्रदाय की उक्त प्रकार की आचार विषयक परिस्थिति की शिथिलता का अनुभव, कुछ अधिक उद्वेगजनक लगने से, उन्होंने उस अवस्था का त्याग कर, विशिष्ट त्यागमय जीवन का अनुसरण करना स्वीकृत किया था। जिनेश्वर-सूरि ने अपने गुरु के इस स्वीकृत मार्ग पर चलना विशेष रूप से निश्चित किया। इतना ही नहीं, उन्होंने उसे सारे सम्प्रदायव्यापी और देशव्यापी बनाने का भी संकल्प किया और उसके लिए आजीवन प्रबल पुरुषार्थ

किया । इस प्रयत्न के उपयुक्त और आवश्यक ऐसे ज्ञानबल और चारित्रबल दोनों ही उनमें पर्याप्त प्रमाण में विद्यमान थे, इसलिये उनको अपने ध्येय में बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई और उसी अणहिलपुर में, जहां पर चैत्यवासियों का सबसे अधिक प्रभाव और विशिष्ट समूह था, जाकर उन्होंने चैत्यवास के विरुद्ध अपना पक्ष और प्रतिष्ठान स्थापित किया। चौलुक्य नृपति दुर्लभराज की सभा में, चैत्यवासी पक्ष के समर्थक अग्रणी सूराचार्य जैसे महा-विद्वान् और प्रबल सत्ताशील आचार्य के साथ शास्त्रार्थ कर, उसमें विजय प्राप्त की। इस प्रसंग से जिनेश्वरसूरि की केवल अणहिलपुर में ही नहीं, अपितु सारे गुजरात में, और उसके आस-पास के मारवाड़, मेवाड़, मालवा, वागड़, सिंध और दिल्ली तक के प्रदेशों में खूब ख्याति और प्रतिष्ठा बढ़ी। जगह-जगह सैकड़ों ही श्रावक उनके भक्त और अनुयायी बन गए। इसके अतिरिक्त सैकड़ों ही अजैन गृहस्थ भी उनके भक्त बनकर नये श्रावक बने। अनेक प्रभावशाली और प्रतिभाशील व्यक्तियों ने उनके पास यति दीक्षा लेकर उनके सुविहित शिष्य कहलाने का गौरव प्राप्त किया। उनकी शिष्य-संतति बहुत बढ़ी और वह अनेक शाखा-प्रशाखाओं में फैली। उसमें बड़े-बड़े विद्वान, क्रियानिष्ठ और गुणगरिष्ठ आचार्य उपाध्यायादि समर्थ साधु पुरुष हुए। नवांग-वृत्तिकार अभयदेवसूरि, संवेगरंग-शालादि ग्रन्थों के प्रणेता जिनचन्द्रसूरि, सुरसुन्दरी चरित के कर्त्ता धनेश्वर अपर नाम जिनभद्रसूरि, आदिनाथ चरितादि के रचयिता वर्धमानसूरि, पार्श्वनाथ चरित एवं महावीर चरित के कर्त्ता गुणचन्द्रगणी अपर नाम देवभद्रसूरि, संघपट्टकादि अनेक ग्रन्थों के प्रणेता जिनवल्लभसूरि इत्यादि अनेकानेक बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान और शास्त्रकार, जो उस समय उत्पन्न हुए और जिनकी साहित्यिक उपासना से जैन वाङ्मय-भण्डार बहुत कुछ समृद्ध और सुप्रतिष्ठित बना—इन्हीं जिनेश्वरसूरि के शिष्य-प्रशिष्यों में से थे।

## विधिपक्ष अथवा खरतरगच्छ का प्रादुर्भाव और गौरव

इन्हीं जिनेश्वरसूरि के एक प्रशिष्य आचार्य श्रीजिन-वल्लभसूरि और उनके पट्टधर श्रीजिनदत्तसूरि (वि० सं० ११६९-१२११) हुए जिन्होंने अपने प्रखर पाण्डित्य, प्रकृष्ट चारित्र और प्रचण्ड व्यक्तित्व के प्रभाव से मारवाड़, मेवाड़, वागड़, सिन्ध, दिल्ली मण्डल और गुजरात के प्रदेश में हजारों अपने नये भक्त श्रावक बनाये—हजारों ही अजैनों को उपदेश देकर नूतन जैन बनाये। स्थान-स्थान पर अपने पक्ष के अनेकों नये जिनमन्दिर और जैन उपाश्रय तैयार करवाये। अपने पक्ष का नाम इन्होंने 'विधिपक्ष' ऐसा उद्घोषित किया और जितने भी नये जिनमन्दिर इनके उपदेश से, इनके भक्त श्रावकों ने बनवाये उनका नाम विधिचैत्य, ऐसा रखा गया। परन्तु पीछे से चाहे जिस कारण से हो—इनके अनुगामी समुदाय को खरतर पक्ष या खरतरगच्छ ऐसा नूतन नाम प्राप्त हुआ और तदनन्तर यह समुदाय इसी नाम से अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ जो आज तक अविच्छिन्न रूप से विद्यमान है।

इस खरतरगच्छ में उसके बाद अनेक बड़े बड़े प्रभाव-शाली आचार्य, बड़े-बड़े विद्यानिधि उपाध्याय, बड़े-बड़े प्रतिभाशाली पण्डित मुनि और बड़े-बड़े मांत्रिक, तांत्रिक-ज्योतिर्विद्, वैद्यक-विशारद आदि कर्मठ यतिजन हुए जिन्होंने अपने समाज की उन्नति, प्रगति और प्रतिष्ठा बढ़ाने में बड़ा भारी योग दिया। सामाजिक और साम्प्रदायिक उत्कर्ष की प्रवृत्ति के सिवा, खरतरगच्छा-नुयायी विद्वानों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं देशीय-भाषा के साहित्य को भी समृद्ध करने में असाधारण उद्यम किया और इसके फलस्वरूप आज हमें भाषा, साहित्य, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध विषयों का निरूपण करने वाली छोटी-बड़ी सैकड़ों-हजारों ग्रन्थकृतियाँ जैन-भण्डारों में उपलब्ध हो रही हैं। खरतर गच्छीय विद्वानों की की हुई यह साहित्योपासना न केवल

जैनधर्म की ही दृष्टि से महत्त्व वाली हैं, अपितु समुच्चय भारतीय संस्कृति के गौरव की दृष्टि से भी उतनी ही महत्ता रखती है।

साहित्योपासना की दृष्टि से खरतरगच्छ के विद्वान् यति-मुनि बड़े उदारचेता मालूम देते हैं। इस विषय में उनकी उपासना का क्षेत्र केवल अपने धर्म या सम्प्रदाय की बाड़ से बद्ध नहीं है। वे जैन और जैनेतर वाङ्मय का समान भाव से अध्ययन-अध्यापन करते रहे हैं। व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, अलंकार, नाटक, ज्योतिष, वैद्यक और दर्शनशास्त्र तक के अगणित अजैन ग्रन्थों का उन्होंने बड़े आदर से आकलन किया है और इन विषयों के अनेक अजैन ग्रन्थों पर उन्होंने अपनी पाण्डित्यपूर्ण टीकायें आदि रच कर तत्तद् ग्रन्थों और विषयों के अध्ययन कार्य में बड़ा उपयुक्त साहित्य तैयार किया है। खरतरगच्छ के गौरव को प्रदर्शित करने वाली ये सब बातें हम यहां पर बहुत ही संक्षेप में, केवल सूत्ररूप से, उल्लिखित कर रहे हैं। विशेष- हम "युगप्रधानाचार्य गुर्वावलि" नाम से विस्तृत पुरातन पट्टावली प्रकट कर चुके हैं उसमें इन जिनेश्वरसूरि से आरंभ कर, श्रीजिनवल्लभसूरि की परम्परा के खरतरगच्छीय आचार्य श्रीजिनपद्मसूरि के पट्टाभिषिक्त होने के समय तक का-विक्रम संवत् १४०० के लगभग का बहुत विस्तृत और प्रायः विश्वस्त ऐतिहासिक वर्णन दिया हुआ है। उसके अध्ययन से पाठकों को खरतरगच्छ के तत्कालीन गौरव-गाथा का अच्छा परिचय मिल सकेगा।

इस तरह पीछे से बहुत प्रसिद्धिप्राप्त उक्त खरतरगच्छ के अतिरिक्त, जिनेश्वरसूरि की शिष्य-परम्परा में से अन्य भी कई-एक छोटे-बड़े गण-गच्छ प्रचलित हुए और उनमें भी कई बड़े-बड़े प्रसिद्ध विद्वान, ग्रन्थकार, व्याख्यानिक, वादी, तपस्वी, चमत्कारी साधु-यति हुए जिन्होंने अपने व्यक्तित्व से जैन समाज को समुन्नत करने में उत्तम योग दिया।

### जिनेश्वरसूरि के जीवन का अन्य यतिजनों पर प्रभाव

जिनेश्वरसूरि के प्रबल पाण्डित्य और उत्कृष्ट चरित्र का प्रभाव इस तरह न केवल उनके निजके शिष्य समूह में ही प्रसारित हुआ, अपितु तत्कालीन अन्यान्य गच्छ एवं यति समुदाय के भी बड़े-बड़े व्यक्तित्वशाली यतिजनों पर उसने गहरा असर डाला और उसके कारण उनमें से भी कई समर्थ व्यक्तियों ने, इनके अनुकरण में क्रियोद्धार, ज्ञानोपासना, आदि की विशिष्ट प्रवृत्ति का बड़े उत्साह के साथ उत्तम अनुसरण किया।

( जिनेश्वरसूरि के जीवन सम्बन्धी साहित्य और उनकी रचनाओं का विशेष अध्ययन मुनि जिनविजय ने कथाकोष की विस्तृत प्रस्तावना में बहुत विस्तार से दिया है, यहां उसके आवश्यक अंश ही प्रस्तुत किये गये है )

### जिनेश्वरसूरि से जैन समाज में नूतन युग का आरंभ

इनके प्रादुर्भाव और कार्यकलाप के प्रभाव से जैन समाज में एक सर्वथा नवीन युग का आरम्भ होना शुरू हुआ। पुरातन प्रचलित भावनाओं में परिवर्तन होने लगा। त्यागी और गृहस्थ दोनों प्रकार के समूहों में नए संगठन होने शुरू हुए। त्यागी अर्थात् यति वर्ग जो पुरातन परम्परागत गण और कुल के रूप में विभक्त था, वह अब नये प्रकार के गच्छों के रूप में संगठित होने लगा। देवपूजा और गुरु-उपासना की जो कितनी पुरानी पद्धतियां प्रचलित थीं, उनमें संशोधन और परिवर्तन के वातावरण का सर्वत्र उद्भव होने लगा। इनके पहले यतिवर्ग का जो एक बहुत बड़ा समूह चैत्य निवासी होकर चैत्यों की संपत्ति और संरक्षा का अधिकारी बना हुआ था और प्रायः शिथिलाचार और स्वपूजानिरत हो रहा था, उसमें इनके आचारप्रवण और भ्रमणशील जीवन के प्रभाव से बड़े वेग से और बड़े परिमाण में परिवर्तन होना प्रारम्भ हुआ। इनके आदर्शों

को लक्ष्य में रखकर अन्यान्य अनेक समर्थ यतिजन चैत्याधिकार का और शिथिलाचार का त्याग कर संयम की विशुद्धि के निमित्त उचित क्रियोद्धार करने लगे और अच्छे संयमी बनने लगे। संयम और तपश्चरण के साथ-साथ, भिन्न-भिन्न विषयों और शास्त्रों के अध्ययन और ज्ञानसंपादन कार्य भी इन यतिजनों में खूब उत्साह के साथ व्यवस्थित रूप से होने लगा। सभी उपादेय विषयों के नये-नये ग्रन्थ निर्माण किये जाने लगे और पुरातन ग्रन्थों पर टीका-टिप्पण आदि रचे जाने लगे। अध्ययन-अध्यापन और ग्रन्थ-निर्माण के कार्य में आवश्यक ऐसे पुरातन जैन-ग्रन्थों के अतिरिक्त ब्राह्मण और बौद्ध सम्प्रदाय के भी व्याकरण, न्याय, अलंकार, काव्य, कोष, छन्द, ज्योतिष आदि विविध विषयों के सभी महत्वपूर्ण ग्रन्थों की पोथियों के संग्रहवाले बड़े-बड़े ज्ञानभण्डार भी स्थापित किये जाने लगे।

अब ये यतिजन केवल अपने-अपने स्थानों में हीं बद्ध होकर बैठ रहने के बदले भिन्न-भिन्न प्रदेशों में घूमने लगे और तत्कालीन परिस्थिति के अनुरूप, धर्मप्रचार का कार्य करने लगे। जगह-जगह अजैन क्षत्रिय और वैश्य कुलों को अपने आचार और ज्ञान से प्रभावित कर, नये-नये जैन-श्रावक बनाए जाने लगे और पुराने जैन गोष्ठी-कुल नवीन जातियों के रूप में सगठित किये जाने लगे। पुराने जैन देव-मन्दिरों का उद्धार और नवीन मन्दिरों का निर्माण-कार्य भी सर्वत्र विशेष रूप से होने लगा। जिन यतिजनोंने चैत्यनिवास छोड़ दिया था उनके रहने के लिये ऐसे नये-नये वसति-गृह बनने लगे जिनमें उन यतिजनों के अनुयायी श्रावक भी अपनी नित्य-नैमित्तिक धर्म क्रियायें करने की व्यवस्था रखते थे। ये ही वसति-गृह पिछले काल में उपाश्रय के नाम से प्रसिद्ध हुए। मन्दिरों में पूजा और उत्सवों की प्रणालिकाओं में भी नये-नये परिवर्तन होने लगे और इसके कारण यतिजनों में परस्पर, कितनेक विवादास्पद विचारों और शब्दार्थों पर भी वाद-विवाद होने लगा, और इसके परिणाम में कई नये नये गच्छ और उपगच्छ भी स्थापित होने लगे। ऐसे चर्चास्पद विषयों पर स्वतंत्र छोटे-बड़े ग्रन्थ भी लिखे जाने लगे और एक-दूसरे सम्प्रदाय की ओर से उनका खण्डन-मण्डन भी किया जाने लगा। इस प्रकार इन यतिजनों में पुरातन प्रचलित प्रवाह की दृष्टि से, एक प्रकार का नवीन जीवन-प्रवाह चालू हुआ और उसके द्वारा जैन संघ का नूतन संगठन बनना प्रारम्भ हुआ।

इस तरह तत्कालीन जैन इतिहास का सिंहावलोकन करने से ज्ञात होता है कि विक्रम की ११ वीं शताब्दी के प्रारंभ में जैन यतिवर्ग में एक प्रकार से नूतन युग की उषा का आभास होने लगा, जिसका प्रकट प्रादुर्भाव जिनेश्वरसूरि के गुरु वर्धमानसूरि के क्षितिज पर उदित होने पर दृष्टिगोचर हुआ। जिनेश्वरसूरि के जीवनकार्य ने इस युग-परिवर्त्तन को सुनिश्चित मूर्त स्वरूप दिया। तब से लेकर पिछले प्रायः ९०० वर्षों में, इस पश्चिम भारत में जैन धर्म के जो सांप्रदायिक और सामाजिक स्वरूप का प्रवाह प्रचलित रहा उसके मूल में जिनेश्वरसूरि का जीवन सबसे अधिक विशिष्ट प्रभाव रखता है और इस दृष्टि से जिनेश्वरसूरि को, जो उनके शिष्य-प्रशिष्यों ने, युगप्रधान पदसे संबोधित और स्तुतिगोचर किया है वह सर्वथा ही सत्य वस्तुस्थिति का निदर्शक है।

जिनेश्वरसूरि एक बहुत भाग्यशाली साधु पुरुष थे। इनकी यशोरेखा एवं भाग्य रेखा बड़ी उत्कट थी। इससे इनको ऐसे-ऐसे शिष्य और प्रशिष्यरूप महान् सन्ततिरत्न प्राप्त हुए जिनके पाण्डित्य और चारित्र्य ने इनके गौरव को दिगन्तव्यापी और कल्पान्त स्थायी बना दिया। यों तो प्राचीनकाल में, जैन संप्रदाय में सैकड़ों ही ऐसे समर्थ आचार्य हो गए हैं जिनका संयमी जीवन जिनेश्वरसूरि के समान ही महत्वशाली और प्रभावपूर्ण था; परन्तु जिनेश्वरसूरि के जैसा विशाल-प्रज्ञ और विशुद्ध संयमवान्, विपुल शिष्य-समुदाय शायद बहुत ही थोड़े

आचार्यों को प्राप्त हुआ होगा। जिनेश्वरसूरि के शिष्य-प्रशिष्यों में एक-से-एक बढ़ कर अनेक विद्वान् और संयमी पुरुष हुए और उन्होंने अपने महान् गुरु की गुणगाथा का बहुत ही उच्चस्वर से खूब ही गान किया है। सद्भाग्य से इनके ऐसे शिष्य प्रशिष्यों की बनाई हुई बहुत सी ग्रंथ-कृतियां आज भी उपलब्ध हैं और उनमें से हमें इनके विषय की यथेष्ट गुरु-प्रशस्तियां पढ़ने को मिलती हैं।

चैत्यवास के विरुद्ध जिनेश्वरसूरि ने जिन विचारों का प्रतिपादन किया था, उनका सबसे अधिक विस्तार और प्रचार वास्तव में जिनवल्लभसूरि ने किया था। उनके उपदिष्ट मार्ग का इन्होंने बड़ी प्रखरता के साथ समर्थन किया और उसमें उन्होंने अपने कई नये विचार और नए विधान भी सम्मिलित किये।

## जिनवल्लभसूरि

जिनवल्लभसूरि मूल में मारवाड़ के एक बड़े मठाधीश चैत्यवासी गुरु के शिष्य थे परन्तु वे उनसे विरक्त होकर गुजरात में अभयदेवसूरि के पास शास्त्राध्ययन करने के निमित्त उनके अन्तेवासी होकर रहे थे। ये बड़े प्रतिभाशाली विद्वान्, कवि, साहित्यज्ञ, ग्रन्थकार और ज्योतिष शास्त्र-विशारद थे। इनके प्रखर पाण्डित्य और विशिष्ट वैराग्य को देखकर अभयदेवसूरि इन पर बड़े प्रसन्न रहते थे और अपने मुख्य दीक्षित शिष्यों की अपेक्षा भी इन पर अधिक अनुराग रखते थे। अभयदेवसूरि चाहते थे कि अपने उत्तराधिकारी पद पर इनकी स्थापना हो, परन्तु ये मूल चैत्यवासी गुरु के दीक्षित शिष्य होने से शायद इनको गच्छनायक के रूप में अन्यान्य शिष्य स्वीकार नहीं करेंगे ऐसा सोचकर अपने जीवनकाल में वे इस विचार को कार्य में नहीं ला सके। उनके पट्टधर के रूप में वर्धमानाचार्य (आदिनाथ चरितादि के कर्ता) की स्थापना हुई, तथापि अंतावस्था में अभयदेवसूरि ने प्रसन्नचन्द्रसूरि को सूचित किया था कि योग्य समय पर जिनवल्लभ को आचार्य पद देकर मेरा पट्टाधिकारी बनाना परन्तु वैसा उचित अवसर आने के पहले ही प्रसन्नचन्द्रसूरिका स्वर्गवास हो गया। उन्होंने अभयदेवसूरिजी की उक्त इच्छा को अपने उत्तराधिकारी पट्टधर देवभद्राचार्य के सामने प्रकट किया और सूचित किया कि इस कार्य को तुम सपादित करना।

अभयदेवसूरि के स्वर्गवास के बाद अणहिलपुर और स्तम्भतीर्थ जैसे गुजरात के प्रसिद्ध स्थानों में जहां अभयदेव के दीक्षित शिष्यों का प्रभाव था, वहां से अपरिचित स्थान में जाकर अपने विद्याबल के सामर्थ्य द्वारा जिनवल्लभ ने अपने प्रभाव का कार्यक्षेत्र बनाना चाहा। इसके लिए मेवाड की राजधानी चित्तौड को इन्होंने पसन्द किया, वहां इनको यथेष्ट मनोरथ सिद्धि हुई। फिर मारवाड के नागौर आदि स्थानों में भी इनके बहुत से भक्त-उपासक बने। धीरे-धीरे इनका प्रभाव मालवा में भी बढ़ा। मेवाड़, मारवाड़ में तब बहुत से चैत्यवासी यति समुदाय थे उनके साथ इनकी प्रतिस्पर्धा भी खूब हुई। इन्होंने उनके अधिष्ठित देवमन्दिरों को अनायतन ठहराया और उनमें किये जाने वाले पूजन उत्सवादि को अशास्त्रीय उद्घोषित किया। अपने भक्त उपासकों द्वारा अपने पक्ष के लिए जगह-जगह नए मन्दिर बनवाये और उनमें किये जाने वाले पूजादि विधानों के लिए कितनेक नियम निश्चित किये। इस विषय के छोटे बड़े कई प्रकरण और ग्रन्थादि की भी इन्होंने रचना की।

देवभद्राचार्य ने इनके बढ़े हुए इस प्रकार के प्रौढ़ प्रभाव को देखकर और इनके पक्ष में सैंकड़ों उपासकों का अच्छा समर्थ समूह जानकर इनको आचार्य पद देकर अभयदेवसूरि के पट्टधर रूप में इन्हें प्रसिद्ध करने का निश्चय किया। जिनेश्वरसूरि के शिष्यसमूह में उस समय शायद देवभद्राचार्य ही सबसे अधिक प्रतिष्ठा-सम्पन्न और सबसे अधिक वयोवृद्ध पुरुष थे। वे इस कार्य के लिए गुजरात से रवाना होकर चित्तौड़ पहुँचे। यह चित्तौड़ ही जिनवल्लभसूरि

के प्रभाव का उद्गम एवं केन्द्र स्थान था। यहीं पर सबसे पहले जिनवल्लभसूरि के नये उपासक भक्त बने और यहीं पर इनके पक्ष का सबसे पहिला वीर विधि चैत्य नामक विशाल जैन मन्दिर बना। वि० सं० ११६७ के आषाढ़ मास में इनको इसी मन्दिर में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित कर देवभद्राचार्य ने अपने गच्छपति गुरु प्रसन्नचन्द्रसूरि के उस अन्तिम आदेश को सफल किया। पर दुर्भाग्य से ये इस पद का दीर्घकाल तक उपभोग नहीं कर सके। चार ही महीने के अन्दर इनका उसी चित्तौड़ में स्वर्गवास हो गया। इस घटना को जानकर देवभद्राचार्य को बड़ा दुःख हुआ।

## जिनदत्तसूरि

जिनवल्लभसूरि ने अपने प्रभाव से मारवाड़, मेवाड़, मालवा, वागड़ आदि देशों में जो सैकड़ों ही नये भक्त उपासक बनाये थे और अपने पक्ष के अनेक विधि-चैत्य स्थापित किये थे। उनका नियामक ऐसा कोई समर्थ गच्छ-नायक यदि न रहा तो वह पक्ष छिन्न-भिन्न हो जायगा और इस तरह जिनवल्लभसूरि का किया हुआ कार्य विफल हो जायगा, यह सोच कर देवभद्राचार्य, जिनवल्लभसूरि के पट्ट पर प्रतिष्ठित करने के लिए अपने सारे समुदाय में से किसी योग्य व्यक्तित्व वाले यतिजन की खोज करने लगे। उनकी दृष्टि धर्मदेव उपाध्याय के शिष्य पंडित सोमचन्द्र पर पड़ी जो इस पद के सर्वथा योग्य एवं जिन-वल्लभ के जैसे ही पुरुषार्थी, प्रतिभाशाली, क्रियाशील और निर्भय प्राणवान व्यक्ति थे। देवभद्राचार्य फिर चित्तौड़ गए और वहां पर जिनवल्लभसूरि के प्रधान-प्रधान उपासकों के साथ परामर्श कर उनकी सम्मति से सं० ११६६ के वैशाख मास में सोमचन्द्र गणि को आचार्य पद देकर जिनदत्तसूरि के नाम से जिनवल्लभसूरि के उत्तराधिकारी आचार्य पद पर उन्हें प्रतिष्ठित किया। जिनवल्लभसूरि के विशाल उपासक वृन्द का नायकत्व प्राप्त करते ही जिनदत्तसूरि ने अपने पक्ष की विशिष्ट संघटना करनी शुरू की। जिनेश्वरसूरि प्रतिपादित कुछ मौलिक मन्तव्यों का आश्रय लेकर और कुछ जिनवल्लभसूरि के उपदिष्ट विचारों को पल्लवित कर इन्होंने जिनवल्लभ द्वारा स्थापित उक्त विधिपक्ष नामक संघ का बलवान और नियमबद्ध संगठन किया जिसकी परम्परा का प्रवाह आठ सौ वर्ष पूरे हो जाने पर भी अखण्डित रूप से चलता है।

जिनदत्तसूरि ने प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश भाषा में छोटे-बड़े अनेक ग्रन्थों की रचना की। इनमें एक गणधर-सार्द्धशतक नामक ग्रंथ है जिसमें इन्होंने भगवान महावीर के शिष्य गणधर गौतम से लेकर अपने गच्छपति गुरु जिनव-ल्लभसूरि तक के महावीर के शासनमें होने वाले और अपनी संप्रदाय परंपरा में माने जाने वाले प्रधान-प्रधान गणधारी आचार्योंकी स्तुति की है। उन्होंने १५० गाथा के प्रकरण में आदि की ६२ गाथाओं तक में तो पूर्वकाल में हो जाने वाले कितने पूर्वाचार्यों की प्रशंसा की है। ६३ से लेकर ८४ तक की गाथाओं में वर्द्धमानसूरि और उनके शिष्यसमूह में होने वाले जिनेश्वर, बुद्धिसागर, जिनचन्द्र, अभयदेव, देवभद्रादि अपने निकट पूर्वज गुरुओं की स्तुति की है। ८५वीं गाथा से लेकर १४७ तक की गाथाओं में अपने गण के स्थापक गुरु जिनवल्लभ की बहुत ही प्रौढ़ शब्दों में तरह-तरह से स्तवना की है। जिनेश्वरसूरि के गुणवर्णन में इन्होंने इस ग्रन्थ में लिखा है कि वर्द्धमानसूरि के चरणकमलों में भ्रमर के समान सेवारसिक जिनेश्वरसूरि हुए वे सब प्रकारके भ्रमों से रहित थे अर्थात् अपने विचारों में निर्भ्रम थे, स्वसमय और परसमय के पदार्थ सार्थ का विस्तार करने में समर्थ थे। इन्होंने अणहिलवाड़ में दुर्लभराज की सभा में प्रवेश करके नामधारी आचार्यों के साथ निर्विकार भाव से शास्त्रीय विचार किया और साधुओं के लिये वसति-निवास की स्थापना कर अपने पक्ष का स्थापन किया। जहां पर गुरु-क्रमागत सद्वार्ता का नाम भी नहीं सुना जाता था, उस

गुजरात देश में विचरण कर इन्होंने वसतिमार्ग को प्रकट किया।

जिनदत्तसूरि की इसी तरह की एक और छोटी सी (२१ गाथा की) प्राकृत पद्य रचना है जिसका नाम है-गुरु पारतन्त्र्य स्तव। इसमें जिनेश्वरसूरि की स्तवना में वे कहते हैं कि जिनेश्वर अपने समय के युगप्रवर होकर सर्व सिद्धान्तों के ज्ञाता थे। जैन मत में जो शिथिलाचार रूप घोर समूह का प्रचार हो रहा था उसका उन्होंने निश्चल रूप से निर्दलन किया। अणहिलवाड में दुर्लभराज की सभा में द्रव्य लिंगी (वेशधारी) रूप हाथियों का सिंह की तरह विदारण कर डाला। स्वेच्छाचारी सूरियों के मतरूपी अन्धकार का नाश करने में सूर्य के समान थे जिनेश्वरसूरि प्रकट हुए।

जिनेश्वरसूरि के साक्षात् शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा किये गये उनके गौरव परिचयात्मक उल्लेखों से हमें यह अच्छी तरह ज्ञात हुआ कि उनका आंतरिक व्यक्तित्व कैसा महान् था। जिनदत्तसूरि के किये गये उपर्युक्त उल्लेखों में एक ऐतिहासिक घटना का हमें सूचन मिला कि उन्होंने गुजरात के अणहिलवाड़ के राजा दुर्लभराज की सभा में नामधारी आचार्यों के साथ वाद-विवाद कर उनको पराजित किया और वहाँ पर वसतिवास की स्थापना की।

### श्री जिनचन्द्रसूरि

जिनेश्वरसूरि के पट्टधर शिष्य जिनचन्द्रसूरि हुए। अपने गुरु के स्वर्गवास के बाद यही उनके पट्ट पर प्रतिष्ठित हुए और गण प्रधान बने। इन्होंने अपने बहुश्रुत एवं विख्यात-कीर्ति ऐसा लघु गुरु-बन्धु अभयदेवाचार्य की अभ्यर्थना से वश होकर संवेगरंगशाला नामक एक संवेग भाव के प्रतिपादक शांतरस प्रपूर्ण एवं बृहद् प्रमाण प्राकृत कथा ग्रन्थ की रचना सं० ११२५ में की।

### श्री अभयदेवसूरि

जिनेश्वरसूरि के अनुक्रम में शायद तीसरे परन्तु ख्याति और महत्ता की दृष्टि से सर्वप्रथम ऐसे महान् शिष्य श्री अभयदेवसूरि हुए, जिन्होंने जैनागम ग्रन्थों में जो एकादश-अङ्ग सूत्र ग्रन्थ हैं, इनमें से नो अंग (३ से ११) सूत्रों पर सुविशद संस्कृत टीकाएं बनाईं। अभयदेवाचार्य अपनी इन व्याख्याओं के कारण जैन साहित्याकाश में कल्पान्त स्थायी नक्षत्र के समान सदा प्रकाशित और सदा प्रतिष्ठित रूप में उल्लिखित किये जायेंगे। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के पिछले सभी गच्छ और सभी पक्ष वाले विद्वानों ने अभयदेवसूरि को बड़ी श्रद्धा और सत्यनिष्ठा के साथ एक प्रमाणभूत एवं तथ्यवादी आचार्य के रूप में स्वीकृत किया है और इनके कथनों को पूर्णतया आप्तवाक्य की कोटि में समझा है। अपने समकालीन विद्वत् समाज में भी इनकी प्रतिष्ठा बहुत ऊँची थी। शायद ये अपने गुरु से भी बहुत अधिक आदर के पात्र और श्रद्धा के भाजन बने थे।

### श्री जिनदत्तसूरि

जिनदत्तसूरि, जिनेश्वरसूरि के साक्षात् प्रशिष्यों में से ही एक थे। इनके दीक्षा-गुरु धर्मदेव उपाध्याय थे जो जिनेश्वरसूरि के स्वहस्त दीक्षित अन्यान्य शिष्यों में से थे। इनका मूल दीक्षा नाम सोमचन्द्र था, हरिसिंहाचार्य ने इनको सिद्धान्त ग्रन्थ पढ़ाये थे। इनके उत्कट विद्यानुराग पर प्रसन्न होकर देवभद्राचार्य ने अपना वह प्रिय कटासण (लेखनी), जिससे उन्होंने अपने बड़े-बड़े चार ग्रन्थों का लेखन किया था, इनको भेंट के स्वरूप में प्रदान किया था। ये बड़े ज्ञानी ध्यानी और उग्रविहारी थे। जिनवल्लभसूरि के स्वर्गवास के पश्चात् इनको उनके उत्तराधिकारी पद पर देवभद्राचार्य ने आचार्य के रूप में स्थापित किया था।

[कथाकोष प्रकरण की प्रस्तावना से]

दादावाड़ी-दिग्दर्शन की प्रस्तावना में मुनि जिनविजयजी लिखते हैं :—

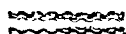
खरतर गच्छ के मुख्य युगप्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरि तथा उनके उत्तराधिकारी आचार्य-वर्य मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनकुशलसूरि एवं अकबर-प्रतिबोधक श्रीजिनचन्द्रसूरि के स्मारक रूप में दादावाड़ी नाम से जितने गुरुपूजा स्थान बने है उतने अन्य किसी गच्छ के पूर्वाचार्यों के स्मारक रूप में ऐसे खास स्मारक-स्थान बने ज्ञात नहीं होते।

इन पूर्वाचार्यों मे मुख्य स्थान श्रीजिनदत्तसूरि का है। श्रीजिनदत्तसूरि का स्वर्गगमन राजस्थान के प्राचीन एवं प्रधान नगर अजमेर में वि० सं० १२११ में हुआ। जहाँ पर उनके शरीर का अग्नि-संस्कार हुआ, वहाँ पर भक्तजनों ने सर्वप्रथम उस स्थान पर स्मारक स्वरूप देवकुल बनाया और उसमें स्वर्गीय आचार्यवर्य के चरणचिन्ह स्थापित किये।

श्रीजिनदत्तसूरि एक महान् प्रभावशाली आचार्य थे। ज्ञान और क्रिया के साथ ही उनमें अद्भुत संगठन शक्ति और निर्माण शक्ति थी। उन्होंने अपने प्रखर पाण्डित्य एवं ओजःपूर्ण संयम के प्रभाव से हजारों की संख्या में नये जैन धर्मानुयायी श्रावक कुलों का विशाल संघ निर्माण किया। राजस्थान में आज जो लाखों ओसवाल जातीय जैन जन हैं उनके पूर्वजों का अधिकांश भाग, इन्हीं जिनदत्तसूरिजी द्वारा प्रतिबोधित और सुसंगठित हुआ था। बाद में उत्तरोत्तर इन आचार्य के जो शिष्य-प्रशिष्य होते गए वे भी महान् गुरु का आदर्श सन्मुख रखते हुए इस संघ-निर्माण का कार्य सुन्दर रूप से चलाते और बढ़ाते रहे। श्रीजिनदत्तसूरि के ये सब शिष्य-प्रशिष्य धर्म प्रचार और संघनिर्माण के उद्देश्य से भारतवर्ष के जिन-जिन स्थानों में पहुंचे, वहां पर देवस्थान के साथ-साथ ही वे युगप्रवर्तक प्रवर गुरु के स्मारक रूप में छोटे-मोटे गुरुपूजा स्थान भी बनाते रहे और उनमें सूरिजी के चरणचिन्ह अथवा मूर्त्ति स्थापित करते रहे। ये स्थान आज सब दादावाड़ी के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं।

श्रीजिनदत्तसूरि महान् विद्वान और चारित्रशील होने के उपरान्त एक विशिष्ट चमत्कारी महात्मा भी माने जाते हैं अतः उनके नाम-स्मरण तथा चरण पूजन द्वारा भक्तों की मनोकामनाएँ भी सफल होती रही है। ऐसी श्रद्धा पूर्वकाल से इनके अनुयायी भक्तजनों में प्रचलित रही है अतः इस कारण से भी इनकी पूजा निमित्त इन देवकुलों, छत्रियों, स्तूपों आदि का निर्माण होता रहा है।

श्रीजिनदत्तसूरि के बाद उनकी पट्ट-परम्परा में होने वाले मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी, श्रीजिनकुशलसूरिजी तथा अकबर-प्रतिबोधक श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के विषय में भी चमत्कारी होने की बड़ी श्रद्धा भक्तजनों में प्रचलित है। इसलिये प्रायः इन चारों आचार्यों की भी सम्मिलित चरण पादुकाएं, मूर्त्ति आदि प्रतिष्ठित और पूजित होती रही है।



# श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की श्रेष्ठ रचना

## संवेगरंगशाला आराधना

### ( संक्षिप्त परिचय )

ले० पं० लालचन्द्र भगवान् गान्धी, बड़ौदा

[ सुविहित मार्ग प्रकाशक आचार्य जिनेश्वरसूरिजी के पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरिजी हुए। उनका विस्तृत परिचय तो प्राप्त नहीं होता। युगप्रधानाचार्य गुर्वावली में इतना ही लिखा है कि "जिनेश्वरसूरि ने जिनचन्द्र और अभयदेव को योग्य जानकर सूरिपद से विभूषित किया और वे श्रमण धर्म की विशिष्ट साधना करते हुए क्रमशः युगप्रधान पद पर आसीन हुए।

आचार्य जिनेश्वरसूरि के पश्चात् सूरिश्रेष्ठ जिनचन्द्रसूरि हुए, जिनके अष्टादश नाममाला का पाठ और अर्थ साङ्गोपाङ्ग कण्ठाग्र था, सब शास्त्रों के पारंगत जिनचन्द्रसूरि ने अठारह हजार श्लोक परिमित संवेगरंगशाला की सं० ११२५ में रचना की। यह ग्रन्थ भव्य जीवों के लिए मोक्ष रूपी महल के सोपान सदृश है।

जिनचन्द्रसूरि ने जावालिपुर में जाकर श्रावकों की सभा में "चीवंदण मावस्सय" इत्यादि गाथाओं की व्याख्या करते हुए जो सिद्धान्त संवाद कहे थे उनको उन्हीं के शिष्य ने लिखकर ३०० श्लोक परिमित दिनचर्या नामक ग्रन्थ तैयार कर दिया जो श्रावक समाज के लिए बहुत उपकारी सिद्ध हुआ। वे जिनचन्द्रसूरि अपने काल में जिन-धर्म का यथार्थ प्रकाश फैलाकर देवगति को प्राप्त हुए।"

आपके रचित पंच परमेष्ठी नमस्कार फल कुलक, क्षपक-शिक्षा प्रकरण, जीव-विभक्ति, आराधना, पार्श्व स्तोत्र आदि भी प्राप्त हैं।

संवेगरंगशाला अपने विषय का अत्यन्त महत्वपूर्ण विशद ग्रन्थ है। जिसका संक्षिप्त परिचय हमारे अनुरोध से जैन साहित्य के विशिष्ट विद्वान पं० लालचन्द्र भ० गांधी ने लिख भेजा है। इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित होना अति आवश्यक है।—सं० ]

श्रीजैनशासन के प्रभावक, समर्थ धर्मोपदेशक, ज्योतिर्धर गीतार्थ जैनाचार्यों में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का संस्मरणीय स्थान है। मोक्षमार्ग के आराधक, मुमुक्षु-जनों के परम माननीय, सत्कर्तव्य-परायण जिस आचार्य ने आज से नौ सौ वर्ष पहिले-विक्रम संवत् ११२५ में प्राकृत भाषा में दस हजार, ५३ गाथा प्रमाण संवेगमार्ग-प्रेरक संवेगरंगशाला आराधना की श्रेष्ठ रचना की थी, जो ९००-सौ सौ वर्षों के पीछे-विक्रमसंवत् २०२५ में पूर्णरूप से प्रकाश में आई है, परम आनन्द का विषय है।

बड़ौदा राज्यकी प्रेरणा से सुयोग्य विद्वान श्रीमल्लाल डा० दलाल एम०ए० ईस्वी सन् १९१६ के अन्तिम चार मास वहाँ ठहर कर जैसलमेर किले के प्राचीन ग्रन्थ-भण्डार

का अवलोकन वहीं मुश्किल से कर सके। वहाँ की रिपोर्ट कच्ची नोंध व्यवस्थित कर प्रकाशित कराने के पहिले ही वे ईस्वी सन् १९१७ अक्टोबर मास में स्वर्गस्थ हुए।

आज से ५० वर्ष पहिले-ईस्वी सन् १९२० अक्टोबर में बड़ोदा-राजकीय सेन्ट्रल लाइब्रेरी (संस्कृत पुस्तकालय) में 'जैन पंडित' उपनामसे हमारी नियुक्ति हुई, और विधि-वशात् सद्गत चीं० डा० दलाल एम० ए० के अकाल स्वर्गवास से अप्रकाशित वह कच्ची नोंध-आधारित 'जेसलमेर दुर्ग-जैन ग्रन्थभण्डार-सूचीपत्र' सम्पादित-प्रकाशित कराने का हमारा योग आया। दो वर्षों के बाद ईस्वी सन् १९२३ में उस संस्था द्वारा गायकवाड ओरि-यन्टल सिरीज नं० २१ में यह ग्रन्थ बहुत परिश्रम से बम्बई नि० सा० द्वारा प्रकाशित हुआ है। बहुत ग्रन्थ गवेषणा के बाद उसमें प्रस्तावना और विषयवार अप्रसिद्ध ग्रन्थ, ग्रन्थकृत-परिचय परिशिष्ट आदि संस्कृत भाषा में मैंने तैयार किया था। उसमें जेसलमेर दुर्ग के बड़े भण्डार में नं० १८३ में रही हुई उपर्युक्त संवेगरंगशाला (२८३/४ X २३/४ ईञ्च) ३४७ पत्रवाली ताड़पत्रीय पोथी का सूचन है। वहाँ अन्तिम उल्लेख इस प्रकार है :—

"इति श्रीजिनचन्द्रसूरिकृता तद्विनेय श्रीप्रसन्नचन्द्रा-चार्यसमभ्यर्थित-गुणचन्द्रगणि प्रतिसंस्कृ(संस्कृ)ता जिन-वल्लभगणिना संशोधिता संवेगरंगशालाभिधानाराधना समाप्ता।

संवत् १२०७ वर्षे ज्येष्ठसुदि १० गुरौ अद्येह श्रीवट-पद्रके दंड० श्रीवोसरि प्रतिपत्तौ संवेगरंगशाला पुस्तकं लिखितमिति।"

—स्व० दलाल ने इसकी पीछे की २७ पद्योंवाली लिखानेवाले की प्रशस्ति का सूचन किया है, अवकाशा-भाव से वहाँ लिखी नहीं थी।

जे० भां० सूचीपत्र में 'अप्रसिद्ध ग्रन्थ-ग्रन्थकृत्परिचय' कराने के समय मैंने 'जैनोपदेशग्रन्थाः' इस विभाग में पृ० ३८-३९ में 'संवेगरंगशाला' के सम्बन्ध में अन्वेषण पूर्वक संक्षिप्त परिचय सूचित किया था। उसकी रचना सं० ११२५ में हुई थी। लि० प्रति सं० १२०७ की थी। रचना का आधार नीचे टिप्पणी में मैंने मूलग्रन्थ की अर्वाचीन सं० ला० की ह० लि० प्रति से अवतरण द्वारा दर्शाया था—

"विक्कमनिवकालाओ समइक्कंतेसु वरिसाण।
एक्कारससु सएसु पणवीस समहिएसु ॥
निप्पत्ति संपत्ता एसाराहण त्ति फुडपायडपयत्था।"

भावार्थ—विक्रमनृपकाल से ११२५ वर्ष बीतने के बाद स्फुट प्रगट पदार्थवाली यह आराधना सिद्धि को प्राप्त हुई।

इसके पीछे मैंने बृहट्टिप्पनिका का भी संवाद दर्शाया था—"संवेगरङ्गशाला ११२५ वर्षे नवाङ्गाभय-देववृद्ध भ्रातृजिनचन्द्रीया १००५३"

मैंने वहाँ संस्कृत में संक्षेप में परिचय कराया था कि 'आराधनेयं नवाङ्गवृत्तिकाराभयदेवसूरेरभ्यर्थनया विरचिता। विरचयिता चायं जिनेश्वरसूरेर्मुख्यः शिष्योऽ-भयदेवसूरेश्च वृद्धसतीर्थ्यः।'

अभयदेवसूरि पर टिप्पनी में मैंने उसी संवेगरंगशाला की सं० ला० की ह० लि० प्रति से पाठ का अवतरण वहां दर्शाया था —

"सिरिअभयदेवसूरि त्ति पत्तकित्ती परं भवणे ॥[१००४१]
जेण कुबोह-महारिउ विहम्ममाणस्स नरवइस्सेव।
सुयधम्मस्स दढत्तं, निव्वत्तियमंगवित्तीहिं ॥ [१००४२]
तस्सब्भत्थणवसओ सिरिजिणचंदमुनिवरेण इमाण।
मालागारेन व उच्चिणिऊण वरवयणकुसुमाइं ॥ [१००४३]
सुहसुय-कारणाओ, गुंफित्ता नियमइगुणेण दढं।
विविहत्थ-सोरभभरा, निम्मवियाराहणामाला ॥[१००४४]'

भावार्थ:—भवन में श्रेष्ठ कीर्ति पानेवाले श्री अभय-देवसूरि हुए। जिसने कुबोध रूप महारिपु द्वारा विनष्ट किये जाते नरपति जैसे श्रुतधर्म का दृढ़त्व अंगों की वृत्तियों द्वारा किया। उनकी अभ्यर्थना के वश से

श्री जिनचन्द्र मुनिवर ने मालाकार की तरह, मूलसूत्र रूप उद्यान से श्रेष्ठ वचन-कुसुमों का उच्चुंटन कर, अपने मतिगुण से गुंफन करके विविध अर्थ-सौरभ-भरपूर यह आराधनामाला रची है।

इसके पीछे मैंने यहाँ सूचन किया है कि "पश्चात्पश्चात्वर्तिभिरन्यकारैरस्याः कृतेः संस्मरणमकारि।" इसका भावार्थ यह है कि—इस संवेगरंगशाला कृति का संस्मरण, पीछे होनेवाले अनेक ग्रन्थकारों ने किया है। इसका समर्थन करने के लिए मैंने यहां (१) गुणचन्द्रगणि का महावीरचरित, (२) जिनदत्तसूरि का गणधरसार्धशतक, (३) जिनपतिसूरि का पंचलिंगीविवरण (४) सुमतिगणि की गणधरसार्धशतक वृत्ति, (५) जपपुर मन्दिर-शिलालेख, (६) धर्मतिलक उपाध्याय का अभयकुमार चरित तथा (७) भुवनहित उपाध्याय के राजगृह-शिलालेख से अवतरण टिप्पणी में दर्शाये थे, वे इस प्रकार हैं—

श्रीगुणचन्द्र गणिने विक्रम संवत् ११३९ में रचित प्राकृत महावीरचरित में प्रशंसा की है कि—

"संवेगरंगसाला न केवलं कव्वविरयणा जेण।
भव्वजणविम्हयकरी विहिया संजमपवित्ती वि॥"

भावार्थ:—जिनने (श्रीजिनचन्द्रसूरि ने) सिर्फ संवेगरंगशाला काव्य-रचना ही नहीं की, भव्यजनों को विस्मय करानेवाली संयमप्रवृत्ति भी की थी।

[ २ ]

श्रीजिनदत्तसूरिजी ने विक्रम की बारहवीं शताब्दी-उत्तरार्ध में रचित प्रा० गणधरसार्धशतक में प्रशंसा की है कि—

"संवेगरंगसाला विसालसालोवमा कया जेण।
रागाइवेरिभयभीय - भव्वजणरक्खणनिमित्तं॥"

भावार्थ:—जिन्ने (श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने) रागादि वैरियों से भयभीत भव्यजनों के रक्षण-निमित्त विशाल किला जैसी संवेगरंगशाला की।

[ ३ ]

श्रीजिनपतिसूरिजी द्वारा विक्रम की तेरहवीं शताब्दी में रचित पंचलिंगी-विवरण सं० में प्रशंसा की है कि—

"नर्तयितुं संवेगं पुनर्नृणां लुप्तनृत्यमिव कलिना।
संवेगरङ्गशाला येन विशाला व्यरचि रुचिरा॥"

भावार्थ:—जिनने (श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने), कलिकाल से जिसका नृत्य लुप्त हो गया था, ऐसे मानो मनुष्यों के संवेग को नृत्य कराने के लिए विशाल मनोहर संवेगरंगशाला रची।

[ ४ ]

विक्रम संवत् १२९५ में सुमतिगणि ने गणधरसार्धशतक की सं० बृहद्वृत्ति में उल्लेख किया है कि—

"पश्चाज्जिनचन्द्रसूरिरभूत् यस्याष्टादशनाममाला सूत्रतोऽर्थतश्च मनस्यासन् सर्वशास्त्रविदः। येनाष्टा(?)दशसहस्रप्रमाणा संवेगरङ्गशाला मोक्षप्रासादपदवी भव्यजन्तूनां कृता। येन जावालिपुरे दू(न)तेन श्रावकाणामग्रे व्याख्यानं 'चीवंदणमावस्सय' इत्यादि गाथायाः कुर्वता सिद्धान्तसंवादाः कथितास्ते सर्वे सुशिष्येण लिखिताः शतश्लोकप्रमाणो दिनचर्याग्रन्थः श्रावकाणामुपकारी जातः।"

[—यह पाठ मैंने बड़ोदा-जैनज्ञानमन्दिर-स्थित श्रीहंसविजयजी मुनिराज के संग्रह की अर्वाचीन ह० लि० प्रति से उद्धृत कर दर्शाया था]

भावार्थ.—पीछे (श्रीजिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि के अनन्तर) श्रीजिनचन्द्र सूरिवर हुए। सर्वशास्त्रविद् जिनके मन में १८ नाममालाएँ सूत्र से और अर्थ से उपस्थित थीं। जिनने दस हजार गाथा प्रमाण संवेगरंगशाला भव्यजीवों के लिए मोक्ष प्रासाद-पदवी की। जावालिपुर में गए हुए जिनने श्रावकों के आगे 'चीवंदणमावस्सय' इत्यादि गाथा का व्याख्यान करते हुए सिद्धान्त के संवाद कहे थे, उन सबको सुशिष्य ने लिख लिए, सौ श्लोक-प्रमाण 'दिनचर्या' नामक ग्रन्थ श्रावकों के लिए उपकारी हो गया।

[ ५ ]

रिक्त संघपुर-जैन मन्दिर की भिति में लगे हुए प्रायः सं० १३२६ (?) के अपूर्ण शिलालेख की नकल स्व० बुद्धि-सागरसूरिजी की प्रेरणा से 'बीजापुर-वृत्तान्त' के लिए मैंने ५४ वर्ष पहिले उद्धृत की थी, उसमें यह पद्य है—

"संवेगरङ्गशाला सुरभिः सुरविटपि-कुसुममालेव ।
शुचिसरसाऽमरसरिदिव यस्य कृतिर्जयति कीर्तिरिव ॥

भावार्थः—जिसकी (श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की) कृति संवेगरंगशाला सुगन्धि कल्पवृक्ष की कुसुममाला जैसी और पवित्र सरस गंगानदी जैसी, और उनकी कीर्ति जैसी जयवती है।

[ ६ ]

उनकी परम्परा के चन्द्रतिलक उपाध्याय ने वि० सं० १३१२ में रचे हुए सं० अभयकुमार चरित काव्य में दो पद्य हैं कि—

"तस्याभूतां शिष्यौ, तत्प्रथमः सूरिराज **जिनचन्द्रः।**
**संवेगरङ्गशालां**, व्यधित कथां यो रसविशालाम् ॥
**बृहन्नमस्कारफलं**, श्रोतृलोकसुधाप्रपाम् ।
चक्रे क्षपकशिक्षां च, यः संवेगविवृद्धये ॥"

भावार्थः—उनके (श्रीजिनेश्वरसूरिजी के) दो शिष्य हुए। उनमें प्रथम सूरिराज जिनचन्द्र हुए; जिसने रस-विशाल श्रोता लोगों के लिये अमृत-परब जैसी संवेगरंगशाला कथा की, और जिसने **बृहन्नमस्कारफल** तथा संवेग की विवृद्धि के लिये **क्षपकशिक्षा** की थी।

राजगृह में विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी का जो शिलालेख उपलब्ध है, उसमें उनके अनुयायी भुवनहित उपाध्याय ने संस्कृत प्रशस्ति में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की संवेगरंगशाला का संस्मरण इस प्रकार किया है—

"ततः **श्रीजिनचन्द्राख्यो** बभूव मुनिपुंगवः ।
**संवेगरङ्गशालां** यश्चकार च बभार च ॥"

भावार्थः—उसके बाद (श्रीजिनेश्वरसूरिजी के पीछे) **श्रीजिनचन्द्र** नामके श्रेष्ठ सूरि हुए, जिसने **संवेगरंगशाला** की, और धारण-पोषण की।

—उत्तमोत्तम यह संवेगरंगशाला ग्रन्थ कई वर्षों के पहिले श्रीजिनदत्तसूरि-ज्ञानभंडार, सूरत से तीन हजार पद्य-प्रमाण अपूर्ण प्रकाशित हुआ था। दस हजार, तिरेपन गाथा प्रमाण परिपूर्ण ग्रन्थ आचार्यदेवविजयमनोहरसूरि शिष्याणु मुनि परम-तपस्वी **श्री हेमेन्द्रविजयजी** और **पं० बाबूभाई** सवचन्द के शुभ प्रयत्न से संशोधित संपादित होकर, विक्रम संवत् २०२५ में अणहिलपुर पत्तनवासी झवेरी कान्तिलाल मणिलाल द्वारा मोहमयी मुम्बापुरी से पत्राकार प्रकाशित हुआ है। मूल्य साढ़े बारह रुपया है। गत सप्ताह में ही संपादक मुनिराज ने कृपया उसकी १ प्रति हमें भेंट भेजी है।

इस ग्रन्थ के टाइटल के ऊपर तथा समाप्ति के पीछे कर्त्ता श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का विशेषण तपागच्छीय छपा है, घट नहीं सकता। 'तपागच्छ' नामकी प्रसिद्धि सं० १२८५ से श्रीजगच्चन्द्रसूरिजी से है, और इस ग्रन्थ की रचना वि० संवत् ११२५ में अर्थात् उससे करीब डेढ़ सौ वर्ष पहिले हुई थी। और वहाँ गुजराती प्रस्तावना में इस ग्रन्थकार श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को *समर्थ तार्किक महावादी श्री* सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी कृत संमतितर्क ग्रन्थ पर असाधारण टीका लिखनेवाले पू० आचार्यदेव श्रीअभयदेवसूरिजी महाराज के वडील गुरुबन्धु सूचित किया, वह उचित नहीं है। इस संवेगरंगशाला की प्रान्त प्रशस्ति में स्पष्ट सूचन है कि **वे अंगों की वृत्ति रचनेवाले श्रीअभयदेव सूरिजी के वडील गुरुबन्धु थे**, उनकी अभ्यर्थना से इस ग्रन्थ की रचना सूचित की है।

अभयदेवसूरिजी ने अङ्गों (आगम) पर वृत्तियाँ विक्रम संवत् ११२० से ११२८ तक में रची थी, प्रसिद्ध है।

इस संवेगरंगशाला के कर्ता ने अन्त में १००२६ गाथा से अपनी परम्परा का वंशवृक्ष सूचित किया है। उनमें चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर के अनन्तर सुधर्मा स्वामी, जंबूस्वामी, प्रभवस्वामी, शय्यंभव स्वामी की परम्परारूप अपूर्व वंशवृक्ष की, वज्रस्वामी की शाखा में हुए श्रीवर्धमानसूरिजी का वर्णन १००३४,३५ गाथा में किया है। उनके दो शिष्य (१) जिनेश्वरसूरि और (२) बुद्धिसागरसूरि का परिचय १००३६ से १००३९ गाथाओं में कराया है—

"तस्साहाए निम्मलजसपवलो सिद्धिकामलोयाणं।
सविसेसवंदणिज्जो य, रायणा यो(मे) रत्नवणीव्व ॥
१००३४॥
कालेणं संभूओ, भयवं सिरिवद्धमाण मुणिवसभो।
निष्पडिम पसमलच्छी-विच्छड्डाभंड-भंडारो ॥ १००३५ ॥
ववहार-निच्छयनय व्व, दव्व-भावत्थय व्व धम्मस्स।
परमुन्नइकारणा तस्स, दोन्नि, सीसा समुप्पन्ना ॥
॥ १००३६ ॥
पढमो सिरिसूरिजिणेसरो त्ति, सूरो व्व अम्मि उदयम्मि।
होत्था पहापहारो, दूरं तेयस्सि चक्कस्स ॥ १००३७ ॥
अज्ज वि य जस्स हरहास हंसगोरं गुणाण पब्भारं।
सुमरंता भव्वा उव्वहंति रोमंचमंगेसु ॥ १००३८ ॥
बीओ पुण विरइय-निउण-पवर वागरण-पमुह-बहुसत्थो।
नामेण बुद्धिसागर सूरित्ति अहेसि जयपयडो ॥१००३९॥
तेसिं पय-पंकयमंग-संग-संजात-परम-माहप्पो।
सिस्सो पढमोजिणचंदसूरि नामो समुप्पन्नो ॥१००४०॥
अन्नो य पुन्निमाससहरो व्व, निरुविय-भव्व-कुमुयवणो ॥"

[ गाथा १००४१ से १००४४ तक पहिले दर्शाया है ]

भावार्थ:—उस (वज्रस्वामी) की शाखा में काल-क्रम से निर्मल उज्ज्वल यशवाले, सिद्धि चाहने वाले लोगों के लिए राजा द्वारा रत्नाकर महासमुद्र की तरह (?) विशेष वंदनीय, प्रशम लक्ष्मी-विस्तार के भंडार भण्डार, भगवान् श्रेष्ठ श्रीवर्धमानसूरिजी हुए। उनके व्यवहारनय और निश्चयनय जैसे अथवा द्रव्यस्तव और भावस्तव जैसे धर्म की परम उन्नति करने वाले दो शिष्य हुए। उनमें प्रथम श्रीजिनेश्वरसूरि सूर्य जैसे हुए। जिसके उदय पाने पर अन्य तेजस्वि-मंडल की प्रभाका अपहरण हुआ था। जिनके हर-हास और हंस जैसे उज्ज्वल गुणों के समूह को स्मरण करते हुए भव्यजन आज भी अंगों पर रोमांच को धारण करते हैं।

और दूसरे, निपुण श्रेष्ठ व्याकरण प्रमुख बहु शास्त्रकी रचना करने वाले बुद्धिसागरसूरि नाम से जगत् में प्रख्यात हुए।

उनके (दोनों के) पद-पंकज और उत्संग-संग से परम माहात्म्य पानेवाला प्रथम शिष्य जिनचन्द्रसूरि नामवाला उत्पन्न हुआ। और दूसरा शिष्य अभयदेवसूरि पूर्णिमा के चन्द्र जैसा, भव्यजनरूप कुमुदवन को विकस्वर करनेवाला हुआ। [—इसके पीछे का १००४१ से १००४४ तक गाथा का सम्बन्ध ऊपर आ गया है ]

१००४५ गाथा में ग्रन्थकार ने सूचित किया है कि—श्रमण मधुकरों के हृदय हरनेवाली इस आराधनामाला (संवेगरंगशाला) को भव्यजन अपने गुरु (गुम) निमित विलासी जनोंकी तरह सर्व आदर से अत्यन्त सेवन करें। १००४६ से १००५४ गाथाओं में रचनाकार और रचना रचवाने का सूचन किया है कि—"सुगुण मुनिजनों के पद-प्रणाम से जिनका भाल पवित्र हुआ है, ऐसे सुप्रसिद्ध श्रेष्ठी गोवर्धन के पुत्र विख्यात जज्जनाग के पुत्र जो सुप्रशस्त तीर्थयात्रा करने से प्रख्यात हुए, असाधारण गुणों से जिन्होंने उज्ज्वल विशाल कीर्ति उपार्जित की है। जिन-बिंबोंकी प्रतिष्ठा कराना, श्रुतलेखन वगैरह धर्मकृत्यों द्वारा आलोकोपार्जित करनेवाले, अन्य जनों के चित्त को चमत्कार करनेवाले, जिनमत-भावित बुद्धिवाले सिद्ध और वीर नामवाले श्रेष्ठियों के परम साहाय्य और आदर से बहु

रचना की है। इस आराधना की रचना से हमने जो कुछ कुशल (पुण्य) उपार्जन किया, उससे भव्यजन, जिन-वचन की परम आराधना को प्राप्त करें। छत्रावल्लिपुरी में जेज्जयके पुत्र पासनाग के भुवन में विक्रमनृप के काल से ११२५ वर्ष व्यतीत होने पर स्फुट प्रकट पदार्थवाली यह आराधना सिद्धि को प्राप्त हुई है। इस रचनाको, विनय-नय-प्रधान, समस्त गुणोंके स्थान, जिनदत्त गणि नामक शिष्य ने प्रथम पुस्तक में लिखी। संमोह को दूर करने के लिए गिनती से निश्चय करके इस ग्रन्थ में तिरेपन गाथा से अधिक दस हजार गाथाएँ स्थापित की हैं।

अन्त में संस्कृत के गद्य में उल्लेख है कि, श्रीजिनचन्द्रसूरि कृत, उनके शिष्य प्रसन्नचन्द्राचार्य-समभ्यर्थित, गुणचन्द्रगणि-प्रतिसंस्कृत, और जिनवल्लभगणि द्वारा संशोधित संवेगरंगशाला नामकी आराधना समाप्त हुई।

अन्तमें प्रति-पुस्तक लिखने का समय संवत् १२०७ (सं० १२०३ नहीं) और स्थान वटपद्रक में (अर्थात् इस वड़ोदा में समझना चाहिये।) [प्रकाशित आवृत्ति में दंडश्रीवासरे प्रतिपत्तो छपा है, वहाँ दडश्रीवोसरि-प्रतिपत्तो होना चाहिए, मैंने अन्यत्र दर्शाया है। [देखें, जे० भां० सूचीपत्र (गा० ओ० सि० नं० २१ पृ० २१, 'वटपद्र (वड़ोदा) का ऐतिहासिक उल्लेखो' हमारा 'ऐतिहासिक लेख संग्रह' सयाजी साहित्यमाला क्र० ३३५ वगैरह)

**ग्रन्थ निर्दिष्ट नाम**—वर्धमानसूरिजी की संवत् १०५५ में रचित उपदेशपद-वृत्ति, जिनेश्वरसूरिजी की जावालिपुरमें सं० १०८० में रचित अष्टकप्रकरणवृत्ति, प्रमालक्ष्म आदि, तथा बुद्धिसागरसूरिजी का सं० १०८० में रचित व्याकरण (पंचग्रन्थी), और अभयदेवसूरिजी की सं० ११२० से ११२८ में रचित स्थानांग वगैरह अंगोंकी वृत्तियों की प्राचीन प्रतियों का निर्देश हमने 'जेसलमेर-भण्डार-ग्रन्थसूची' (गा० ओ० सि० नं० २१) में किया है, जिज्ञासुओं को अवलोकन करना चाहिए।

पाठकों को स्मरण रहे कि, इस संवेगरंगशाला आराधना रचनेवाले श्रीजिनचंद्रसूरिजी के गुरुवर्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी ने गुजरात में अणहिलवाड पत्तन (पाटण) में दुर्लभराज राजा की सभा में चैत्यवासियों को वाद में परास्त किया था, 'साधुओं को चैत्य में वास नहीं करना चाहिये, किन्तु गृहस्थों के निर्दोष स्थान (वसति) में वास करना चाहिए'-ऐसा स्थापित किया था। उपर्युक्त निर्णय के अनुसार जिनेश्वरसूरिजी के प्रथम शिष्य जिनचन्द्रसूरिजी ने इस ग्रन्थ की रचना पूर्वोक्त गृहस्थ के भवन में ठहर कर की थी। उपर्युक्त घटना का उल्लेख जिनदत्तसूरिजी के प्रा० गणधरसार्धशतक में, तथा उनके अनेक अनुयायियों ने अन्यत्र प्रसिद्ध किया है, जो जेसलमेर भण्डार की ग्रन्थसूची (गा० ओ० सि० नं० २१), तथा अपभ्रंशकाव्यत्रयी (गा० ओ० सि० नं० ३७) के परिशिष्ट आदि के अवलोकन से ज्ञात होगा। खरतरगच्छ वालों की मान्यता यह है कि, उस वाद में विजय पाने से महाराजा ने विजेता जिनेश्वरसूरिजीको 'खरतर' शब्द कहा या बिरुद दिया। इसके बाद उनके अनुयायी खरतरगच्छ वाले पहचाने जाते हैं। दुर्लभराज का राज्य समय वि० सं० १०६५ से १०७८ तक प्रसिद्ध है, तो भी खरतरगच्छ की स्थापना का समय सं० १०८० माना जाता है।

संवेगरंगशालाकार इस जिनचन्द्रसूरिजी की प्रभावकताके कारण खरतरगच्छ की पट्ट-परम्परा में उनसे चौथे पट्टधर का नाम 'जिनचन्द्रसूरि' रखने की प्रथा है।

## आराधना-शास्त्रकी संकलना

प्रतिष्ठित पूर्वाचार्यों से प्रशंसित इस संवेगरंगशाला आराधना ग्रन्थ-अथवा आराधना शास्त्र की संकलना श्रेष्ठ कवि श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने परम्परा-प्रस्थापित सरल सुबोध प्राकृत भाषा में की, उचित किया है। प्रारम्भ में शिष्टाचार-परिपालन करने के लिए विस्तार से मंगल, अभिधेय, सम्बन्ध, प्रयोजनादि दर्शाया है। ऋषभादि सर्व तीर्थाधिप

महावीर, सिद्धों, गौतमादि गणधरों, आचार्यों, उपाध्यायों और मुनियों को प्रणाम करके सर्वज्ञकी महावाणी को भी नमन किया है। प्रवचन की प्रशंसा करके, निर्यापक गुरुओं और मुनियों को भी नमस्कार किया है। मुक्ति-गमन की मूलपदरूपी चार स्कन्धरूप यह आराधना जिन्होंने प्राप्त की, उन मुनियों को वन्दन किया और गृहस्थों को अभिनन्दन दिया (गा० १४), मजबूत नाव जैसी यह आराधना भगवती जगत् में जयवंती रहो, जिस पर आरूढ़ होकर भव्य मनिजन रौद्र भव-समुद्र को तरते हैं। वह श्रुतदेवी जयवंती है कि, जिसके प्रसाद से मन्दमति जन भी अपने इच्छित अर्थ निस्तारणमें समर्थ होते हैं। जिन के पद-प्रसादसे मैं समस्त जग-वन्दनीय पदवीको पाया हूँ, विबुध जनों द्वारा वन्द्य उन अपने गुरुओंको मैं प्रणिपात करता हूँ। इस प्रकार समस्त स्तुति करने योग्य व्यक्ति विशेष प्रभृत स्तुतिरूप मंगलाचरण पूर्वकी तरह जिसने प्राकृत (गाथा)-प्रतिबद्ध विस्तृत किया है, ऐसा मैं स्वयं मन्दमति होने पर भी बड़े गुरु-जनसे युक्त ऐसे गुरुओं के चरण-प्रसादसे भव्यजनोंके हितके लिए कुछ कहता हूँ। (१६)

अनन्तर अनादिकालसे दुर्लभ मनुष्यत्व, और कुलादि पाकर, भाग्य उदयसे, अपने विशेषसे, अत्यन्त दुर्लभ दर्शन-मोहनीय के अभावसे, गुरुके उपदेशसे अथवा स्वयं कर्म-क्षयोपशमसे, भारी दर्शन मोहके हरण किये जाने लोगोंको नदी-नदका मार्ग (अनुपम मनस्तत्त्व) मिल जाय, अथवा अन्धोंको निधान प्राप्त हो जाय, अथवा विविध व्याधि-पीड़ित जनोंको सुवैद्य मिल जाय, अथवा कुएँके भीतर गिरे हुए को समर्थ हस्तावलम्ब मिल जाय; इसी तरह अतिशय पुण्यवंशसे पाने योग्य, विनयादि गुण और कल्पवृक्षको जानने वाले, निर्वाणक परम (पद) सर्वज्ञ धर्म को पाकर, उसे निरन्तर ही सेवन करना चाहिए। वह ऐसे रीति ऐसा हो कि, जो भविष्यके निरन्तर (निरवधि) बढ़ी हो, जिससे भी, और कभी भी बाधित न हो। ऐसा अनुपम अत्यन्त एकान्तिक परम हित (सुख) मोक्षमें होता है, और मोक्ष कर्मोंके क्षयसे होता है, और कर्मक्षय, विशुद्ध आराधना आराधित करनेसे होता है। इसलिए हितार्थी जनोंको आराधनामें सदा यत्न करना चाहिए; क्योंकि, उपायके बिना उपेय (प्राप्त करने योग्य साध्य) प्राप्त नहीं हो सकता।

आराधना करनेके इच्छुकों को उस अर्थ को प्रकट करने वाले शास्त्रों का ज्ञान चाहिए। इसलिए 'गृहस्थों और साधुओं दोनों के लिए इस आराधना शास्त्रको मैं तुच्छ बुद्धि वाला होने पर भी कहूँगा। आराधना करने वाले को चाहिए कि वह मन, वचन, काया इस त्रिकरण का योग करे।'

इस आराधना शास्त्रमें (१) परिकर्म-विधान (२) परगण-संक्रमण (३) ममत्वव्युच्छेद और (४) समाधि-लाभ नामक चार स्कन्ध (विभाग) हैं।

पहले (१) परिकर्म-विधानमें (१) अर्ह (२) लिङ्ग, (३) शिक्षा (४) विनय, (५) समाधि (६) मनोऽनुशास्ति, (७) अनियत विहार, (८) राजा (९) परिणाम साधारण छूटनेके १० विविधोंके स्थानों, (१०) त्याग, (११) मरण-विभक्ति-१७ प्रकारके मरणों पर विचार, (१२) अधिकृत मरण, (१३) श्रीति (श्रेणी), (१४) भावना और (१५) संलेखना इस प्रकारके १५ द्वारों को विविध बोधक दृष्टान्तोंसे स्पष्ट रूपसे समझाया है।

दूसरे (२) परगण संक्रमण स्कन्ध (विभाग) में (१) दिशा, (२) क्षामणा, (३) अनुशास्ति, (४) सुस्थित गवेषणा, (५) उपसम्पदा, (६) परीक्षा, (७) प्रतिलेखना, (८) पृच्छा, (९) प्रतीच्छा, (१०)

इस प्रकार इन द्वारोंको विविध दृष्टान्तोंसे स्पष्टतासे समझाया है।

तीसरे (३) ममत्वव्युच्छेद स्कन्ध (विभाग) में (१)

आलोचनाविधान, (२) शय्या, (३) संस्तारक, (४) निर्यामक, (५) दर्शन, (६) हानि, (७) प्रत्याख्यान, (८) खामणा- क्षमापना, (९) क्षमा इस तरह नो द्वारों को विविध दृष्टान्तोंसे स्पष्ट समझाया है।

चोथे (४) **समाधि-लाभ** नामक स्कन्ध (विभाग) में (१) अनुशास्ति, (२) प्रतिपत्ति, (३) सा(स्मा)रणा, (४) कवच, (५) समता, (६) ध्यान, (७) लेश्या, (८) आराधना-फल और (९) विजहना द्वारमें अनेक ज्ञातव्य विषय समझाये गये है।

—इसके (१) अनुशास्ति द्वारमें त्याग करने योग्य १८ अठारह पापस्थानकों के विषयमें, (२) त्याग करने योग्य ८ आठ प्रकारके मदस्थानोंके विषयमें, (३) त्याग करने योग्य क्रोधादि कषायोंके विषयमें, ४) त्याग करने योग्य ५ पांच प्रकारके प्रमाद के विषयमें, (५) प्रतिबन्ध-त्याग विषयमें, (६) सम्यक्त्व-स्थिरता के विषयमें, (७) अर्हन् आदि छः की भक्तिमत्ता के विषयमें, (८) पंचनमस्कारतत्परता के विषयमें, (९) सम्यग् ज्ञानोपयोग के विषयमें, १०) पंच महाव्रत-विषयमें, (११) चतुःशरण-गमन, (१२) दुष्कृत-गर्हा, (१३) सुकृतों की अनुमोदना, (१४ अनित्य आदि १२ बारह भावना, (१५) शील-पालन, (१६) इन्द्रिय-दमन, (१७) तपमें उद्यम और १८) निःशल्यता-नियाण-निदान, माया, मिथ्यात्व-शल्य-त्याग इस प्रकार १८ द्वारों को अन्वय-व्यतिरेकसे विविध दृष्टान्तों द्वारा विवेचन करके अच्छी तरहसे समझाया गया है।

इसके प्रथम स्कन्धके परिणाम द्वार में श्रावकोंकी ११ प्रतिमाओंके अनन्तर **साधारण द्रव्यके १० विनियोग स्थान** दर्शाये हैं, विचारने-समझने योग्य हैं; अन्य **७ क्षेत्रों में द्रव्यवपन** करनेका उपदेश है। आजसे २९ वर्ष पहिले मैंने १ लेख 'सुशील जैन महिलाओनां संस्मरणो' मुंबई और मांगरोल जैन सभाके सुवर्णमहोत्सव अंकके लिए गुजरातीमें लिखा था, वह संवत् १९९८ में प्रकाशित हुआ था। और 'सयाजी साहित्यमाला' पुष्प ३३५ में हमारे 'ऐतिहासिक लेखसंग्रह में [ क्र० १०, ३३१ से ३४७ में] संवत् २०१९ में प्राच्यविद्यामन्दिर द्वारा महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, वड़ोदासे प्रकाशित है। उसमें मैंने इस **संवेगरंगशाला** में से **श्रमणी** और श्रावक, **श्राविका** स्थानोंके लिए द्रव्य-विनियोग वक्तव्य दर्शाया था। साथमें कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्राचार्यके स्वोपज्ञ विवरण वाले संस्कृत योगशास्त्रमें भी परामर्श सूचित किया था। इस संवेगरंगशालाकी रचना विक्रमसंवत् ११२५ में, और श्रीहेमचन्द्राचार्यका जन्म विक्रमसंवत् ११४५ में (वीस वर्ष पीछे) हुआ था, प्रसिद्ध है।

**संवेगरंगशालामें** परिणामद्वारमें आयुष्यपरिज्ञानके जो ११ द्वारों (१) देवता, (२) शकुन, (३) उपश्रुति, (४) छाया, (५) नाडी, (६) निमित्त, (७) ज्योतिष, (८) स्वप्न, (९) अरिष्ट, (१०) यन्त्र-प्रयोग और (११) विद्या-द्वार दर्शाये हैं। इसी तरह श्रीहेमचन्द्राचार्यने अपने संस्कृत **योगशास्त्रमें** (पांचवें प्रकाशमें) **काल-ज्ञानका** विचार विस्तारसे दर्शाया है। तुलनात्मक दृष्टिसे अभ्यास करने योग्य है।

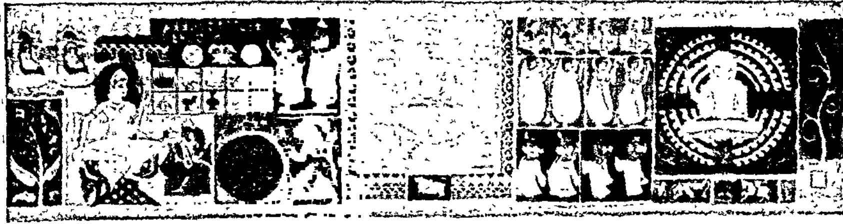
पाटन और जेसलमेर आदिके जैन ग्रन्थभंडारों में आराधना-विषयक छोटे-मोटे अनेक ग्रन्थ है, सूचीपत्रमें दर्शाये हैं। इन सबका प्राचीन आधार यह संवेगरंगशाला आराधनाशास्त्र मालूम होता है। वर्तमानमें, अन्तिम आराधना करानेके लिए सुनाया जाता आराधना प्रकीर्णक, चउसरणपयन्ना और उ० विनयविजयजी म० का पुण्य-प्रकाश स्तवन इत्यादि इस संवेगरंगशाला ग्रन्थका 'ममत्व-व्युच्छेद' 'समाधि-लाभ' विभागका संक्षेप है—ऐसा अवलोकनसे प्रतीत होगा।

दस हजारसे अधिक ५३ प्राकृत गाथाओंका सार इस संक्षिप्त लेखमें दिग्दर्शन रूप सूचित किया है। परम उपकारक इस ग्रन्थका पठन-पाठन, व्याख्यान, श्रवण, अनुवाद आदिसे प्रसारण करना अत्यन्त आवश्यक है, परमहितकारक स्वपरोपकारक है।

आशा है, चतुर्विध श्रीसंघ इस आराधना शास्त्रके प्रचारमें सब प्रकारसे प्रयत्न करके महसेन राजाकी तरह आत्महितके साथ परोपकार साधेंगे। मुमुक्षु जन आराधना रसायनसे उनसे अजरामर बने—यही शुभेच्छा।

संवत् २०२७ पोषवदि ३ गुरु
( मकर-संक्रान्ति )
वड़ी वाड़ी, रावपुरा,
**वड़ौदा** ( गुजरात )

**लालचन्द्र भगवान् गांधी**
[ निवृत्त 'जैनपण्डित' वड़ौदा राज्य ]



प्रथम नरेश्वर और प्रथमतीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव

१ भगवान का कर्मभूमियोग्य विविध कला सिखाना

२ ब्राह्मी सुन्दरी को ब्राह्मी लिपी आदि सिखाना

३ भरत चक्रवर्ती की आयुधशाला में चक्र का प्राकट्य

४ समवशरण में चतुर्विध संघ स्थापन बारह परिषद् में धर्म देशना

५ कैलाश पर्वत पर निर्वाण, सिद्धशिला पर विराजमान प्रभु

चित्रकार—इन्द्र दूगड़

जैन भवन के सौजन्य से

साधु साध्वी सहित भक्त श्रावक संघ को आशीर्वाद देते हुए युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि

# नवाङ्गी-वृत्तिकार श्री अभयदेवसूरि

[ अगरचंद नाहटा ]

सुविहित मार्ग प्रकाशक श्री जिनेश्वरसूरिजी के दो प्रधान शिष्य थे, एक संवेगशाला प्रकरणकर्त्ता श्री जिनचन्द्रसूरि और दूसरे नवाङ्गी वृत्तिकर्त्ता श्री अभयदेवसूरि। श्री जिनेश्वरसूरिजी के पट्ट पर श्रीजिनचन्द्रसूरि और उनके पट्ट पर श्री अभयदेवसूरिजी प्रतिष्ठित हुए। आपके प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में प्रभावक चरित्र में लिखा है कि आचार्य जिनेश्वरसूरि सं० १०८० के पश्चात् जावालिपुर (जालोर) से विहार करते हुए मालव प्रदेश की राजधानी धारानगरी में पधारे। वहां आपका प्रवचन निरन्तर होता था। इसी नगरी में श्रेष्ठी महीधर नामक विचक्षण व्यापारी रहता था। उनकी पत्नी धनदेवी थी। अभयकुमार उनका सौभाग्यशाली पुत्र था। आचार्य जिनेश्वरसूरि का व्याख्यान सुनने के लिए महीधर का पुत्र अभयकुमार भी आया करता था। आचार्यश्री के वैराग्यपोषक शांत रसवर्द्धक उपदेश से अभयकुमार प्रभावित हुआ और माता-पिता से अनुमति प्राप्त कर श्रीजिनेश्वरसूरि के पास दीक्षा ग्रहण की। उनका दीक्षा नाम अभयदेवमुनि रखा गया।

श्रीजिनेश्वरसूरि के पास ही स्व-पर शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन अभयदेव ने किया। ज्ञानार्जन के साथ-साथ वे उग्र तपश्चर्या भी करने लगे। आपकी योग्यता और प्रतिभा को देखकर जिनेश्वरसूरि ने आपको संवत् १०८८ में आचार्य पद प्रदान किया।

उस समय के प्रमुख प्रमुख आचार्य सैद्धान्तिक आगमों का अध्ययन छोड़कर आयुर्वेद, धनुर्वेद, ज्योतिष, सामुद्रिक, नाट्य शास्त्रादि विषयों में पारंगत होते जा रहे थे। मंत्र, तंत्र और यंत्र विद्या के चमत्कारों से राजाओं व जनता पर भी उनका अच्छा प्रभाव जमता जाता था। आगमों के अभ्यास की परम्परा शिथिल हो जाने से बहुत से गुरु आम्नाय लुप्त हो गए और मूल पाठ भी त्रुटित और अशुद्ध होते जा रहे थे। ऐसी परिस्थिति को देख कर अभयदेवसूरि ने अपनी बहुश्रुतता का उपयोग उन आगमों पर टीकाएं बनाने के रूप में किया। सं० ११२० से ११२८ तक यह कार्य निरन्तर चलता रहा। पाटण में आगमों की प्रतियां और चैत्यवासी आगम विज्ञ आचार्य का सहयोग सुलभ था। मध्य वर्ती समय में सं० ११२४ में आपने धवलका में रहते हुए बकुल और नंदिक सेठ के घर में पंचाशक टीका बनाई।

ठाणांग सूत्र से लेकर विपाक सूत्र तक नवाङ्गों की जो आपने टीका बनाई, उसका संशोधन उदारभाव से चैत्यवासी गीतार्थ द्रोणाचार्य से कराया जिससे वे सर्वमान्य हो गई।

अभयदेवसूरिजी के जीवन की दूसरी घटना स्तंभन पार्श्वनाथ प्रतिमा को प्रकट करना है। कहा गया है कि टीकाएं रचने के समय अधिक परिश्रम और चिरकाल आयंबिल तप के कारण आपका शरीर व्याधिग्रस्त और जर्जरित हो गया। अनशन करने का विचार करने पर शासनदेवी ने कहा कि सेढी नदी के पार्श्ववर्ती खोखरा पलाश के नीचे भ० पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। आपकी स्तवना से वह प्रतिमा प्रकट होगी। उस प्रतिमा के स्नात्रजल से आपकी सारी व्याधि मिट जायगी। शासनदेवी के निर्देशानुसार उन्होंने "जयतिहुअण" स्तोत्र द्वारा भ० पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रगट की। आज भी यह स्तोत्र प्रतिदिन खरतरगच्छ में प्रतिक्रमण में बोला जाता है।

सुमतिगणि रचित गणधर सार्धशतक बृहद् वृत्ति, जिनपालोपाध्याय कृत युगप्रधानाचार्य गुर्वावली, जिनप्रभसूरि कृत विविध तीर्थकल्प एवं सोमधर्म रचित उपदेश-

सप्तति के अनुसार पार्श्वनाथ प्रतिमा का प्रकटीकरण होने के पश्चात् नवाङ्गी टीका रची गई थी और प्रभावक चरित्र, प्रबंधचिन्तामणि व पुरातन प्रबन्ध संग्रह के अनुसार नवाङ्गी टीका पूरी होने के बाद प्रतिमा का प्रकटन हुआ।

आचारांग और सूयगडांग दो आगमों पर शीलांकाचार्य की टीकाएं हैं, बाकी नवांग सूत्रों पर आपने टीका लिखकर जैन शासन की महान् सेवा की है। टीकाएं बहुत ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से ग्रन्थ पंचाशक वृत्ति, व कई ग्रन्थों के भाष्य बनाये थे। आपके रचित कई स्तोत्र, प्रकरणादि भी प्राप्त हैं।

अभयदेवसूरिजी ने अनेक विद्वान तैयार किये, जिनमें से वर्द्धमानसूरि रचित आदिनाथचरित, मनोरमा आदि प्राकृत भाषा के महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचे हैं। श्रीजिनवल्लभ गणि को आपने आगमादि का अभ्यास करवाके बहुत ही योग्य विद्वान और कवि बना दिया। इन जिनवल्लभसूरि की प्राप्त समस्त रचनाओं का संग्रह और उनका आलोचनात्मक अध्ययन महोपाध्याय विनयसागरजी ने किया है। उनके इस शोधकार्य पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें महोपाध्याय पद से विभूषित किया है।

आचार्य अभयदेवसूरि सर्वगच्छमान्य थे। उनका चरित्र खरतरगच्छ की गुर्वावलि-पट्टावलियों के अतिरिक्त अन्य गच्छीय प्रभाचन्द्रसूरि ने प्रभावक-चरित्र में एक स्वतन्त्र प्रबन्ध के रूप में ग्रथित किया है। इसी तरह तपागच्छीय सोमधर्म ने उपदेश-सप्तति में भी उनका प्रबन्ध लिखा है। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में भी एक उनका प्रबन्ध प्रकाशित हुआ है। इन तीनों प्रकाशित प्रबन्धों के अतिरिक्त मेरुतुंगसूरि रचित स्तंभ पार्श्वनाथ चरित्र के अन्तिम प्रबन्ध में भी अभयदेवसूरि की कथा दी है। अप्रकाशित होने से उस कथा को नीचे दिया जा रहा है।

"प्रभावकपरम्परायां श्रीचन्द्रगच्छे श्रीसुविहित-शिरोवतंस वर्द्धमानसूरिनामा वढ़वाणनगरे विहारं कुर्वन्नाययौ। तत्रस्थोमेश्वरस्वर्गं सोमेश्वरनामा द्विजातिः, प्रभाते वर्द्धमानसूरिरूप ईश्वरोऽयं सोऽधादेष भगवानाचार्यः। इति स्वप्नादेशप्रमाणेन प्रतिपद्यतस्यां यात्रासम्पूर्णो मन्य-मान आचार्यान्तिके शिष्यो जातः, पादाभिषिक्तः काले जाओ जिनेश्वरसूरिनामा। तस्य शिष्यः श्रीमदभयदेवसूरि-र्नवाङ्गवृत्तिकारः। सोऽपि कर्मोदयेन कुष्ठी जातः। श्रुतदेवतादेशात् दक्षिणदिग्विभागात् धवलक्के समागत्य संघयात्रया श्रीस्तम्भ नायकं प्रणंतुं स सूरिरागतः। ११३१ वर्षे श्री स्तम्भनायकः प्रकटीकृतः। ग्रामभट्टेन बोहावेन सहीपड एव पूज्यमानः। प्रतिदिनं ग्रामभट्टकपिलया गवा निजोधस्वक्षरत् पयोधारया संस्नापनानन्तरमस्वस्थोऽभूत्। तदा च श्रीमदभयदेवसूरिणा जयतिहुअण द्वात्रिंशतिका सर्व-जिनशासन भक्त देवतागण प्रोद्प्रतापोदयात् गुप्तमहा-मन्त्राक्षरा षेडे षोडशे च काव्ये स सूरिरशोकबालकुन्तल समपुद्गल श्री ःजनिस्वामी च पलाशवृक्षमूलात् आवि-रास। ततः शासनप्रभावको जातः। १३६८ वर्षे इदं च बिम्बं श्री स्तम्भ तीर्थे समायातो भविकानुग्रहणाय। इत्यं कालापेक्षया नानाभक्तैः नाना नामग्राहं नानाभक्त्या पूजितोऽयं परमेश्वरः। सर्वार्थसिद्धिदाता जातस्तेषां द्वात्रिं-शता प्रबन्धैर्बद्धं श्रीस्तम्भनाथ चरितमिदं। श्री पत्र द्विषोडशो ऽभूत् बन्धोऽभयदेवसूरिकथा ॥ ३२ ॥

इति अमन्द जगदानन्द दायिनि आचार्य श्री मेरुतुंग-विरचिते देवाधिदेव माहात्म्य शास्त्रे श्री स्तम्भनाथ चरिते द्वात्रिंशत्प्रबन्धबन्धुरे द्वात्रिंशत्तमः प्रबन्धः समर्थितः। समाप्तं चेदं श्रीस्तम्भनाथचरितम्।

सं० १४१३ के उपर्युक्त प्रबन्ध में स्तम्भन पार्श्वनाथ के प्रकटीकरण का समय सं० ११३१ दिया है इससे नवांग-वृत्ति रचना के बाद ही यह घटना हुई—सिद्ध होता है। अभयदेवसूरिजी का स्वर्गवास सं० ११३५ या सं०११३९ में कपड़वंज में हुआ। खरतरगच्छ पट्टावली के अनुसार आप

चतुर्थ देवलोक में हैं और तीसरे भव में मोक्षगामी होंगे यथा:—

"भणिय तित्थयरेहिं महाविदेहे भवमि तइयम्मि ।
तुम्हाण चेव गुरुणो सिग्घं मुक्तिं गमिस्संति ॥१॥
कर्पटवाणिज्ये नगरे श्रीअभयदेवादिवम्
गताः चतुर्थ देवलोके विजयिनः सन्ति ।"

## आचार्य श्रीअभयदेवसूरिजी की निम्नोक्त रचनाएँ प्राप्त हैं

| | | |
|---|---|---|
| १ | स्थानांग वृत्ति (सं० ११२० पाटण) | १४२५० |
| २ | समवायाङ्ग वृत्ति (सं० ११२० पाटण) | ३५७५ |
| ३ | भगवती वृत्ति (सं० ११२८ ,, ) | १८६१६ |
| ४ | ज्ञाता सूत्र वृत्ति (सं० १-२० विजया-दशमी, पाटण) | ३८०० |
| ५ | उपासक दशा सूत्र वृत्ति | ८१२ |
| ६ | अन्तकृद्दशा सूत्र वृत्ति | ८९९ |
| ७ | अनुत्तरोपपातिक सूत्र वृत्ति | ११२ |
| ८ | प्रश्नव्याकरण सूत्र वृत्ति | ४६०० |
| ९ | विपाक सूत्र वृत्ति | ९०० |
| १० | उववाइ सूत्र वृत्ति | ३१२५ |
| ११ | प्रज्ञापना तृतीय पद संग्रहणी | १३३ |
| १२ | पञ्चाशक सूत्र वृत्ति (सं० ११२४ धोलका) | ७४८० |
| १३ | सप्ततिका भाष्य | १९२ |
| १४ | बृहद् वन्दनक भाष्य | ३३ |
| १५ | नवपद प्रकरण भाष्य | १५१ |
| १६ | पंच निर्ग्रन्थी | |
| १७ | आगम अष्टोत्तरी | |
| १८ | निगोद षट्त्रिंशिका | |
| १९ | पुद्गल षट्त्रिंशिका | |
| २० | आराधना प्रकरण | गा० ८५ |
| २१ | आलोयणा विधि प्रकरण | गा० २५ |
| २२ | स्वधर्मी वात्सल्य कुलक | |
| २३ | जयतिहुअण स्तोत्र | गा० ३० |
| २४ | पार्श्ववस्तु स्तव [देवउत्थिय] | गा० १६ |
| २५ | स्तंभन पार्श्व स्तव | गा० ८ |
| २६ | पार्श्व विंशतिका (सुरनर किन्नर०) | गा० |
| २७ | विंशतिका (जेसलमेर भण्डार) | प० २६ |
| २८ | षट् स्थान भाष्य | गा० १७३ |
| २९ | वीर स्तोत्र | गा० २२ |
| ३० | षोडशक टीका | पत्र ३० |
| ३१ | महादण्डक | |
| ३२ | तिथि पयन्ना | |
| ३३ | महावीर चरित (अपभ्रंश) | गा० १०८ |
| ३४ | उपधानविधि पंचाशक प्रकरण | गा० ५० |

आचार्य अभयदेवसूरि के महत्त्व को व्यक्त करते हुए द्रोणाचार्य कहते हैं :—

आचार्याः प्रतिसद्म सन्ति महिमा येषामपि प्राकृते,
मातुं नाऽध्यवसीयते सुचरितैस्तेषां पवित्रं जगत् ।
एकेनाऽपि गुणेन किन्तु जगति प्रज्ञावना साम्प्रतं,
यो धत्तेऽभयदेवसूरिसमतां सोऽस्माकमावेद्यताम् ॥

[ युगप्रधानाचार्य गुर्वावली पृ० ७ ]

# प्रकाण्ड विद्वान और कवि-श्रेष्ठ श्रीजिनवल्लभसूरि

नवाङ्गवृत्तिकार आचार्य श्री अभयदेवसूरि के पट्टधर श्री जिनवल्लभसूरि जैन-शासन के महान् ज्योतिर्धर थे। उन्होंने चैत्यवास का परित्याग कर अभयदेवसूरिजी से उप-सम्पदा ग्रहण की। ये एक क्रान्तिकारी आचार्य और विशिष्ट विद्वान थे, जिन्होंने विधिमार्ग के प्रचार में प्रबल पुरुषार्थ किया और अनेकों महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण कर जैन साहित्य का गौरव बढ़ाया। कूर्चपुरीय चैत्यवासी आचार्य श्री जिनेश्वर के आप शिष्य थे। व्याकरणादि समस्त साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् जैनागमादि साहित्य में निष्णात होने के लिए वाचनाचार्य पद देकर इनके गुरु जिनेश्वराचार्य ने अभयदेवसूरिजी के पास भेजा। अभयदेव-सूरि ने इनकी विनयशीलता, असाधारण प्रतिभा को देख कर बड़े आत्मीय भाव से आगमादि का अध्ययन करवाया। इतना ही नहीं, अभयदेवसूरि के एक भक्त दैवज्ञ ने इन्हें ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन करवा कर उस विषय में भी निष्णात बना दिया।

अभयदेवसूरि के पास अध्ययन समाप्त कर जब ये अपने गुरु के पास जाने लगे तो उन्होंने कहा कि सिद्धान्तों के अध्ययन का यही सार है कि तदनुसार आचार का पालन किया जाय। विद्यागुरु की इस हित-शिक्षा को उन्होंने गांठ बांध ली और अपने गुरु जिनेश्वर से मिलकर चैत्यवास त्याग की आज्ञा प्राप्त कर पाटण—लौट आये और अभयदेव-सूरिजी से उपसम्पदा ग्रहण कर ली। इसके बाद चित्तौड़ आये और चैत्यवासियों को निरस्त कर पार्श्वनाथ और महावीर चैत्यों की स्थापना की। तदनन्तर नागपुर और नरवर में भी विधि-चैत्य स्थापित किये। मेवाड़, मालव, मारवाड़ और वागड़ आदि प्रदेशों में इन्होंने सुविहित मार्ग का खूब प्रचार किया। इनके ज्योतिष-ज्ञान और विद्वता की सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई। धारा-नरेश नरवर्म ने एक विद्वान की दी हुई समस्यापूर्ति अपने सभा-पण्डितों से न होते देख, दूरवर्ती श्री जिनवल्लभसूरि को वह समस्या पद भेजा, जिसकी सम्यक् पूर्ति से नृपति बहुत प्रभावित हुए और इनके भक्त हो गए।

जिनवल्लभगणि को सं० ११६७ मिती आषाढ़ शुक्ला ६ को चित्तौड़ के वीर विधि-चैत्य में कथाकोष आदि के निर्माता देवभद्रसूरि ने आचार्य पद देकर अभयदेवसूरि का पट्टधर घोषित किया। पर चार मास ही पूरे नहीं हो पाये और मिती कार्तिक कृष्ण १२ को इनका स्वर्गवास हो गया।

जिनवल्लभसूरि को परवर्ती विद्वानों ने कालिदास के सदृश कवि बतलाया है। प्राकृत, संस्कृतादि भाषाओं में इनकी पचासों रचनायें प्राप्त हैं, इनमें से कई सैद्धान्तिक रचनाओं का तो अन्यगच्छीय विद्वान आचार्यों ने टीकाएं रच कर इनकी महत्ता को स्वीकार किया है।

चैत्यवास के प्रभाव से जैन मन्दिरों में जो अविधि का प्रवर्त्तन हो गया था उसका निषेध करते हुए विधिचैत्यों के नियमों को इन्होंने शिलोत्कीर्ण करवाया। संवेगरंगशाला के संशोधन में भी इनका योग रहा। आपके शिष्यों में रामदेव, जिनशेखरादि कई विद्वान थे। आचार्य देवभद्रसूरि ने सोमचन्द्र गणि को इनके पट्ट पर स्थापित कर जिनदत्त-सूरि नाम से प्रसिद्ध किया।

जिनवल्लभसूरिजी की जीवनी और उनके ग्रन्थों के सम्बन्ध में महो० विनयसागरजी लिखित अध्ययन पूर्ण शोध-प्रबन्ध प्रकाशनाधीन हैं।

—अगरचंद नाहटा

# योगीन्द्र युगप्रधान दादा श्रीजिनदत्तसूरि

[ स्वर्गीय उपाध्याय मुनि श्री सुखसागरजी महाराज ]

किसी भी राष्ट्र की वास्तविक सम्पत्ति है उस देश की सन्तपरम्परा, जिसमें उसकी आत्मा साकार दीखती है। इसलिए संत को हम इस देश की परम्परा का जीवित प्रतीक मान लें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। एक संत जीवन का अन्तःपरीक्षण या विहगावलोकन उस समय के सम्पूर्ण मानवीय विकासात्मक परम्पराओं के तलस्पर्शी अनुशीलन पर निर्भर है। आचार्य श्री जिनदत्तसूरि उपर्युक्त परम्परा के एक ऐसे ही उदारचेता व्यक्तित्व-संपन्न महापुरुष हैं। आचार्य श्री बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी के महापुरुष थे। तत्कालिक संतों में साहित्यिकों एवं तत्व-विदों में इनका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है।

क्रान्ति उनके जीवन का मूलमन्त्र था। जिनदत्त-सूरिजी एक ऐसी विद्रोहात्मक परम्परा के उद्घोषक थे जिन्होंने क्रान्ति के जयघोष द्वारा अतीत से प्रेरणा लेकर भविष्य की शुद्ध परम्परा की नींव डाली। यह उनके प्रखर व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि तात्कालिक विकृति-मूलक परम्पराओं का परिष्कार एवं सांस्कृतिक सूत्रमें आबद्ध कर जैनधर्म एवं मुनि समाज पर आयी हुई विपत्तियों का कुशलतापूर्वक सामना किया। जैन-संस्कृति के नवयुग प्रवर्तकों में ऐसे महापुरुष की गणना होती है। श्री जिनदत्तसूरिजी सत्याश्रित-खरतरगच्छीय परम्परा के एक ऐसे सुदृढ़ स्तंभ थे, जिन्होंने अपने व्यक्तित्व, साधना और प्रकाण्ड पाण्डित्य के बल पर समाज में जो श्रद्धा का स्थान प्राप्त किया है, वह आज भी अमर है।

इनका जन्म गुजरात प्रान्तीय धवलकपुर (धोलका) नामक ऐतिहासिक नगर में हुंबड़ जातीय श्रेष्ठिवर्य वाछिग की धर्मपत्नी वाहड़देवी की रत्नकुक्षि से सं० ११३२ में हुआ था। सुविहित मार्ग प्रकाशक श्रीजिनेश्वरसूरिजी के विद्वान शिष्य धर्मदेव उपाध्याय की आज्ञानुवर्तिनी आर्याओं का वहाँ पर आगमन हुआ। शुभ लक्षण युक्त तेजस्वी बालक को देख पुलकित मन से माता को विशेष रूप से धर्मोपदेश देकर शासन-सेवा के प्रति उसमें वातावरण को तैयार हुआ जानकर सुचित पुत्र को गुरु महाराज की सेवा में समर्पित करने की याचना की। जहाँ व्यक्ति-व्यक्ति के रूपमें जीवन व्यतीत करता है वहाँ स्वार्थ पनपता है। जहाँ व्यक्ति समष्टि के लिए जीवनोत्सर्ग करता है वहाँ वह अमर हो जाता है। वाहड़देवी को अपने पुत्र को गुरु समर्पित करते हुए तनिक भी दुःख नहीं हुआ अपितु हर्ष हुआ। उसने सोचा कि एक पुत्र यदि संस्कृति की विकासात्मक परम्परा को बल देता है और सारे समाजकी सांस्कृतिक गौरव गरिमा की रक्षा व वृद्धि के लिए कठोरतम साधना स्वीकार करता है तो इस बात से बढ़कर और सौभाग्य की बात हो ही क्या सकती है? कालान्तर से धर्मदेवोपाध्याय धवलकपुर पधारे और इसे दीक्षित कर सोमचन्द्र नाम से अभिषिक्त किया। विकास के लक्षण बाल्यकाल से ही अंकुरित होने लगते हैं। विद्याध्ययन के क्षेत्र में इनकी प्रतिभा का लोहा अध्यापक वर्ग भी मानते थे। इनकी बड़ी दीक्षा अशोक-चन्द्राचार्य के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुई जो कि जिनेश्वरसूरि के शिष्य सद्देवगणि के शिष्य थे। हरिसिंहाचार्य के श्रीचरणों में बैठकर आपने सैद्धान्तिक वाचना प्राप्त कर कई मंत्रादि पुस्तकों के साथ ऐसा ऐतिहासिक प्रतीक प्राप्त किया जो आचार्यवर्य के विद्याध्ययन में काम आता था।

श्रीजिनवल्लभसूरिजी के स्वर्गवास के बाद उनके पदपर देवभद्राचार्य ने सोमचन्द्र गणि को सं० ११६६ वैसाख कृष्ण ६ शनिवार को चितौड़ के वीरचैत्य में प्रतिष्ठित किया और उनको श्री जिनदत्तसूरि नाम से अभिषिक्त किया।

श्रीजिनदत्तसूरि में श्रीजिनवल्लभसूरिजी के कुछ गुणों का अच्छा विकास पाया जाता है। वे अनागमिक किसी भी परम्परा के विरुद्ध सिर ऊँचा करने में संकुचित नहीं होते थे। आयतन अनायतन जैसे विषयों का स्पष्टीकरण इन तथ्यों को स्पष्ट कर देता है।

आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी के मन में आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होते ही एक बात की चिन्ता उन्हें लगी कि अब शासन का विशिष्ट प्रभाव फैलाने के लिए मुझे किस ओर जाना चाहिए। आचार्य के हृदय में यदि विराट और प्रशस्त भावना न जगे तो उसमें विश्वकल्याण को छोड़कर स्वकल्याण की कल्पना भी असम्भव है। आचार्यवर राजस्थान की ओर प्रस्थित हुए। आप क्रमशः अजमेर पधारे। यहाँ के राजा अर्णोराज ने आपको उचित सम्मान दिया। श्रावकों की विशेष प्रेरणा व महाराज के सदुपदेश से उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक दक्षिण दिशा की ओर पर्वत के निकट देवमन्दिर बनवाने की भूमि प्रदान की। अर्णोराज आपको बहुत श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। अम्बड़श्रावक की आराधना द्वारा अम्बिकादेवीने आपको युगप्रधान महापुरुष घोषित किया था।

## युगप्रवर के अद्भुत कार्य

यों तो आपने अपने कर्मक्षेत्र में अधिकतर मनुष्यों को सत्पथ पर लाने का सुयश प्राप्त किया, पर आपका सुकुमार हृदय अनुकम्पा से ओत-प्रोत होने के कारण एक लाख तीस हजार से भी अधिक व्यक्तियों को अपनी तेजोमयी औपदेशिक वाणी से हिंसात्मक वृत्तियों का परित्याग करवा जैन धर्म में दीक्षित किया। ये मनुष्य विभिन्न जातियों के थे, कर्ममूलक संस्कारोंमें विश्वास करने वाली जैन परम्परा के लिए जातिवाद का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होना चाहिए। क्योंकि वर्णव्यवस्था के विरोध में ही सम्पूर्ण श्रमणपरम्परा का शताब्दियों से बल लग रहा है।

जिनदत्तसूरिजी जैसे युगपुरुष के प्रखर व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि चैत्यवासियों का प्रचण्ड विरोध होते हुए भी नूतन चैत्य-निर्माण की पुरातन परम्परा को संभाले रखा। आचार्यश्री ने इतने विराट समुदाय को न केवल शांतिमार्ग का उपासक ही बनाया अपितु उनके लिए समुचित सामाजिक व्यवस्था का भी निर्देश किया।

उनका चारित्र्य या संयम इतना उज्ज्वल था कि उनके तात्कालिक विचार का विरोधी भी लोहा मानते थे। परिणाम स्वरूप चैत्यवासी जयदेवाचार्यादि विद्वानों ने आचारमूलक शैथिल्य का परित्याग कर सुविहित-मार्ग स्वीकार किया।

आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी के बहुमुखी व्यक्तित्व पर दृष्टि केन्द्रित करने पर विदित होता है कि वे न केवल उच्च कोटि के नेतृत्वसम्पन्न व्यक्ति थे, अपितु संयमशील साधक होने के साथ-साथ शुद्ध साहित्यकार भी थे। आचार्यवर्य की अधिकतर कृतियां मानव जीवन को उच्चस्तर पर प्रतिष्ठापित करने से सम्बद्ध हैं। एवं उस समय के चरित्रहीन धर्मगुरुओं के प्रति विद्रोह की चिनगारी है। तथापि सामाजिक इतिहास की सामग्री कम नहीं है।

आचार्यश्री की साहित्यिक कृतियाँ संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में मिलती हैं जिनका न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्व है अपितु भाषा-विज्ञान की दृष्टि से भी अध्ययन के तथ्य प्रस्तुत करते हैं। आचार्यवर्यश्री के साहित्य को अध्ययन की विशेष सुविधाओं के लिए स्तुतिपरक व उपदेशिक इस तरह दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम भागमें उन कृतियों का समावेश है जो स्तुति, स्तोत्र साहित्य से संबद्ध हैं। इन कृतियों से परिलक्षित होता है कि आचार्यवर्य एक भावुक कलाकार थे। पूर्वजों के प्रति विश्वस्त

भावनाओं को लिये हुए थे, महान पुरुषों के प्रति उनके हृदय में अपार आदर और श्रद्धाभाव था। स्वयं उच्च-कोटि के विद्वान साहित्यशील एवं युगप्रवर्तक होते हुए भी इनकी विनम्रता स्तुति साहित्य में भलीभाँति परिलक्षित होती है। यों तो सर्वाधिष्ठायी स्तोत्र, सुगुरु पारतन्त्र्य स्तोत्र, विघ्न-विनाशी स्तोत्र, श्रुतस्तव, अजितशांति स्तोत्र, पार्श्वनाथ मंत्र गर्भित स्तोत्र, महाप्रभावक स्तोत्र, चक्रेश्वरी स्तोत्र, सर्वजिन स्तुति आदि रचनाएं उपलब्ध हैं। उन सब में गणधर-सार्धशतक का स्थान बहुत ऊँचा है। भगवान महावीर से लेकर तत्काल तक के महान आचार्यों का गुणानुवाद इस कृतिमें कर स्वयं भी कालान्तर से उस कोटि में आ गये हैं। यद्यपि आचार्यवर्य की यह कृति बहुत बड़ी नहीं है पर उपयोगिता और इतिहास की दृष्टि से विशेष महत्व की है।

साधक की वाणी ही मंत्र है। आचार्य श्रीजिनदत्त-सूरिजी रुद्रपल्ली जाते हुए एक गाँव में ठहरे। यहाँ एक अनुयायी गृहस्थको व्यन्तर देव के द्वारा उत्पीड़ित किया जाता था। गणधर-सप्ततिका एक टिप्पणी के रूप में लिखकर श्रावक को दी गई उससे न केवल वह पीड़ा से ही मुक्त हुआ, अपितु परिस्थितिजन्य आचार्यवर्य का यह ग्रन्थ भावी मानव समाज के लिए एक अवलंबन बन गया।

आचार्य श्री के सम्मुख एक समस्या तो वीतराग के मौलिक औपदेशिक परम्पराओं की सुरक्षा की थी तो दूसरी ओर विरोधियों द्वारा अज्ञानमूलक उपदेश के परिहार की थी। गुरुदेव के औपदेशिक साहित्य में तत्कालीन समस्याओं के बीज मिलते हैं।

सन्देहदोलावली प्राकृत की १५० गाथाओं में गुम्फित है। सम्यक्त्व प्राप्ति, सुगुरु व जैन दर्शन की उन्नति के लिए यह कृति उत्कृष्ट मार्ग का प्रदर्शन करती है एवं तात्कालिक गृहस्थों को सुगुरुजनों के प्रति किस प्रकार व्यवहार करें, एवं पार्श्वस्थों के प्रति किस प्रकार रहें आदि बातें बड़े विस्तार के साथ कही गई हैं। इसका अपर नाम संशयपद प्रश्नोत्तर भी है। कहा जाता है कि भटिण्डा की एक श्राविका के सम्यक्त्व मूलक कुछ प्रश्न थे जिसके उत्तर में सूरिजी ने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया। इससे पता चलता है कि उनकी अनुयायिनी श्राविकाएँ कितनी उच्चतम उत्तरों की अधिकारिणी थीं।

चैत्यवंदनकुलक तो प्रत्येक गृहस्थ के लिए विशेष पठनीय है। जिसमें श्रावकों के दैनिक कर्त्तव्य, साधुओं के प्रति भक्ति, आयतन आदि का विवेचन खाद्य-अखाद्यादि विषयों का संकेतात्मक उल्लेख है।

आचार्यश्री के उपदेश धर्मरसायन, कालस्वरूपकुलक और चर्चरी ये तीनों ग्रन्थ अपभ्रंश में रचे हुए हैं। भाषा विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन योग्य हैं ही। इन ग्रन्थों से उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य शास्त्रीय अवगाहन व गंभीर चिन्तन परिलक्षित होता है।

उत्सूत्र पदोद्घाटनकुलक, उपदेशकुलक साधक और श्रावकों के आचारमूलक जीवन पर सुन्दर प्रकाश डालते हैं। इनके अतिरिक्त अवस्थाकुलक, विंशिका पद व्यवस्था, वाड़ीकुलक, शांतिपर्व विधि, आरात्रिकवृत्तानि और अध्यात्मगीतानि आदि कृतियाँ उपलब्ध हैं।

आचार्यवर्य भ्रमण करते हुए भारत विख्यात ऐतिहासिक नगर अजमेर पधारे। यहीं पर वि० सं० १२११ में आपका अवसान हुआ। अजमेर से वैसे भी आपका सम्बन्ध जारी रहा है क्योंकि आपके पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी की दीक्षा भी सं० १२०३ फाल्गुन शुक्ला ९ को अजमेर में ही हुई थी।

जैन समाज के समस्त प्रभावशाली आचार्यों में इनका स्थान इतना उच्च रहा है एवं इनके स्तुति-स्तोत्र द्वारा पश्चात् यतियों ने इनके चरणों पर श्रद्धांजलि समर्पित की है जो सम्मान किसी भी महापुरुष को प्राप्त नहीं है। ये जैन समाज के हृदय सिंहासन पर इतने प्रतिष्ठित हैं कि इनके चरण व दादावाड़ी हजारों की संख्या में पायी जाती है। ( अभिभाषण से संकलित )

# मणिधारी दादा श्रीजिनचन्द्रसूरि

युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी के पट्टालंकार मणिधारी श्रीजिनचंद्रसूरिजी ने अपने असाधारण व्यक्तित्व एवं लोकोत्तर प्रभाव के कारण अल्पायु में ही जो प्रसिद्धि प्राप्त की वह सर्वविदित है। ये महान् प्रतिभाशाली एवं तत्त्ववेत्ता विद्वान आचार्य थे।

इनका जन्म संवत् ११९१ भाद्रपद शुक्ल ८ के दिन जेसलमेर के निकट विक्रमपुर नगर में हुआ। इनके पिता साह रासलजी एवं माता देल्हणदेवी थी। जन्म से ही ये अधिक सुन्दर थे, जिसके कारण सहज ही सर्वसाधारण के प्रिय हो गये।

संयोगवश विक्रमपुर में युगप्रधान आचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी का चातुर्मास हुआ। चातुर्मास की अवधि में सूरिजी के अमृतमय उपदेशों को सुनने के लिये जहाँ नगरवासी भारी संख्या में जाते थे, वहाँ देल्हणदेवी भी प्रतिदिन प्रवचनामृत का पान करती हुई अपने जीवन को धन्य मानती थी। देल्हणदेवी के साथ उसके पुत्र (हमारे चरित्रनायक) भी रहते थे। एक दिन देल्हणदेवी के इस बालक के अन्तर्हित शुभ लक्षणों को देखकर आचार्य देव ने अपने ज्ञानबल से यह जान लिया कि "यह प्रतिभासम्पन्न बालक सर्वथा मेरे पट्ट के योग्य है। निस्सन्देह इसका प्रभाव लोकोत्तर होगा एवं निकट भविष्य में ही गच्छनायक का महत्त्वपूर्ण पद प्राप्त करेगा।" बालक संस्कारवान तो था ही, उसका मन इतनी कम आयु के होते हुए भी विरक्ति की ओर अग्रसर होने लगा। अन्ततः विक्रमपुर से विहार करने के पश्चात् अजमेर में सं० १२०३ फाल्गुन शुक्ल नवमी के दिन श्री पार्श्वनाथ विधिचैत्य में प्रतिभासम्पन्न इस बालक को आचार्यजी ने दीक्षित किया। दीक्षा के समय इस बालक की आयु मात्र ६ वर्ष की थी।

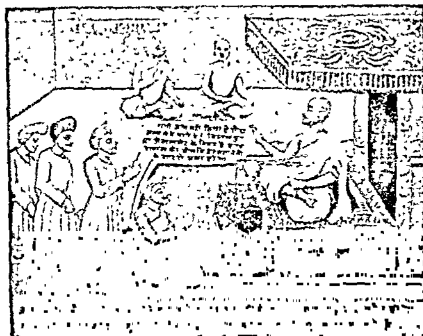
दीक्षित होने के पश्चात् दो वर्ष की अवधि में ही किये गये विद्याध्ययन से आपकी प्रतिभा चमक उठी। फलतः आपकी असाधारण मेधा, प्रभावशाली मुद्रा एवं आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित होकर दीक्षित होने के दो वर्ष पश्चात् ही संवत् १२०५ में वैशाख शुक्ल ६ के दिन विक्रमपुर के श्री महावीर जिनालय में युगप्रधान आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी ने आपको आचार्य पद प्रदान कर श्री जिनचन्द्रसूरि जी के नाम से प्रसिद्ध किया। आचार्य पद का यह महामहोत्सव इनके पिता साह रासलजी ने ही भव्य समारोह के साथ किया था।

युगप्रधान गुरुदेव दादा श्रीजिनदत्तसूरिजी ने अपने विनयी शिष्य श्रीजिनचन्द्रसूरि को शास्त्रज्ञान आदि के साथ ही गच्छ संचालन आदि की भी कई शिक्षाएँ दीं। आपने इनको विशेष रूप से यह भी कहा था कि "योगिनीपुर दिल्ली में कभी मत जाना।" क्योंकि आचार्यदेव यह जानते थे कि वहां जाने पर श्रीजिनचन्द्रसूरि को अल्पायु योग है।

संवत् १२११ में आषाढ़ शुक्ल ११ को अजमेर में श्री जिनदत्तसूरिजी का स्वर्गवास हो गया तब अल्पायु में ही सारे गच्छ का भार आप के ऊपर आ गया एवं अपने गुरुदेव के समान आप भी कुशलतापूर्वक सफलता के साथ इस गुरुतर भार को वहन करने में लग गये।

गच्छ-भार को वहन करते हुए आपने विविध ग्रामों एवं नगरों में विहार कर धर्म प्रचार करना प्रारंभ किया। फलस्वरूप आप के उपदेशों से प्रभावित होकर कई श्रावकों एवं श्राविकाओं ने दीक्षाएँ ग्रहण कीं।

आचार्यदेव धर्मशास्त्रों के अतिरिक्त ज्योतिष शास्त्र



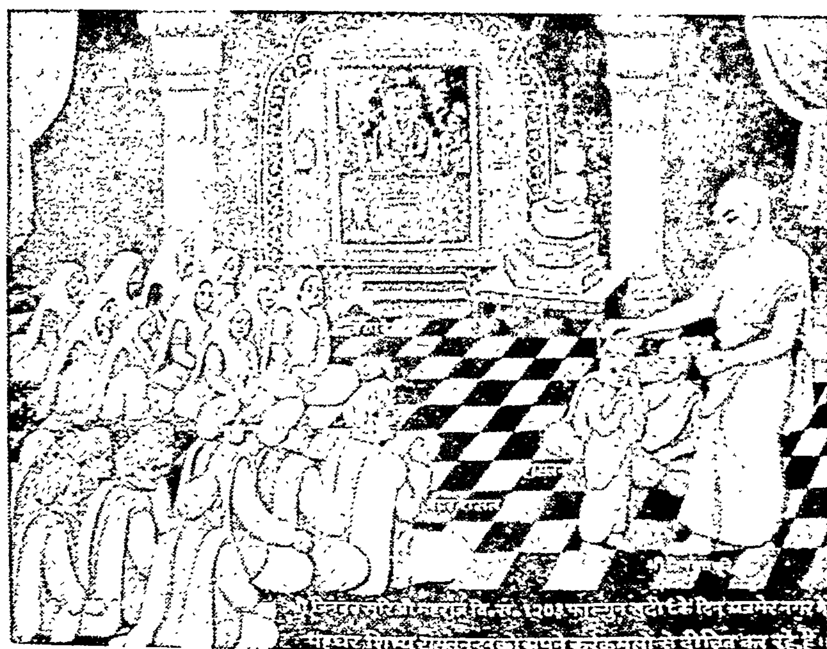
भावी पट्टधर सम्बन्धी श्री जिनदत्तसूरिजी से पृच्छा



माता देल्हणदेवी और गर्भस्थ मणिधारीजी को वंदनार्थ रासदेव का विक्रमपुर आगमन (सं० ११९७)



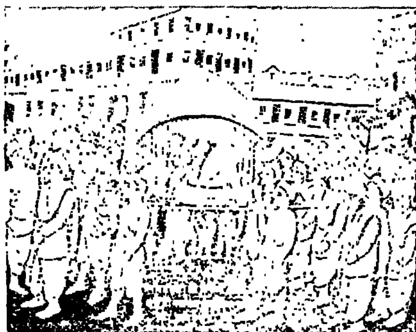
रासल श्रेष्ठी द्वारा मणिधारीजी को श्री जिनदत्तसूरि के चरणों में समर्पण



सं० १२०३ फाल्गुन शुक्ला ६ के दिन अजमेर में श्री जिनदत्तसूरिजी
द्वारा मणिधारी जी को दीक्षित करना




चोरसिदान के मार्ग मे मणिधारीजी द्वारा मलेच्छों से संघ की रक्षा



निर्यान विमान में मणिधारी जी का अन्तिम दर्शन
दिल्ली मे स्वर्गवास स० १२२३ द्वितीय भाद्र कृष्ण १४



मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी के अन्तिम दर्शन :—




मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि की अन्तिम आराधना व शिक्षा (ऊपर)

के भी पारंगत विद्वान थे। इसके साथ ही आपने कई चमत्कारपूर्ण सिद्धियाँ भी प्राप्त की थीं।

एक बार संघ के साथ विहार कर जब दिल्ली की ओर पधार रहे थे तो मार्ग में चोरसिदान ग्राम के समीप संघ ने अपना पड़ाव डाला। उसी समय संघ को यह मालूम हुआ कि कुछ लुटेरे उपद्रव करते हुए इधर ही आ रहे हैं। इस समाचार से सभी भयभीत हो घबराने लगे। इस प्रकार संघ को भयातुर देखकर सूरिजी ने कारण पूछा कि आप भयभीत क्यों हैं? किस कारण से घबरा रहे हैं? जब आचार्यदेव को यह ज्ञात हुआ कि ये म्लेच्छोपद्रव से व्याकुल हैं, तो उन्होंने तत्काल ही कहा—"आप सब निश्चिन्त रहें, किसी का कुछ भी अहित होने वाला नहीं है। प्रभु श्री जिनदत्तसूरिजी सब की रक्षा करेंगे।"

इसके पश्चात् आपने मन्त्रध्यान कर अपने दण्ड से संघ के चारों ओर कोट के आकार की रेखा खींच दी। इसका प्रभाव यह हुआ कि संघ के पास से जाते हुए उन म्लेच्छों (लुटेरों) को संघ ने भली प्रकार देखा, किन्तु उनकी दृष्टि संघ पर तनिक भी न पड़ी। इस प्रकार मार्ग में म्लेच्छोपद्रव के भय से संघ मुक्त होकर आचार्य श्री के साथ विहार करता हुआ क्रमशः दिल्ली के समीप पहुंच गया।

आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी के दिल्ली पधारने की सूचना पाकर जब सुन्दर वेशभूषा में सुसज्जित होकर नगरवासी एवं सौभाग्यवती स्त्रियाँ मंगलगान गाती हुई आचार्य जी के दर्शनार्थ जाने लगीं तो उन्हें जाते देखकर राजप्रासाद में बैठे हुए महाराज मदनपाल ने अपने अधिकारियों से पूछा कि नगर के ये विशिष्ट जन कहां जा रहे हैं? उन्होंने कहा—"राजन्! ये लोग अपने गुरुदेव के स्वागतार्थ जा रहे हैं। आज उनका हमारे नगर के निकट ही पदार्पण हुआ है। गुरुदेव अल्पवयस्क होते हुए भी धर्म के प्रकाण्ड वेत्ता, प्रभावशाली तथा सुन्दर आकृति वाले हैं।" यह सुनकर महाराज के मन में भी गुरुदेव के दर्शन की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई एवं वे सदलबल श्रावक-श्राविकाओं से पूर्व ही आचार्य देव के दर्शनार्थ पहुंच गये और नगर में पधारने की विनति की।

आचार्यश्री अपने गुरुदेव युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी के दिये हुये उपदेश को स्मरण करते हुए दिल्ली नगर में प्रवेश न करने की दृष्टि से मौन रहे। उन्हें मौन देख कर पुनः महाराज ने विशेष अनुरोध किया तो अन्त में आपने नगर में पदार्पण कर महाराज मदनपाल की मनोकामना पूरी की। यद्यपि आचार्यश्री को अपने गुरुदेव की दिल्ली न जाने की आज्ञा का उलंघन करते हुए मानसिक पीड़ा का अनुभव हो रहा था, तथापि भवितव्यता के कारण आपको दिल्ली नगर में पदार्पण करना ही पड़ा। वहाँ कुछ समय तक आपने अपने उपदेशों से भव्य जीवों का कल्याण करते हुए आयुशेष निकट जान कर सं० १२२३ भाद्रपद कृष्ण चतुर्दशी को चतुर्विध संघ से क्षमायाचना को एवं अनशन आराधना के पश्चात् आप स्वर्ग सिधार गये।

अन्तिम समय में आपने श्रावकों के समक्ष यह भविष्यवाणी की कि—"नगर से जितनी दूर मेरा संस्कार किया जायेगा, नगर की बसावट पहली उतनी ही दूर तक बढ़ती जायगी।"

इस सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि आचार्य श्री ने अपने स्वर्गवास के पूर्व ही संघ को बुलाकर यह आदेश दिया था कि "मेरे विमान (रथी) को मध्य में कहीं विश्राम मत देना एवं सीधे नगर से बाहर उसी स्थान पर ले जाकर विश्राम देना, जहाँ दाहसंस्कार करना है।" शोकाकुल संघने इस आदेश को भूलकर मध्य में ही पूर्व प्रथानुसार विश्राम दे दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि तनिक विश्राम देने के पश्चात् जब विमान को उठाने लगे तो लाख प्रयत्न करने पर भी वह उस स्थान से लेशमात्र भी नहीं सरका। राजा मदनपाल को जब यह सूचना मिली तो उन्होंने हाथी के द्वारा विमान को उठवाने की व्यवस्था करवाई; किन्तु उसमें भी सफलता नहीं मिली।

अन्त में गुरुदेव का ही चमत्कार समझ कर महाराजा ने उसी स्थान पर अग्निसंस्कार करने का राजकीय आदेश प्रदान किया।

इसके पश्चात् इस प्रकार की चमत्कारपूर्ण घटना के कारण गुरुदेव का अग्निसंस्कार उसी स्थान पर किया गया।

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने इस प्रकार अपना मंगलमय ऐहिक जीवनयापन कर अपने समय में जिनशासन की उन्नति के साथ-साथ कई अलौकिक कार्य किये।

'वशेषत: अपने चेत्यवासी पद्मचन्द्राचार्य जैसे वयोवृद्ध एवं ज्ञानवृद्ध आचार्य को शास्त्रार्थ में परास्त कर तथा दिल्लीश्वर महाराजा मदनपाल को चमत्कृत करते हुए जो अभूतपूर्व कार्य किये निस्सन्देह वे आपकी उत्कृष्ट साधना के परिचायक ही हैं। इसके अतिरिक्त आपने महत्तियाण (मन्त्रिदलीय) जाति की स्थापना कर महान् उपकार किया। आपके द्वारा संस्थापित इस जाति की परम्परा के कई व्यक्तियों ने पूर्वदेश के तीर्थो का उद्धार कर शासन की महान् सेवायें की।

आचार्यदेव श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के ललाट में मणि थी, जिसके कारण ही 'मणिधारीजी' के नाम से आपकी प्रसिद्धि हुई। इस मणि के विषय में पट्टावली में यह उल्लेख मिलता है कि आपने अपने अन्त समय में श्रावकों से कह दिया था कि अग्निसंस्कार के समय मेरे शरीर के निकट दूध का पात्र रखना जिससे वह मणि निकल कर उसमें आ जायगी; किन्तु गुरुवियोग की व्याकुलता से श्रावकगण ऐसा करना भूल गए एवं भवितव्यतावश वह मणि किसी अन्य योगी के हाथ लग गई। कहा जाता है कि श्री जिनपतिसूरिजी ने उस योगी की स्तम्भित प्रतिमा प्रतिष्ठित कर उससे वह मणि प्राप्त कर ली थी।

वस्तुत: मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी महान् प्रतिभाशाली एवं चमत्कारी आचार्य थे, इसमें संदेह नहीं। केवल ६ वर्ष की अवस्था में दीक्षा ग्रहण कर ८ वर्ष की अल्पायु में आचार्यपद प्राप्त कर लेना कम विस्मयकारक नहीं है। ऐसे युगप्रधान मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के प्रति हृदय से जितनी भी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की जाय, थोड़ी है।

[ श्रीजिनदत्तसूरि सेवासंघ प्रकाशित दादागुरु चरित्र से ]

[ मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी के महान् व्यक्तित्व का ज्ञान यु० प्र० श्री जिनदत्तसूरिजी को उनके माता के गर्भ में आने से पूर्व ही हो गया था। युगप्रधानाचार्य गुर्वावली में जिनपालोपाध्याय ने लिखा है—"स्वज्ञानबल दृष्ट निज पट्टोद्धारकारि रासलाङ्गरुहाणां भास्करवद्विबोधित भुवन मण्डल भव्याम्भोरुहाणां" इस संकेतात्मक रहस्य का उद्घाटन करते हुए सतरहवी शताब्दी की गुर्वावली में यह उल्लेख किया है कि एक बार सेठ रामदेव ने श्री जिनदत्तसूरिजी से पूछा कि आपकी वृद्धावस्था आ गई, आपके पट्ट योग्य शिष्य कौन है? सूरिजी ने कहा— अभी तो वैसा काई दिखाई नहीं देता! रामदेव ने पूछा—अभी नहीं है तो क्या कोई स्वर्ग से आवेंगे? पूज्यश्री ने कहा—ऐसा ही होगा! रामदेव ने कहा—कैसे?आपने कहा—अमुक दिन देवलोक से च्यव कर विक्रमपुर के श्रेष्ठी रासल की लघु धर्मपत्नी को कुक्षि में मेरे पट्टयोग्य जीव अवतीर्ण होगा। यह सुनकर कुछ दिन वाद रामदेव सांढ़ पर चढ़ कर विक्रमपुर रासल श्रेष्ठीके घर पहुँचे। सेठ ने कुशलवार्त्तापूछने के पश्चात् आगमन का कारण पूछा। रामदेव ने कहा—आपकी लघुभार्या को बुलाइये! उसके आने पर रामदेव ने पट्ट पर बैठाकर देल्हणदेवी के कण्ठ में हार पहनाते हुए नमस्कार किया। रासल श्रेष्ठी के इसका कारण पूछने पर रामदेव ने जिनदत्तसूरि द्वारा ज्ञात, इनकी कुक्षिमें उनके पट्टयोग्य पुण्यवान् जीव के अवतीर्ण होने का हर्ष संवाद कह सुनाया। इस प्रकार श्री जिनदत्तसूरिजी ने इनकी विशिष्ट योग्यता गर्भ में आने से पूर्व ही अपने ज्ञानवल से जान ली थी।

आपकी जीवनी के सम्बन्ध में हमारी "मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि" पुस्तक द्वितीयावृत्ति विशेष रूप से द्रष्टव्य है उसमें आपकी रचनाएं "व्यवस्थाशिक्षाकुलक" व स्तोत्रादि भी प्रकाशित हैं। —सम्पादक ]

# षट्त्रिंशत् वाद-विजेता श्रीजिनपतिसूरि

[ महोपाध्याय विनयसागर ]

मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के पट्टधर षट्त्रिंशत् वाद विजेता श्रीजिनपतिसूरि का जन्म वि० सं० १२१० विक्रमपुर में मालू गोत्रीय यशोवर्द्धन की धर्मपत्नी सूहवदेवी की रत्न-कुक्षि से हुआ था। सं० १२१७ फाल्गुन शुक्ल १० को जिनचन्द्रसूरि के कर कमलों से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा नाम नरपति था। सं० १२२३ कार्तिक शुक्ल १३ को बड़े महोत्सव के साथ युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि के पादोपजीवी जयदेवाचार्य ने इनको आचार्य पद प्रदान कर जिनचंद्रसूरि के पट्टधर गणनायक घोषित किया। आचार्य पद के समय नाम जिनपतिसूरि प्रदान किया। यह महोत्सव जिनपतिसूरि के चाचा मानदेव ने किया था।

सं० १२२८ में विहार करते आशिका पधारे। आशिका के नृपति भीमसिंह भी प्रवेशोत्सव में सम्मिलित हुए थे। आशिका स्थित महा प्रामाणिक दिगम्बर विद्वान को शास्त्रार्थ में पराजित किया था।

सं० १२३९ कार्तिक शुक्ल ७ के दिन अजमेर में अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की अध्यक्षता में फलवर्द्धिका नगरी निवासी उपकेश गच्छीय पद्मप्रभ के साथ आपका शास्त्रार्थ हुआ। इस समय राज्य में महामंत्री मण्डलेश्वर कैमास तथा वागीश्वर, जनार्दन गौड़, विद्यापति आदि प्रमुख विद्वान उपस्थित थे। प्रतिवादी पद्मप्रभ मूर्ख, अभि-मानी एवं असंगत प्रलापी होने से शास्त्रार्थ में शीघ्र ही पराजित हो गया। जिनपतिसूरिकी प्रतिभा एवं सर्वशास्त्रों में असाधारण पाण्डित्य देखकर पृथ्वीराज चौहान बहुत प्रसन्न हुए और विजयपत्र हाथी के होदे पर रखकर बड़े आडम्बर के साथ उपाश्रय में आकर आचार्य श्री को प्रदान किया।

सं० १२४४ में उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रार्थ संघ सहित प्रयाण करते हुए आचार्यश्री चन्द्रावती पधारे। यहां पर पूर्णिमापक्षीय प्रामाणिक आचार्य श्री अकलङ्कदेवसूरि पांच आचार्य एवं १५ साधुओं के साथ संघ दर्शनार्थ आये। आचार्य श्री के साथ अकलङ्कदेवसूरि की 'जिनपति' नाम एवं संघ के साथ साधु-साध्वियों को जाना चाहिये या नहीं, इन प्रश्नों पर शास्त्रचर्चा हुई और आचार्य अकलंक इस चर्चा में निरुत्तर हुए।

इसी प्रकार आशापल्ली में पौर्णमासिक तिलकप्रभसूरि के साथ 'संपत्ति' तथा 'वाक्यशुद्धि' पर चर्चा हुई। इसमें जिनपतिसूरि ने विजय प्राप्त की।

उज्जयन्त-शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रा करके वापिस लौटते हुए आशापल्ली पधारे। यहां वादिदेवाचार्य परम्प-रीय प्रद्युम्नाचार्य के साथ 'आयतन-अनायतन' पर शास्त्रार्थ हुआ जिसमें प्रद्युम्नाचार्य पराजय को प्राप्त हुए। इस शास्त्रार्थ का अध्ययन करने के लिये प्रद्युम्नाचार्य का 'वादस्थल' तथा जिनपतिसूरि का "प्रबोधोदय वादस्थल" ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

आशापल्ली से आचार्यश्री अणहिलपुर पाटण पधारे। यहां पर अपने गच्छ के ४० आचार्यों का अपनी मण्डली में मिलाकर वस्त्रप्रदान पूर्वक सम्मानित किया।

सं० १२५१ में लवणखेटक में राणक केल्हण के आग्रह से 'दक्षिणावर्त्त आरात्रिकावतरणोत्सव' बड़ी धूम-धाम से मनाया।

सं० १२७३ में बृहद्द्वार में नगरकोटीय राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की सभा में काश्मीरी पंडित मनोदानन्द के साथ

आचार्य श्री की आज्ञा से जिनपालोपाध्याय ने शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थ का विषय था "जैन दर्शन ग्राह्य हैं।" इस शास्त्रार्थ में पं० मनोदानन्द बुरी तरह पराजय को प्राप्त हुआ। राजा पृथ्वीचन्द्र ने जयपत्र जिनोपालोपाध्याय को प्रदान किया।

सं० १२७७ आषाढ़ शुक्ल १० को आचार्यश्री ने गच्छ-सुरक्षा की व्यवस्था कर वीरप्रभ गणि को गणनायक बनाने का संकेत कर अनशनपूर्वक स्वर्ग की ओर प्रयाण किया।

आचार्य जिनपतिसूरि कृत प्रतिष्ठायें, ध्वजदण्ड स्थापन, पदस्थापन महोत्सव, शताधिक दीक्षा महोत्सव आदि धर्म-कृत्यों का तथा आचार्य श्रीके व्यक्तित्व का अध्ययन एवं शिष्य प्रशिष्यों की विशिष्ट प्रतिभा का अंकन करने के लिये द्रष्टव्य है-जिनोपालोपाध्याय कृत 'खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावली'

इस महत्वपूर्ण गुर्वावली के सम्बन्ध में मुनि जिनविजय जी ने इस प्रकार लिखा है :—

"इस ग्रन्थ में विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में होने वाले आचार्य वर्द्धमानसूरि से लेकर चौदहवीं शताब्दी के अंत में होनेवाले जिनपद्मसूरि तक के खरतर गच्छ मुख्य के आचार्यों का विस्तृत चरित वर्णन है। गुर्वावली अर्थात् गुरु परम्परा का इतना विस्तृत और विश्वस्त चरित वर्णन करनेवाला ऐसा और कोई ग्रन्थ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। प्रायः चार हजार श्लोक परिमाण यह ग्रन्थ है और इसमें प्रत्येक आचार्य का जीवन-चरित इतने विस्तार के साथ दिया गया है कि जैसा अन्यत्र किसी ग्रन्थ में किसी भी आचार्य का नही मिलता। पिछले कई आचार्यों का चरित तो प्रायः वर्षवार के क्रम से दिया गया है और उनके विहार क्रम का तथा वर्षा-निवास का क्रमबद्ध वर्णन किया गया है। किस आचार्य ने कब दीक्षा दी, कब आचार्य पदवी प्राप्त की, किस-किस प्रदेश में विहार किया, कहां-कहां चातुर्मास किये, किस जगह कैसा धर्मप्रचार किया, कितने शिष्य-प्रशिष्याएँ आदि दीक्षित किये, कहां पर किस विद्वान के साथ शास्त्रार्थ या वाद-विवाद किया, किस राजा की सभा में कैसा सम्मानादि प्राप्त किया—इत्यादि बहुत ही ज्ञातव्य और तथ्यपूर्ण बातों का इस ग्रन्थ में बड़ी विशद रीति से वर्णन किया गया है। गुजरात, मेवाड़, मारवाड़, सिन्ध, बागड़, पंजाब और विहार आदि अनेक देशों के अनेक गाँवों में रहने वाले सैकड़ों ही धर्मिष्ठ और धनिक श्रावक-श्राविकाओं के कुटुंबों का और व्यक्तियों का नामोल्लेख इसमें मिलता है और उन्होंने कहाँपर, कैसे पूजा-प्रतिष्ठा एवं संघोत्सव आदि धर्मकार्य किये, इसका निश्चित विधान मिलता है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ अपने ढंग की एक अनोखी कृति जैसा है। इस ग्रन्थ के आविष्कारक बीकानेर निवासी साहित्योपासक श्रीयुत अगरचन्दजी नाहटा हैं और इन्होंने ही हमें इस ग्रन्थ के संपादन की सादर प्रेरणा दीं है। नाहटाजी ने इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्व क्या है और सार्वजनिक दृष्टि से भी किन-किन ऐतिहासिक बातों का ज्ञातव्य इसमें प्राप्त होता है यह संक्षेप में बताने का प्रत्यन किया है।

[भारतीय विद्या पुस्तक १ अंक ४ पृ० २६९]

आचार्य श्री की रचनाओं में संघपट्टक बृहद् वृत्ति, *पंचलिङ्गी प्रकरण टीका, प्रबोधोदय वादस्थल,* खरतरगच्छ समाचारी, तीर्थमाला आदि के अतिरिक्त कतिपय स्तुति स्तोत्रादि भी पाये जाते हैं।

आपके पट्टपर सुप्रसिद्ध विद्वान नेमिचन्द्र भाण्डागारिक के पुत्र वीरप्रभ गणि को सं० १२७७ माघ शुक्ल ६ को जावालिपुर (जालोर) के महावीर चैत्य में श्री सर्वदेवसूरि ने आचार्य पद देकर जिनेश्वरसूरि (द्वितीय) के नाम से प्रसिद्ध किया।

# प्रगटप्रभावी दादा श्रीजिनकुशलसूरि

[ भँवरलाल नाहटा ]

प्रगटप्रभावी, भक्तवत्सल तीसरे दादा साहब श्री जिनकुशलसूरि अत्यन्त उदार और अपने समय के युगप्रधान महापुरुष थे। आप मारवाड़-सामियाणा के छाजहड़ गोत्रीय मंत्रि देवराज के पुत्र जेसल या जिल्हागर के पुत्र थे और आपका जन्मनाम कर्मण था। सं० १३३७ मिती मार्गशीर्ष कृष्ण ३ सोमवार के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में आपका जन्म हुआ। आपके खानदान में धार्मिक संस्कार अत्यन्त श्लाघनीय थे। खरतरगच्छ नायक, चार राजाओं को प्रतिबोध करने वाले कलिकाल-केवली श्री जिनचन्द्रसूरि के पास आपने वैराग्यवासित होकर सं० १३४७ फाल्गुन शुक्ला ८ के दिन दीक्षा ली। गुरुमहाराज संसारपक्ष में आपके चाचा होते थे। आपका दीक्षानाम कुशलकीर्ति रखा गया। उस समय उपाध्याय विवेकसमुद्र, गच्छ में गीतार्थ और वयोवृद्ध थे जिनके पास बड़े-बड़े विद्वान आचार्यों ने व्याकरण, न्याय, तर्क, अलंकार, ज्योतिष आदि का अध्ययन किया था। कुशलकीर्तिजी का विद्याध्ययन भी आपके पास हुआ और सर्वत्र विचरते हुए शासन प्रभावना करने लगे। सं० १३७५ माघसुदि १२ को आप गुरुमहाराज द्वारा वाचनाचार्य पद से विभूषित हुए।

सम्राट कुतुबुद्दीन से निर्विरोध तीर्थयात्रा का फरमान प्राप्त सङ्घपति अचलसिंह के साथ श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज हस्तिनापुर एवं मथुरा की यात्रा कर बागड़देश पधारे। वहाँ शरीररोग उत्पन्न होने पर अपना आयु-शेष निकट ज्ञात कर अपने पट्ट पर वा० कुशलकीर्ति गणि को अभिषिक्त करने का निर्देश-पत्र राजेन्द्रचन्द्राचार्य के नाम से विजयसिंह को सौंपा। सूरिजी राणा मालदेव चौहान की विनति से मेड़ता पधारे। वहाँ २४ दिन रहकर कोसवाणा पधारे और वहीं सं० १३७६ मिती आषाढ़ शुक्ल ९ को अनशनपूर्वक स्वर्गवासी हुए।

उस समय गुजरात की राजधानी पाटण में खरतरगच्छ का प्रभुत्व बढ़ा-चढ़ा था। गच्छ के कर्णधारों ने वहीं पर आचार्य पद-महोत्सव करने का निर्णय किया। बड़े-बड़े आचार्य व श्रमणों सहित गुजरात, सिंध, राजस्थान और दिल्ली प्रदेश आदि के संघ को निमन्त्रित कर बुलाया गया। सं० १३७७ मिती जेष्ठ कृष्ण ११ शुभ लग्न में आचार्य पद का अभिषेक हुआ। उस समय राजेन्द्रचन्द्राचार्यजी के साथ उपाध्याय, वाचनाचार्यादि ३३ साधु और २३ साध्वियाँ थीं। सुश्रावक जाल्हण के पुत्र तेजपाल, रुद्रपाल, जो मंत्रीश्वर कर्मचन्द्र बच्छावत के पूर्वज थे, ने प्रचुर द्रव्य व्यय कर महोत्सव मनाया। उन्होंने उस समय १०० आचार्य, ७०० साधु और २४०० साध्वियों को अपने घर बुलाकर प्रतिलाभ कर वस्त्र पहिराये। भीमपल्ली, पाटण, खंभात, बीजापुर आदि के संघ ने भी उत्सव में उल्लेखनीय योगदान किया था। वा० कुशलकीर्ति का नाम श्रीजिनकुशलसूरि प्रसिद्ध किया गया।

सूरिजी सं० १३७८ का चातुर्मास भीमपल्ली करके दीक्षा, मालारोपण, पदवी दान आदि अनेक धर्मप्रभावक कार्य करके अपने ज्ञानबल से विद्या-गुरु उपाध्यायजी विवेकसमुद्रजी का आयुशेष निकट जानकर पाटण पधारे और ज्येष्ठ कृष्ण १४ के दिन उन्हें अनशन करा दिया। उपाध्यायजी पंच-परमेष्ठी ध्यान पूर्वक ज्येष्ठ शुक्ल २ को स्वर्गवासी हुए। सूरिजी ने मिती आषाढ़ शुक्ल १३ के दिन उनके स्तूप की प्रतिष्ठा की और वहीं चातुर्मास किया।

सं० १३७९ में मार्गशीर्ष कृष्ण ५ को अनेक नगरों के महर्द्धिक श्रावकों की उपस्थिति में सेठ तेजपाल ने शांतिनाथ विधिचैत्य में जलयात्रा सहित प्रतिष्ठा महोत्सव मनाया। इसी दिन शत्रुंजय महातीर्थ पर खरतरवसही में मानतुंगप्रासाद की नींव डाली गयी। श्रीजिनकुशलसूरिजी ने शिला, रत्न और धातुमय १५० प्रतिमाएँ स्वकीय मूल समवशरणद्वय, जिनचन्द्रसूरि, जिनरत्नसूरि आदि के साथ नाना अधिष्ठायक मूर्तियों की प्रतिष्ठा की। इस महोत्सव में भीमपल्ली और आशापल्ली आदि के श्रावकों ने भी काफी सहयोग दिया था। प्रतिष्ठा के अनन्तर सूरि महाराज बीजापुर संघ की प्रार्थना से वहां पधारे और वासुपूज्य प्रभु के महातीर्थ की वंदना की। फिर त्रिशृङ्गम पधारे और संघ सहित तारंगाजी एवं आरासण तीर्थों की यात्रा की। मन्त्रीदलीय जगतसिंह ने स्वधर्मी वात्सल्य, ध्वजारोपादि कई उत्सव किये। सूरिजी ने यात्रा से लौटकर पाटण चातुर्मास किया।

सं० १३८० में सेठ तेजपाल रुद्रपाल के मानतुंगविहार जिनालय के योग्य मूलनायक युगादीश्वर भगवान की २७ अंगुल की कर्पूर-धवल प्रतिमा, जिनप्रबोधसूरि, जिनचन्द्रसूरि, कपर्दी यक्ष, क्षेत्रपाल, अंबिकादि एवं ध्वजदण्डादि के साथ अन्य श्रावकों की निर्मापित बहुत सी प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवायी। मार्गशीर्ष कृष्ण ६ को मालारोपण व्रतग्रहण, नन्दी महोत्सवादि विस्तार से उत्सव हुए।

दिल्ली निवासी सेठ रयपति ने सम्राट गयासुद्दीन तुगलक से तीर्थयात्रा के लिए फरमान प्राप्त कर श्रीजिनकुशलसूरिजी से अनुमति मगाई, फिर विशाल संघ के साथ वै० कृ० ७ को प्रयाण करके कन्यानयन, नरभट, फलौदी पार्श्वनाथ की यात्रा कर देश-विदेश के संघ सहित मार्गवर्ती तीर्थस्थान करते हुए पाटण पहुँचे। श्रीजिनकुशलसूरिजी को भी अत्यन्त आग्रहपूर्वक संघ के साथ पधारने की विनती की। सूरिजी १७ साधु और १९ साध्वियों के साथ संघ में सम्मिलित हो संखेश्वर तीर्थादि की यात्रा करते हुए आषाढ़ कृष्ण ६ के दिन शत्रुंजय पहुँचे। वहाँ उसी दिन दो दीक्षाएँ हुईं। दूसरे दिन समवसरण, जिनपतिसूरि, जिनेश्वरसूरि आदि गुरुमूर्तियों की प्रतिष्ठा के साथ पाटण में पूर्व प्रतिष्ठित युगादिदेव भगवान को स्थापित किया। आषाढ़ कृष्ण ९ के दिन व्रतग्रहण, नन्दी महोत्सवादि के साथ-साथ सुखकीर्ति गणि को वाचनाचार्य पद दिया। उस यात्रीसंघ के द्वारा तीर्थ के भण्डार में ५००००) रुपये की आमदनी हुई।

यह विशाल यात्री संघ सूरिजी के साथ आषाढ़ सुदि १४ को गिरनार पहुँचा, यहाँ भी संघ के द्वारा विविध उत्सवादि हुए। तीर्थ के भंडार में ४००००) रुपये की आमदनी हुई। आनन्द के साथ यात्रा सम्पन्न कर श्रावण शुक्ल १३ को पाटण पधारे। १५ दिन तक नगर के बाहर उद्यान में ठहर कर भाद्रपद कृष्ण ११ को समारोह पूर्वक नगर-प्रवेश हुआ, तदनन्तर संघ ने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया।

संवत् १३८१ मिती वैशाख कृष्ण ५ को पाटण के शांतिनाथ विधिचैत्य में सूरिजी के करकमलों से विराट प्रतिष्ठा-महोत्सव संपन्न हुआ। इनमें जालोर, देरावर तथा शत्रुंजय (वूल्हावसही और अष्टापद प्रासाद के लिए २४ बिंब), उच्चानगर के लिए अगणित जिन प्रतिमाएं तथा पाटण के लिए जिनप्रबोधसूरि, देरावर के लिए जिनचन्द्रसूरि, अंबिका आदि अधिष्ठायक व स्वभंडार योग्य समवसरण की भी प्रतिष्ठा की। वैशाख कृष्ण ६ के दिन दो बड़ी दीक्षाएँ, पांच साधु-साध्वियों की दीक्षा, जयधर्म गणि को उपाध्याय पद तथा अन्य व्रत ग्रहणादि विस्तार से हुए।

सूरिमहाराज को वीरदेव आदि ने पाटण से अत्यन्त आग्रह पूर्वक भीमपल्ली बुलाया। संघ ने सम्राट गयासुद्दीन से तीर्थयात्राके हेतु फरमान प्राप्त कर ज्येष्ठ कृष्ण ५को भीमपल्ली से प्रयाण किया। सूरिजी के साथ १२ साधु और कई साध्वियां

भी थीं। संघ धायद, सेरिसा, सरखेज, आशापल्ली होते हुए खंभात पहुँचा। जिस प्रकार जिनेश्वरसूरिजी के पधारने पर सं० १२८६ में महामंत्री वस्तुपाल ने एवं सं० १३६४-६७ में सेठ जेसल ने थी जिनचन्द्रसूरिजी का प्रवेशोत्सव किया था उसी प्रकार सूरिजी का इस समय धूमधाम से प्रवेशोत्सव हुआ। आठ दिन तक नाना उत्सवादि संपन्न कर आनन्दपूर्वक यात्रा करते हुए शत्रुंजय की ओर चले। धांधुका में मन्त्रीदलीय ठ० उदयकरण ने संघ की बहुत भक्ति की। शत्रुंजय पहुँच कर सूरिजी ने दूसरी बार यात्रा की। तीर्थ के भंडार में १५००० की आमदनी हुई। आदिनाथ प्रभु के विधि-चैत्य में नवनिर्मित चतुर्विंशति जिनालय, देवकुलिकाओं पर कलश व ध्वजादि का आरोपण हुआ। संघ सहित सूरिमहाराज तलहटी में आये। लौटते समय सेरिसा, शंखेश्वर, पाडल होते हुए श्रावण शुक्ला ११ को भीमपल्ली पधारे।

सं० १३८२ वैशाख शुक्ला ५ को विनयप्रभ, मतिप्रभ, हरिप्रभ, सोमप्रभ साधु एवं कमलश्री, ललितश्री को समारोहपूर्वक दीक्षा दी। पत्तन, पालनपुर, बीजापुर, आशापल्ली आदि का संघ भी उपस्थित था। तीन दिन अमारि उद्घोषणा के साथ बड़े उत्सव हुए। फिर सूरिजी साचोर पधारे। मासकल्प करके लाटहृद पधारे। संघ के आग्रह से बाडमेर में चौमासा करके श्री जिनदत्तसूरि रचित चैत्यवंदनकुलक पर विस्तृत वृत्ति की रचना की। सं० १३८३ पौष शुक्ला १५ को जेसलमेर, लाटहृद, साचोर, पालनपुरीय संघ के समक्ष अमारि घोषणापूर्वक बड़ी दीक्षा आदि अनेक उत्सव हुए। तदनन्तर जालोर संघ की विनती से विहार करके लवणखेटक पधारे। यहाँ सूरिजी के पूर्वज उद्धरण बाहित्रिक कारित शांतिनाथ-जिनालय था एवं गुरु जिनचन्द्रसूरिजी का जन्म एवं दीक्षा यहीं हुई थी। यहाँ से समियाणा (जन्मभूमि) होते हुए जालोर पधारे। यहाँ उच्चपुर, देवराजपुर, पाटण, जेसलमेर, सिवाणा, श्रीमाल, साचोर, गुढहा आदि के संघ के समक्ष पंद्रह दिन तक दीक्षार्थियों के सत्कार सहित फाल्गुन कृष्ण ६ को दीक्षा, प्रतिष्ठा, मालोद्घाटनादि विविध उत्सव हुए। राजगृह तीर्थ के वैभारगिरि स्थित चतुर्विंशति जिनालय के मूलनायक महावीर स्वामी आदि अनेक पाषाण और धातुमय बिम्ब गुरुमूर्तियां आदि की प्रतिष्ठा एवं न्यायकीर्ति ललितकीर्ति, सोमकीर्ति अमरकीर्ति, ज्ञानकीर्ति, देवकीर्ति-६ साधुओं को दीक्षित किया।

जालोर से चैत्र कृष्ण में विहार कर समियाणा, खेड़नगर होते हुए जेसलमेर महादुर्ग पधारे। सिन्ध देश के श्रावक अपने उधर पधारने के लिए बार-बार वीनति कर रहे थे अतः पन्द्रह दिन रहकर सिंध देश के देरावर नगर में पधारे। वहाँ स्वप्रतिष्ठित आदिनाथ प्रभु को वन्दन किया। फिर उच्चनगर पधारकर हिन्दु-मुसलमान सबको धर्मोपदेशों से आनन्दित किया। एक मास रहकर वापिस देरावर पधारे। सं० १३८४ माघ शु० ५ को उच्च, देरावर, क्यासपुर बहरामपुर, मलिकपुर के श्रावकों और अधिकारियों के अनुरोध से प्रतिष्ठा, व्रतग्रहण आदि बड़े विस्तार से सम्पन्न किये। राणुककोट, क्यासपुर के लिए दो आदिनाथ मूलनायकबिंब व धातु-पाषाण की अनेक प्रतिमाएं प्रतिष्ठित कीं। भावमूर्ति, मोदमूर्ति, उदयमूर्ति, विजयमूर्ति, हेममूर्ति, भद्रमूर्ति, मेघमूर्ति, पद्ममूर्ति, हर्षमूर्ति आदि नौ साधु, कुलधर्मा, विनयधर्मा और शीलधर्मा नामक तीन साध्वियों को दीक्षा हुई।

सं० १३८५ फाल्गुन शु० ४ के दिन उच्चापुर, बहिरामपुर, क्यासपुर के खरतर गच्छीय संघ की विद्यमानता में नवदीक्षितों की उपस्थापना, अनेकों व्रतग्रहण व कमलाकर गणि को वाचनाचार्य पद दिया। सं० १३८६ में बहिरामपुर पधारे। वहाँ धर्मप्रभावना कर क्यासपुर के हिन्दु-मुसलमान सबको आनन्दित किया। ६ दिन उत्सवादि के पश्चात् सोजावाहन पधारकर क्यासपुर पधारे। मुसल-

मान नवाब और सभीलोगों द्वारा सूरिजी का ऐसा प्रवेशोत्सव किया गया जो सं० १२३८ में अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज द्वारा किये अजमेर के उत्सव की याद दिलाता था। तदनन्तर देरावर पधार कर सं० १३८६ का चतुर्मास वहीं किया। बारह साधुओं के साथ उच्चानगर जाकर मासकल्प किया। फिर अनेक ग्राम नगरों में विचरते हुए परशुरोरकोट गए। वहां से बहिरामपुर होते हुए उग्रविहारी श्री जिनकुशलसूरिजी देरावर पधारे और सं० १३८७ का वहीं चातुर्मास वहीं किया।

सं० १३८८ में उच्चापुर, बहिरामपुर, क्यासपुर, सिलारवाहण आदि सभी स्थानों के श्रावकों की उपस्थिति में मार्गशीर्ष शु० १० को व्रतग्रहणादि नन्दीमहोत्सवपूर्वक विद्वत् शिरोमणि तरुणकीर्त्ति को आचार्य पद देकर तरुणप्रभाचार्य नाम से प्रसिद्ध किया। पं० लब्धिनिधान को उपाध्याय पद दिया, जयप्रिय, पुण्यप्रिय एवं जयश्री, धर्मश्री, को दीक्षित किया। सं० १३८९ का चातुर्मास देरावर में किया और तरुणप्रभाचार्य व लब्धिनिधानोपाध्याय को स्याद्वादरत्नाकर, महातर्क रत्नाकर आदि सिद्धान्तों का परिशीलन करवाया। माघ शुक्ल में तीव्रज्वर व श्वास की व्याधि होने पर अपना आयुशेष निकट ज्ञातकर श्री तरुणप्रभाचार्य व लब्धिनिधानोपाध्याय को अपने पद पर पद्ममूर्त्ति को गच्छनायक बनाने की आज्ञा देकर अनशन करके मिति फाल्गुन कृष्ण ५ की रात्रि के पिछले पहर में स्वर्ग सिधारे। विद्युतगति से समाचार फैलते ही सिन्धु देश के गाँवों के लोग देरावर आ पहुंचे। फा० कृ० ६ को ७५ मंडपिकाओं से मंडित निर्यान विमान में विराजमान कर बड़े महोत्सवपूर्वक गोकाकुल संघ ने नगर के राजमार्गों से होते हुए सूरिजी के पावन शरीर को स्मशान में ले जाकर अग्निसंस्कार किया।

सूरिजी के अग्नि-संस्कार स्थान में सुन्दरस्तूप निर्माण किया गया जो आगे चलकर तीर्थ रूप हो गया। मिती ज्येष्ठ शुक्ल ९ को हरिपाल कारित आदिनाथ प्रतिमा, देरावर स्तूप, जेसलमेर और क्यासपुर के लिये श्रीजिनकुशलसूरिजी की तीन मूर्तियों का प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। आपके पट्टधर श्रीजिनपद्मसूरि का पदस्थापना महोत्सव बड़े धूम-धाम से हुआ। श्रीजिनपद्मसूरिजी ने दो उपाध्याय १२ साधुओं के साथ जेसलमेर पधारकर चातुर्मास किया। इनके अतिरिक्त आपका शिष्य परिवार बहुत बड़ा था। उ० विनयप्रभ, सोमप्रभ इत्यादि की परम्परा में बहुत से बड़े-बड़े विद्वान और ग्रन्थकार हुए हैं। विनयप्रभोपाध्याय का गौतमरास जैन समाज में बहुप्रचलित रचना है आपका संस्कृत में नरवर्मचरित्र एवं कई स्तोत्रादि उपलब्ध हैं।

श्रीजिनकुशलसूरि जी ने अपने जीवन में शासन की बड़ी प्रभावना की उन्होंने पचास हजार नये जैन बनाकर परम्परा-मिहान को अक्षुण्ण रखा। आप उच्चकोटि के विद्वान और प्रभावशाली व्यक्ति थे। दादाश्रीजिनदत्तसूरि जी कृत चैत्यवंदन कुलक नामक २७ गाथा की लघु कृति पर ४००० श्लोक परिमित टीका रचकर अपनी अप्रतिम प्रतिभा का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसमें २४ धर्म कथाएँ हैं जिनमें श्रेणिक महाराज कथा तो ९४५ श्लोक परिमित हैं। इस ग्रन्थ में अनेक सिद्धान्तों के प्रमाण भी उद्धृत हैं। आपकी दूसरी कृति श्रीजिनचन्द्रसूरि चतुःसप्ततिका प्राकृत की ७४ गाथाओं में है। इसके अतिरिक्त कई स्तोत्रादि भी संस्कृत में अनेक रचे थे, जिनमें ९ स्तोत्र उपलब्ध हैं।

आप अपने जीवितकाल में जिस प्रकार जैन संघ के महान् उपकारी थे स्वर्गवास के पश्चात् भी भक्तों के मनोवांछित पूर्ण करने में कल्पवृक्ष के सदृश हैं। आपने अनेकों को दर्शन दिए हैं और स्मरण करने वालों के लिए हाजरा हजूर हैं। यही कारण है कि आज ६३७ वर्ष बीत जाने पर भी आप प्रत्यक्ष हैं। आप भुवनपति-महर्द्धिक कर्मेन्द्र नामक देव हैं। जीवितकाल में भी धरणेन्द्र आपका भक्त था और स्वर्ग में भी धरणेन्द्र-पद्मावती इन्द्र-इन्द्राणी से अभिन्न मैत्री है। आज सारे भारतवर्ष में आपके जितने चरण व मूर्तियाँ-दादावाड़ियाँ हैं, अन्य किसी के नहीं। यही एक गुरुदेव के महत्व का साक्षात् उदाहरण हैं। ९-१० वर्ष बाद आपके जन्म को सात सौ वर्ष पूरे होते हैं आशा है भक्त गण अष्टम जन्म शताब्दी बड़े समारोह से मनाकर समाज में नवचेतना जागृत करेंगे।



प्रकटप्रभावीदादा श्रीजिनकुशलसूरि मूर्ति बड़े दादाजी, (महरौली)



श्रीजिनप्रभसूरि मूर्ति (खरतरवसही, शत्रुञ्जय)



युगप्रधानश्रीजिनचन्द्रसूरि (चतुर्थ दादा)
ऋषभदेव जिनालय (बीकानेर)



श्रीपूज्यश्रीजिनमहेन्द्रसूरिजी महाराज



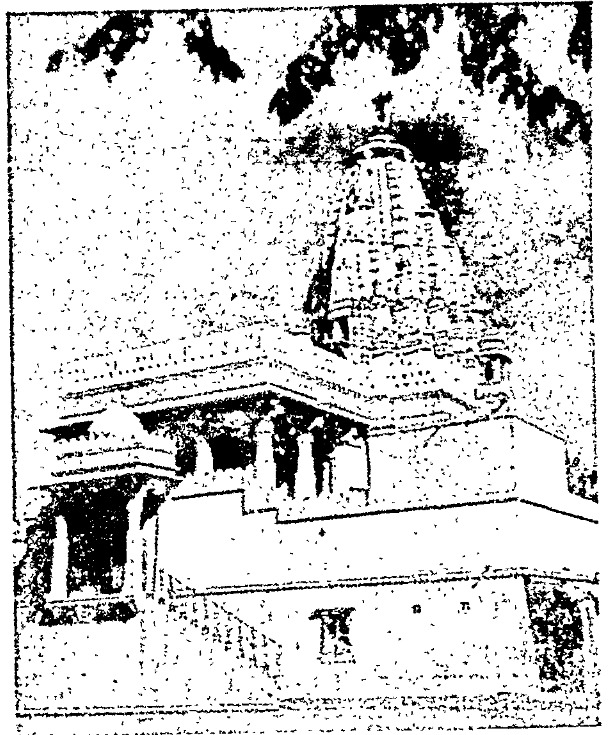
सं० ६३७ में श्री उद्योतनसूरि प्रतिष्ठित
आदिनाथ प्रतिमा गांगाणीतीर्थ



सं० १०८३ प्र० आदिनाथ पंचतीर्थी
जैन श्वे० पचायती मंदिर, कलकत्ता



आचार्य श्रीजिनकवीन्द्रसागरसूरिजी



श्री जैन श्वेताम्बर मन्दिर गांगाणी तीर्थ

# महान् शासन-प्रभावक श्रीजिनप्रभसूरि

[ अगरचन्द नाहटा ]

जैन ग्रन्थों में जैन शासन की समय-समय पर महान् प्रभावना करने वाले आठ प्रकार के प्रभावक-पुरुषों का उल्लेख मिलता है। ऐसे प्रभावक पुरुषों के सम्बन्ध में प्रभावक चरित्रादि महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचे गये हैं। आठ प्रकार के प्रभावक इस प्रकार माने गए हैं—प्रावचनिक धर्मकथी, वादी, नैमित्तिक, तपस्वी, विद्यावान्, सिद्ध और कवि। इन प्रभावक पुरुषों ने अपने असाधारण प्रभाव से आपत्ति के समय जैन शासन की रक्षा की, राजा-महाराजा एवं जनता को जैन धर्म के प्रतिबोध द्वारा शासन की उन्नति की एवं शोभा बढ़ाई। आर्यरक्षित अभयदेवसूरि को प्रावचनिक, पादलिप्तसूरि को कवि, विद्यावली और सिद्ध, विजयदेवसूरि व जीवदेवसूरि को सिद्ध, मल्लवादी वृद्धवादी, और देवसूरि को वादी, बप्पभट्टिसूरि, मानतुंगसूरि को कवि, सिद्धर्षि को धर्मकथी महेन्द्रसूरि को नैमित्तिक, आचार्य हेमचन्द्र को प्रावचनिक, धर्मकथी औरक वि प्रभावक, प्रभावक चरित्र की मुनि कल्याणविजयजी की महत्वपूर्ण प्रस्तावना में बतलाया गया है।

खरतरगच्छ में भी जिनेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि, मणिधारी-जिनचन्द्रसूरि और जिनपतिसूरि ने विविध प्रकार से जिन शासन की प्रभावना की है। जिनपतिसूरि के पट्टधर जिनेश्वरसूरि के दो महान् पट्टधर हुए—जिनप्रबोधसूरि तो ओसवाल और जिनसिंहसूरि श्रीमाल संघ में विशेष धर्म-प्रचार करते रहे। इसलिए इन दो आचार्यों से खरतरगच्छ की दो शाखाएं अलग हो गईं। जिनसिंहसूरि की शाखा का नाम खरतर आचार्य प्रसिद्ध हो गया, उनके शिष्य एवं पट्टधर जिनप्रभसूरि बहुत बड़े शासन-प्रभावक हो गए हैं जिनके सम्बन्ध में साधारणतया लोगों को बहुत ही कम जानकारी है। इसलिए यहां उनका आवश्यक परिचय दिया जा रहा है।

वृद्धाचार्य प्रबन्धावली के जिनप्रभसूरि प्रबन्ध में प्राकृत भाषा में जिनप्रभसूरि का अच्छा विवरण दिया गया है, उनके अनुसार ये मोहिलवाड़ी लाडनूं के श्रीमाल ताम्बी गोत्रीय श्रावक महाधर के पुत्र रत्नपाल की धर्मपत्नी खेतलदेवी के कुक्षि से उत्पन्न हुए थे। इनका नाम सुभटपाल था। सात-आठ वर्ष की बाल्यावस्था में ही पद्मावती देवी के विशेष संकेत द्वारा श्री जिनसिंहसूरि ने उनके निवास स्थान में जाकर सुभटपाल को दीक्षित किया। सूरिजी ने अपनी आयु अल्प ज्ञात कर सं० १३४१ किढवाणानगर में इन्हें आचार्य पद देकर अपने पट्टपर स्थापित कर दिया। उपदेशसप्ततिका में जिनप्रभसूरि सं० १३३२ में हुए लिखा है, यह सम्भवतः जन्म समय होगा। थोड़े ही समय में जिनसिंहसूरिजी ने जो पद्मावती आराधना की थी वह उनके शिष्य-जिनप्रभसूरिजी को फलवती हो गई और आप व्याकरण, कोश, छंद, लक्षण, साहित्य, न्याय, षट्दर्शन, मंत्र-तंत्र और जैन दर्शन के महान् विद्वान बन गए। आपके रचित विशाल और महत्त्वपूर्ण विविध विषयक साहित्य से यह भली-भांति स्पष्ट है। अन्य गच्छीय और खरतरगच्छ की रुद्रपल्लीय शाखा के विद्वानों को आपने अध्ययन कराया एवं उनके ग्रन्थों का संशोधन किया।

असाधारण विद्वत्ता के साथ-साथ पद्मावतीदेवी के सान्निध्य द्वारा आपने बहुत से चमत्कार दिखाये हैं जिनका वर्णन खरतरगच्छ पट्टावलियों से भी अधिक तपागच्छीय

ग्रन्थों में मिलता है और यह बात विशेष उल्लेख योग्य है। सं० १५०३ में सोमधर्म ने उपदेश-सप्ततिका नामक अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ के तृतीय गुरुत्वाधिकार के पंचम उपदेश में जिनप्रभसूरि के बादशाह को प्रतिबोध एवं कई चमत्कारों का विवरण दिया है। प्रारम्भ में लिखा है कि इस कलियुग में कई आचार्य जिन शासन रूपी घर में दीपक के सामान हुए। इस सम्बन्ध में म्लेच्छपति को प्रतिबोध को देने वाले श्रीजिनप्रभसूरि का उदाहरण जानने लायक है। अंत में निम्न श्लोक द्वारा उनकी स्तुति की गई है:—

स श्री जिनप्रभःसूरि-र्दुरितांधैदतामसः
भद्रं करोतु संघाय, शासनस्य प्रभावकः॥ १॥

इसी प्रकार संवत् १५२१ में तपागच्छीय शुभशील गणि ने प्रबन्ध पंचशती नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ बनाया जिसके प्रारम्भ में ही श्री जिनप्रभसूरिजी के चमत्कारिक १६ प्रबन्ध देते हुए अंत में लिखा है—

'इति कियन्तो जिनप्रभसूरी अवदातसम्बन्धाः'

इस ग्रन्थ में जिनप्रभसूरि सम्बन्धी और भी कई ज्ञातव्य प्रबन्ध हैं। उपरोक्त १६ के अतिरिक्त नं०२०,३०६,३१४ तथा अन्य भी कई प्रबन्ध आपके सम्बन्धित हैं। पुरातन प्रबन्ध संग्रह में मुनि जिनविजयजी के प्रकाशित जिनप्रभसूरि उत्पत्ति प्रबन्ध व अन्य एक रविवर्द्धन लिखित विस्तृत प्रबन्ध है। खरतरगच्छ वृहद्-गुर्वावली-युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अंत में जो वृद्धाचार्य प्रबन्धावली नामक प्राकृतकी रचना प्रकाशित हुई है। उसमें जिनसिंहसूरि और जिनप्रभसूरि के प्रबन्ध, खरतरगच्छीय विद्वान के लिखे हुए हैं एवं खरतरगच्छ की पट्टावली आदि में भी कुछ विवरण मिलता है पर सबसे महत्वपूर्ण घटना या कार्यविशेष का समकालीन विवरण विविध तीर्थकल्प के कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा कल्प और उसके कल्प परिशेष में प्राप्त है। उसके अनुसार जिनप्रभसूरिजी ने यह मुहम्मद तुगलक से बहुत बड़ा सम्मान प्राप्त किया था। उन्होंने कन्नाणा की महावीर प्रतिमा मुल्तान से प्राप्तकर दिल्ली के जैन मंदिर में स्थापित करायी थी। पीछे से मुहम्मद तुगलक ने जिनप्रभसूरि के शिष्य 'जिनदेवसूरि को सुरत्तान सराइ दी थी जिसमें चार सौ श्रावकों के घर, पौषधशाला व मन्दिर बनाया उसी में उक्त महावीर स्वामी को विराजमान किया गया। इनकी पूजा व भक्ति श्वेताम्बर समाज ही नहीं, दिगम्बर और अन्य मतावलम्बी भी करते रहे हैं।

कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा कल्प के लिखनेवाले 'जिनसिंहसूरि-शिष्य' बतलाये गये हैं अतः जिनप्रभसूरि या उनके किसी गुरुभ्राता ने इस कल्प की रचना की है। इसमें स्पष्ट लिखा है कि हमारे पूर्वाचार्य श्री जिनपतिसूरि जी ने सं० १२३३ के आषाढ़ शुक्ल १० गुरुवार को उक्त प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी और इसका निर्माण जिनपति सूरि के चाचा मानदेव ने करवाया था। अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज के निधन के बाद तुर्कों के भय से सेठ रामदेव के सूचनानुसार इस प्रतिमा को कंयवास स्थल की विपुल बालू में छिपा दिया गया था। सं० १३११ के दारुण दुर्भिक्ष में जोजग नामक सूत्रधार को स्वप्न देकर यह प्रतिमा प्रगट हुई और श्रावकों ने मन्दिर बनवाकर विराजमान की। सं० १३८५ में हांसी के सिकदार ने श्रावकों को बन्दी बनाया और इस महावीर बिम्ब को दिल्ली लाकर तुगलकाबाद के शाही खजाने में रख दिया।

जनपद विहार करते हुए जिनप्रभसूरि दिल्ली पधारे और राजसभा में पण्डितों की गोष्ठी द्वारा सम्राट को प्रभावित कर इस प्रभु-प्रतिमा को प्राप्त किया। मुहम्मद तुगलक ने अर्द्धरात्रि तक सूरिजी के साथ गोष्ठी की और उन्हें वहीं रखा। प्रातः काल संतुष्ट सुलतान ने १००० गायें, बहुत सा द्रव्य, वस्त्र-कंबल, चंदन, कर्पूरादि सुगंधित पदार्थ सूरिजी को भेंट किया। पर गुरुश्री ने कहा ये सब साधुओं को लेना अकल्प्य है। सुलतान के विशेष अनुरोध से कुछ

वस्त्र-कम्बल उन्होंने 'राजाभियोग' से स्वीकार किया और मुहम्मद तुगलक ने बड़े महोत्सव के साथ जिनप्रभसूरि और जिनदेवसूरि को हाथियों पर आरूढ़ कर पौषधशाला पहुँचाया। समय-समय पर सूरिजी एवं उनके शिष्य जिनदेवसूरि की विद्वत्तादि से चमत्कृत होकर सुलतान ने शत्रुंजय, गिरनार, फलोदी आदि तीर्थों की रक्षा के लिए फरमान दिए। कल्प के रचयिता ने अन्त में लिखा है कि मुहम्मद शाह को प्रभावित करके जिनप्रभसूरिजी ने बड़ी शासन प्रभावना एवं उन्नति की। इस प्रकार पंचम काल में चतुर्थ आरे का भास कराया।

उपर्युक्त कन्यानय महावीर कल्प का परिशेष रूप अन्य कल्प सिंहतिलकसूरि के आदेश से विद्यातिलकमुनि ने लिखा है जिसमें जिनप्रभसूरि और जिनदेवसूरि को शासन प्रभावना व मुहम्मद तुगलक को सविशेष प्रभावित करने का विवरण है। ये दोनों ही कल्प जिनप्रभसूरिजी की विद्यमानता में रचे गए थे। इसी प्रकार उन्हीं के समकालीन रचित जिनप्रभसूरि गीत तथा जिनदेवसूरि गीत हमें प्राप्त हुए जिन्हें हमने सं० १९९४ में प्रकाशित अपने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित कर दिया है। उनमें स्पष्ट लिखा है सं० १३८५ के पौष सुदि ८ शनिवार को दिल्ली में मुहम्मद शाह से श्रीजिनप्रभसूरि मिले। सुलतान ने उन्हें अपने पास बैठाकर आदर दिया। सूरिजीने नवीन काव्यों द्वारा उसे प्रसन्न किया। सुलतान ने इन्हें धन-कनक आदि बहुत सी चीजें दीं और जो चाहिए, मांगने को कहा पर निरीह सूरिजी ने उन अकल्प्य वस्तुओं को ग्रहण नहीं किया। इससे विशेष प्रभावित होकर उन्हें गई बस्ती आदि का फरमान दिया और वस्त्रादि द्वारा स्वहस्त से इनकी पूजा की। !

सं० १९८९ में पं० लालचन्द भ० गांधी का जिनप्रभसूरि और सुलतान मुहम्मद सम्बन्धी एक ऐतिहासिक निबन्ध 'जैन' के रौप्य महोत्सव अंक में प्रकाशित हुआ। फिर श्री हरिसागरसूरिजी महाराज की प्रेरणा से परिवर्द्धित करके पंडितजी ने ग्रन्थ रूप में तैयार कर दिया, जिसे सं० १९९५ में श्रीजिनहरिसागरसूरि ज्ञान भण्डार, लोहावट से देवनागरी लिपि व गुजराती भाषा में प्रकाशित किया गया।

प्रतिभासम्पन्न महान् विद्वान जिनप्रभसूरि जी की दो प्रधान रचनाएँ विविधतीर्थकल्प और विधिमार्ग-प्रपा मुनि जिनविजयजी ने सम्पादित की है, उनमें से विधि-प्रपा में हमने जिनप्रभसूरि सम्बन्धी निबन्ध लिखा था। इसके बाद हमारा कई वर्षों से यह प्रयत्न रहा कि सूरि-महाराज सम्बन्धी एक अध्ययनपूर्ण स्वतन्त्र बृहद्ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय और महो० विनयसागरजी को यह काम सौंपा गया। उन्होंने यह ग्रन्थ तैयार भी कर दिया है, साथ ही सूरिजी के रचित स्तोत्रों का संग्रह भी सम्पादित कर रखा है। हम शीघ्र ही उस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ को प्रकाशन करने में प्रयत्नशील हैं।

सूरिजी सम्बन्धी प्रबन्धों की एक सत्रहवीं शती की लिखित संग्रह प्रति हमारे संग्रह में है, पर वह अपूर्ण ही प्राप्त हुई है। हम उपदेशसप्तति प्रबन्ध-पंचशती एवं प्रबन्ध संग्रहादि प्रकाशित प्रबन्धों को देखने का पाठकों को अनुरोध करते हैं जिससे उनके चामत्कारिक प्रभाव और महान् व्यक्तित्व का कुछ परिचय मिल जायगा। जिनप्रभसूरिजी का एक महत्त्वपूर्ण मंत्र-तंत्र सम्बन्धी ग्रन्थ रहस्य-कल्पद्रुम भी अभी पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं हुआ, उसकी खोज जारी है। सोलहवीं शताब्दी की प्रति का प्राप्त अन्तिम पत्र यहां प्रकाशित किया जा रहा है।

'रहस्यकल्पद्रुम'

…तथैव प्रत्यनीकानां मनंकरादेशः। कनीय प्रभ॰। स्वदेशे जयः परदेशे अपराजितत्वं। तीर्थादिप्रत्यनीकमध्ये एतत्स्तम्भ महापीठस्य स्मरणेन भवति। ॐ ह्रां महामातंगे शुचि चंडाली मधुरं दह २ पच २ मथ २ उच्चाटय २ हुं फुट् स्वाहा॥ इत्य गडी तंत १०८ होमयेत्

उच्चाटनं विशेषतः। संपन्नी विपये। ॐ रक्त चामुंडे नर शिर तुंड मुंड मालिनीं अमुकीं आकर्षय २ ह्लीं नमः। आकृष्टि मंत्र। सहस्रत्रयजापात् सिद्धि सिद्धिः पश्चात् १०८ आकर्षयति। ॐ ह्लीं प्रत्यंगिरे महाविद्ये येन केन-चित् पापं कृतं कारितं अनुमतं वा नश्यतु तत्पापं तत्रैव गच्छतु"

ॐ ह्लीं प्रत्यगिरे महाविद्ये स्वाहा वार २१ लवण-डली जप्त्वा आतुरस्योपरि भ्रामयित्वा कांजिके क्षिप्त्वा। आतुरे ढाल्यते कार्मणं भद्रो भवति।

उभयलिंगी बीज ७ साठी चोखा ६ पली १ गोदूध। ऋतुस्नातायाः पानं देयं स्निग्धमधुरभोजनं। ऋतुगर्भो-त्पत्तिप्रधानसूकडिदुवारन् वात् एकवर्ण गोदुग्धेन पीयते गर्भा-धानाद्दिन ७५ अनंतर दिन ३ गर्भव्यत्ययः ॥छ॥

संवत् १५४६ वर्षे श्रावण सुदि १३ त्रयोदशी दिने गुरौ श्रीमडपमहादुर्गे श्री **खरतरगच्छे श्रीजिनभद्र-सूरि** पट्टालंकार श्री **श्रीजिनचन्द्रसूरि** पट्टोदया चलचूला सहस्रकरावतार श्री संप्रतिविजयमान **श्रीजिनसमुद्रसूरि** विजयराज्ये श्री वादीन्द्र चक्रचूडामणि श्रीतपोरत्न महो-पाध्याय विनेय वाचनाचार्य वर्य श्री साधुराज गणिवराणा-मादेशेन शिष्यलेश ······ लेखि श्री रहस्य कल्पद्रुम-महाम्नायः ॥छ॥छ॥ श्रेयोस्तु। पं० भक्तिवल्लभ गणि-सान्निध्येन ॥

[पत्र ११ वां प्राप्त किनारे त्रुटित]

उपर्युक्त ग्रन्थ का उल्लेख जिनप्रभसूरिजी ने व उनके समकालीन रुद्रपल्लीय सोमतिलकसूरि रचित लघुस्तव टीकादि में प्राप्त है। यह टीका सं० १३९७ में रची गई और राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रका-शित है।

बीकानेर के वृहद् ज्ञानभंडार में हमें बहुत वर्ष पूर्व इस ग्रन्थ का कुछ अंश प्राप्त हुआ था जिसे जैन सिद्धान्त-भास्कर एवं जैन सत्यप्रकाश में प्रकाशित किया। उसके बाद उपर्युक्त १६वीं शती की प्रति का अन्तिम पत्र प्राप्त हुआ। इस प्राप्त अंश को नकल ऊपर दी है। इस ग्रन्थ की पूरी प्रति का पता लगाना आवश्यक है। किसी भी सज्जन को इसकी पूरी प्रति की जानकारी मिले तो हमें सूचित करने का अनुरोध करते हैं।

श्री जिनप्रभसूरिजी और उनके विविध तीर्थकल्प के सम्बन्ध में मुनि जिनविजयजी ने लिखा है—"ग्रन्थकार (जिनप्रभसूरि) अपने समय के एक बड़े भारी विद्वान और प्रभावशाली थे। जिनप्रभसूरि ने जिस तरह विक्रम की सतरहवीं शताब्दी में मुगल व सम्राट अकबर बादशाह के दरबार में जैन जगद्गुरु हीरविजयसूरि (और युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि) ने शाही सम्मान प्राप्त किया था उसी तरह जिनप्रभसूरि ने भी चौदहवीं शताब्दी में तुगलक सुल्तान मुहम्मद शाह के दरबार में बड़ा गौरव प्राप्त किया। भारत के मुसलमान बादशाहों के दरबार में जैनधर्म का महत्व बतलाने वाले और उसका गौरव बढ़ाने वाले शायद सबसे पहले ये ही आचार्य हुए।

विविधतीर्थकल्प नामक ग्रन्थ जैन साहित्य की एक विशिष्ट वस्तु है। ऐतिहासिक और भौगोलिक दोनों प्रकार के विषयों की दृष्टि से इस ग्रन्थ का बहुत कुछ महत्व है। जैन साहित्य ही में नहीं, **समग्र भारतीय साहित्य में भी इस प्रकार का कोई दूसरा ग्रंथ अभी तक ज्ञात नहीं हुआ।** यह ग्रन्थ विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में जैनधर्म के जितने पुरातन और विद्यमान तीर्थस्थान थे उनके सम्बन्ध में प्रायः एक प्रकार की "गाइड बुक" है इसमें वर्णित उन तीर्थों का संक्षिप्त रूप से स्थान वर्णन भी है और यथाज्ञात इतिहास भी है।

प्रस्तुत रचना के अवलोकन से ज्ञात होता है कि इतिहास और स्थलभ्रमण से रचयिता को बड़ा प्रेम था। इन्होंने अपने जीवन में भारत के बहुत से भागों में परि-भ्रमण किया था। गुजरात, राजपूताना, मालवा, मध्य-

प्रदेश, बराड़, दक्षिण, कर्णाटक, तैलंग, बिहार, कौशल, अवध, युक्तप्रान्त और पंजाब आदि के कई पुरातन और प्रसिद्ध स्थलों की इन्होंने यात्रा की थी। इस यात्रा के समय उस स्थान के बारे में जो जो साहित्यगत और परम्परा-श्रुत बातें उन्हें ज्ञात हुईं उनको उन्होंने सक्षेप मे लिपिबद्ध कर लिया। इस तरह उस स्थान या तीर्थ का एक कल्प बना दिया और साथ ही ग्रन्थकार को संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं में, गद्य और पद्य दोनों ही प्रकार से ग्रन्थ रचना करने का एक सा अभ्यास होने के कारण कभी कोई कल्प उन्होंने संस्कृत भाषा में लिख दिया तो कोई प्राकृत में। इसी तरह कभी किसी कल्प की रचना गद्य में कर ली तो किसी की पद्य में।

जिनप्रभसूरि का विधिप्रपाग्रन्थ भी विधि-विधानों का बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण सग्रह है। जैन स्तोत्र आपने सात सौ बनाये कहे जाते हैं, पर अभी करीब सौ के लग-भग उपलब्ध हैं। इतने अधिक विविध प्रकार के और विशिष्ट स्तोत्र अन्य किसी के भी प्राप्त नहीं हैं। कल्पसूत्र की "सन्देहविषौषधि" टीका सं० १३६४ में सबसे पहले आपने बनाई। सं० १३५६ में रचित द्व्याश्रय महाकाव्य आपकी विशिष्ट काव्य प्रतिभा का परिचायक है। स० १३५२ से १३६० तक की आपकी पचासों रचनायें स्तोत्रों के अतिरिक्त भी प्राप्त हैं। सूरि मन्त्रकल्प एवं चूलिका ह्रींकार कल्प, वर्द्धमान विद्या और रहस्यकल्पद्रुम आपकी विद्याओं व मंत्र-तंत्र सम्बन्धी उल्लेखनीय रचनाएं हैं। अजितशांति, उवसग्गहर, भयहर, अनुयोगचतुष्टय, महावीर-स्तव, षडावश्यक, साधु प्रतिक्रमण, विदग्धमुखमंडन आदि अनेक ग्रन्थों की महत्वपूर्ण टीकाएं आपने बनाईं। कातन्त्र-विभ्रमवृत्ति, हेम अनेकार्थ शेषवृत्ति, रुचादिगण वृत्ति आदि आपकी व्याकरण विषयक रचनाएं हैं। कई प्रकरण और उनके विवरण भी आपने रचे हैं, उन सब का यहां विवरण देना संभव नहीं।

जिनप्रभसूरिजी की एक उल्लेखनीय प्रतिमा महातीर्थ शत्रुञ्जय की खरतर-वसही में विराजमान है जिसकी प्रतिकृति इस ग्रन्थ में दी गई है। जिनप्रभसूरि शाखा सतरहवीं शताब्दी तक तो बराबर चलती रही जिसमें चारित्रवर्द्धन आदि बहुत बड़े-बड़े विद्वान इस परम्परा में हुए हैं।

जिनप्रभसूरि का श्रेणिक द्व्याश्रय काव्य पालीताना से अपूर्ण प्रकाशित हुआ था उसे सुसम्पादित रूप से प्रकाशन करना आवश्यक है।

हमारी राय मे श्री जिनप्रभसूरिजी को यही गौरवपूर्ण स्थान मिलना चाहिए जो अन्य चारों दादा-गुरुओं का है। इनके इतिहास प्रकाशन द्वारा भारतीय इतिहास का एक नया अध्याय जुड़ेगा। सुलतान मुहम्मद तुगलक को इतिहास कारों ने अद्यावधि जिस दृष्टिकोण से देखा है वस्तुतः वह एकाङ्गी है। जिनप्रभसूरि सम्बन्धी समकालीन प्राप्त उल्लेखों से यह सिद्ध होता है कि वह एक विद्याप्रेमी और गुणग्राही शासक था।

ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित श्रीजिनप्रभ-सूरि के एक गीत से श्रीजिनप्रभसूरिजी ने अश्वपति कुतुबुद्दीन को भी रंजित व प्रभावित किया था—

आगमु सिद्धंतुपुराण वखाणीइए पडिबोहइ सव्वलोइए
जिणप्रभसूरि गुरु सारिखउ हो विरला दीसइ कोइ ए॥
आठाही आठामिहि चउथि तेडावइ सुरिताणु ए।
पुहविनु भुनु जिनप्रभसूरि चल्लियउ जिमि ससि इंदु विमाणि ए॥
असपति कुतुबदीनु मनिरंजिउ, दीठेलि जिनप्रभसूरि ए
एकतिहि मन मासउ पूछइ, राय मणोरह पूरि ए॥

तपागच्छीय जिनप्रभसूरि प्रबन्धों में पीरोजसाह को प्रतिबोध देने का उल्लेख मिलता है पर वे प्रबन्ध, सवासौ वर्ष बाद के होने से स्मृति दोष से यह नाम लिखा जाना संभव है।

# अनेक ज्ञानभण्डारों के संस्थापक श्रीजिनभद्रसूरि

[ पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय ]

[ श्री जिनराजसूरिजी के पट्टधर पन्द्रहवीं शताब्दी के महान् ग्रन्थ संरक्षक आचार्य श्री जिनभद्रसूरिजी का जन्म सं० १४४६ चैत्र वदि ( सुदि ) ६ आर्द्रा नक्षत्र में छाजहड़ शाह धीणिग की भार्या खेतलदे की कुक्षि से हुआ था। सं० १४६१ में इनकी दीक्षा हुई। वा० शीलचन्द्रगणि के पास इन्होंने अध्ययन कर श्रुत रहस्य को प्राप्त किया। २५ वर्ष की आयु में सं० १४७५ के माघ सुदि १५ बुधवार को भाणसोली ग्राम में श्री सागरचन्द्राचार्य ने इन्हें गच्छनायक पद पर प्रतिष्ठित किया। सा० नाल्हा ने बहुत बड़े महोत्सव पूर्वक पदस्थापना करवायी, इन्होंने अनेक साधु-साध्वियों को दीक्षित किया। भावप्रभाचार्य, कीर्त्तिरत्नाचार्य और जयसागरोपाध्याय को आचार्य, उपाध्याय आदि पदों पर प्रतिष्ठित किया। गिरनार, आबू और जैसलमेर में उपदेश देकर जिनमन्दिर प्रतिष्ठित किये। सं० १५१४ मिगसर वदि ६ को कुंभलमेर में आप स्वर्गवासी हुए। इनके पट्ट पर श्री जिनचन्द्रसूरि को सं० १५१५ के जेठ वदि २ को पाटण में साह समरसिंह कारित नंदीद्वारा श्री कीर्त्तिरत्नाचार्य ने स्थापित किया।

आपकी जीवनी के सम्बन्ध में श्री जिनभद्रसूरि रास व कई गीत हमारे संग्रह में हैं। उक्त रास का सार हमने जैन सत्यप्रकाश में प्रकाशित कर दिया है। जैसलमेर का सुप्रसिद्ध ज्ञानभंडार आपके नाम से ही प्रसिद्ध है।

महान् श्रुतरक्षक श्री जिनभद्रसूरिजी की परम्परा में अनेक आचार्य उपाध्याय और विद्वान हुए। खरतरगच्छ में जिनभद्रसूरि परम्परा ही सर्वाधिक प्रभावशाली रही है। बीकानेर और जयपुर की भट्टारकीय, आचार्यीय, आद्य-पक्षीय, भावहर्षीय, जिनरंगसूरि शाखा, इन्हीं की परम्परा में हुई हैं। जिनभद्रसूरिजी की प्राचीन मूर्त्तियां, चरण पादुकाएं अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित दादावाड़ियों व मंदिरों में पूज्यमान हैं। चारों दादासाहब के साथ इनके चरण भी कई स्थानों में एक साथ प्रतिष्ठित हैं। सं० १४८४ में जयसागरोपाध्याय ने नगरकोट कांगड़ा की यात्रा के विवरण वाला महत्वपूर्ण विज्ञप्तिपत्र आपको भेजा था। मुनिजिनविजयजी ने विज्ञप्ति-त्रिवेणी की प्रस्तावना में श्रीजिनभद्रसूरि का परिचय इस प्रकार दिया है। —सम्पादक ]

### जिनभद्रसूरि

आचार्य श्री जिनभद्रसूरि बहुत अच्छे विद्वान और प्रतिष्ठित हो गए हैं। उन्होंने अपने जीवन-काल में उपदेश द्वारा अनेक धर्मकार्य करवाये, कई राजा-महाराजाओं को अपने भक्त बनाए। विविध देशों में विचर कर जैन-धर्म की समुन्नति करने का विशेष प्रयत्न किया। जैसल-मेर के संभवनाथ मन्दिर में सं० १४९७ का एक बड़ा शिलालेख है जिसमें इनके उपदेश से उपर्युक्त मन्दिर बनने व प्रतिष्ठित होने का वृत्तान्त है। इस लेख में इनके गुणों तथा इनके करवाये हुए धर्म-कार्यों का संक्षिप्त उल्लेख करने वाला एक गुरु वर्णनाष्टक है। इस अष्टक के अवलोकन से इनके जीवन का अच्छा परिचय मिलता है। उक्त संस्कृत अष्टक का तात्पर्य यह है कि ये बड़े प्रभावक, प्रतिष्ठावान और प्रतिभाशाली आचार्य थे। सिद्धान्तों के

जानने वाले बड़े-बड़े पण्डित इनके आश्रित-सेवा में रहते थे। इनके उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य और सत्य-व्रत को देखकर लोक इन्हें स्थूलिभद्र की उपमा देते थे। इनके वचन को सब कोई आप्त वचन की तरह स्वीकारते थे। इन्होंने अपने सौभाग्य से शासन को अच्छी तरह दीपाया—शोभाया था। गिरनार, चित्रकूट ( चित्तौड़गढ़ ), मांडव्यपुर ( मंडोवर ) आदि स्थानों में इनके उपदेश से श्रावकों ने बड़े-बड़े जिन भुवन बनाये थे। अणहिलपुर पाटण आदि स्थानों में विशाल पुस्तक भंडार स्थापन करवाये थे। मंडपदुर्ग, प्रल्हादनपुर ( पालनपुर ), तलपाटक आदि नगरों में अनेक जिनबिम्बों की विधिपूर्वक प्रतिष्ठा की थी। इन्होंने अपनी बुद्धि से अनेकान्त जयपताका जैसे प्रखर तर्क ग्रन्थ और विशेषावश्यक भाष्य जैसे सिद्धान्तग्रन्थ अनेक मुनियों को पढ़ाए थे। ये कर्मप्रकृति और कर्मग्रन्थ जैसे गहन ग्रन्थों के रहस्यों का विवेचन ऐसा सुन्दर और सरल करते थे कि जिसे सुनकर भिन्नगच्छ के साधु भी चमत्कृत होते थे और इनके ज्ञान की प्रशंसा करते थे। राउल श्री वैरिसिंह और त्र्यंबकदास जैसे नृपति इनके चरणों में भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया करते थे। इस प्रकार ये आचार्य बड़े शान्त, दान्त, संयमी, विद्वान और पूरे योग्य गच्छपति थे।

इनके उपदेश से जैसलमेर के श्रावक सा० शिवा, महिप, लोला और लाखण नाम के चार भ्राताओं ने संवत् १४९४ में बड़ा भव्य जिनमन्दिर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा इन्होंने संवत् १४९७ में की थी और संभवनाथ प्रभृति तीन सौ जिनबिम्ब प्रतिष्ठित किये थे। इस प्रतिष्ठा में उक्त चार भाइयों ने अगणित द्रव्य खर्च किया था।

और भी अनेक स्थानों में बड़े-बड़े जिनमन्दिर बनवाये, प्रतिष्ठामहोत्सव करवाये और हजारों जिनबिम्ब प्रतिष्ठित किये थे।

## जिनभद्रसूरि और पुस्तक भाण्डागार

जिनभद्रसूरि ने अपने जीवन में सबसे अधिक महत्वका और विशिष्टता वाला जो कार्य किया है वह भिन्न-भिन्न स्थानों में विशाल पुस्तकालय स्थापित कराने का है।

इन्होंने जैसे और जितने शास्त्र भण्डार स्थापित किये-कराये, वैसे शायद ही अन्य आचार्य ने किये-करवाये हों। इस ग्रन्थोद्धार कार्य के प्राचुर्य में इनके और सुकृत मानो गौण हो गए थे।

अष्टलक्षी के प्रशस्ति पद्य से जैसलमेर, जावालपुर, देवगिरि ( दौलताबाद ) अहिपुर और पाटण इन पाँच स्थानों के भंडारों का मण्डप दुर्ग ( मांडवगढ़ ), आशापल्ली या कर्णावती और खम्भायत—इन तीन और अन्य भंडारों का उल्लेख मिलता है।

जैसलमेर खरतरगच्छ का प्रधान स्थान था। जिन-भद्रसूरि इस गच्छ के नेता थे। इन्होंने जैसलमेर के शास्त्र संग्रह के उद्धार का संकल्प किया। अनेक अच्छे-अच्छे लेखक इस काम के लिए रोके गये और उनके द्वारा ताड़-पत्र और कागजों पर नकलें करायी जाने लगीं। जिन-भद्रसूरि स्वयं भिन्न-भिन्न प्रदेशों में फिरकर श्रावकों को शास्त्रोद्धार का सतत उपदेश देने लगे। इस प्रकार सं० १४७५ से १५१५ तक के ४० वर्षों में हजारों बल्कि लाखों ग्रन्थ लिखवाये और उन्हें भिन्न-भिन्न स्थानों में रखकर अनेक नये पुस्तक भंडार कायम किये।

पाटण और आशापल्ली के भंडार एक ही श्रावक के लिखाये हुए नहीं थे किन्तु कई गृहस्थों ने अपनी इच्छा-नुसार एक, दो अथवा दस, बीस पुस्तकें लिखवा कर इनमें रख दी थीं। परन्तु खंभायत का भण्डार एक ही श्रावक धरणाक ने तैयार करवाया था यह परीक्ष गोत्रीय सा० गूजर का पुत्र और सं० साइया का पिता था।

मण्डपदुर्ग के श्रीमाली सोनिगिरा वंशीय मन्त्रीश्रीमंडन और धनदराज बड़े अच्छे विद्वान थे। मण्डन का वंश और कुटुम्ब खरतरगच्छ का अनुयायी था। इन भ्राताओं ने जो उपरोक्त का सिद्धान्त प्राप्त किया था वह इन्हीं

गच्छ के साधुओं की कृपा का फल था। इस समय इस गच्छ के नेता जिनभद्रसूरि थे, इसलिए उनपर इनका अनुराग और सद्भाव स्वभावतः ही अधिक था। इन दोनों भाइयों ने अपने-अपने ग्रन्थों में इन आचार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

इन भ्राताओं ने जिनभद्रसूरि के उपदेश से एक विशाल सिद्धान्तकोश लिखवाया था। यह सिद्धान्तकोश आज विद्यमान नहीं। पाटण के भण्डार में भगवतीसूत्र की प्रति मंडन के सिद्धान्तकोश की है। इस प्रति के अन्त में मण्डन की प्रशस्ति है।

जिनभद्रसूरि ने विद्वत्ता के प्रमाण में ग्रन्थों की रचना की है ऐसा प्रतीत नहीं होता। इनका बनाया हुआ एक ग्रन्थ मेरे दृष्टिगोचर हुआ है, इसका नाम 'जिनसत्तरी प्रकरण' है। यह प्राकृत में गाथाबंध है। इसकी कुल गाथाएं २२० हैं। इसमें २४ तीर्थंकरों के पूर्वभव-संख्या, द्वीपक्षेत्र, विजय, नगर, नाम और आयु आदि ७० बातों की सूची है।

जिनभद्रसूरि का शिष्य समुदाय बड़ा और प्रभावशाली था।

जिनभद्रसूरि की एक पाषाणमय मूर्ति जोधपुर राज्य के खेड़गढ़ के पास जो नगर गांव हैं, वहां के भूमिगृह में स्थापित है। यह मूर्ति उकेश वंश के कायस्थकुल वाले किसी श्रावक ने संवत् १५१२ में बनवायी थी।

जिनभद्रसूरि बहुत भाग्यवान और तेजस्वी थे।

मुनि श्री चतुरविजयजी ने जैन स्तोत्र संदोह भाग २ की प्रस्तावना में जिनभद्रसूरिजी की अन्य रचनाओं, पादुकाओं, शिष्यों आदि का लम्बा विवरण दिया है।

आचार्य प्रवर श्रीजिनभद्रसूरि जी के हाथ की लिखी हुई सुन्दर अक्षरों वाली एक प्रति कलकत्ता के श्री पूरण नाहर के संग्रह में हमारे अवलोकन में आई जो सं० १५११ आषाढ़ वदि १४ बुधवार की लिखी हुई है। योग विधि पद स्थापना विधि की यह प्रति वा० साधुतिलक गणि को प्रसादी कृत है। इसके अन्तिम पत्र की प्रति कृति नीचे दी जा रही है। जिससे पाठकों को सूरिजी की अक्षर-देह के दर्शन हो जायेंगे।

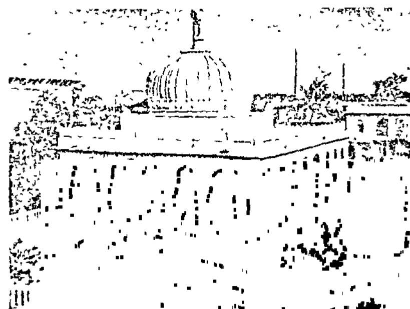
[illegible]



कलकत्ता दादावाड़ी का भीतरी दृश्य



मन्त्रीश्वर कर्मचन्द बच्छावत



कलकत्ता दादावाड़ी. फोटो महेन्द्र सिंघी



नगरत्न मोतीशाह नाहटा, बम्बई



जैनाचार्य श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी



जैनाचार्य श्रीजिनमणिसागरसूरिजी

शत्रुंजय-सम्मेलन में जैनाचार्य श्रीजिनानंदसागरसूरिजी उ० सुखसागरजी उ० कवीन्द्रसागरजी गणिवर्य श्री बुद्धिमुनिजी, गणिवर्य हेमेन्द्रसागरजी आदि साधुसमुदाय

# अकबर-प्रतिबोधक युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि

[ भंवरलाल नाहटा ]

मणिधारीजी के स्वर्गवास के पचीस वर्ष पश्चात् आर्यावर्त्त अपनी स्वाधीनता खोकर यवन-शासन की दुर्दान्त चक्की में बुरी तरह से पिसा जाने लगा। उसके सहस्राब्दियों से संचित धर्म, संस्कृति, साहित्य और कला को अपार क्षति पहुँची। यदि समय-समय पर महापुरुषों ने जन्म लेकर अपने लोकोत्तर प्रभाव से जनता का मनोबल व चारित्रबल ऊंचा न उठाया होता तो जिस रूप में समाज विद्यमान है, कभी नहीं रहता। महापुरुषों का योगबल संसार की कल्याण-सिद्धि करता है।

वसतिमार्ग प्रकाशक श्री जिनेश्वरसूरिजी के पश्चात् क्रमशः उनकी पट्ट-परम्परा में जो भी महापुरुष हुए, वे क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्यादि प्रजा को प्रतिबोध देकर धार्मिक समाज का निर्माण करते गए, जिससे जैन समाज का गौरव बढ़ा। न केवल त्यागी वर्ग में ही उच्च चारित्र का प्रतिष्ठापन हुआ बल्कि जैन श्रावकों में भी अनेकों श्रेष्ठी, मंत्री, सेनापति आदि प्रभावशाली, धर्मप्राण और परोपकारी व्यक्ति हुए जिन्होंने देश और समाज की सेवा में अपना सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया। राज्य-शासन में समय-समय पर जैनाचार्यों व जैन गृहस्थों—श्रावकों का भी बड़ा भारी वर्चस्व रहा है। अपनी उदारता और प्रभाव के कारण जैनेतर समाज से जैन समाज की क्षति कम हुई और तीर्थ व धर्मरक्षा में शासकों से बड़ा भारी सहयोग भी मिलता रहा। चौदहवीं शताब्दी में तीसरे दादा श्री जिनकुशलसूरिजी और शासन-प्रभावक श्री जिनप्रभसूरिजी का जैन शासन पर बड़ा उपकार हुआ। उसी परम्परा में चतुर्थ दादा साहब श्री जिनचन्द्रसूरिजी हुए जो युगप्रधान महापुरुष थे। उन्होंने हजारों मुमुक्षुओं को शुद्ध चारित्र मार्ग के पथिक बनाये। धर्म-क्रान्ति करके जैन धर्म में आयी हुई विकृतियों का परिष्कार किया। अकबर, जहांगीर एवं हिन्दू राजा-महाराजाओं को अपने चारित्रबल से प्रभावित—प्रतिबोधित कर जैन शासन की महान् प्रभावना की। उन्हीं का संक्षिप्त परिचय यहां देना अभीष्ट है।

वीरप्रसू मारवाड़ के खेतसर गाँव में रीहड़ गोत्रीय ओसवाल श्रेष्ठी श्रीवन्तशाह की धर्मपत्नी श्रिया देवी की कुक्षि से सं० १५९५ चैत्र कृष्ण १२ के दिन आपने जन्म लिया। माता-पिता ने आपका गुणनिष्पन्न नाम 'सुलतान-कुमार' रखा जो आगे चलकर जैन समाज के सुलतान सम्राट हुए। बाल्यकाल में ही अनेक कलाओं के पारगामी हो गए विशेषतः पूर्व जन्म संस्कारवश धर्म की ओर आपका झुकाव अत्यधिक था।

सं० १६०४ में खरतरगच्छ नायक श्रीजिनमाणिक्यसूरि जी महाराज के पधारने पर उनके उपदेशों का आप पर बड़ा असर हुआ और आपकी वैराग्य-भावना से माता-पिता को दीक्षा लेने की आज्ञा प्रदान करने को विवश होना पड़ा। ९ वर्ष की आयु वाले सुलतान कुमार ने बड़े ही उल्लासपूर्वक संयम-मार्ग स्वीकार किया। गुरु महाराज ने आपका नाम 'सुमतिधीर' रखा। प्रतिभा-सम्पन्न और विलक्षण बुद्धि-शाली होने से आपने अल्पकाल में ही ग्यारह अंग आदि समस्त शास्त्र पढ़ डाले तथा वाद-विवाद, व्याख्यान, कलादि में पारगामी होकर गुरु महाराज के साथ देश-विदेश में विचरण करने लगे।

उस समय जैन साधुओं में थोड़ा आचार-शैथिल्य था

प्रवेश हो चुका था जिसे परिहार कर क्रियोद्धार करने की भावना सभी गच्छनायकों में उत्पन्न हुई। श्रीजिनमाणिक्यसूरि जी महाराज ने भी दादासाहब श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज के स्वर्गवास से पवित्र तीर्थरूप देरावर की यात्रा करके गच्छ में फैले हुए शिथिलाचार को समूल नष्ट करने का संकल्प किया परन्तु भवितव्यता वश वे अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत न कर सके और वहां से जेसलमेर आते हुए मार्ग में पिपासा परिषह उत्पन्न हो जाने से अनशन स्वीकार कर लिया। सन्ध्या के पश्चात् किसी पथिकादि के पास पानी की योगवाई भी मिली पर सूरिमहाराज अपने चिरकाल के चौविहार व्रत को भंग करने के लिए राजी नहीं हुए। उनका स्वर्गवास होने पर जब २४ शिष्य जेसलमेर पधारे तो गुरुभक्त रावल मालदेव ने स्वयं आचार्य-पदोत्सव की तैयारियाँ कीं और तत्र विराजित खरतरगच्छ के बेगड़ शाखा के प्रभावक आचार्य श्रीगुणप्रभसूरिजी महाराज से बड़े समारोह के साथ मिती भाद्रपद शुक्ल ९ गुरुवार के दिन सतरह वर्ष की आयु वाले श्री सुमतिधीरजी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करवाया। गच्छ मर्यादानुसार आपका नाम श्री जिनचन्द्रसूरि प्रसिद्ध हुआ। उसी रात्रि में गुरु महाराज श्रीजिनमाणिक्यसूरिजी ने दर्शन देकर समवशरण पुस्तिका स्थित साम्नाय सूरि-मन्त्रविधि निर्देश पत्र की ओर संकेत किया।

चातुर्मास पूर्ण कर आपश्री बीकानेर पधारे। मंत्री संग्रामसिंह वच्छावत की प्रबल प्रार्थना थी, अत: संघ के उपाश्रय में जहाँ तीन सौ यतिगण विद्यमान थे, चातुर्मास न कर सूरिजीमंत्रीश्वर की अश्वशाला में ही रहे। उनका युवक हृदय वैराग्यरस से ओत-प्रोत था। उन्होंने महान चिन्तन-मनन के पश्चात् क्रान्ति का मूल-मंत्र क्रिया-उद्धार की भावना को कार्यान्वित करना निश्चित किया।

मंत्री संग्रामसिंह का इस कार्य में पूर्ण सहयोग रहा, सूरि महाराज ने यतिजनों को आज्ञा दी कि जिन्हें शुद्ध साधु-मार्ग से प्रयोजन हो, वे हमारे साथ रहें और जो लोग असमर्थ हों, वे वेश त्यागकर गृहस्थ बन जावें। क्योंकि साधुवेश में अनाचार असह्य है। सूरिजी के प्रबल पुरुषार्थ से ३०० यतियों में से सोलह व्यक्ति चन्द्रमा की सोलह कला रूप जिनचन्द्रसूरिजी के साथ हो गए। संयम पालन में असमर्थ अवशिष्ट लोगों को मस्तक पर पगड़ी धारण कराके 'मत्थेरण' गृहस्थ बनाया गया, जो महात्मा कहलाने लगे और अध्यापन, लेखन व चित्रकलादि का काम करके अपनी आजीविका चलाने लगे।

सूरिजी की क्रान्ति सफल हुई। यह क्रियोद्धार सं० १६१४ चैत्र कृष्ण ७ को हुआ। बीकानेर चातुर्मास के अनन्तर सं० १६१५ का चातुर्मास महेवानगर में किया और नाकोड़ा पार्श्वनाथ प्रभु के सान्निध्य में छम्मासी तपाराधन किया। तप जप के प्रभाव से आपकी योगशक्तियां विकसित होने लगीं। चातुर्मास के पश्चात् आप गुजरात की राजधानी पाटण पधारे। सं० १६१६ माघ सुदि ११ को बीकानेर से निकले हुए यात्री संघ ने, शत्रुञ्जय यात्रा से लौटते हुए पाटण में जंगमतीर्थ-सूरिमहाराज की चरण वन्दना की।

उन दिनों गुजरात में खरतरगच्छ का प्रभाव सर्वत्र विस्तृत था, पाटण तो खरतर विरुद प्राप्ति का और वसतिवास प्रकाश का आद्य-दुर्ग था। सूरि महाराज वहां चातुर्मास में विराजमान थे, उन्होंने पौषध विधिप्रकरण पर ३५५४ श्लोक परिमित विद्वत्तापूर्ण टीका रची, जिसे महोपाध्याय पुण्यसागर और वा० साधुकीर्ति गणि जैसे विद्वान गीतार्थों ने संशोधित की।

उस जमाने में तपागच्छ में धर्मसागर उपाध्याय एक कलहप्रिय और विद्वत्ताभिमानी व्यक्ति हुए, जिन्होंने जैन समाज में पारस्परिक द्वेष भाव वृद्धि करने वाले कतिपय ग्रन्थों की रचना करके शान्ति के समुद्र सदृश जैन समाज में द्वेष-वड़वाग्नि उत्पन्न की। उन्होंने सभी गच्छों के प्रति

विध्वमन किया और सुविहित शिरोमणि नवाङ्ग वृत्तिकर्त्ता अभयदेवसूरि खरतरगच्छ में नहीं हुए, खरतरगच्छ की उत्पत्ति बाद में हुई, यह गलत प्ररूपणा की; क्योंकि अभयदेवसूरि जी सर्वगच्छ मान्य महापुरुष थे और उन्हें खरतरगच्छ में हुए अमान्य करके ही वे अपनी चित्त-कालुष्यवृत्ति—खण्डनात्मक दुष्प्रवृत्ति की पूर्ति कर सकते थे।

जब उनकी यह दुष्प्रवृत्ति प्रकाश में आई तो श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने उनका प्रबल विरोध किया और धर्मसागर उपाध्याय को समस्त गच्छाचार्यों की उपस्थिति में कार्तिक सुदि ४ के दिन शास्त्रार्थ के लिये आह्वान किया। पर वे पचासरापाड़ा की पोशाल में छिप बैठे। दूसरी बार कार्तिक सुदि ७ को फिर धर्मसागर को बुलाया पर उनके न आने पर चौरासी गच्छ के गीतार्थों के समक्ष अभयदेवसूरि के खरतरगच्छ में होने के विविध प्रमाणों सहित 'मतपत्र' लिखा गया और उसमें समस्त गच्छाचार्यों की सही कराके उत्सूत्रभाषी धर्मसागर को निह्नव प्रमाणित कर जैन संघ से बहिष्कृत कर दिया गया।

इस प्रकार पाटण में पुनः शास्त्रार्थ विजय की सुविहित पताका फहरा कर सूरिजी खंभात पधारे। सं० १६१८ का चातुर्मास करके सं० १६१९ में राजनगर-अहमदाबाद पधारे। यहाँ मन्त्रीश्वर सारंगधर सत्यवादी के लाये हुए विद्वत्ताभिमानी भट्ट की समस्यापूर्ति कर उसे परास्त किया। सं० १६२० का चातुर्मास बीसलनगर और सं० १६२१ का चातुर्मास बीकानेर में किया। सं० १६२२ वै० सु० ३ को प्रतिष्ठा कराके चातुर्मास जेसलमेर किया। बीकानेर के मंत्री संग्रामसिंह ने नागोर के हसनकुलीखान पर सन्धि-विग्रह में जय प्राप्त कर सूरि महाराज का प्रवेशोत्सव कराया। सं० १६२२-२३ के चातुर्मास जेसलमेर में बिताकर खेतासर के चोपड़ा श्रीवंत-श्रीयादे के पुत्र मानसिंह को मार्गशीर्ष कृ० ५ को दीक्षित किया। इनका नाम 'महिमराज' रखा, जो आगे चलकर सूरि महाराज के पट्टधर श्रीजिनसिंहसूरि नाम से प्रसिद्ध हुए।

सं० १६२४ का चौमासा नाडोलाई किया, मुगल सेना के भय से सभी नागरिक इतस्ततः नगर छोड़कर भागने लगे। सूरि महाराज उपाश्रय में निश्चल ध्यान में बैठे रहे, जिसके प्रभाव से मुगल सेना मार्ग भूलकर अन्यत्र चली गई। लोगों ने लौटकर सूरिजी के प्रत्यक्ष चमत्कार को देखकर भक्ति भाव से उनकी स्तवना की।

सं० १६२५ बापेऊ, १६२६ बीकानेर, सं० १६२७ का चातुर्मास महिम करके आगरा पधारे और सोरीपुर, चन्द्रवाड़, हस्तिनापुरादि तीर्थों की यात्रा की। सं० १६२८ का चातुर्मास आगरा कर १६२९ का रोहतक किया।

सं० १६३० के बीकानेर चातुर्मास में प्रतिष्ठा व व्रतोच्चारण आदि धर्मकृत्य हुए। सं० १६३१-३२ का चातुर्मास भी बीकानेर हुआ। सं० १६३३ में फलौधी पार्श्वनाथ तीर्थ के तालों को हाथ स्पर्श से खोल कर तीर्थ दर्शन किया। फिर जेसलमेर चातुर्मास कर रेखी श्राविकादि को व्रतोच्चारण करवाये। तदनन्तर देरावर पधारे और कुशल गुरु के स्वर्गस्थान की यात्रा कर वहीं चातुर्मास किया। १६३५ जेसलमेर, सं० १६३६ बीकानेर, सं० १६३७ सेहणा, सं० १६३८ बीकानेर सं० १६३९ जेसलमेर, सं० १६४० आसनीकोट में चातुर्मास करके जेसलमेर पधारे। माघ सुदी ५ को अपने शिष्य महिमराज जी को वाचक पद से अलंकृत किया। सं०१६४१ का चातुर्मास करके पाटण पधारे। सं० १६४२ का चातुर्मास कर शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की। सं० १६४३ का चौमासा अहमदाबाद कर के धर्मसागर के उत्सूत्रात्मक ग्रन्थों का उच्छेद किया। सं० १६४४ में खंभात चातुर्मास कर अहमदाबाद पधारे संघपति सोमजी साह के संघ सहित शत्रुञ्जयादि तीर्थों की यात्रा की। सं० १६४५ सूरत, सं० १६४६ अहमदाबाद पधारे और विजयादशमी के दिन हाजापटेल की पोल स्थित शिवा सोमजी के शांतिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा बड़ी धूम-धाम से की। मन्दिर में ३१ पंक्तियों का शिलालेख लगा हुआ है एवं एक देहरी में सकवाल गोत्रीय श्रावकों

का लेख है। १६४७ में पाटण चौमासा किया श्राविका कोडां को व्रतोच्चारण करवाया। फिर अहमदाबाद होते हुए खंभात पधारे।

आपके त्याग-तपोमय जीवन और विद्वत्ता की सौरभ अकबर के दरबार तक जा पहुँची। अकबर ने मंत्री कर्मचन्द्र को आदेश देकर एवं सूरि महाराज को शीघ्र लाहौर पधारने के लिये फरमान भिजवाये। सूरिजी खंभात से अहमदाबाद पधारे। आषाढ़ सुदि १३ को लाहौर के लिए प्रस्थान कर महेशाणा, सिद्धपुर, पालनपुर होते हुए सीरोही के सुरतान देवड़ा की वीनति से सीरोही पधारे। पर्यूषण के ८ दिन सीरोही में बिताये। राव सुरतान ने पूर्णिमा के दिन जीवहिंसा निषिद्ध घोषित की। वहां से जालोर पधारे। बादशाह का फरमान आया कि आप चौमासे बाद शीघ्र पधारें पर शिष्यों को पहले ही लाहौर भेज दें। सूरजी ने महिमराज वाचक को ठा० ७ से लाहौर भेजा। सूरिजी चौमासा उतरने पर देघर, सराणा, भमराणी खांडप, द्रुणाडा, रोहीठ पधारे। इन सब नगरों में बड़े २ नगरों का संघ वंदनार्थ आया था। गुरुदेव पाली, सोजत, बीलाड़ा, जयतारण होते हुए मेड़ता पधारे। मंत्रीश्वर कर्मचन्द्र के पुत्र भाग्यचन्द, लक्ष्मीचन्द्रने प्रवेशोत्सवादि किये। नागौर, बापेऊ, पड़िहारा, राजलदसेर, मालासर, रिणी, सरसा, कसूर होते हुए हापाणा पधारे। मंत्रीश्वर ने सूरिजी के लाहौर प्रवेश की बड़ी तैयारियाँ कीं। सं० १६४८ फा० शु० १२ के दिन ३१ साधुओं के परिवार सहित लाहौर जाकर बादशाह को धर्मोपदेश दिया। सम्राट, गुरु महाराज के प्रवचन से बड़ा प्रभावित हुआ और प्रतिदिन ड्योढी-महल में बुलाकर उपदेश श्रवण प्रारंभ किया। एकबार सम्राट ने गुरु महाराज के समक्ष एकसौ स्वर्ण मुद्राएं भेंट रखी जिसे अस्वीकार करने पर उनकी निष्पृहता से वह बड़ा प्रभावित हुआ।

एकबार शाहजादा सलीम के मूल नक्षत्र में पुत्री उत्पन्न हुई तो ज्योतिषी लोगों ने उस पुत्री का जन्मयोग पिता के लिए अनिष्टकारी बतला कर नदी में प्रवाहित करने का फलादेश दिया। बादशाह ने इस हिंसामय कार्य को अनुचित जानकर जैनविधि से ग्रहशांति अनुष्ठान करने का मंत्री कर्मचन्द्र को आदेश दिया।

मंत्रीश्वर ने चैत्र सुदि १५ के दिन सोने चांदी के घड़ों से एक लाख के सद्व्यय से वाचक महिमराजजी के द्वारा सुपार्श्वनाथजी मन्दिर में शांति-स्नात्र करवाया। मंगलदीप और आरती के समय सम्राट और शाहजादा सलीम ने उपस्थित होकर दस हजार रुपये प्रभुभक्ति में भेंट किये। प्रभु का स्नात्रजल को अपने नेत्रों में लगाया तथा अन्तःपुर में भी भेजा। सम्राट अकबर सूरिमहाराज को "बड़े गुरु" नाम से पुकारता था, इससे उनकी इसी नाम से सर्वत्र प्रसिद्धि हो गई।

एकबार नौरंगखान द्वारा द्वारिका के जैन मन्दिरों के विनाश की वार्त्ता सुनी तो सूरिजी ने सम्राट को तीर्थ-माहात्म्य बतलाते हुए उनकी रक्षा का उपदेश दिया। सम्राट ने तत्काल फरमान पत्र लिखवाकर अपनी मुद्रा लगाके मंत्रीश्वर को समर्पित कर दिया, जिसमें लिखा था कि आज से समस्त जैन तीर्थ मन्त्री कर्मचन्द्र के अधीन हैं। गुजरात के सूबेदार आजमखान को तीर्थरक्षा के लिए सख्त हुक्म भेजा, जिससे शत्रुंजय तीर्थ पर म्लेच्छोपद्रव का निवारण हुआ।

एकबार काश्मीर विजय के निमित्त जाते हुए सम्राट ने सूरि महाराज को बुलाकर आशीर्वाद प्राप्त किया और आषाढ़ शुक्ला ६ से पूर्णिमा तक बारह सूबों में जीवों को अभयदान देने के लिए १२ फरमान लिख भेजे। इसके अनुकरण में अन्य सभी राजाओं ने भी अपने-अपने राज्यों में १० दिन, १५ दिन, २० दिन, महीना, दो महीना तक जीवों के अभयदान की उद्घोषणा कराई।

सम्राट ने अपने कश्मीर प्रवास में धर्मगोष्ठी व जीव-दया प्रचार के लिए वाचक महिमराज को भेजने की प्रार्थना की। मंत्रीश्वर और श्रावक वर्ग साथ में थे ही अतः सूरिजी ने

लोभ जानकर मुनि हर्षविशाल और पंचानन महात्मा आदि के साथ वाचकजी को भी भेजा। मिती श्रावण शुक्ल १३ को प्रथम प्रयाण राजा रामदास की वाड़ी में हुआ। उस समय सम्राट, सलीम तथा राजा, महाराजा और विद्वानों की एक विशाल सभा एकत्र हुई जिसमें सूरिजी को भी अपनी शिष्य-मण्डली सहित निमन्त्रित किया। इस सभा में समयसुन्दरजी ने 'राजानो ददते सौख्यं' वाक्य के १०२२४०७ अर्थ वाला अष्टलक्षी ग्रन्थ पढ़कर सुनाया। सम्राट ने उसे अपने हाथ में लेकर रचयिता को समर्पित करके प्रमाणीभूत घोषित किया।

कश्मीर जाते हुए रोहतासपुर में मंत्रीश्वर को शाही अन्तःपुर की रक्षा के लिए रुकना पड़ा। वाचकजी सम्राट के साथ में थे। उनके उपदेश से मार्गवर्ती तालाबों के जलचर जीवों का मारना निषिद्ध हुआ। कश्मीर के कठिन व पथरीले मार्ग में शीतादि परिषह सहते हुए पैदल चलने वाले वाचकजी की साधुचर्या का सम्राट के हृदय में गहरा प्रभाव पड़ा। विजय प्राप्त कर श्रीनगर आने पर वाचक जी के उपदेश से सम्राट ने, आठ दिन तक अमारि उद्-घोषणा करवाई।

सं० १६४९ के माघ में लाहोर लौटने पर सूरिजी ने साधुमंडली सहित जाकर सम्राट को आशीर्वाद दिया। सम्राट ने वाचक जी को कश्मीर प्रवास में निकट से देखा था अतः उनके गुणों की प्रशंसा करते हुए इन्हें आचार्य पद से विभूषित करने के लिए सूरिजी से निवेदन किया।

सूरिजी की सम्मति पाकर सम्राट ने मंत्री कर्मचन्द्र से कहा—वाचकजी सिंह के सदृश चारित्र-धर्म में दृढ़ हैं अतः उनका नाम 'सिंहसूरि' रखा जाय और बड़े गुरु महाराज के लिए ऐसा कौन सा सर्वोच्च पद है जो तुम्हारे धर्मानुसार उन्हें दिया जाय। कर्मचन्द्र ने जिनदत्तसूरि जी का जीवनवृत्त बताया और उनके देवता प्रदत्त युगप्रधान पद से प्रभावित होकर अकबर ने सूरिजी को 'युगप्रधान' घोषित करते हुए जैन धर्म की विधि के अनुसार उत्सव करने की आज्ञा दी। कर्मचन्द्र ने राजा रायसिंहजी की अनुमति पाकर संघ को एकत्र किया और संघ-आज्ञा प्राप्त कर फाल्गुण कृष्ण १० से अष्टाह्निका महोत्सव प्रारम्भ किया और फाल्गुन शुक्ल २ के दिन मध्याह्न में श्री जिनसिंहसूरि का आचार्य पद, वा० जयसोम और रत्ननिधान को उपाध्याय पद एवं पं० गुणविनय व समयसुन्दर को वाचनाचार्य पद से अलंकृत किया गया। यह उत्सव संखवाल साधुदेव के बनाये हुए खरतर गच्छोपाश्रय में हुआ। मन्त्रीश्वर ने दिल खोलकर अपार धन राशि व्यय की। सम्राट ने लाहोर में तो अमारि उद्घोषणा की ही पर सूरिजी के उपदेश से खंभात के समुद्र के असंख्य जलचर जीवों को भी वर्षावधि अभयदान देने का फरमान जारी किया। "युगप्रधान" गुरु के नाम पर मंत्रीश्वर ने सवा करोड़ का दान किया। सम्राट के सन्मुख भी दस हजार रुपये, १० हाथी, १२ घोड़े और २७ सुखासन भेंट रखे जिसमें से सम्राट ने मंगल के निमित्त केवल १ रुपया स्वीकार किया। सूरिमहाराज ने बोहित्थ संतति को पाक्षिक, चातुर्मासिक, व सांवत्सरिक पर्वों में जयतिहुअण बोलने का व श्रीमालों को प्रतिक्रमण में स्तुति बोलने का आदेश दिया। राजा रायसिंहजी ने कितने ही आगमादि ग्रन्थ सूरिमहाराज को समर्पण किये जिन्हें बीकानेर ज्ञान-भण्डार में रखा गया।

सूरिजी लाहोर में धर्म-प्रभावना कर हापाणा पधारे और सं० १६५० का चातुर्मास किया। एक दिन रात्रि के समय चोर उपाश्रय में आये पर साधुओं के पास क्या रखा था? बीकानेर ज्ञानभण्डार के लिए प्राप्त ग्रन्थादि चुरा कर चोर जाने लगे तो सूरिजी के तपोबल से वे अन्धे हो गये और पुस्तकें वापस आ गईं। सम्राट के पास लाहोर में जयसोमोपाध्यायादि चातुर्मास स्थित थे ही, सूरि महाराज ने लाहोर आकर सं० १६५१ का चातुर्मास किया जिससे अकबर को निरन्तर धर्मोपदेश मिलता रहा। अनेक

शिलालेखादि से प्रमाणित है कि सूरि महाराज के उपदेश से सम्राट ने सब मिलाकर वर्ष में छः महीने अपने राज्य में जीवहिंसा निषिद्ध की तथा सर्वत्र गोवध बंद कर गोरक्षा की और शत्रुञ्जय तीर्थ को करमुक्त किया।

जहांगीर की आत्मजीवनी, डा० विन्सेण्ट ए० स्मिथ, पुर्तगाली पादरी पिनहेरो व प्रो० ईश्वरीप्रसाद आदि के उल्लेखों से स्पष्ट है कि सूरिजी आदि के सम्पर्क में आकर अकबर बड़ा दयालु हो गया था। सम्राट के दरबारी व्यक्ति अबुलफजल, आजमखान, खानखाना इत्यादि पर भी सूरिजी का बड़ा प्रभाव था। धर्मसागर उपाध्याय के ग्रन्थ, जो कई बार अप्रमाणित ठहराये जा चुके थे, फिर प्रवचन-परीक्षा ग्रन्थ का विवाद छिड़ा जिसे अबुलफजल की सही से निकाले हुए शाही फरमान से निराकृत किया जाना प्रमाणित है।

सम्राट ने सूरिजी से पंचनदी के पांच पीरों—देवों को वश में करने का आग्रह किया क्योंकि जिनदत्तसूरि के कथा प्रसंग से वह प्रभावित था। सूरिजी सं० १६५२ का चातुर्मास हापाणा करके मुलतान पधारे और चन्द्रवेलि पत्तन जाकर पंचनदी के संगम स्थान में आयंबिल व अष्टमतप पूर्वक पहुँचे।

सूरिजी के ध्यान में निश्चल होते ही नौका भी निश्चल हो गई। उनके सूरि-मंत्रजाप और सद्गुणों से आकृष्ट होकर पांचनदी के पांच पीर, मणिभद्र यक्ष, खोड़िया क्षेत्रपालादि सेवा में उपस्थित हो गये और उन्हें धर्मोन्नति-शासन प्रभावना में साहाय्य करने का वचन दिया।

सूरिजी प्रातःकाल चन्द्रवेलि पत्तन पधारे। बोरवाड़ साह नानिग के पुत्र राजपाल ने उत्सव किया। वहां से उच्चनगर होते हुए देरावर पधारे और दादा साहब श्री जिनकुशलसूरिजी के स्वर्ग-स्थान की चरण-वंदना की। तदनंतर श्री जिनमाणिक्यसूरिजी के निर्वाण-स्तूप और नवहर पुर पार्श्वनाथ की यात्रा कर जेसलमेर में सं० १६५३ का चातुर्मास किया, फिर अहमदाबाद आकर माघसुदि १० को धनासुतार की पोल में, शामला की पोल में और टेमला की पोल में बड़े समारोह से प्रतिष्ठा करवायी। सं० १६५४ में शत्रुंजय पधार कर मिती जेठ सु० ११ को मोटी-टूंक-विमल-वसही के सभा मण्डप में दादा श्री जिनदत्तसूरिजी एवं श्री जिनकुशलसूरि जी की चरणपादुकाएं प्रतिष्ठित कीं। वहां से आकर, अहमदाबाद में चातुर्मास किया। सं० १६५५ का चौमासा खंभात किया। सम्राट अकबर ने बुरहानपुर में सूरिजी को स्मरण किया। फिर ईडर इत्यादि विचरते हुए अहमदाबाद आये। यहां मन्त्री कर्मचन्द का देहान्त हुआ। संवत् १६५७ पाटण चातुर्मास कर सीरोही पधारे, वहां माघ सुदि १० को प्रतिष्ठा की। सं० १६५८ खंभात, १६५९ अहमदाबाद, सं० १६६० पाटण, सं० १६६१ में महेवा चातुर्मास किया। मिती मि० कृ ५ को कांकरिया कम्मा के द्वारा प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है। सं० १६६२ में बीकानेर पधारे। चैत्र कृष्ण ७ के दिन नाहटों की गवाड़ स्थित शत्रुञ्जया-वतार आदिनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा करवायी। सं० १६६३ का चातुर्मास बीकानेर में हुआ। सं० १६६४ वैशाख सुदि ७ को फिर बीकानेर में प्रतिष्ठा हुई। संभवतः यह प्रतिष्ठा महावीर स्वामी के मन्दिर की हुई थी।

सं १६६४ का चातुर्मास लवेरा में हुआ। जोधपुर से राजा सूरसिंह वन्दनार्थ आये। अपने राज्य में सर्वत्र सूरिजी का वाजित्रों से प्रवेश हो, इसके लिए परवाना जाहिर किया। सं० १६६५ में मेड़ता चातुर्मास बिताकर अहमदा-बाद पधारे। सं १६६६ का चातुर्मास खंभात किया। सं १६६७ का चातुर्मास अहमदाबाद में करके सं १६६८ का चातुर्मास पाटण में किया।

इस समय एक ऐसी घटना हुई जिससे सूरिजी को वृद्धा-वस्था में भी सत्वर विहार करके आगरा आना पड़ा। बात यह थी कि जहांगीर का शासन था, उसने किसी यति के अनाचार से क्षुब्ध होकर सभी यति-साधुओं को आदेश दिया

कि ये गृहस्थ बन जांय अन्यथा उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाय। इस आज्ञा से सर्वत्र खलबली मच गई। कोई देश देशान्तर गये और कई भूमिगृहों में छिप गए। इस समय जैन शासन में आपके सिवा कोई ऐसा प्रभावशाली नहीं था जो सम्राट के पास जाकर उसकी आज्ञा रद्द करवाये। आगरा संघ ने आपको पधार कर यह संकट दूर करने की प्रार्थना की। सूरिजी पाटण से आगरा आकर बादशाह से मिले और उसका हुक्म रद्द करवाके साधुओं का विहार खुला करवाया। सं० १६६९ का चौमासा आगरा किया। इस चौमासे में बादशाह से सूरिजी का अच्छा संपर्क रहा और शाही दरबार में भट्ट को शास्त्रार्थ में परास्तकर "सवाई युगप्रधान भट्टारक" नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की।

चातुर्मास के पश्चात् सूरिजी मेड़ता पधारे। बीलाड़ा के संघ की विनती से आपने बिलाड़ा चातुर्मास किया। आपके साथ सुमतिकल्लोल, पुण्यप्रधान, मुनिवल्लभ, अमीपाल आदि साधु थे। पर्यूषण के बाद ज्ञानोपयोग से अपना आयु शेष जान कर शिष्यों को हित-शिक्षा देकर अनशन कर लिया। चार प्रहर अनशन पाल कर आश्विन बदि २ के दिन स्वर्गधाम पधारे। आपकी अंत्येष्टि बाणगंगा के तट पर बड़े धूम धाम से की गई। अग्नि प्रज्वलित हुई और देखते-देखते आपकी पावन शुभ्र देह राख हो गई पर आपकी मुखवस्त्रिका नहीं जली। इस प्रकट चमत्कार को देख कर लोग चकित हो गए। सूरिजी के अग्निसंस्कार स्थान में स्तूप बना कर चरण प्रतिष्ठा की गई। आपके पट्ट पर आचार्य श्रीजिनसिंहसूरि बैठे।

महान् प्रभावक होने से आप जैन समाज में चौथे दादाजी नाम से प्रसिद्ध हुए। आपके चरणपादुका, मूर्तियाँ जेसलमेर बीकानेर, मुलतान, खंभात, शत्रुंजय आदि अनेक स्थानों में प्रतिष्ठित हुई। सूरत, पाटण, अहमदाबाद भरौच, माडवला आदि गुजरात में अनेक जगह आपकी स्वर्ग-तिथि 'दादा दूज' कहलाती है और दादावाड़ियों में मेला भरता है।

सूरिजी के विशाल साधु-साध्वी समुदाय था। उन्होंने ४४ नंदि में दीक्षा दी थी, जिससे २००० साधुओं के समुदाय का अनुमान किया जा सकता है। इनके स्वयं के शिष्य ९५ थे। प्रशिष्य समयसुंदरजी जैसों के ४४ शिष्य थे। और इनके आज्ञानुवर्ती साधु सारे भारत में विचरते थे। आपने स्वयं राजस्थान में २१, गुजरात में २०, पंजाब में ५ और दिल्ली आगरा के प्रदेश में ५ चातुर्मास किये थे।

उस समय खरतर गच्छ की और भी कई शाखाएं थीं जिनके आचार्य व साधु समुदाय सर्वत्र विचरता था। साध्वियों की संख्या साधुओं से अधिक होती है अतः समूचे खरतरगच्छ के साधुओं की संख्या उस समय पांच हजार से कम नहीं होगी।

आप स्वयं विद्वान थे और आपके साधु समुदाय ने जो महान् साहित्य सेवा की है इसका कुछ विवरण हमने "युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि" ग्रन्थ में स्वतंत्र प्रकरण में दिया है तथा आपके शिष्य-प्रशिष्य व आज्ञानुवर्ती साधुओं का भी यथाज्ञात विवरण दिया गया है। आपका भक्त श्रावक समुदाय भी बहुत ही उल्लेखयोग्य रहा है जिन्होंने मंदिर-मूर्ति निर्माण, संघयात्रा, ग्रन्थलेखन और शासन-प्रभावना में अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का दिल खोल के उपयोग किया।

आपके भक्त श्रावकों में मंत्रीश्वर कर्मचन्द्र उस समय के बहुत बड़े राजनीतिज्ञ, महान् दानी, धर्म-प्रिय एवं गुरु-भक्त थे, जिन्होंने जिनसिंहसूरि के पदोत्सव में सवा करोड़ का दान देकर एक अद्वितीय उदाहरण उपस्थित किया। इनके सम्बन्ध में जयसोम ने 'कर्मचन्द्र मंत्रिवंश प्रबन्ध' एवं उनके शिष्य गुणविनय ने उसपर वृत्ति तथा भाषा में रास की रचना कर अच्छा प्रकाश डाला है।

इसी प्रकार पोरवाड़ ज्ञातीय अहमदाबाद के संघपति सोमजी भी बड़े धर्म निष्ठ थे। उन्होंने अहमदाबाद के कई पोलों में जैनमंदिरों के निर्माण के साथ साथ शत्रुंजय का बड़ा संघ निकाला एवं हो खरतर-वसही में विशाल चौमुख जिनालय का निर्माण कराया, जिसकी प्रतिष्ठा उनके पुत्र रूपजी

में श्रीजिनराजसूरिजी के करकमलों से बड़े धूमधाम से करवायी। सं० सोमजी की स्वधर्मी-भक्ति भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके व इनके रूपजी के सम्बन्ध में श्रीवल्लभ उपाध्याय ने एक प्रशस्ति काव्य की संस्कृत में रचना की है। खेद है कि वह पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं हो सका, प्राप्त अंश राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित हुआ है। कविवर समयसुन्दर ने भी भावपूर्ण सं० सोमजी वेलि की रचना की है।

सूरिजी के अन्य भक्त श्रावकों ने भी जिनशासन के उत्कर्ष में बड़ा योगदान दिया। बीकानेर के लिगा गोत्रीय सतीदास ने शत्रुंजय पर विमलवसही में "खरतर-जय-प्रासाद"-जिनालय निर्माण कराया एवं भत्ता तलहटी के सामने सतीवाव भी उन्हीं की बनवायी हुई है।

गिरनारजी पर दादा साहब की देहरी बनाकर गुरुदेवों के चरण विराजमान करनेवाले बोथरा परिवार व अन्य अनेक श्रावकों में लोद्रवा तीर्थोद्धारक थाहरूसाह, महेवा में जिनालय निर्माता कांकरिया कमा, जूठा कटारिया, मेडता के चोपड़ा आसकरण तथा बीकानेर, अहमदाबाद आदि के अनेक धर्मप्रेमी श्रावकों का उल्लेख यहां सीमित स्थान में संभव नहीं।

---

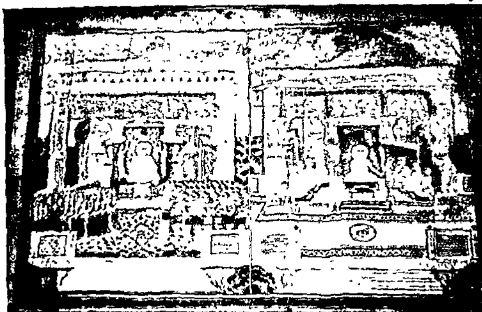
यु० जिनचन्द्रसूरिजी को सम्राट अकबर जो अष्टाह्निका के अमारि का फरमान दिया था उसकी प्रतिकृति सामने दी जा रही है। इस फरमान का सारांश यह है कि —"शुभचिन्तक तपस्वी जिनचन्द्रसूरि खरतर हमारे पास रहते थे। जब उनकी भगवद्भक्ति प्रकट हुई तो हमने उनको बड़ी बादशाही की महरबानियों में मिला लिया और अपनी आम दया से हुक्म फरमा दिया कि आषाढ़ शुक्ल ६ से १५ तक कोई जीव न मारा जाय और न कोई आदमी किसी जानवर को सतावे। असल बात तो यह है—जब परमेश्वर ने आदमी के वास्ते भांति-भांति के पदार्थ उपजाये हैं तब वह कभी किसी जानवर को दुख न दे और अपने पेट को पशुओं का मरघट न बनावे।"

"बड़े-बड़े हाकिम जागीरदार और मुसद्दी जान लें कि हमारी यही मानसिक इच्छा है कि सारे मनुष्यों और जीव-जन्तुओं को सुख मिले जिससे सब लोग अमन चैन से रह कर परमात्मा की आराधना में लगे रहें।"

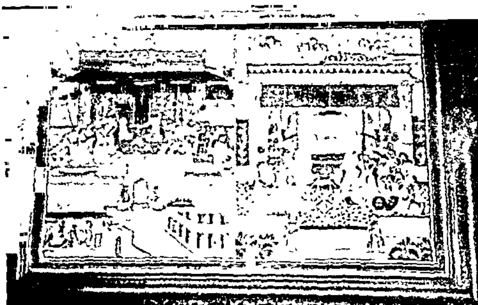
## युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि



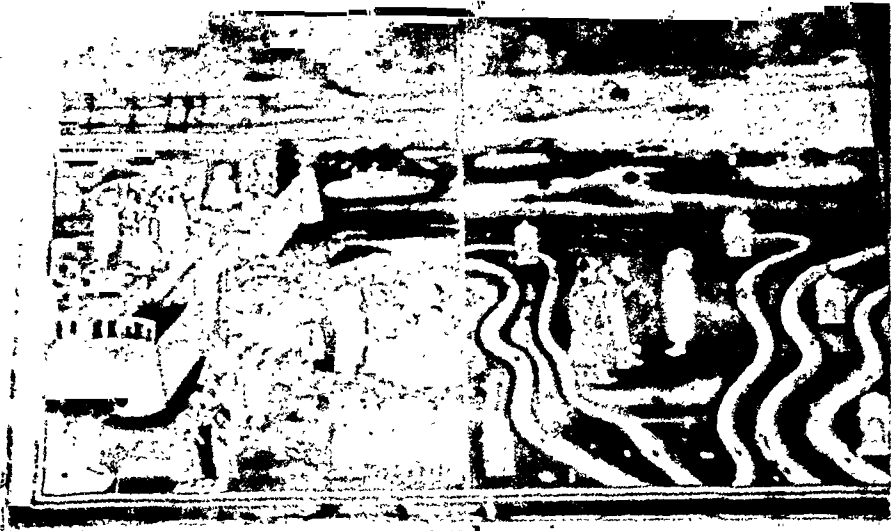
अष्टाह्निकामादि शाही फरमान नं० १



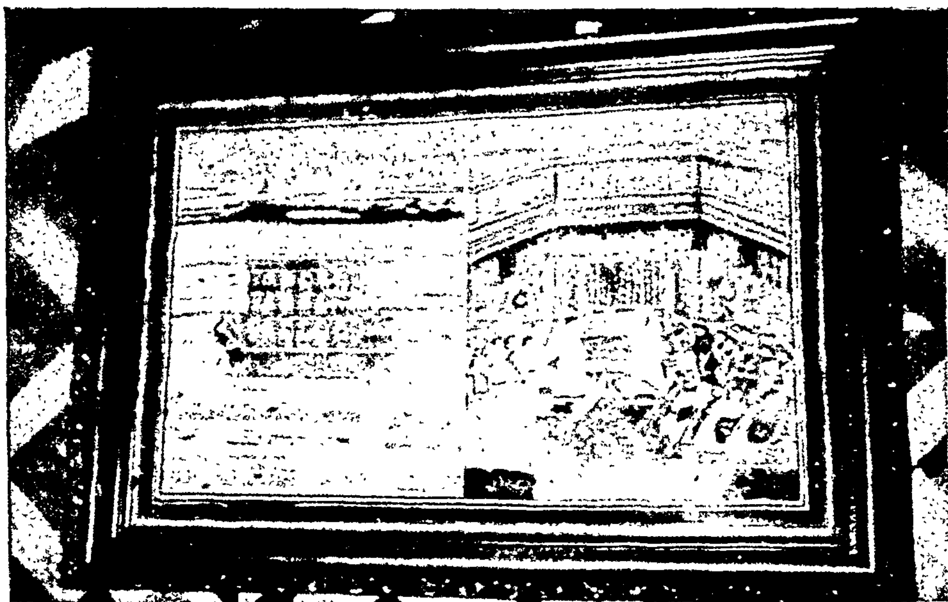
दादा श्रीजिनदत्तसूरि १ बावन वीर चौसठ योगिनी प्रतिबोध
२ अजमेर में प्रतिक्रमण के समय कड़कती बिजली
को पात्र के नीचे दबाना



दादा श्रीजिनचन्द्रसूरि १ काजी की टोपी उतारी अकबर के दरबार में
२ अम्मावस का चन्द्रोदय अकबर दरबार



श्रीजिनदत्तसूरि १ उज्जैन में स्तंभ में से मंत्र पुस्तिका निकालना
२ सिन्धु मुलतान में पंच नदी साधन



श्रीजिनकुशलसूरि १ समुद्र में जगत सेठ के डूबते जहाज को तिराया
२ बादशाह के समक्ष भैंसे के मुख से बात कराई

जीयागंज के विमलनाथ जिनालय की दादावाड़ी में जयपुर के सुप्रसिद्ध
गणेश मुसव्वर के चित्र देखें पृष्ठ ५२

# दादा गुरुओं के प्राचीन चित्र

[ भँवरलाल नाहटा ]

आर्य संस्कृति में गुरु का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परमात्मा का परिचय कराने वाले तथा आत्मदर्शन कराने वाले गुरु ही होते हैं। यों तो गुरु कई प्रकार के होते हैं पर जैनदर्शन में उन्हीं सद्गुरु को सर्वोच्च स्थान दिया गया है जो आत्मद्रष्टा हैं। जिसने मार्ग देखा है वही मार्ग दिखा सकता है क्योंकि दीपक से दीपक प्रकट होता है। हजारों बुझे हुए दीपक कोई कामके नहीं, जागती ज्योति एक ही विश्व को आलोकित कर सकती है। भगवान महावीर के पश्चात् अनेक सद्गुरुओं ने जैन-शासन का उद्योत किया है व धर्म को बचाकर अक्षुण्ण रखा है। पंचमकाल में ऐसे २००४ युगप्रधान आत्म द्रष्टा पुरुष होंगे ऐसा शास्त्रों में वर्णन है। खरतरगच्छ में कई युगप्रधान सद्गुरु हुए हैं जिनमें चारों दादा-गुरुओं का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है, उनकी हजारों दादावाड़ियां और मूर्ति, चरण-पादुके आदि आज भी पूज्यमान हैं।

आत्मदर्शन प्राप्ति के लिए सद्गुरु की पूजा-भक्ति अनिवार्य है। अतः भक्त लोग आत्मकल्याण के उद्देश्य से गुरु-भक्ति में संलग्न रहने से निष्काम सेवाफल अवश्य प्राप्त करते हैं। जैसे धान्य के लिए खेती करने वाले को घास तो अनायास ही उपलब्ध हो जाती है, उसी प्रकार पुण्य-प्राग्भार से इहलौकिक कामनाएँ भी पूर्ण हो ही जाती हैं। पूजन-आराधना के लिए जिस प्रकार प्रतिमा-पादुकादि आवश्यक हैं उसी प्रकार चित्र-प्रतिकृति भी दर्शन के लिए व घरोंमें पूजादि के लिए आवश्यक है। तीर्थंकर चित्रावली के साथ गुरु-मूर्ति पादुकाओं को रखने की प्रथा प्राचीन काल से चली आती है। आज भी मन्दिरों में, लोगों के घरों में दादासाहब के चित्र हजारों की संख्या में हाथ के बने हुए पाये जाते हैं और इस यंत्र युग में तो एक-एक प्रकार के हजारों हो जांय, यह स्वाभाविक है। इस लेख में हमें दादा साहब के जीवनवृत्त से सम्बन्धित चित्रों का संक्षिप्त परिचय कराना अभीष्ट है जिससे हमारे इस कलात्मक और ऐतिहासिक अवदान पर पाठकों का विहंगावलोकन हो जाय।

जो तत्त्व व्याख्यान द्वारा या लेखन द्वारा सौ पृष्ठों में नहीं समझाया जा सकता उसे एक ही चित्रफलक को देख कर या दिखाकर आत्मसात् किया व कराया जा सकता है। चित्र-विधाओं में भित्तिचित्रों का स्थान सर्वप्रथम है। प्रागैतिहासिक कालीन गुफाओं के आड़े टेढ़े अंकन से लेकर अजन्ता, इलोरा, सित्तनवासल आदि विकसित कलाधामों और राजमहलों, सेठों-रईसों के घरों व मन्दिर—दादावाड़ियों के भित्ति-चित्र भी अपनी कला-सम्पत्ति को चिरकाल से संजोये हुए चले आरहे हैं। दादासाहब के जीवनवृत्त संबन्धी चित्र अधिकांश मन्दिरों तथा दादा-वाड़ियों में ही पाये जाते हैं। जीर्णोद्धार आदि के समय प्राचीन चित्रों का तिरोभाव होना अनिवार्य है। पर इस परम्परा का विकास होता गया और आज भी मन्दिरों, दादावाड़ियों में जीवनवृत्त के विभिन्न भावों वाले चित्रों का निर्माण होना चालू है। बीकानेर, रायपुर, कलकत्ता, उदरामसर, महेश्वर आदि अनेक स्थानों के भित्तिचित्र सुन्दर व दर्शनीय हैं।

दादासाहब के चित्रों में दूसरी विधा काष्ठफलकों की है जिनका प्रारम्भ श्री जिनवल्लभसूरिजी, श्री जिनदत्त-

सूरिजी के शिष्यों से होता है। इसके बाद कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य-कुमारपाल एवं वादिदेवसूरि-कुमुदचन्द्र के शास्त्रार्थ के भाव वाले काष्ठफलक पाये जाते हैं। दादा-साहब के चित्रित-काष्ठफलकों का परिचय श्री जैन श्वेता-म्बर पंचायती मन्दिर, कलकत्ता के सार्द्धशताब्दी स्मृति-ग्रन्थ में मैंने प्रकाशित किया है पर एक महत्वपूर्ण काष्ठफलक जिसपर श्रीजिनदत्तसूरिजी और त्रिभुवनगिरि के यादव राजा कुमारपाल का चित्र है और जो जैसलमेर के बड़े भण्डार में था पर अब श्री थाहरूशाह के भण्डार में वर्त्तमान है, अब तक प्राप्त कर प्रकाशित न कर सकने का हमें खेद है।

पुरातत्वाचार्य जिनविजयजी ने 'भारतीय-विद्या' के सिंघीजी के संस्मरणांक में एवं हमारे युगप्रधान जिनदत्तसूरि ग्रन्थ में प्रकाशित चित्र भी उस समय के आचार्य व श्रमण-श्रमणी वर्ग के नामोल्लेख युक्त होने से महत्त्वपूर्ण हैं। हमारे अभय जैन ग्रन्थालय - शंकरदान नाहटा कलाभवन का चित्र इन सब चित्रों में प्राचीन है जो दादासाहब के आचार्य पद प्राप्ति ११६६ से पूर्व अर्थात् सं० ११५० के आस-पास का है। पुरातन चित्रकला की दृष्टि से ये उपादान अत्यन्त मूल्यवान हैं।

काष्ठफलकों के पश्चात् ग्रन्थों में चित्रित पूर्वाचार्यों के चित्रों में हेमचन्द्राचार्य-कुमारपाल के चित्रों के पश्चात् खंभात भण्डार स्थित श्रीजिनेश्वरसूरि (द्वितीय) का चित्र अत्यन्त महत्व का है जो हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में मुद्रित है। तत्पश्चात् कल्पसूत्र, शालिभद्र चौपाई आदि ग्रन्थों में श्री जिनराजसूरि, श्री जिनरंगसूरि आदि के चित्र उपलब्ध हैं। सिंघीजी के संग्रह के शाही चित्रकार शालिवाहन चित्रित शालिभद्र चौपाई के ऐतिहासिक चित्र काल्पनिक न होकर असली है। अठारहवीं-उन्नीसवीं शती के विज्ञप्ति-पत्रों में जैनाचार्यों के संख्याबद्ध चित्र संप्राप्त हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से मंत्र, तंत्र आम्नाय गर्भित अनेक प्रकार के यन्त्र-पट चित्र पाये जाते हैं। तीर्थपट्ट, सूरिमन्त्र पट्ट व वर्द्धमानविद्या पट्ट में भी गुरुओं के चित्र है। हमारे संग्रह का श्री चिन्तामणिपार्श्वनाथ पट्ट जो संवत् १४०० के लगभग का है, चित्रित है। उनमें श्रीतरुणप्रभसूरिजी महाराज और उनके शिष्य का महत्वपूर्ण चित्र अंकित हैं।

गत दो ढाई सौ वर्षों में दादासाहब के स्वतंत्र चित्र बने हुए मिलते हैं जो मन्दिरों, दादावाड़ियों, उपाश्रयों, लोगों के मकानों और राजमहलों तक में टंगे हुए पाये जाते हैं। इन चित्रों में दादासाहब के जीवन-चरित्र की महत्व-पूर्ण घटनाएं चित्रित हैं। बीकानेर दुर्ग-स्थित महाराजा गजसिंहजी के नवल गजमन्दिर में श्रीजिनचन्द्रसूरि (चतुर्थदादा) और अकबर बादशाह के मिलन का चित्र लगा हुआ है। इसके अतिरिक्त यति जयचन्दजी के संग्रह में, श्रीजिनचारित्रसूरिजी के पास, बद्रीदासजी के मन्दिर कलकत्ता में, पूरणचन्दजी नाहर के संग्रह में पंचनदी साधन के एवं लखनऊ, जीयागंज आदि अनेक स्थानों में प्राचीन चित्र पाये जाते हैं। इन्हीं के अनुकरण में तपागच्छीय श्रीमान् हीरविजयसूरिजी महाराज और अकबर मिलन के चित्र भी पिछले पचास वर्षों में बनने प्रारम्भ हुए हैं। प्रसिद्ध वक्ता व लेखक मुनिवर्य श्री विद्या-विजयजी महाराज ने अपने लखनऊ चातुर्मास में सर्वप्रथम हीरविजयसूरिजी और अकबर का चित्र निर्माण कराया था।

खरतरगच्छ में चारों दादासाहब एवं जिनप्रभसूरिजी और सुलतान मुहम्मद बादशाह के मिलन सम्बन्धी जितने चित्र पाये जाते हैं उनमें लोकप्रवाद और स्मृति-दोष से एक का जीवनवृत्त दूसरे से सम्बन्धित समझकर घटना विपर्यय अंकित हो गया है पर हमें यहाँ उसके ऐतिहासिक विश्लेषण में न जाकर लोकमान्यता और श्रद्धा-भक्ति द्वारा निर्मित चित्रों का परिचय देना ही अभीष्ट है।

सौ वर्ष पूर्व जयपुर के रामनारायणजी तहवीलदार

के रास्ते में रहने वाले गणेश मुसव्वर (चित्रकार) को बंगाल में बुलाया गया और उसने बालूचर व कलकत्ता में लगभग पन्द्रह वर्ष रहकर सैकड़ों जैनचित्रों का निर्माण किया। वे चित्र कलासमृद्धि में अपूर्व और मूल्यवान हैं। यदि उन समस्त चित्रों का सांगोपांग वर्णन लिखा जाय तो सैकड़ों पेज हो सकते हैं पर हम यहां केवल दादासाहब आदि के चित्रों का ही संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

१ श्री अभयदेवसूरिजी—यह चित्र ७३×१७ इंच का है। इस चित्र में दाहिनी ओर नगर का दृश्य है जिसके दोनों ओर परकोटा और दो दरवाजे दृष्टिगोचर होते हैं। नगर के तीन स्वर्णमय शिखर वाले जिनालयों पर ध्वजादण्ड सुशोभित हैं। सामने पौषधशाला में श्री अभयदेवसूरिजी महाराज विराजमान हैं जिनके समक्ष श्यामवर्णवाली शासनदेवी उपस्थित है जिसके सुनहरे जरी के वस्त्र व मुकुट अलंकारादि पहने हुए हैं। शासन देवी नौ कोकड़ी सुलझाने के लिए आचार्यश्री को दे रही है। बाहर अभयदेवसूरिजी महाराज अपने दस शिष्यों के साथ विहार करके जा रहे हैं। मार्ग में आठ श्रावक तथा दो बालक भी चल रहे हैं। सूरि महाराज एक पलाश वृक्ष के नीचे जयतिहुअण स्तोत्र द्वारा प्रभु की स्तवना करते हैं। पास में ६ साधु बैठे हैं और सात श्रावक खड़े हैं। जंगल में जहां गाय का दूध झरता था, स्तंभन पार्श्वनाथ स्वामी की प्रतिमा प्रकट होती है। एक श्रावक के हाथ में प्रतिमा है। फिर सिंहासन पर विराजमान करके श्रावक लोग स्वर्णकलशों से अभिषेक करते हैं। दो श्रावक प्रभु को न्हवण कराते हैं, चार श्रावक कलश लिये खड़े हैं। एक श्रावक फिर प्रभु का न्हवण जल लाकर सूरिजी के ऊपर छींटता है जिससे रोग विनाश हो जाता है। पृष्ठभूमि में खजूर, ताड़, आम्र, अशोकादि के वृक्ष विद्यमान हैं। मैदान और टीलों पर कहीं-कहीं हरियाली छाई हुई है। चित्र परिचय में निम्नोक्त वाक्य लिखे हुए हैं:—

(१) १ शासन देवताने कोकड़ी ९ दीनी (२) श्री अभयदेवसूरि (३) पोशाल (२) अभयदेवसूरि (३) १ जयतिहुअण स्तवना करी श्री थंभणा पार्श्वनाथजी प्रगट भया जमीन से, न्हवण कराया ४ पखाल छींटता रोग गया रक्तपित्तीका।

(२) श्री जिनदत्तसूरि, श्री जिनकुशलसूरि—यह चित्र ७५×१७ इंच का है जिसमें दोनों दादा गुरुओं के चित्रों में विभिन्न भाव हैं। चित्र के वाम पार्श्व में श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज विराजमान हैं जिनके समक्ष ५२ वीर [१८] एवं पृष्ठ भाग में ६४ योगिनी (२४) अवस्थित हैं। गुरुदेव के आगे स्थापनाजी एवं हाथ में मुखवस्त्रिका है। दूसरा पंचनदी का भाव है जिसके तटपर पाँच मन्दिर बने हुए हैं। पाँचों पीर गुरुदेव के समक्ष करबद्ध खड़े हैं। तीसरा अजमेर के उपाश्रय का है जिसमें गुरुदेव अपने ६ शिष्यों के साथ प्रतिक्रमण कर रहे हैं और कड़कती हुई बिजली को पात्र के नीचे दबा देते हैं। चौथा भाव गुरुदेव के नगर प्रवेश का है, घोड़े के नीचे दबकर मरे हुए मुगलपुत्र को तीन मुसलमान उठाकर लाते हैं। वृक्ष के नीचे बैठे हुए गुरुदेव उसे मंत्रशक्ति से जिला देते हैं। पाँच मुसलमान करबद्ध खड़े हैं। गुरुदेव के पृष्ठ भागमें पाँच शिष्य बैठे हैं गुरुदेव के विहार में पीछे छत्रधारी व्यक्ति व दो शिष्य दिखाये हैं, सामने १६ श्रावक चल रहे हैं जिनकी पगड़ी पर शिरपेच बंधे है, लम्बे डोरा जामे पहिन कर कमरबंद व उत्तरासन लगाया हुआ है।

पाँचवाँ भाव श्रीजिनकुशलसूरिजी से सम्बन्धित मालूम देता है। नगर के मध्य में गुरुदेव उपाश्रय में प्रवचन कर रहे हैं। चार साधु सामने खड़े हैं, आठ श्रावक बैठे हुए व्याख्यान सुन रहे हैं, भक्त की दुखभरी पुकार सुन कर डूबती हुई नौका को किनारे के दृश्य में हाथ के सहारे से तिरा देते हैं। चित्रकार ने चित्र-परिचय कुछ भी नहीं लिखा है।

३ श्री जिनचन्द्रसूरि ( अकबर प्रतिबोधक )—यह चित्र ७४॥ × १६॥ इन्च लम्बा है। इसमें नगर के चार दरवाजे हैं जिनमें दो दोनों ओर व दो पास-पास ही दिखाये हैं। नगर के कुछ मकान व गुंबजदार मस्जिद हैं तथा उपाश्रय का भाव भी दिखाया है। नगर के मध्य में शाही दुर्ग—राजप्रासाद है जिसके बाहर दो संतरी पहरा दे रहे हैं। महल के बाँयें कक्ष में चौकी पर श्री जिनचंद्रसूरिजी व उनके पृष्ठ भाग में ७ शिष्य बैठे हैं। सामने सिंहासन पर बादशाह बैठा है जिसके पीछे चारव्यक्ति पंखा, किरणिया-आदि राजचिन्हधारी तथा दो उमराव बैठे हैं। सूरिजी के पास एक काली बकरी और दो श्वेतरंग के बच्चे खड़े हैं। महल के दूसरे कक्ष में भी इसी भाव का चित्र है पर सूरिजी और सम्राट को आसमान की ओर देखते दिखाये हैं जिससे मालूम होता है कि काजी की टोपी वाला भाव चित्रित करना चित्रकार भूल गया है। उपाश्रय कक्ष में शासनदेवी सूरिजी को थाल अर्पित करती है जिसे आसमान में स्थित चन्द्रोदय देख कर सब लोक विस्मित हो जाते हैं। उपाश्रय में चार साधु व एक श्रावक भी विद्यमान है। खड़े हुए तीन श्रावकों में एक व्यक्ति हाथ ऊँचा करके अमावस्या का चन्द्रोदय बता रहा है। नगर के बाहर अश्वारोही व ऊंट सवार दोनों ओर दौड़ते हुए जा रहे हैं।

जीयागंज के श्री विमलनाथजी के मन्दिर स्थित दादा जी के मन्दिर में काठगोला से आये हुए निम्नोक्त महत्वपूर्ण चित्र लगे हुए हैं। ये चित्र भी यशस्वी चित्रकार गणेश के बनाये हुए हैं। परिचय इस प्रकार लिखा है :

(१) कलम गणेश चतेरा की साकीन जयपुर ठि० चांदपोल दरवाजा खेजड़ा के रस्ते रामनारायणजी तवीलदार के पास "बावन वीर चौसठ जोगनी" दादा श्रीजिनदत्तसूरिजी। साइज १८×२२।

(२) अजमेर में बिजली पात्र के नीचे।

(३) दादा श्री जिनप्रभसूरिजी काजी की टोपी अकबर (?) के दरबार में।

श्री जिनप्रभसूरि मुगल की टोपी उतारी आसमान सुं मंगा सु भाव।

(४) दादा श्री जिनचन्द्रसूरिजी थाली आकाश में अकबर के दरबार में। शासन देवी द्वारा थाली का प्रदान। श्री जिन मणीवाला चन्द्रसूरिजी चन्द्रमा उगायो थाल चढ़ाकर, सो भाव।

(५) श्री जिनदत्तसूरिजी उज्जैन नगरी थांभ फाड़ पोथी निकाली। सामेला करके उज्जैन नगरी में पधारते हैं।

(६) श्री जिनदत्तसूरिजी मुलतान में पांच नदी पांच पीर वश किया।

(७, श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज दरियाव में जगत सेठ की जहाज तिरायो।

(८) श्री जिनदत्तसूरिजी बादशाह सुं भैंसा के मुख सुं बात कराई सो भाव।

जीयागंज के श्री संभवनाथ जिनालय में २७ × १५ साइज के दो चित्र लगे हुए हैं जिनमें एक श्री जिनदत्तसूरिजी और दूसरा श्री जिनकुशलसूरिजी के जीवनवृत्त से संबन्धित है। श्री जिनदत्तसूरिजी के चित्र में बावन वीर, चौसठ योगिनी; पंचनदी-पंचपीर, बिजली वश कीधी, उच्चनगर, वड़नगर, खंबड़ हाथे अक्षर आदि के ७ भाव हैं। श्री जिनकुशलसूरिजी के चित्र में 'जीहाजतारी' के भाव के अतिरिक्त एक में वृद्ध चित्र, एक में नगर के उपाश्रय में विराजमान गुरुदेव व बाह्य दृश्य भी हैं पर चित्र परिचय नहीं दिया है।

कलकत्ता के श्री महावीर स्वामी के मंदिर में भी चार-पांच चित्र हैं। जिनमें एक छोटा चित्र मणिधारी जिनचन्द्रसूरिजी और सामने बादशाह (राजा मदनपाल) अपने मुसाहिबों के साथ है। चाँदा-चन्द्रपुर के जिनालयस्थ दादा देहरी में मणिधारीजी महाराज का चित्र लगा हुआ है। यों छोटे-

मोटे बहुत से दादा साहब के प्राचीन चित्र पाए जाते हैं। लखनऊ में भी दादा साहब के चित्र देखे स्मरण है।

प्राचीन चित्रकला के चित्रों का परिचय देने के पश्चात् उसी के अनुकरण में वर्तमान के यशस्वी और भारत-विश्रुत चित्रकार श्री इन्दुगढ़ का बनाया हुआ विशाल और कला-पूर्ण चित्र कलकत्ता-दादावाड़ी में लगा हुआ है जिसमें बड़े दादासाहब के जीवनवृत्त से सम्बन्धित कई भाव चित्रित हैं। व्याख्यान वाचस्पति मुनि श्री कान्तिसागरजी ने पहले भांदकजी में भित्ति-चित्र बनवाये थे और तत्पश्चात् 'श्री जिन-गुरु-गुण-सचित्र पुष्पमाला' पुस्तक में इसके और तिरंगे चित्रों का भी प्रकाशन करवाया है जिसमें चारों दादा साहब के २४ तिरंगे एवं २ काष्टफलक चित्र प्रकाशित हुए हैं।

मणिवर्य हेमेन्द्रसागरजी के पत्रानुसार सूरत के श्री जिन-दत्तसूरि ज्ञानभण्डार में सचित्र चित्र लगे हैं जिनमें १७ × १७ इंच के (१) क्षमाकल्याणोपाध्याय व मुन्ना-लाल जौहरी व (२) जिनलाभसूरिजी का चित्र दो डाई सौ वर्ष प्राचीन हैं। एक बड़े चित्र में बीच में जिनचन्द्रसूरिजी, दाहिने ओर अभयदेवसूरिजी, बाईं तरफ जिनवल्लभसूरिजी हैं। दूसरे में वर्द्धमानसूरिजी (मध्य में), जिनेश्वरसूरिजी (दाहिने) और बुद्धिसागरसूरिजी (बांयें) हैं। एक चित्र मणिधारीजी का है जिसमें बादशाह सामने खड़ा दिखाया गया है। चौथे दादा श्री जिनचन्द्रसूरिजी के चित्र में अकबर मिलन का भाव चित्रित है। ये चित्र ५५-६० वर्ष पुराने हैं और श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी के उपदेश से बने हुए हैं।

और भी दादासाहब व दूसरे खरतरगच्छाचार्यों के चित्र उपाश्रयों आदि में पर्याप्त पाये जाते हैं जिन्हें खोजपूर्वक प्रकाश में लाना चाहिए।

---

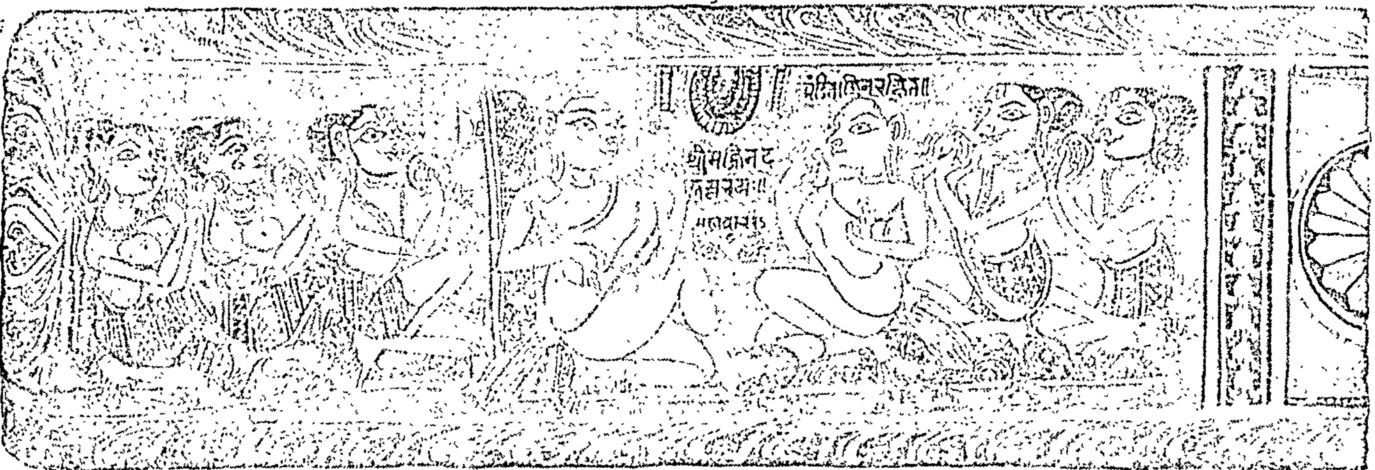
मुनि जिनविजयजी के प्रकाशित जिनदत्तसूरिजी के चित्रमय काष्ठफलक के दोनों फोटो 'भारतीय विद्या'-त्रिवर्ष ग्रन्थ में प्रकाशित हुए हैं। इनमें से जिनदत्तसूरि सम्बन्धी दो फोटो यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। इनका विवरण मुनिजी ने इस प्रकार दिया है :—

इस पट्टिका के बांये और दाहिने भाग में चित्रित दृश्यों के दो खंड हैं। इन दोनों खण्डों में जिनदत्तसूरिजी की व्याख्यान-सभा का आलेखन है। इसके ऊपर वाले चित्र-खण्ड में मध्यमें श्रीजिनदत्तसूरि विराजमान हैं और उनके सम्मुख पं० जिनरक्षित बैठे हैं। जिनरक्षित के पीछे दो श्रावक हैं एवं श्रीजिनदत्तसूरिजी के पृष्ठ भाग में एक श्रावक और दो श्राविकाएं बैठी हैं। नीचे वाले चित्र-खण्ड में मध्यमें श्रीजिनदत्तसूरि और उनके सम्मुख श्रीगुण-समुद्राचार्य और इनके पीछे एक मुनि और एक श्रावक बैठा है। जिनदत्तसूरि के पृष्ठ भागमें दो श्रावक बैठे हैं। सूरिजी के सामने स्थापनाचार्य रखे हैं, जिनपर 'महावीर' अक्षर लिखे हुए हैं।

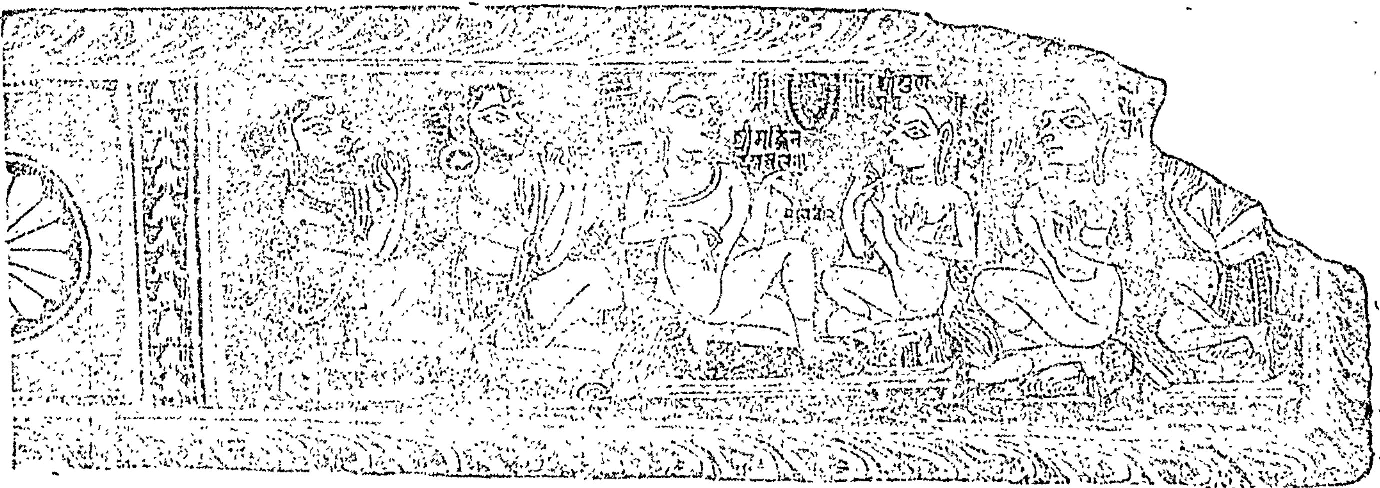
इस चित्रावली से विदित होता है कि यह सचित्र काष्ठपट्टिका श्रीजिनदत्तसूरिजी के निजी संग्रह की किसी ताडपत्रीय पुस्तक की है। किसी भक्त श्रावक ने उन्हें किसी बड़े और महत्वपूर्ण ग्रन्थ को लिखाकर भेंट किया था, जिसके ऊपर की यह एक सुन्दर चित्रालंकृत पटड़ी है। संभव है कि इसमें आलेखित स्त्रीपुरुष इस ग्रन्थ को भेंट करने वाले श्रावक परिवार के ही मुख्य व्यक्ति हों।

मारवाड़ के विक्रमपुर के श्रेष्ठी देवधर निर्मापित जिनालय में सूरिजी ने एक भव्य महावीर प्रभु-प्रतिमा की प्रतिष्ठा की थी। संभव है कि इस चित्रपट्टिका में इसी प्रतिष्ठा-प्रसंगका आलेखन हो। क्योंकि सूरिजी के समक्ष स्थित स्थापनाचार्य पर "महावीर" नाम लिखा हुआ है। कदाचित् इसी देवधर ने इस पट्टिका के साथ वाले ग्रन्थ को लिखा कर सूरिजी को समर्पित किया हो और इस पट्टिका में उक्त प्रसंग के स्मारक-स्वरूप चित्रांकन किया गया हो। जैन सम्प्रदाय में ऐसे प्रसंगों के निमित्त पुस्त-कादि लेखन व चित्रपट्टिकादि के आ[illegible] की प्रवृत्ति अति प्राचीन काल से चली आ रही है।

इस तरह विक्रम की बारहवीं सदी के अंतिम और तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ के चित्रालेखन का प्रतीक, विदित करने मात्र पर्याप्त है, इससे प्राचीन अन्य कोई सुन्दर चित्रादि अद्यावधि हमें उपलब्ध नहीं है।



श्री जिनदत्त सूरि और पंडित जिनरक्षित



श्री जिनदत्तसूरि और गुणसमुद्राचार्य

[ श्री जिनदत्तसूरि सेवासंघ के सौजन्य से ]

श्री जिनदत्तसूरिजी के चित्रों में प्राचीनतम अथवा दूसरे शब्दों में कहा जाय तो इस शैली की प्राचीन काष्ठ-पट्टिका का चित्र जो यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है, श्री जिनदत्तसूरि के आचार्य पद प्राप्ति के पूर्व का है। यह फलक चित्र हमारे "सेठ शंकरदान नाहटा कलाभवन" में सुरक्षित है।

यह काष्ठपट्टिका १४×११½ इंच की है। इसके चारों ओर बोर्डर है। इस चित्र के तीन खंड हैं। प्रथम खंड में आचार्य श्रीगुणसमुद्र और सामने ही आसन पर सोमचन्द्रगणि ( श्रीजिनदत्तसूरि ) बैठे हुए हैं। आचार्यश्री के पृष्ठ भाग में पीठ-फलक है और श्री सोमचन्द्रगणि के नहीं है इससे उनका दीक्षापर्याय में छोटा होना प्रमाणित है। दोनों के मध्य में स्थापनाचार्यजी हैं, दोनों के पास रजोहरण है, दोनों एक गोडा ऊंचा और एक गोडा नीचा किये हुए प्रवचनमुद्रा में आमने-सामने बैठे हैं। दोनों के श्वेत वस्त्र हैं।

आचार्य श्री के पीछे एक श्रावक बैठा है जिसकी धोती जांघिये की भांति है। कंधे पर उत्तरीय वस्त्र के अतिरिक्त कोई वस्त्र नहीं है जो उस समय के अल्पवस्त्र-परिधान को सूचित करता है। श्रावक के गले में स्वर्णहार है और एक गोडा ऊंचा करके करबद्ध बैठा है, उसके पृष्ठ भाग में दो श्राविकाएं भी इसी मुद्रा में हैं, जिनके गले में हार व हाथों में चूड़ियाँ और कानों में बड़े-बड़े कर्णफूल हैं। वस्त्र सबके रंगीन और छींटकी भाँति है, केशपाश का जूड़ा बांधा हुआ है। श्रावक के मरोड़ी हुई पतली मूछ और ठोड़ी के भाग को छोड़कर अल्प दाढ़ी है। श्रावक के खुले मस्तक पर घने बालों का गिर्दा है।

सोमचन्द्रगणि के पृष्ठ भाग में दो व्यक्ति बैठे हैं जिनकी वेषभूषा भी उपर्युक्त श्रावकों के सदृश ही है। चित्र शैली में तत्कालीन प्रथानुसार नेत्र की सीधी रेखाएं और दोनों आँखें इसलिए दिखायी हैं कि चित्र में एकाक्षीपन का दोष न आवे। चित्र के मध्य खंड में दोनों ओर कोई तथा मध्य में फूल बनाया है जिसके बीच में छिद्र है जो काष्ठफलक ग्रंथ की डोरी पिरोकर बांधने में काम आता था।

चित्र के दूसरे खण्ड में साध्वियों का दृश्य है। पट्ट पर प्रवर्तिनी विमलमति बैठी हुई है जिनके पृष्ठ भाग में भी पीठफलक सुशोभित है। सामने दो साध्वियाँ बैठी हुई हैं जिनके नाम 'नयश्री साध्वी' और 'नयमतिम्' लिखा हुआ है। दोनों के बीच में स्थापनाचार्यजी रखे हुए हैं, साध्वीजी के पीछे एक श्राविका आसन पर बैठी हुई है जिसपर इसका नाम नदीसीर (? श्रिका) लिखा हुआ है। चित्रफलक का किनारा टूट जाने से जोड़ा हुआ है।

इस सचित्र काष्ठपट्टिका का समय—इसमें श्रीजिनदत्तसूरिजी के दीक्षानाम लिखा हुआ होने से सं० ११६९ के पूर्व का तो है ही। इसमें आये हुए साधु-साध्वियों के नाम "गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति" में नहीं मिलते अतः आचार्य पद प्राप्ति से पूर्व श्रीजिनदत्तसूरि जी के आज्ञानुवर्तिनी जो साध्वियाँ थीं, उनका नाम प्राप्त होना ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। हमारी राय में इस काष्ठपट्टिका का समय सं० ११५० के आस-पास का है।

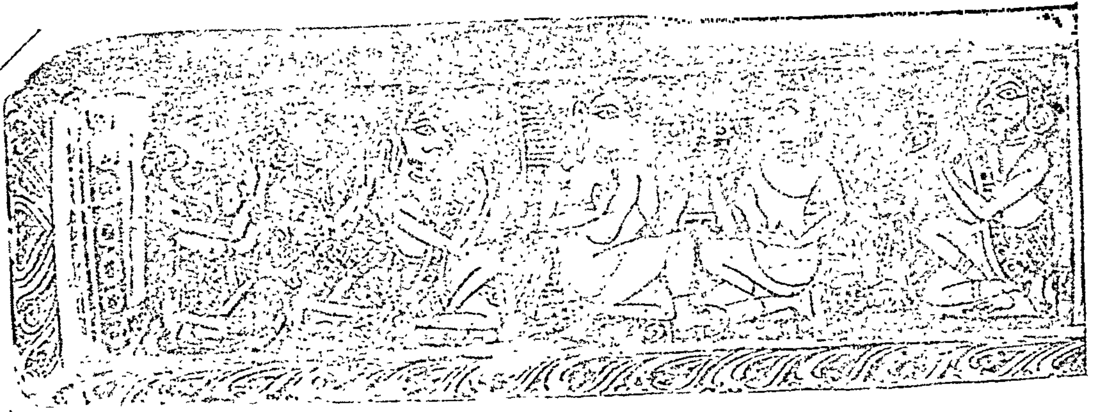
**अप्रकाशित महत्वपूर्ण काष्ठफलक**

जेसलमेर के श्रीजिनभद्रसूरि ज्ञानभंडार में जो श्रीजिनदत्तसूरि जी और नरपति कुमारपाल की महत्वपूर्ण सचित्र काष्ठपट्टिका थी, वह अभी थाहरूसाह के भंडार में रखी हुई है। उसे देखकर हमने जो संक्षिप्त विवरण नोट किया था उसे यहाँ दिया जा रहा है—

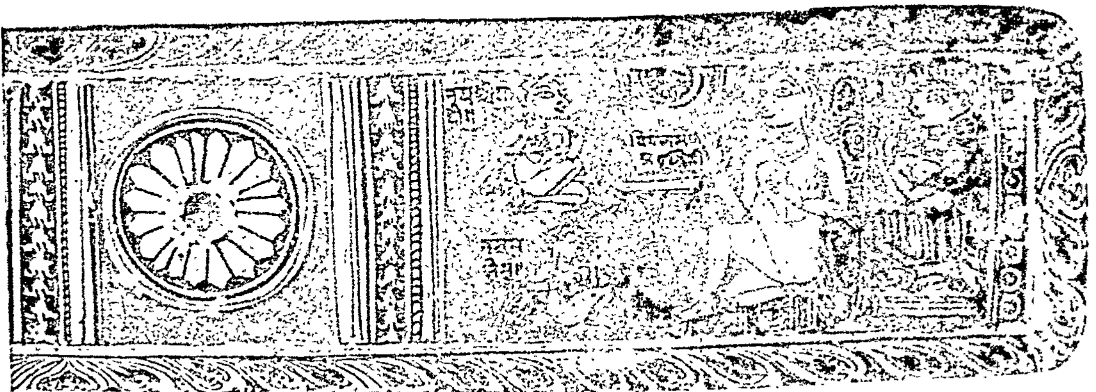
इस चित्र पट्टिका पर '९ नरपति कुमारपाल भक्ति-रस्तु" लिखा हुआ है। इस फलक के मध्य में भगवान पार्श्वनाथ का जिनालय है जिसकी उपरिकर प्रतिमा के उभयपक्ष में गजारूढ़ इन्द्र और दोनों ओर चामरधारी अवस्थित हैं। दाहिनी ओर दो चामरधारी पुरुष खड़े हैं। भगवान् के बाँये पक्ष में पुष्प-चंगेरी लिए हुए भक्त खड़े हैं,

जिसके पीछे दो व्यक्ति नृत्य करते हुए एवं दो व्यक्ति वाद्य-यंत्र लिए खड़े हैं। जिनालय के दाहिनी ओर श्रीजिनदत्तसूरि जी की व्याख्यान सभा है। आचार्यश्री के पीछे दो भक्त श्रावक एवं एक शिष्य नरपति राजा कुमारपाल बैठा हुआ है। राजा के साथ रानी व दो परिचारक विद्यमान हैं। आचार्य श्रीजिनदत्तसूरिजी का परिचय चित्रकार ने "श्रीयुगप्रधानागम श्रीमज्जिनदत्त सूरयः ॥८॥ लिखा है।

जिनालय के बाँयें तरफ श्रीगुणसमुद्राचार्य विद्यमान हैं जिनके सामने स्थापनाचार्यजी व चतुर्विध संघ है। चित्र स्थित साधु का नाम पं० ब्रह्मचन्द्र है। पृष्ठ भाग में दो राजपुरुष हैं जिनका नाम चित्र के ऊपरिभाग में "सहणप (T)ल" व अनंग लिखा है। साध्वीजी के सामने भी स्थापनाचार्य और उनके समक्ष दो श्राविकाएँ हाथ जोड़े खड़ी हैं। गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति के अनुसार पार्श्वनाथ के नवफणों की प्रथा श्रीजिनदतसूरिजी से ही प्रचलित हुई थी। नरभट में नवफणा पार्श्वनाथ प्रतिमा की प्रतिष्ठा सूरिजी ने की थी। वह जिनालय आगे चलकर महातीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हो गया।



सोमचन्द्रगणि (श्रीजिनदत्तसूरि) और गुणसमुद्राचार्य
[ शंकरदान नाहटा कलाभवन, बीकानेर से ]



आज्ञानुवर्त्तिनी साध्वी नयश्री और नयमती

# श्री कीर्तिरत्नसूरि रचित नेमिनाथ महाकाव्य

**[ प्रो० सत्यव्रत 'तृषित' ]**

[ खरतरगच्छ के महान् आचार्यों ने संघ-व्यवस्था बड़ी सूझ-बूझ से की। मुख्य पट्टधर-युगप्रधान आचार्य के साथ-साथ सामान्य आचार्य के रूप में उपयुक्त व्यक्तियों को आचार्य पद दिया जाता रहा है जिससे पट्टधर के स्वर्गवास हो जाने के बाद कोई अव्यवस्था नहीं होने पावे। भावी पट्टधर स्वर्गवासी आचार्य के अन्तिम समय में समीप न होने पर यथासमय उस पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए सामान्य आचार्य को भोलावण दे दी जाती थी और वे उन युगप्रधानाचार्य के संकेतानुसार योग्य स्थान और शुभमुहूर्त्त में पूर्ववर्त्ती आचार्य की सूरि मन्त्राम्नाय परंपरा को देते हुए बड़े महोत्सव के साथ नये गच्छनायक का पट्टाभिषेक करवा देते थे।

आचार्य वर्द्धमानसूरि ने जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि को आचार्य पद दिया, इनमें से जिनेश्वरसूरि पट्टधर बने और बुद्धिसागरसूरि उनके सहयोगी रहे। इसके बाद जिनचन्द्रसूरि संवेगरंगशालाकर्त्ता और अभयदेव सूरि को आचार्य पद दिया गया इनमें से जिनचन्द्रसूरि पट्टधर बने और उनके स्वर्गवास के बाद अभयदेवसूरि गच्छनायक बने। यों अभयदेवसूरि के वर्द्धमानसूरि आदि कई विद्वान शिष्य थे पर जिनवल्लभगणि में विशेष योग्यता का अनुभव कर उन्होंने प्रसन्नचंद्रसूरि को यथासमय जिनवल्लभगणि को अपने पट्ट पर स्थापित करने की आज्ञा दी थी। उसकी पूर्ति न कर सकने के कारण देवभद्राचार्य ने काफी समय के बाद अभयदेवसूरि के पट्ट पर जिनवल्लभसूरि को प्रतिष्ठित किया। अल्पकाल में ही उनका स्वर्गवास हो जाने पर इन्हीं देवभद्रसूरिजी ने सोमचन्द्र गणि को जिनवल्लभसूरि के पट्ट पर अभिषिक्त किया। इसी तरह मणिधारी जिनचन्द्रसूरि ने अपने अन्तिम समय में निकटवर्त्ती गुणचन्द्रगणि को अपने पट्टधर का जो संकेत दिया था तदनुसार चौदह वर्ष की आयु वाले जिनपतिसूरिजी को उनके पट्ट पर स्थापित किया गया।

इस परम्परा में पन्द्रहवीं शताब्दी के आचार्य जिनभद्रसूरिजी ने उ० कीर्तिराज को आचार्य पद देकर कीर्तिरत्नसूरि के नाम से प्रसिद्ध किया। उन्होंने ही जिनभद्रसूरिजी के पट्ट पर जिनचन्द्रसूरिजी को स्थापित किया था। आचार्य कीर्तिरत्नसूरि अपने समय के बहुत बड़े विद्वान और प्रभावक व्यक्ति थे। उनके सम्बन्ध में सं० १९९४ में प्रकाशित हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में आवश्यक जानकारी दी गई थी। उनके ५१ शिष्य हुए, जिनमें गुणरत्नसूरि, कल्याणचन्द्र आदि उल्लेखनीय रहे हैं। कीर्तिरत्नसूरिजी की प्राचीनतम मूर्त्ति नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ में पूजित है। इनकी शिष्य-सन्तति का बहुत विस्तार हुआ। कीर्तिरत्नसूरि शाखा आजतक चली आ रही है जिसमें पचासों कवि, विद्वान हुए हैं, उसी में आचार्य श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी जैसे गीतार्थ आचार्य-शिरोमणि हुए हैं। कीर्तिरत्नसूरिजी की शिष्य-परम्परा ने अनेक स्थानों में उनके स्तूप-पादुकादि स्थापित करवाये और बहुत से स्तवन-गीतादि निर्माण किये। उन्हीं महापुरुष के एक महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन गवर्नमेण्ट कालेज श्रीगंगानगर के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रो० सत्यव्रत प्रस्तुत कर रहे हैं।

—संपादक ]

जैन संस्कृत महाकाव्यों में कविचक्रवर्ती कीर्त्तिराज उपाध्यायकृत नेमिनाथ महाकाव्य को गौरवमय पद प्राप्त है। इसमें जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के प्रेरक चरित्र के कतिपय प्रसंगों को, महाकाव्योचित विस्तार के साथ, बारह सर्गों के व्यापक कलेवर में प्रस्तुत किया गया है। कीर्त्तिराज कालिदासोत्तर उन इने-गिने कवियों में हैं, जिन्होंने माघ एवं हर्ष की कृत्रिम तथा अलंकृतिप्रधान शैली के एकच्छत्र शासन से मुक्त होकर अपने लिये अभिनव सुरुचिपूर्ण मार्ग की उद्भावना की है। नेमिनाथ काव्य में भावपक्ष तथा कलापक्ष का जो मंजुल समन्वय विद्यमान है, वह ह्रासकालीन कवियों की रचनाओं में अतीव दुर्लभ है। पाण्डित्य प्रदर्शन तथा बौद्धिक विलास के उस युग में नेमिनाथ महाकाव्य जैसी प्रसादपूर्ण कृति की रचना करने में सफल होना कीर्त्तिराज की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

## नेमिनाथ महाकाव्य का महाकाव्यत्व

प्राचीन भारतीय आलङ्कारिकों ने महाकाव्य के जो मानदण्ड निश्चित किये हैं, उनकी कसौटी पर नेमिनाथ-काव्य एक सफल महाकाव्य सिद्ध होता है। शास्त्रीय विधान के अनुरूप यह सर्गबद्ध रचना है तथा इसमें, महाकाव्य के लिये आवश्यक, अष्टाधिक बारह सर्ग विद्यमान हैं। धीरोदात्त गुणों से युक्त क्षत्रियकुल-प्रसूत देवतुल्य नेमिनाथ इसके नायक हैं। नेमिनाथ महाकाव्य में शृङ्गार रस की प्रधानता है। करुण, वीर तथा रौद्र रस का आनुषंगिक रूप में परिपाक हुआ है। महाकाव्य के कथानक का इतिहास प्रख्यात अथवा सदाश्रित होना आवश्यक माना गया है। नेमिनाथकाव्य का कथानक लोकविश्रुत नेमिनाथ के चरित से सम्बद्ध है। चतुर्वर्ग में से धर्म तथा मोक्ष की प्राप्ति इसका लक्ष्य है। धर्म का अभिप्राय यहाँ नैतिक उत्थान तथा मोक्ष का तात्पर्य आमुष्मिक अभ्युदय है। विषयों तथा अन्य सांसारिक आकर्षणों का परित्याग कर परम-पद प्राप्त करने की ध्वनि, काव्य में सर्वत्र सुनाई पड़ती है।

महाकाव्य की इस परम्परा के अनुसार नेमिनाथ-महाकाव्य का प्रारम्भ नमस्कारात्मक मंगलाचरण से हुआ है, जिसमें स्वयं काव्यनायक नेमिनाथ की चरणवन्दना की गयी है :—

वन्दे तन्नेमिनाथस्य पदद्वन्द्वं श्रियास्पदम्।
नखैरशोभि देवानां यद्भृङ्गैरिव पङ्कजम् ॥ १।१॥

आलंकारिकों के विधान का पालन करते हुए काव्य के आरम्भ में सज्जन-प्रशंसा तथा खलनिन्दा भी की गयी है। यदुपति समुद्रविजय की राजधानी के मनोरम वर्णन में कवि ने नगरीवर्णन की रूढ़ि का निर्वाह किया है। काव्य का शीर्षक चरितनायक के नाम पर आधारित है, तथा प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसमें वर्णित विषय के अनुरूप किया गया है, जिससे विश्वनाथ के महाकाव्यीय विधान की पूर्ति होती है। अन्तिम सर्ग के एक अंश में चित्रकाव्य की योजना करके जैन कवि ने हेमचन्द्र, वाग्भट आदि जैनाचार्यों के विधान का पालन किया है। छन्द प्रयोग सम्बन्धी परम्परागत नियमों का प्रस्तुत काव्य में आंशिक रूप से निर्वाह हुआ है। काव्य के पांच सर्गों में तो प्रत्येक सर्ग में एक छन्द की प्रमुखता है तथा सर्गान्त में छन्द बदल जाता है। यह साहित्याचार्यों के विधान के सर्वथा अनुरूप है। किन्तु शेष सात सर्गों में नाना वृत्तों का प्रयोग शास्त्रीय नियमों का स्पष्ट उल्लंघन है क्योंकि महाकाव्य में छन्दवैविध्य एक-दो सर्गों में ही काम्य माना गया है। महाकाव्यों की मान्य परिपाटी के अनुसार नेमिनाथकाव्य में नगर, पर्वत, प्रभात, वन, दूतप्रेषण (प्रतीकात्मक), युद्ध, सैन्य-प्रयाण, पुत्रजन्म, जन्मोत्सव, षड्ऋतु आदि वर्ण्यविषयों के विस्तृत वर्णन पाये जाते है। वस्तुतः काव्य में इन्हीं वस्तुव्यापार वर्णनों का प्राधान्य है।

परम्परागत नियमों के अनुसार महाकाव्य में पांच नाट्यसन्धियों की योजना आवश्यक मानी गयी है। नेमिनाथ महाकाव्य का कथानक यद्यपि अतीव संक्षिप्त है,

तथापि इसमें पाँचों सन्धियाँ खोजी जा सकती हैं। प्रथम सर्ग में शिवादेवी के गर्भ में जिनेश्वर के अवतरित होने में मुखसन्धि है। इसमें कथानक के फलागम का बीज निहित है तथा उसके प्रति पाठक की उत्सुकता जाग्रत होती है। द्वितीय सर्ग में स्वप्नदर्शन से लेकर तृतीय सर्ग में पुत्रजन्म तक प्रतिमुख सन्धि स्वीकार की जा सकती है, क्योंकि मुखसन्धि में जिस कथाबीज का वपन हुआ था, वह यहाँ कुछ अलक्ष्य रहकर पुत्रजन्म से लक्ष्य हो जाता है। चतुर्थ सर्ग से अष्टम सर्ग तक गर्भसन्धि की योजना मानी जा सकती है। सूतिकर्म, स्नात्रोत्सव तथा जन्मोत्सव में फलागम काव्य के गर्भ में गुप्त रहता है। नवें से ग्यारहवें सर्ग तक एक ओर नेमिनाथ द्वारा वैवाहिक प्रस्ताव स्वीकार कर लेने से मुख्यफल की प्राप्ति में बाधा उपस्थित होती है, किन्तु दूसरी ओर वधूगृह में वध्य पशुओं का करुणक्रन्दन सुनकर उनके निर्वेदग्रस्त होने तथा दीक्षा ग्रहण करने से फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है। अतः यहाँ विमर्श सन्धि का सफल निर्वाह हुआ है। ग्यारहवें सर्ग के अन्त में केवलज्ञान तथा बारहवें सर्ग में परम पद प्राप्त करने के वर्णन में निर्वहण सन्धि विद्यमान है। इन शास्त्रीय लक्षणों के अतिरिक्त नेमिनाथ महाकाव्य में महाकाव्योचित रस-व्यंजना, भव्य भावों की अभिव्यक्ति, शैली की मनोरमता तथा भाषा की उदात्तता विद्यमान हैं।

### नेमिनाथमहाकाव्य की शास्त्रीयता

नेमिनाथकाव्य पौराणिक महाकाव्य है अथवा इसकी गणना शास्त्रीय शैली के महाकाव्यों में की जानी चाहिये, इसका निश्चयात्मक उत्तर देना कठिन है। इसमें एक ओर पौराणिक महाकाव्यों के तत्त्व वर्तमान हैं, तो दूसरी ओर यह शास्त्रीय महाकाव्यों की विशेषताओं से भूषित है। पौराणिक महाकाव्यों की भाँति इसमें शिवादेवी के गर्भ में जिनेश्वर का अवतरण होता है जिसके फलस्वरूप उसे चौदह स्वप्न दिखाई देते हैं। दिक्कुमारियाँ नवजात शिशु का सूतिकर्म करने के लिये आती हैं। उसका स्नात्रोत्सव इन्द्रद्वारा सम्पन्न होता है। दीक्षा से पूर्व भी वह भगवान् का अभिषेक करता है। पौराणिक शैली के अनुरूप इसमें दो स्वतन्त्र स्तोत्रों का समावेश किया गया है। कतिपय अन्य पद्यों में भी जिनेश्वर का प्रशस्तिगान हुआ है। जिनेश्वर के जन्मोत्सव में देवांगनाएँ नृत्य करती हैं तथा देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं। पौराणिक महाकाव्यों की परिपाटी के अनुसार इसमें नारी को जीवन-पथ की बाधा माना गया है। काव्यनायक दीक्षा लेकर केवलज्ञान तथा अन्ततः परमपद प्राप्त करते हैं। उनकी देशना का समावेश भी काव्य में हुआ है।

इन समूचे पौराणिक तत्त्वों के विद्यमान होने पर भी नेमिनाथ काव्य को पौराणिक महाकाव्य मानना न्यायोचित नहीं है। इसमें शास्त्रीय महाकाव्य के लक्षण इतने पुष्ट तथा प्रचुर हैं कि इसकी यत्किंचित पौराणिकता उनके सिन्धु प्रवाह में पूर्णतया मज्जित हो जाती है। ह्रासकालीन शास्त्रीय महाकाव्यकी प्रमुख विशेषता—वर्ण्यविषय तथा अभिव्यंजना शैली में वैषम्य—इसमें भरपूर मात्रा में वर्तमान है। शास्त्रीय महाकाव्यों की भाँति नेमिनाथमहाकाव्य में वस्तुव्यापारों की विस्तृत योजना हुई है। इसकी भाषा में अद्भुत उदात्तता तथा शैली में महाकाव्योचित प्रौढ़ता एवं गरिमा है। चित्रकाव्य की योजना के द्वारा काव्य में चमत्कृति उत्पन्न करने तथा अपना रचनाकौशल प्रदर्शित करने का प्रयास भी कवि ने किया है। अलंकारों का भावपूर्ण विधान, रस, व्यंजना, प्रकृति तथा मानव-सौन्दर्य का हृदयग्राही चित्रण, सुमधुर छन्दों का प्रयोग आदि शास्त्रीय काव्यों की ऐसी विशेषताएँ इस काव्य में हैं कि इसकी शास्त्रीयता में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता। वस्तुतः नेमिनाथ-महाकाव्य की समग्र प्रकृति तथा वातावरण शास्त्रीय शैली के महाकाव्य के अनुसार है। अतः, इसे शास्त्रीय महा-काव्यों की कोटि में स्थान देना सर्वथा उपयुक्त है।

### कविपरिचय तथा रचनाकाल

अन्य अधिकांश जैन काव्यों की भाँति कीर्तिराज के नेमिनाथमहाकाव्य में कवि प्रशस्ति नहीं है। अतः काव्य से उनके जीवन तथा स्थितिकाल के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। अन्य ऐतिहासिक लेखों के आधार पर उनके जीवनवृत्त का पुनर्निर्माण करने का प्रयास किया गया है। उनके अनुसार कीर्तिराज अपने समय के प्रख्यात तथा प्रभावशाली खरतरगच्छीय आचार्य थे। वे संखवालगोत्रीय शाह कोचर के वंशज देपा के कनिष्ठ पुत्र थे। उनका जन्म सम्वत् १४४९ में देपा की पत्नी देवलदे की कुक्षि से हुआ। उनका जन्म नाम देल्हाकुंवर था। देल्हाकुंवर ने चौदह वर्ष की अल्पावस्था में, सम्वत् १४६३ की आषाढ़ वदि एकादशी को दीक्षा ग्रहण की। जिनवर्द्धनसूरि ने आपका नाम कीर्तिराज रखा। कीर्तिराज के साहित्यगुरु भी जिनवर्द्धनसूरि ही थे। उनकी प्रतिभा तथा विद्वत्ता से प्रभावित होकर जिनवर्द्धनसूरि ने सम्वत् १४७० में वाचनाचार्य पद तथा दस वर्ष पश्चात् जिनभद्रसूरि ने उन्हें मेहवे में उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित किया। पूर्व देशों का विहार करते समय जब कीर्तिराज जैसलमेर पधारे, तो गच्छनायक जिनभद्रसूरि ने योग्य जानकर उन्हें सम्वत् १४९७ की माघ शुक्ला दशमी को आचार्य पद प्रदान किया। तत्पश्चात् वे कीर्तिरत्नसूरि के नाम से प्रख्यात हुए। आपके अग्रज लक्खा और केल्हा ने इस अवसर पर पद-महोत्सव का भव्य आयोजन किया। कीर्तिराज ७६ वर्ष की प्रौढ़ावस्था में, पचीस दिन की अनशन-आराधना के पश्चात् सम्वत् १५२५ वैशाख वदि पंचमी को वीरमपुर में स्वर्ग सिधारे। संघ ने वहां पूर्व दिशा में एक स्तूप का निर्माण कराया जो अब भी विद्यमान है। वीरमपुर, महवे के अतिरिक्त जोधपुर, आबू आदि स्थानों में भी आपकी चरणपादुकाएं स्थापित की गयीं। जयकीर्त्ति और अभयविलासकृत गीतों से ज्ञात होता है कि सम्वत् १८७९, वैशाख कृष्ण दशमी को गड़ाले (बीकानेर का समीपवर्ती नालग्राम) में उनका प्रासाद बनवाया गया था। कीर्तिरत्नसूरि के ५१ शिष्य थे। नेमिनाथ काव्य के अतिरिक्त उनके कतिपय स्तवनादि भी उपलब्ध हैं।[1]

नेमिनाथ महाकाव्य उपाध्याय कीर्त्तिराज की रचना है। कीर्तिराज को उपाध्याय पद संवत् १४८० में प्राप्त हुआ और सं० १४९७ में वे आचार्य पद पर आसीन होकर कीर्तिरत्नसूरि बने। अतः नेमिनाथकाव्य का रचनाकाल संवत् १४८० तथा १४९७ के मध्य मानना सर्वथा न्यायोचित है। सं० १४९५ की लिखी हुई इसकी प्राचीनतम प्रति प्राप्त है और यही इसका रचनाकाल है।

### कथानक

नेमिनाथ महाकाव्य के बारह सर्गों में तीर्थंकर नेमिनाथ का जीवनचरित निबद्ध करने का उपक्रम किया गया है। कवि ने जिस परिवेश में जिनचरित प्रस्तुत किया है, उसमें उसकी कतिपय प्रमुख घटनाओं का ही निरूपण सम्भव हो सका है।

च्यवनकल्याणक वर्णन नामक प्रथम सर्ग में यादव राजधानी सूर्यपुर में समुद्रविजय की पत्नी, शिवादेवी के गर्भ में बाईसवें जिनेश के अवतरण का वर्णन है। अलंकारों के विवेकपूर्ण योजना तथा बिम्बवैविध्य के द्वारा कवि सूर्यपुर का रोचक कवित्वपूर्ण चित्र अंकित करने में समर्थ हुआ है। द्वितीय सर्ग में शिवादेवी परम्परागत चौदह स्वप्न देखती है। समुद्रविजय स्वप्नफल बतलाते हैं कि इन स्वप्नों के दर्शन से तुम्हें प्रतापी पुत्र की प्राप्ति होगी जो अपने भुजबल

---

१ विस्तृत परिचय के लिये देखिये श्री अगरचन्द नाहटा तथा भंवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित 'ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह', पृ० ३९-४०

से चारों दिशाओं को जीतकर चौदह भुवनों का अधिपति बनेगा। प्रभात वर्णन नामक इस सर्ग के शेषांश में प्रभात का मार्मिक वर्णन हुआ है। तृतीय सर्ग में समुद्रविजय स्वप्नदर्शन का वास्तविक फल जानने के लिये कुशल ज्योतिषियों को निमंत्रित करते हैं। दैवज्ञों ने बताया कि इन चौदह स्वप्नों को देखनेवाली नारी की कुक्षि में ब्रह्मतुल्य जिन अवतीर्ण होते हैं। समय पर शिवा ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। चतुर्थ सर्ग में दिक्कुमारियां नवजात शिशु का सूतिकर्म करती हैं। मेरुवर्णन नामक पंचम सर्ग में इन्द्र शिशु को जन्माभिषेक के लिये मेरु पर्वत पर ले जाता है। इसी प्रसंग में मेरु का वर्णन किया गया है। छठे सर्ग मे भगवान के स्नात्रोत्सव का रोचक वर्णन है। सातवें सर्ग में चेटियों से पुत्रजन्म का समाचार पाकर समुद्रविजय आनन्द विभोर हो जाता है। वह पुत्र-प्राप्ति के उपलक्ष में राज्य के समस्त बन्दियों को मुक्त कर देता है तथा जीववध पर प्रतिबन्ध लगा देता है। उसने जन्मोत्सव का भव्य आयोजन किया। शिशु का नाम अरिष्टनेमि रखा गया। आठवें सर्ग में अरिष्टनेमि के शारीरिक सौंदर्य तथा परम्परागत छह ऋतुओं का हृदयग्राही वर्णन है। एक दिन नेमिनाथ ने पांचजन्य को कौतुकवश इस वेग से फूंका कि तीनों लोक भय से कम्पित हो गये। कृष्ण को आशंका हुई कि कहीं यह भुजबल से मुझे राज्यच्युत न कर दे, किन्तु उन्होंने श्रीकृष्ण को आश्वासन दिया कि मुझे सांसारिक विषयों मे रुचि नहीं है, तुम निर्भय होकर राज्य का उपभोग करो। नवें सर्ग में नेमिनाथ के माता-पिता के आग्रह से श्रीकृष्ण की पत्नियां, नाना युक्तियाँ देकर उन्हें वैवाहिक जीवन में प्रवृत्त करने का प्रयास करती हैं। उनका प्रमुख तर्क है कि मोक्ष का लक्ष्य सुख-प्राप्ति है, किन्तु वह विषय भोग से ही मिल जाये, तो कष्टदायक तप की क्या आवश्यकता? नेमिनाथ उनकी युक्तियों का दृढ़तापूर्वक खण्डन करते हैं। उनका कथन है कि मोक्षजन्य आनन्द तथा विषय-सुख में उतना ही अन्तर है जितना गाय तथा स्नुही के दूध में। विषयभोग से आत्मा तृप्त नहीं हो सकती, किन्तु माता के अत्यधिक आग्रह से वे, केवल उनकी इच्छापूर्ति के लिये गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करना स्वीकार कर लेते हैं। उग्रसेन की लावण्यवती पुत्री राजीमती से उनका विवाह निश्चय होता है। दसवें सर्ग में नेमिनाथ वधूगृह को प्रस्थान करते हैं। वहीं उनको देखने के लिए लालायित पुर-सुन्दरियों का वर्णन किया गया है। वधूगृह में बारात के भोजन के लिये बंधे हुए मरणासन्न निरीह पशुओं का चीत्कार सुनकर उन्हें आत्मग्लानि होती है। और वे विवाह को बीच में ही छोड़कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। ग्यारवें सर्ग के पूर्वार्द्ध में अप्रत्याशित प्रत्याख्यान से अपमानित राजीमती का करुण विलाप है। मोह-संयम युद्धवर्णन नामक इस सर्ग के उत्तरार्द्ध में मोह तथा संयम के प्रीतकात्मक युद्ध का अतीव रोचक वर्णन है। पराजित होकर मोह नेमिनाथ के हृदय दुर्ग को छोड़ देता है। जिससे उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। बारहवें सर्ग में यादव केवलज्ञानी प्रभु की वन्दना करने के लिये उज्जयन्त पर्वत पर जाते हैं। जिनेश्वर की देशना के प्रभाव से कुछ दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं तथा कुछ श्रावक धर्म स्वीकार करते है। जिनेन्द्र राजीमती को चारित्ररथ पर बैठा कर मोक्षपुरी भेज देते हैं और कुछ समय पश्चात् अपनी प्राणप्रिया से मिलने के लिये स्वयं भी परम पद को प्रस्थान करते हैं।

नेमिनाथकाव्य का कथानक अत्यल्प है, किन्तु कवि ने उसे विविध वर्णनों, संवादों तथा स्तोत्रों से पुष्ट—पुलित कर बारह सर्गों के विस्तृत आलवाल में आरोपित किया है। यह विस्तार महाकाव्य की कलेवरपूर्ति के लिए भले ही उपयुक्त हो, इससे कथावस्तु का विकासक्रम विशृंखलित हो गया है तथा कथाप्रवाह की सहजता नष्ट हो गयी है। कथानक के निर्वाह की दृष्टि से नेमिनाथमहाकाव्य को

अधिक सफल नहीं कहा जा सकता। पग-पग पर प्रासंगिक-अप्रासंगिक वर्णनों के सेतु बांध देने से काव्य की कथावस्तु रुक-रुक कर, मन्दगति से आगे बढ़ती है। वस्तुतः, कथानक की ओर कवि का अधिक ध्यान नहीं है। काव्य का अधिकतर भाग वर्णनों से ही आच्छन्न है। कथावस्तु का सूक्ष्म संकेत करके कवि तुरन्त किसी-न-किसी वर्णन में जुट जाता है। कथानक की गत्यात्मकता का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि तृतीय सर्ग में हुए पुत्रजन्म की सूचना समुद्रविजय को सातवें सर्ग में मिलती है। मध्यवर्ती तीन सर्ग शिशु के सूतिकर्म, जन्माभिषेक आदि के विस्तृत वर्णनों पर व्यय कर दिये गये हैं। तुलनात्मक दृष्टि से यहां यह जानना रोचक होगा कि रघुवंश में द्वितीय सर्ग में जन्म लेकर रघु चतुर्थ सर्ग में दिग्विजय से लौट भी आता है। द्वितीय सर्ग में प्रभात का तथा अष्टम में षड्ऋतु का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। काव्य के शेषांश में भी वर्णनों का बाहुल्य है। इस वर्णनप्राचुर्य के कारण काव्य की अन्विति खण्डित हो गयी है। काव्य के अधिकांश भाग मूल कथा-वस्तु के साथ सूक्ष्म-तन्तु से जुड़े हुए हैं। इसलिये काव्य का कथानक लंगड़ाता हुआ ही चलता है। किन्तु यह स्मरणीय है कि तत्कालीन महाकाव्य-परिपाटी ही ऐसी थी कि मूल कथा के सफल विनियोग की अपेक्षा विषयान्तरों को पल्लवित करने में ही काव्यकला की सार्थकता मानी जाती थी। अतः कीर्तिराज को इसका सारा दोष देना न्याय्य नहीं। वस्तुतः, उन्होंने वस्तुव्यापार के इन वर्णनों को अपनी बहुश्रुतता का क्रीडांगन न बना कर तत्कालीन काव्यरूढ़ि के लौहपाश से बचने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है।

## नेमिनाथमहाकाव्य में प्रयुक्त कतिपय काव्य-रूढ़ियाँ

संस्कृत महाकाव्यों की रचना एक निश्चित ढर्रे पर हुई है जिससे उनमें अनेक शिल्पगत समानताएं दृष्टिगम्य होती हैं। शास्त्रीय मानदंडों के निर्वाह के अतिरिक्त उनमें कतिपय काव्यरूढ़ियों का मनोयोगपूर्वक पालन किया गया है। यहाँ हम नेमिनाथ महाकाव्य में प्रयुक्त दो रूढ़ियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक समझते हैं क्योंकि इनका काव्य में विशिष्ट स्थान है तथा ये इन रूढ़ियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये रोचक सामग्री प्रस्तुत करती हैं। प्रथम रूढ़ि का सम्बन्ध प्रभात वर्णन से है। प्रभात वर्णन की परम्परा कालिदास तथा उनके परवर्ती अनेक महाकाव्यों में उपलब्ध है। कालिदास का प्रभात वर्णन आकार में छोटा होता हुआ भी मार्मिकता में बेजोड़ है। माघ का प्रभातवर्णन बहुत विस्तृत है, यद्यपि प्रातःकाल का इस कोटि का अलंकृत वर्णन समूचे साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। अन्य काव्यों में प्रभातवर्णन के नाम पर पिष्टपेषण ही हुआ है। कीर्तिराज का यह वर्णन कुछ विस्तृत होता हुआ भी सरसता तथा मार्मिकता से परिपूर्ण है। माघ की भाँति उसने न तो दूर की कौड़ी फेंकी है और न वह ज्ञान-प्रदर्शन के फेर में पड़ा है। उसने तो, कुशल चित्रकार की तरह, अपनी ललित-प्रांजल शैली में प्रातःकालीन प्रकृति के मनोरम चित्र अंकित करके तत्कालीन सहज वातावरण को अनायास उजागर कर दिया है।[२] मागधों द्वारा राजस्तुति, हाथी के जाग कर भी मस्ती के कारण आँखें न खोलने तथा करवट बदल कर शृङ्खलारव करने[३] और घोड़ों के द्वारा नमक चाटने की रूढ़ि का भी

२ ध्याने मनः स्वं मुनिभिर्विलम्बितं, विलम्बितं कर्कशरोचिषा तमः।
सुष्वाप यस्मिन् कुमुदं प्रभासितं, प्रभासितं पङ्कजबान्धवोपलैः॥ २.४१

३ निद्रासुखं समनुभूय चिराय रात्रावुद्भूतशृङ्खलारवं परिवर्त्य पार्श्वम्।
प्राप्य प्रबोधमपि देव! गजेन्द्र एष नोन्मीलयत्यलसनेत्रयुगं मदान्धः॥ २.५४

इस प्रसंग में प्रयोग किया गया है। अपनी स्वाभाविकता तथा मार्मिकता के कारण, कीर्तिराज का यह वर्णन संस्कृत-साहित्य के सर्वोत्तम प्रभातवर्णनों से टक्कर ले सकता है।

नायक को देखने को उत्सुक पौर युवतियों के सम्भ्रम तथा तज्जन्य चेष्टाओं का वर्णन करना संस्कृत-महाकाव्यों की एक अन्य बहुप्रचलित रूढि है, जिसका प्रयोग नेमिनाथ काव्य में भी हुआ है। बौद्ध कवि अश्वघोष से प्रारम्भ होकर कालिदास, माघ, हर्ष आदि से होती हुई यह काव्य रूढि कतिपय जैन कवियों की रचनाओं में भी दृष्टिगत होती है। अश्वघोष तथा कालिदास का यह वर्णन, अपने सहज लावण्य से चमत्कृत है। माघ के वर्णन में, उनके अन्य अधिकांश वर्णनों के समान, विलासिता की प्रधानता है। उपाध्याय कीर्तिराज का सम्भ्रमचित्रण यथार्थता से ओतप्रोत है, जिससे पाठक के हृदय में पुरसुन्दरियों की त्वरा सहसा प्रतिबिम्बित हो जाती है। नारी के नीवी-स्खलन अथवा अधोवस्त्र के गिरने का वर्णन, इस सन्दर्भ में, प्राय: सभी कवियों ने किया है। कालिदास ने अधो-वस्त्र को नीवीस्खलन का कारण बता कर मर्यादा की रक्षा की है। माघ ने इसका कोई कारण नहीं दिया जिससे उसकी नायिका का विलासी रूप अधिक मुखर हो गया है। नग्न नारी को जनसमूह में प्रदर्शित करना जैन यति की पवित्रतावादी वृत्ति के प्रतिकूल था, अत: उसने इस रूढि को काव्य में स्थान नहीं दिया। इसके विपरीत काव्य में उत्तरीय-पात का वर्णन किया गया है। शुद्ध नैतिकता वादी दृष्टि से तो शायद यह भी औचित्यपूर्ण नहीं किन्तु नीवीस्खलन की तुलना में यह अवश्य ही क्षम्य है, और कवि ने इसका जो कारण दिया है उससे तो पुरसुन्दरी पर कामुकता का दोष आरोपित ही नहीं किया जा सकता। कीर्तिराज की नायिका हाथ के आर्द्र प्रसाधन के मिटने के भय से उत्तरीय को नहीं पकड़ती, और वह उसी अवस्था में गवाक्ष की ओर दौड़ जाती है।

काचित्कराद्रप्रतिकर्मभङ्गभयेन हित्वा पतदुत्तरीयम्।
मञ्जीरवाचालपदारविन्दा द्रुतं गवाक्षाभिमुखं चचाल ॥
१०।१३

## चरित्रचित्रण

नेमिनाथ महाकाव्य के संक्षिप्त कथानक में पात्रों की संख्या भी सीमित है। कथानायक नेमिनाथ के अतिरिक्त उनके पिता समुद्रविजय, माता शिवादेवी, राजीमती, उग्रसेन, प्रतीकात्मक सम्राट् मोह तथा संयम और दूत कैतव ही महाकाव्य के पात्र हैं। परन्तु इन सब की चरित्रगत विशेषताओं का निरूपण करने से कवि को समान सफलता नहीं मिली।

### नेमिनाथ

जिनेश्वर नेमिनाथ काव्य के नायक हैं। उनका चरित्र पौराणिक परिवेश में प्रस्तुत किया गया है जिससे उनके चरित्र के कतिपय पक्ष ही उद्घाटित हो सके हैं और उसमें कोई नवीनता भी दृष्टिगत नहीं होती। वे देवोचित विभूति तथा शक्ति से सम्पन्न हैं। उनके धरा पर अवतीर्ण होते ही समुद्रविजय के समस्त शत्रु म्लान हो जाते हैं। दिक्कु-मारियाँ उनका सूतिकर्म करती हैं तथा जन्माभिषेक सम्पन्न करने के लिये स्वयं सुरपति इन्द्र जिनगृह में आता है। पाञ्चजन्य को फूँकना तथा शक्तिपरीक्षा में षोडशकला सम्पन्न श्रीकृष्ण को पराजित करना उनकी अनुपम शक्तिमत्ता के प्रमाण हैं।

नेमिनाथ वीतराग नायक हैं। यौवन की मादक अवस्था में भी वैषयिक सुखभोग उन्हें अभिभूत नहीं कर पाते। कृष्णपत्नियाँ नाना प्रलोभन तथा युक्तियाँ देकर उन्हें वैवाहिक जीवन में प्रवृत्त करने का प्रयास करती हैं, किन्तु वे हिमालय की भाँति अडिग तथा अडोल रहते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि वैषयिक सुख परमार्थ के शत्रु हैं। उनसे आत्मा उसी प्रकार तृप्त नहीं हो सकती जैसे जलराशि से सागर अथवा काठ से अग्नि। उनके विचार में धर्मविधि

को छोड़ कर कामातुर मूढ ही नारी रूपी औषध का सेवन करता है। वास्तविक सुख इहलोक में ही विद्यमान है।

हितं धर्मौषधं हित्वा मूढाः कामज्वरार्दिताः।
मुखप्रियमपथ्यन्तु सेवन्ते ललनौषधम् ॥ ६।२४
आत्मा तोपयितुं नैव शक्यो वैषयिकैः सुखैः।
सलिलैरिव पाथोधिः काष्ठैरिव धनञ्जयः ॥ ६।२५
अनन्तमक्षयं सौख्यं भुङ्क्ते नो ब्रह्मसद्मनि।
ज्योतिःस्वरूप एवायं तिष्ठत्यात्मा सनातनः ॥ ६।२६

नेमिनाथ पितृवत्सल पुत्र हैं। माता के आग्रह से वे, इच्छा न होते हुए भी केवल उनकी प्रसन्नता के लिए विवाह करना स्वीकार लेते हैं। किन्तु वधू-गृह में भोजनार्थ वध्य पशुओं का आर्त्त स्वर सुनकर उनका निर्वेद प्रबल हो जाता है और वे विवाह से विमुख होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते हैं।

**समुद्रविजय**—यदुपति समुद्रविजय कथानायक नेमिनाथ के पिता हैं। उनमें राजोचित समूचे गुण विद्यमान हैं। वे रूपवान्, शक्तिशाली, ऐश्वर्यसम्पन्न तथा प्रखर मेधावी हैं। उनके गुण अलंकरण मात्र नहीं हैं, वे व्यावहारिक जीवन में उनका उपयोग करते हैं (शक्तेरनुगुणाः क्रियाः १।३६)।

समुद्रविजय तेजस्वी शासक हैं। उनके वन्दी के शब्दों में अग्नि तथा सूर्य का तेज भले ही शान्त हो जाये, उनका पराक्रम सर्वत्र अप्रतिहत है।

विध्यायतेऽम्भसा वह्निः सूर्योऽब्देन पिधीयते।
न केनापि परं राजंस्त्वत्तेजः परिहीयते ॥ ७।२५

सिंहासनारूढ़ होते ही उनके शत्रु निष्प्रभ हो जाते हैं। फलतः शत्रु लक्ष्मी ने उनका इस प्रकार वरण किया जैसे नवयौवना बाला विवाहवेला में पति का (१।३८)। उनका राज्य पाशविक बल पर आधारित नहीं है। केवल क्षमा को नपुंसकता तथा निर्बाध प्रचण्डता को अविवेक मान कर, इन दोनों के समन्वय के आधार पर ही वे राज्य-संचालन करते हैं। 'न खरो न भूयसा मृदुः' उनकी नीति का मूलमन्त्र है।

क्लीवत्वं केवला क्षान्तिश्चण्डत्वमविवेकिता।
द्वाभ्यामतः समेताभ्यां सोऽर्थसिद्धिममन्यत ॥ १।४३

प्रशासन के चारु संचालन के लिये उन्होंने न्यायप्रिय तथा शास्त्रवेत्ता मन्त्रियों को नियुक्त किया है (१।४७)। उनके स्मितकान्त ओष्ठ मित्रों के लिये अक्षय कोश लुटाते हैं तो उनकी भ्रूभंगिमा शत्रुओं पर वज्रपात करती है।

वज्रदण्डायते सोऽयं प्रत्यनीकमहीभुजाम्।
कल्पद्रुमायते कामं पादद्वन्द्वोपजीविनाम् ॥ १।५२

प्रजाप्रेम समुद्रविजय के चरित्र का एक अन्य गुण है। यथोचित कर-व्यवस्था से उसने सहज ही प्रजा का विश्वास प्राप्त कर लिया है।

आकाराय ललौ लोकाद् भागधेयं न तृष्णया। १।४५

समुद्रविजय पुत्रवत्सल पिता हैं। पुत्र-जन्म का समाचार सुनकर उनकी बाछें खिल जाती हैं। पुत्र-प्राप्ति के उपलक्ष्य में वे मुक्तहस्त से धन वितरित करते हैं, वन्दियों को मुक्त कर देते हैं तथा जन्मोत्सव का ठाटदार आयोजन करते हैं, जो निरन्तर बारह दिन तक चलता है।

समुद्रविजय अन्तस् से धार्मिक व्यक्ति हैं। उनका धर्म सर्वोपरि है। आर्हत-धर्म उन्हें पुत्र, पत्नी, राज्य तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय है।

प्राणेभ्योऽपि धनेभ्योऽपि योपिद्भ्योऽप्यधिकं प्रियम्।
सोऽमंस्त मेदिनीजानिर्विशुद्धं धर्ममार्हतम् ॥ १।४२

इस प्रकार समुद्रविजय त्रिवर्गसाधन में रत हैं। इस सुव्यवस्था तथा न्यायपरायणता के कारण उनके राज्य में समय पर वर्षा होती है, पृथ्वी रत्न उपजाती है तथा प्रजा चिरजीवी है। और वह स्वयं राज्य को इस प्रकार निश्चिन्त होकर भोगते हैं जैसे कामी कामिनी की कंचन काया को।

काले वर्षति पर्जन्यः सूते रत्नानि मेदिनी।
प्रजाश्चिराय जीवन्ति तस्मिन् भुञ्जति भूतलम् ॥ १।४४

समुद्गमभङ्गशार्यं स मगरदनयामलम् ।

कामीव कामिनीकायं स दमात्स्यामलम् ॥ १.१४

**राजीमती**—राजीमती काव्य की अभागी नायिका है। वह शीलसम्पन्न तथा अतुल रूपवती है। उसे नेमिनाथ की पत्नी बनने का सौभाग्य मिलने लगा था, किन्तु क्रूर विधि ने, पलक झपकते ही उसकी नवोदित आशाओं पर पानी फेर दिया। विवाह में भोजनार्थ भावी व्यापक हिंसा से उद्विग्न होकर नेमिनाथ दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। इस अकारण निराकरण से राजीमती स्तब्ध रह जाती है। बन्धुजनों के समझाने-बुझाने से उसके क्षत हृदय को सान्त्वना तो मिलती है, किन्तु उसका जीवन-कोश रीत चुका है। अन्ततः वह केवलज्ञानी नेमिनाथ की देशना से परमपद को प्राप्त करती है।

**उग्रसेन**—भोजपुत्र उग्रसेन का चरित्र मानवीय गुणों से ओतप्रोत है। वह उच्चकुलप्रसूत नीतिकुशल शासक है। वह शरणागत वत्सल, गुणरत्नों की निधि तथा कोमलता का आगार है। लक्ष्मी तथा सरस्वती, अपना परम्परागत द्वेष छोड़ कर उसके पास एक साथ रहती हैं। विरोधी नृपगण उसके तेज से भीत होकर कन्याओं के उप-हारों से उसका रोष शान्त करते हैं।

अन्य पात्र

शिवादेवी नेमिनाथ की माता है। काव्य में उसके चरित्र का पल्लवन नहीं हुआ है। प्रतीकात्मक सम्राट मोह तथा संयम राजनीतिकुशल शासकों की भाँति आचरण करते हैं। मोहराज दूत कैतव को भेजकर संयम नृपति को नेमिनाथ का हृदय दुर्ग छोड़ने का आदेश देता है। दूत पूर्ण निपुणता से अपने स्वामी का पक्ष प्रस्तुत करता है। संयमराज का मन्त्री शुद्ध विवेक दूत की उक्तियों का मुँह-तोड़ उत्तर देता है।

**प्रकृति-चित्रण**—नेमिनाथकाव्य के विस्तृत फलक पर प्रकृति को व्यापक स्थान प्राप्त हुआ है। वस्तुतः नेमिनाथ महाकाव्य की भावसमृद्धि तथा काव्यमत्ता का प्रमुख कारण इसका मनोरम प्रकृति-चित्रण है। कीर्तिराज ने महाकाव्य के अन्य पक्षों की भाँति प्रकृति-चित्रण में भी अपनी मौलि-कता का परिचय दिया है। कालिदासोत्तर महाकाव्यों में प्रकृति के उद्दीपन पक्ष की पार्श्वभूमि में उक्ति वैचित्र्य के द्वारा नायक-नायिकाओं के विलासितापूर्ण चित्र अङ्कित करने की परिपाटी है। प्रकृति के आलम्बन-पक्ष के प्रति वाल्मीकि तथा कालिदास का-सा अनुराग अन्य संस्कृत कवियों में दृष्टिगोचर नहीं होता। कीर्तिराज ने यद्यपि विविध शैलियों में प्रकृति का चित्रण किया है, किन्तु प्रकृति के सहज-स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करने में उनका मन अधिक रमा है और इन स्वभावोक्तियों में ही उनकी काव्यकला का उत्कृष्ट रूप व्यक्त हुआ है।

प्रकृति के आलम्बन पक्ष के चित्रण में कीर्तिराज ने सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिचय दिया है। वर्ण्यविषय के साथ तादात्म्य स्थापित करने के पश्चात् प्रस्तुत किये गये ये चित्र अद्भुत सजीवता से स्पन्दित हैं। हेमन्त में दिन क्रमशः छोटे होते जाते हैं तथा कुहासा उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। उपमा की सुरुचिपूर्ण योजना के द्वारा कवि ने हेमन्तकालीन इस प्राकृतिक तथ्य का मार्मिक चित्र अङ्कित किया है।

उपययौ तनुतामिह लाघवं दिनगणो खलराग इवानिशम् ।

ववृधिरे च तुषारसमृद्धयोऽनुगमय सुजनप्रणया इव ॥८।५८

शरत्कालीन उपकरणों का यह स्वाभाविक चित्र मनो-रमता से ओतप्रोत है।

भान्तः प्रवेशु कलमा विरोधुर्दधारभ्रुतपूर्वहृष्टः कलानि ।

सम्भूय सानन्दमिवावनीशः शरद्गुणाः सर्वजनालयेषु ॥८।८२

इस श्लेषोपमा में शरत् का समग्र रूप उजागर करने में कवि को आशातीत सफलता मिली है।

रसविमुक्तविलोलपयोधरा हसितकाशलसल्ललितांकिता ।
क्षरित-पश्चिम-शालिकणद्विजा जयति कापि शरज्जरती जितो ॥
८।४३

पावस में दामिनी की दमक, वर्षा की अविराम फुहार तथा शीतल बयार मादक वातावरण की सृष्टि करती हैं । पवन झकोरे खाकर मेघमाला, मधुरमन्द्र गर्जना करती हुई गगनांगन में घूमती फिरती है । वर्षाकाल के इस सहज दृश्य को काव्य में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है । उपमा के प्रयोग ने भावाभिव्यक्ति को समर्थता प्रदान की है ।

क्षरदभ्रजला कलगर्जिता सचपला चपलानिलनोदिता ।
दिवि चचाल नवाम्बुदमण्डली गजघटेव मनोभवभूपतेः ॥८।३८

नेमिनाथमहाकाव्य में पशुप्रकृति के भी अभिराम चित्र प्रस्तुत किये गये हैं । ये एक ओर कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति के साक्षी हैं और दूसरी ओर उसके पशुजगत् की चेष्टाओं के गहन अध्ययन को व्यक्त करते हैं । हाथी का यह स्वभाव है कि वह रात भर गहरी नींद सोता है । प्रातःकाल जागकर भी वह अलसाई आँखों को मस्ती से मूँदे पड़े रहता है किन्तु बार-बार करवटें बदल कर पाद-शृंखला से शब्द करता है जिससे उसके जगने की सूचना गजपालों को मिल जाती है । निम्नोक्त स्वभावोक्ति में यह गजप्रकृति साकार हो उठी है ।

निद्रासुखं समनुभूय चिराय रात्रा-
वुद्भूतशृङ्खलारवं परिवर्त्य पार्श्वम् ।
प्राप्य प्रबोधमपि देव ! गजेन्द्र एष
नोन्मीलयत्यलसनेत्रयुगं मदान्धः ॥ २।५४

व्याध के मधुरगीत के वशीभूत होकर, अपनी प्रियाओं के साथ वन में चौकड़ी भरते हुए हरिणों का हृदयग्राही चित्र इस प्रकार अङ्कित किया गया है ।

कलगीतिनादरसरङ्गवेदिनो हरिणा अमी हरिणलोचने वने ।
सह कामिनीभिरलमुत्पतन्ति हे, परिपीतवातपरिणोदिता इव ॥
१२।११

ह्रासकालीन महाकाव्य-प्रवृत्ति के अनुसार कीर्तिराज ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का भी वर्णन अपने काव्य में किया है । उद्दीपन रूप में प्रकृति मानव की भावनाओं को उद्वेलित करती है । प्रस्तुत पंक्तियों में स्मरपटहसदृश घनगर्जना को विलासी जनों की कामाग्नि को प्रदीप्त करते हुए चित्रित किया गया है जिससे वे रणशूर कामरण में पराजित होकर प्राणवल्लभाओं की मनुहार करने में प्रवृत्त हो जाते हैं ।

स्मरपतेः पटहानिव वारिदान्
निनदतोऽथ निशम्य विलासिनः ।
समदना न्यपतन्नवकामिनी-
चरणयो रणयोगविदोऽपि हि ॥ ८।३७

उद्दीपन पक्ष के इस वर्णन में प्रकृति पृष्ठभूमि में चली गयी है और प्रेमी युगलों का भोग-विलास प्रमुख हो गया है, किन्तु परम्परा से ऐसे वर्णनों की गणना उद्दीपन के अन्तर्गत ही की जाती है ।

प्रियकरः कठिनस्तनकुम्भयोः प्रियकरः सरसार्तवपल्लवैः ।
प्रियतमां समवीजयदाकुलां नवरतां वरतान्तलतागृहे ॥
८।२३

नेमिनाथ काव्य में प्रकृति का मानवीकरण भी हुआ है । प्रकृति पर मानवीय भावनाओं तथा कार्यकलापों का आरोप करने से वह मानव की भाँति आचरण करती है । प्रातःकाल सूर्य के उदित होते ही कमलिनी विकसित हो जाती है और भ्रमरगण उसका रसपान करने लगते हैं इसका चित्रण कवि ने सूर्य पर नायक, कमलिनी में नायिका तथा भ्रमरगण पर परपुरुष का आरोप करके किया है । अपनी प्रेयसी को पर पुरुषों से चुम्बित देख कर सूर्य क्रोध से लाल हो जाता है तथा कठोर पादप्रहार से उस व्यभि-चारिणी को दण्डित करता है ।

यत्र भ्रमद्भ्रमरचुम्बितानना-
मवेक्ष्य कोपादिव मूर्ध्नि पद्मिनीम् ।

स्वप्रेयसीं लोहितमूर्तिमावहन्
कठोरपादैर्निजघान तापनः ॥ २।४२

निम्नलिखित पद्य में लताओं को प्रगल्भा नायिकाओं के रूप में चित्रित किया गया है जो पुष्पवती होती हुई भी तरुणों के साथ बाह्य रति में लीन हो जाती हैं।

कोमलाङ्ग्यो लताकान्ताः प्रवृत्ता यस्य कानने।
पुष्पवत्योऽप्यहो चित्रं तरुणालिङ्गनं व्यधुः ॥ १।३१

कतिपय स्थलों पर प्रकृति का आदर्श रूप चित्रित किया गया है। ऐसे प्रसंगों में प्रकृति निसर्गाबद्ध आचरण करती है। जिनजन्म के अवसर पर प्रकृति ने अपनी स्वभावगत विशेषताओं को छोड़ कर आदर्श रूप प्रकट किया है।

शरदि दशदिशोऽत्रामेयनैर्मल्यमापुः
समजनि च समस्ते जीवलोके प्रकाशः ॥
अपि मृदुरनुकूला वायवो रेणुवर्जं
विलयमगमदापद् दौःस्थ्यदुःस्थ पृथिव्याम् ॥ ३।१६

प्रकृतिचित्रण में कीर्तिराज ने परिगणनात्मक शैली का भी आश्रय लिया है। निम्नोक्त पद्य में विभिन्न वृक्षों के नामों की गणना मात्र कर दी है।

सहकारएष खदिरोऽयमर्जुनोऽयमिमौ पलाशबकुलौ सहोद्गतौ।
कुटजावमू सरल एष चम्पको मदिराक्षि पीलुरिति गवेष्यताम् ॥
१२।१३

काव्य में एक स्थान पर प्रकृति स्वागतकर्त्री के रूप में प्रकट हुई है।

रचयितुं सुविश्रामविधिक्रियां परिक्रमात्तृयतोऽत्र मनोरमम्।
कुसुमिता फलिताश्रवणावली सुवयसां वयसां कलकूजितैः ॥
८।१८

इस प्रकार कीर्तिराज ने प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया है। ह्रासकालीन संस्कृत महाकाव्यकारों की भाँति उन्होंने प्रकृति चित्रण में यमक की योजना की है किन्तु उनका यमक न केवल दुरूहता से मुक्त है अपितु इससे प्रकृति वर्णनों की प्रभावशालिता में वृद्धि हुई है।

**सौन्दर्य चित्रण**—कीर्तिराज ने काव्य के कतिपय पात्रों के कायिक सौन्दर्य का हृदयहारी चित्रण किया है, परन्तु उनकी कला की सम्पदा राजीमती तथा देवांगनाओं के चित्रों को ही मिली है। सौन्दर्य-चित्रण में अधिकतर नखशिखप्रणाली का आश्रय लिया गया है जिसके अन्तर्गत वर्ण्य पात्र के अंगों-प्रत्यंगों का सूक्ष्म वर्णन किया जाता है। कवि ने बहुधा परम्परामुक्त उपमानों के द्वारा अपने पात्रों का सौन्दर्य व्यक्त किया है किन्तु उपमानयोजना में उपमेय-सादृश्य का ध्यान रखने से उनके सौन्दर्य चित्रों में सहज आकर्षण तथा सजीवता का समावेश हो गया है। जहाँ नवीन उपमानों का प्रयोग किया गया है वहाँ काव्य-कला में अद्भुत भावप्रेषणीयता आ गयी है। निम्नोक्त पद्य में देवांगनाओं की जघनस्थली को कामदेव की आसनगद्दी कह कर उसकी पुष्टता तथा विस्तार का सहज भान करा दिया गया है।

वृता दुकूलेन सुकोमलेन विलम्बकाञ्चीगुणदामरम्या।
विभाति यासां जघनस्थली सा मनोभवस्यासनगन्दिवेव ॥
६।४७

इसी प्रकार राजीमती की जंघाओं को कदलीस्तम्भ तथा कामगज के आलान के रूप में चित्रित करके एक ओर उनकी सुडौलता तथा शीतलता को व्यक्त किया गया है तो दूसरी ओर, उनकी वशीकरण क्षमता को उजागर कर दिया गया है।

बभावूरुयुगं यस्याः कदलीस्तम्भकोमलम्।
आलान इव दुर्दान्त-मीनकेतनहस्तिनः ॥ ६।५५

नेमिनाथ महाकाव्य में उपमान की अपेक्षा उपमेय अंगों का वैशिष्ट्य बताकर, व्यतिरेक के द्वारा भी पात्रों का लोकोत्तर सौन्दर्य चित्रित किया गया है। राजीमती का मुखमाधुरी से पराजित लावण्यनिधि चन्द्रमा को, लज्जावश

मुंह छिपाने के लिये, [illegible] फिरता हुआ चित्रित करके नवयौवना राजीमती के सर्वातिशायी मुख-सौन्दर्य को मूर्त कर दिया है।

यस्या वक्त्रेण जितः शंके लाघवं प्राप्य चन्द्रमाः।
तूलवद्वायुनोत्क्षिप्तो बम्भ्रमीति नभस्तले ॥३।५२

**रसयोजना**

शास्त्रीय विधान के अनुसार महाकाव्य में शृङ्गार, वीर तथा शान्त में से किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिए। नेमिनाथ महाकाव्य में शृङ्गार का अङ्गी रस के रूप में पल्लवन हुआ है। वीर, रौद्र, करुण आदि शृङ्गार रस के पोषक बन कर आए हैं। ऋतुवर्णन के प्रसंग में शृङ्गार के अनेक रमणीक चित्र दृष्टिगत होते हैं।

स्मरपतेः पटहानिव वारिदान् निनदतोऽथ निशम्य विलासिनः।
समदना न्यपतन्नवकामिनीचरणयोः रणयोगविदोऽपि हि ॥
८।३७

यहाँ नायक की नायिकाविषयक रति स्थायीभाव है। प्रमदा आलम्बन विभाव है। कामदुन्दुभितुल्य मेघगर्जना उद्दीपन विभाव है। रणजेता नायक का मानभंजन के निमित्त नायिका के चरणों में गिरना अनुभाव है। औत्सुक्य, मद आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से पुष्ट होकर नायक का स्थायीभाव शृङ्गार के रूप में निष्पन्न हुआ है।

निम्नोक्त पद्य में शृंङ्गाररस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

उपवने पवनेरितपादपे नवतरं वत रन्तुमनाः परा।
सकरुणा करुणावचये प्रियं प्रियतमा यतमानमवारयत् ॥८।२२

पांचवें सर्ग में सहसा सिंहासन के प्रकम्पित होने से क्रोधोन्मत्त हुए इन्द्र के वर्णन में रौद्र रस का भव्य चित्रण हुआ है।

ललाटपट्टे भ्रुकुटीभयानकं भ्रुवौ भुजंगाविव दारुणाकृती।
दृशः करालां ज्वलिताग्निकुण्डवच्चण्डार्यमाभं मुमुचास्वेऽसौ॥
ददंश दन्तैः रदना [illegible] दृष्टा [illegible]धराविवाधरौ॥
प्रस्फोटयामास करावितस्ततः क्रोधद्रुमस्योल्वणपल्लवाविव ॥
५।१३-४

यहाँ इन्द्र का हृद्गत क्रोध स्थायीभाव है। अज्ञात जिनेश्वर आलम्बन विभाव है। सिंहासन का अकस्मात काँपना उद्दीपन विभाव है। ललाट पर भृकुटि का प्रकट होना, भौंहों का तनना, नेत्रों का अग्निकुण्ड की भाँति अग्निवर्षा करना, अधरों का काटना तथा हाथों का स्फोटन अनुभाव हैं। अमर्ष, आक्षेप, उग्रता आदि संचारी भाव हैं। इनके संयोग से क्रोध रौद्र रस के रूप में व्यक्त हुआ है।

प्रतीकात्मक सम्राट मोह के दूत तथा संयमराज के नीतिनिपुण मन्त्री विवेक की उक्तियों के अन्तर्गत, ग्यारहवें सर्ग में, वीररस की कमनीय झांकी देखने को मिलती है।

यदि शक्तिरिहास्ति ते प्रभोः प्रतिगृह्णातु तदा तु तान्यपि।
परमेष विलोलजिह्वया कपटी भापयते जगज्जनम् ॥११।४४

मन्त्री विवेक का उत्साह यहाँ स्थायी भाव के रूप में वर्तमान है। मोहराज आलम्बन है। उसके दूत की कटूक्तियाँ उद्दीपन का काम करती हैं। मन्त्री का विपक्ष को चुनौती देना तथा मोह की वाचालता का मजाक उड़ाना अनुभाव हैं। धृति, गर्व, तर्क आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार वीररस के समूचे उपकरण यहां विद्यमान हैं।

इसी सर्ग में अप्रत्याशित प्रत्याख्यान से शोकतप्त राजीमती के विलाप में करुणरस की सृष्टि हुई है।

अथ भोजनरेन्द्रपुत्रिका प्रविमुक्ता प्रभुणा तपस्विनी।
व्यलपद्गलदश्रुलोचना शिथिलांगा लुठिता महीतले ॥११।१

राजीमती का निराकरणजन्य शोक स्थायीभाव है। नेमिनाथ आलम्बन विभाव हैं। विवाह से अचानक विरत होकर उनका प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना उद्दीपन विभाव है। पृथ्वी पर लोटना, अंगों का शिथिल होना तथा आसु

देहाना अनुभाव हैं। विषाद, चिन्ता, स्मृति आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनसे सम्पुष्ट होकर राजीमती के शोक की अभिव्यक्ति करुण रस के रूप में हुई है।

इस प्रकार कीर्तिराज ने काव्य में रसात्मक प्रसंगों के द्वारा पात्रों के मनोभावों को वाणी प्रदान की है तथा काव्य सौन्दर्य को प्रस्फुटित किया है।

भाषा

नेमिनाथ महाकाव्य की सफलता का अधिकांश श्रेय इसकी प्रसादपूर्ण प्रांजल भाषा को है। विद्वत्ताप्रदर्शन, उक्तिवैचित्र्य, अलंकरणप्रियता आदि समकालीन प्रवृत्तियों के प्रबल आकर्षण के समक्ष आत्मसमर्पण न करना कीर्तिराज की मौलिकता तथा सुरुचि का द्योतक है। नेमिनाथ महाकाव्य की भाषा महाकाव्योचित गरिमा तथा प्राणवत्ता से मण्डित है। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है किन्तु अनावश्यक अलंकरण की ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं। इसीलिये उसके काव्य में भावपक्ष तथा कलापक्ष का मनोरम समन्वय दृष्टिगत होता है। नेमिनाथ महाकाव्य की भाषा की मुख्य विशेषता यह है कि वह, भाव तथा परिस्थिति के अनुसार स्वतः अपना रूप परिवर्तित करती जाती है। फलस्वरूप वह कहीं माधुर्य से तरलित है तो कहीं ओज से प्रदीप्त। भावानुकूल शब्दों के विवेकपूर्ण चयन तथा कुशल गुम्फन से ध्वनिसौन्दर्य की सृष्टि करने में कवि ने सिद्धहस्तता का परिचय दिया है। अनुप्रास तथा यमक के सुरुचिपूर्ण प्रयोग से उसके काव्य के माधुर्य में रणत्कारमय झंकृति का समावेश हो गया है। निम्नलिखित पद्य में यह विशेषता भरपूर मात्रा में विद्यमान है।

गुरुता च यत्र सदनागुरुणा वसुधा क्रियेत सुरभिर्वसुधा।
रमणावुरीति रमणीरमता रमणी सुरम्य सुविहारमणी ॥५।५१

शृङ्गार आदि कोमल भावों के चित्रण की पदावली मक्खन-सी मृदुल, सौन्दर्य-सी सुन्दर तथा यौवन-सी मादक है। ऐसे प्रसंगों में सर्वत्र प्रसादगुण वाली पदावली का प्रयोग हुआ है। नवें सर्ग में भाषा के ये समस्त गुण देखे जा सकते हैं।

विवाहय कुमारेन्द्र ! बालाश्चञ्चललोचनाः।
भुङ्क्ष्व भोगान् समं ताभिरप्सरोभिरिवामरः ॥
रूप-सौन्दर्य-सम्पन्नां लीलालङ्कारधारिणीम्।
करद्धावण्य-पीयूष-सान्द्र-पीनपयोधराम् ॥
हेमाब्जगर्भगौराङ्गीं मृगाक्षीं कुलबालिकाम्।
ये नोपभुञ्जते लोके वेधसा वञ्चिता हि ते ॥
संसारे सारभूतो य किलायतप्रमदाजनः।
सोऽसारस्त्वेतवामाति गर्दभस्य गुणोपम ॥९।१२-१५

शार्दूलविक्रीडित जैसे विशालकाय छन्द में भाषा के माधुर्य को यथावत् सुरक्षित रखना कवि की बहुत बड़ी उपलब्धि है—

पुण्याढ्यं कमला यथा निजपतिं योषाः सुशीला यथा
सूत्रार्थं विशदा यथा त्रिभुवनस्वारा यथा सौजन्यम्।
पुंसां धर्म यथा पिपास हृदय सानां यथा भूतपः
सानन्दं कुलपोदय स्ति यदुनाथस्वगुम्य तथा ॥
१०।१०

यद्यपि समस्त महाकाव्य प्रसादगुण को माधुरी से ओत-प्रोत है, किन्तु सातवें सर्ग में प्रसाद का सर्वोत्तम रूप दीख पड़ता है। इसमें नित सहज, सरल तथा सुबोध भाषा का प्रयोग हुआ है, उस पर साहित्यदर्पणकार की यह उक्ति 'चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः' अक्षरशः चरितार्थ होती है।

क्रमो राज समास्थानं नानाशिल्पिविनिर्मितम्।
प्रभोर्जन्ममहो द्रष्टुं स्वर्विमानमिवागतम् ॥७।१३
अनेकैः स्वार्थमिन्द्राद्रिविनीरक्रावत्तोरणं।
राजमार्गस्तदासीनं सनीरिव पत्रद्रुमः ॥ ७।१५

ओजस्वल की भाषा सबसे सरल है। नवें सर्ग में नेमिनाथ की मौलिकता उक्तियों भाषा की इसी सरलता, मधुरता तथा कोमलता से युक्त है।

हितं धर्मौषधं हित्वा मूढाः कामज्वरार्दिताः ।
मुखप्रियमपथ्यन्तु सेवन्ते ललनौषधम् ॥६।२४

आत्मा तोषयितुं नैव शक्यो वैषयिकैः सुखैः ।
सलिलैरिव पाथोधिः काष्ठैरिव धनञ्जयः ।६।२५

किन्तु क्रोध तथा युद्ध के वर्णन में भाषा ओज से परिपूर्ण हो जाती है। ओजव्यंजक कठोर शब्दों के द्वारा यथेष्ट वातावरण का निर्माण करके कवि ने भावव्यंजना को अतीव समर्थ बना दिया है। मोह तथा संयम के युद्ध वर्णन में भाषा की यह शक्तिमत्ता वर्त्तमान है।

रणतूर्यरवे समुत्थिते भटहुङ्कारपरिगर्जितेऽम्बरे ।
उभयोर्बलयोः परस्परं परिलग्नोऽथ विभीषणा रणः ॥११।७६

पांचवें सर्ग में इन्द्र के क्रोधवर्णन में जिस पदावली की योजना की गयी है, वह अपने वेग तथा नाद से हृदय में ओज का संचार करती है। इस दृष्टि से यह पद्य विशेष दर्शनीय है।

विपक्षपक्षक्षयबद्धकक्ष विद्युल्लतानामिव सञ्चयं तत् ।
स्फुरत्स्फुलिङ्गं कुलिशं करालं ध्यात्वेति यावत्स जिघृक्षतिस्म
॥ ५।६

कीर्त्तिराज की भाषा में बिम्ब निर्माण की पूर्ण क्षमता है। सम्भ्रम के चित्रण में भाषा त्वरा तथा वेग से पूर्ण है। देवसभा के इस वर्णन में, उपयुक्त शब्दावली के प्रयोग से सभासदों की इन्द्रप्रयाणजन्य आकुलता साकार हो उठी है।

दृष्टिं ददाना सकलासु दिक्षु किमेतदित्याकुलितं ब्रुवाणा ।
उत्थानतो देवपतेरकस्मात् सवीरि चुक्षोभ सभा सुधर्मा ॥
५।१८

नेमिनाथ काव्य में यत्र-तत्र मधुर सूक्तियों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है जो इसकी भाषा की लोकसम्पृक्ति की सूचक हैं तथा काव्य की प्रभावकारिता को वृद्धिगत करतीं हैं। कतिपय मार्मिक सूक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं।

१—ही प्रेम तद्यद्वशवर्तिचित्तः प्रत्येति दुःखं सुखरूपमेव
।२।४३

२—विचार्य वाचं हि वदन्ति धीराः ।३।१८

३—उच्चैः स्थितिर्वा क्व भवेज्जडानाम् । ६।१३

४—स्थानं पवित्राः क्व न वा लभन्ते । ६।३१

५—जनोऽभिनवे रमतेऽखिलः । ८।३

६—काले रिपुमप्याश्रयेत्सुधीः । ८।४६

७—सकलोऽप्युदितं श्रयतीह जनः । ८।५३

८—पित्रोः सुखायैव प्रवर्तन्ते सुनन्दनाः । ६।३४

९—शुद्धिर्न तपो विनात्मनः । ११।२३

१०—नहि कार्या हितदेशना जड़े । ११।४८

११—नहि धर्मकर्मणि सुधीर्विलम्ब्यते । १२।२

इन बहुमूल्य गुणों से भूषित होती हुई भी नेमिनाथ-काव्य की भाषा में कतिपय दोष हैं, जिनकी ओर संकेत न करना अन्यायपूर्ण होगा। काव्य में कुछ ऐसे स्थलों पर विकट समासान्त पदावली का प्रयोग किया गया है जहाँ उसका कोई औचित्य नहीं है। युद्धादि के वर्णन में तो समासबहुला शैली अभीष्ट वातावरण के निर्माण में सहायक होती है, किन्तु मेरुवर्णन के प्रसंग में इसकी क्या सार्थकता है?

भित्तिप्रतिज्वलदनेकमनोज्ञरत्ननिर्यन्मयूखपटलीसतत प्रकाशाः ।
द्वारेषु निर्मकपुष्करिणीजलोर्मिमूर्द्धन्महमुषितयात्रिकगात्रघर्माः
॥ ५।५२

इसके अतिरिक्त नेमिनाथ महाकाव्य में यत्र-तत्र, छन्द-पूर्ति के लिये बलात् अतिरिक्त पदों का प्रयोग किया गया है। स्वकान्तरक्ताः के पश्चात् 'शुचयः' तथा 'पतिव्रताः' (२।३६) का, शुक के साथ 'वि' का (२।५८) मराल के साथ खग का (२।५६), विशारद के साथ 'विशेष्यजन' का (११।१६) तथा वदन्ति के साथ 'वाचम्' का (३।१८) प्रयोग सर्वथा आवश्यक नहीं है। इनसे एक ओर, इन स्थलों पर,

कवि की छन्द प्रयोग में असमर्थता व्यक्त होती है, दूसरी ओर, यहाँ वह काव्यदोष आ गया है, जो साहित्यशास्त्र में 'अधिक' नाम से ख्यात है।

नेमिनाथ काव्य में कतिपय देशी शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। बीच के लिये विचाल, गद्दी के लिये गन्दिका, माली के लिये मालिकः उल्लेखनीय हैं। इनमें से 'विचाल' शब्द कुछ उच्चारण भिन्नता के साथ, पंजाबी में अब भी प्रचलित है।

नेमिनाथ महाकाव्य की भाषा में निजी आकर्षण है। वह प्रसंगानुकूल, प्रौढ़, सहज तथा प्रांजल है। निस्सन्देह इससे संस्कृत-साहित्य गौरवान्वित हुआ है।

**पाण्डित्यप्रदर्शन तथा शाब्दी क्रीड़ा**

कीर्तिराज ने बारहवें सर्ग में चित्रालंकारों के द्वारा काव्य में चमत्कृति लाने तथा पाण्डित्य प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। सौभाग्यवश ऐसे पद्यों की संख्या बहुत कम है। सम्भवतः इन पद्यों के द्वारा वे बतला देना चाहते हैं कि मैं समवर्ती काव्यशैली से अनभिज्ञ अथवा चित्रकाव्य की रचना करने में असमर्थ नहीं हूँ, किन्तु अपनी सुरुचि के कारण मुझे वह ग्राह्य नहीं है। ऐसे स्थलों पर भाषा के साथ मनमाना खिलवाड़ किया गया है जिससे उसमें दुरूहता तथा विलष्टता का समावेश हो गया है।

निम्नलिखित पद्य में केवल दो अक्षरों, 'ल' तथा क, का प्रयोग हुआ है।

लुलल्लोलाकलाकेलिकीला केलिकलाकुलम्।
लोकालोकाकलं कालं कोकिलालिकुलालका॥ १२।३६

इस पद्य की रचना में केवल एक व्यञ्जन तथा तीन स्वरों का आश्रय लिया गया है।

अनीतातेन एतां ते तन्तन्तु ततताततिम्।
ऋतनां तां तु तोतोतु तातोऽतनां ततोऽन्ततुत्॥ १२।३७

निम्नोक्त पद्य की रचना अनुलोम विलोमात्मक विधि से हुई है। अतः यह प्रारम्भ तथा अन्त से एक समान पढ़ा जा सकता है।

सुद गे ततदम्भस्दं स्वं भदस्तमेद सु।
रक्ष तात! विशामीन! शामीशावितनाक्षर॥ १२।३८

प्रस्तुत दो पद्यों की पदावली में पूर्ण साम्य है, किन्तु पदयोजना तथा विग्रह के वैभिन्य के आधार पर इनसे दो भिन्न-भिन्न अर्थ निकाले गये हैं।

महामद भवाऽऽरागहरि विग्रहहारिणम्।
प्रमोदजाततारेन श्रेयस्करं महासकम्॥ १२।४१
महाम दम्भवारागहरि विग्रहहारिणम्।
प्रमोदजातता रेनं श्रेयस्कर महासकम्॥ १२।४२

ये पद्य विद्वत्ता को चुनौती हैं। टीका के बिना इनका वास्तविक अर्थ समझना विद्वानों के लिये भी सम्भव नहीं। ये रसचर्वणा में भले ही बाधक हों, इनसे कवि का अगाध पाण्डित्य, रचनाकौशल तथा भाषाधिकार व्यक्त होता है। माघ, वस्तुपाल आदि की भाँति पूरे सर्ग में इन कलाबाजियों का सन्निवेश न करके कीर्तिराज ने अपने पाठकों को बौद्धिक व्यायाम से बचा लिया है।

**अलंकारविधान**– अलङ्कारयोजना में भी कीर्तिराज की मौलिक सूझ-बूझ का परिचय मिलता है। नेमिनाथ काव्य में शब्दालङ्कार तथा अर्थालंकार दोनों का व्यापक प्रयोग हुआ है, किन्तु भाषा का गला घोंट कर बरबस अलंकार ठूँसने का प्रयत्न कीर्तिराज ने कहीं नहीं किया है। उनके काव्य में अलंकार इस सहजता से प्रयुक्त हुए हैं कि उनसे काव्यसौन्दर्य स्वतः प्रस्फुटित होता जाता है। नेमिनाथमहाकाव्य के अलंकार भावाभिव्यक्ति को समर्थ बनाने में पूर्णतया सक्षम हैं।

अन्त्यानुप्रास की स्वाभाविक अवतारणा का एक उदाहरण देखिये—

जगज्जनानन्दथुमन्दहेतुर्जगत्त्रयक्लेशदसेतु.।
जगत्प्रभुर्यादववंशकेतुर्जगत्पुनाति स्म स कम्बुकेतु.॥१।३७

शब्दालंकारों में यमक का काव्य में प्रचुर ... गया है। यमक की सुरुचिपूर्ण योजना ...

माधुरी को वृद्धिगत करने में सहायक हुई है।

वनितयाऽनितया रमणं कयाऽप्यमलया मलयाचलमारुतः।
धुन-लता-तल-तामरसोऽधिको नहि मतो हिमतो विपतोऽपिन॥
८।२१

नेमिनाथमहाकाव्य में श्लोकार्धयमक को भी विस्तृत स्थान मिला है, किन्तु कीर्तिराज के यमक की विशेषता यह है कि वह सर्वत्र दुरूहता तथा क्लिष्टता से मुक्त है।

पुण्य ! कोपचयदं नतावकं पुण्यकोपचयदं न तावकम्।
दर्शनं जिनप ! यावदीक्ष्यते तावदेव गददुःस्थतादिकम् ॥१२।३३

अर्थालंकारों का प्रयोग भी भावाभिव्यक्ति को सक्षम बनाने के लिये किया गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, रूपक, अर्थान्तरन्यास, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उल्लेख आदि की विवेकपूर्ण योजना से काव्य में अद्भुत भाव प्रेषणीयता आ गयी है। जिनेश्वर के स्नात्रोत्सव के प्रसंग में मूर्त की अमूर्त से उपमा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

देवता अथ शिवां सनन्दनां निन्यिरे धनदद्विड्निकेतनम्।
धर्मशास्त्रसहितां मतिं गिरः सद्गुरोरिव विनेयमानसम् ॥
४।४८

प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षा की मार्मिक अवतारणा हुई है।

पवमानचञ्चलदलं जलाशये रवितेजसा स्फुटदिदं पयोरुहम्।
परिशंक्यते बत मया तवाननात् कमलाक्षि ! बिम्यदिव कम्पतेतराम् ॥ १२।९

रूपक का सफल प्रयोग निम्नोक्त पंक्तियों में दृष्टिगत होता है।

रात्रि-स्त्रिया मुग्धतया तमोऽञ्जनै
दिग्धानि काष्ठातनयामुखान्यथ।
प्रक्षालयत्पूपमयूखपायसा
देव्या विभातं ददृशे स्वतातवत् ॥ २।३०

कृष्णपत्नियां नेमिनाथ को जिन युक्तियों से वैवाहिक जीवन में प्रवृत्त करने का प्रयास करती हैं, उनमें, एक स्थान पर, दृष्टान्त की भावपूर्ण योजना हुई है।

किञ्च पित्रोः सुखायैव प्रवर्तन्ते सुनन्दनाः।
सदा सिन्धोः प्रमोदाय चन्द्रो व्योमावगाहते ॥ ६।३४

शरद्वर्णन में मदमत्त वृषभ के आचरण की पुष्टि एक सामान्य उक्ति से करते हुए अर्थान्तरन्यास का प्रयोग किया गया है।

मदोत्कटा विदार्य भूतलं वृषाक्षिपन्ति यत्र मस्तके रजो निजे।
अयुक्त-युक्त-कृत्य-संविचारणां विदन्ति किं कदा मदान्धबुद्धयः
॥ ३।४४

जिनेश्वर की लोकोत्तर विलक्षणता का चित्रण करते समय कवि की कल्पना अतिशयोक्ति के रूप में प्रकट हुई है।

यद्यर्कदुग्धं शुचिगोरसस्य प्राप्नोति साम्यं च विषं सुधायाः।
देवान्तरं देव ! तदा त्वदीयां तुल्यां दधाति त्रिजगत्प्रदीपः ॥
६।३५

इनके अतिरिक्त परिसंख्या, वक्रोक्ति, विरोधाभास, सन्देह, असंगति, विषम, सहोक्ति, निदर्शना, पर्यायोक्ति, व्यतिरेक, विभावना आदि अलंकार नेमिनाथ काव्य के सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं। इनमें से कुछ के उदाहरण यहां दिये जाते हैं।

परिसंख्या— न मन्दोऽत्र जनः कोऽपि परं मन्दो यदि ग्रहः।
वियोगो नापि दम्पत्योर्वियोगस्तु परं वने ॥१।१७

सन्देह— पिशङ्गवासाः किमयं नारायणः ?
सुवर्णकायः किमयं विहङ्गमः ?
सविस्मयं तर्कितमेवमादितः
सिंहं स्फुरत्काञ्चनचारुकेसरम् ? २५

वक्रोक्ति— देवः प्रिये ! को वृषभोऽपि ! किं गौः ?
नैवं वृषांकः ? किमु शंकरो ? न।
जिनो तु चक्रीति वधूवराभ्यां
यो वक्रमुक्तः स मुदे जिनेन्द्रः ॥३।१२

असंगति— गन्धसार-घनसार-विलेपं
कन्यका विदधिरेऽथ तदंगे।

कौतुकं महदिदं यदमूषामप्यनश्यदखिलो खलु तापः ॥४।४४

विरोधाभास—दिदेव्योऽपि रसलीना: सभ्रमा अप्यविभ्रमाः।
वामा अपि च नो वामा भूषिता अप्यभूषिताः ॥४।६

पर्यायोक्ति—त्वदास्रो महीनाथ! चन्द्रहासो विलोक्यते।
वियुज्यते स्वकान्ताभ्यश्चक्रवाकैरिवारिभिः ॥ ८।२७

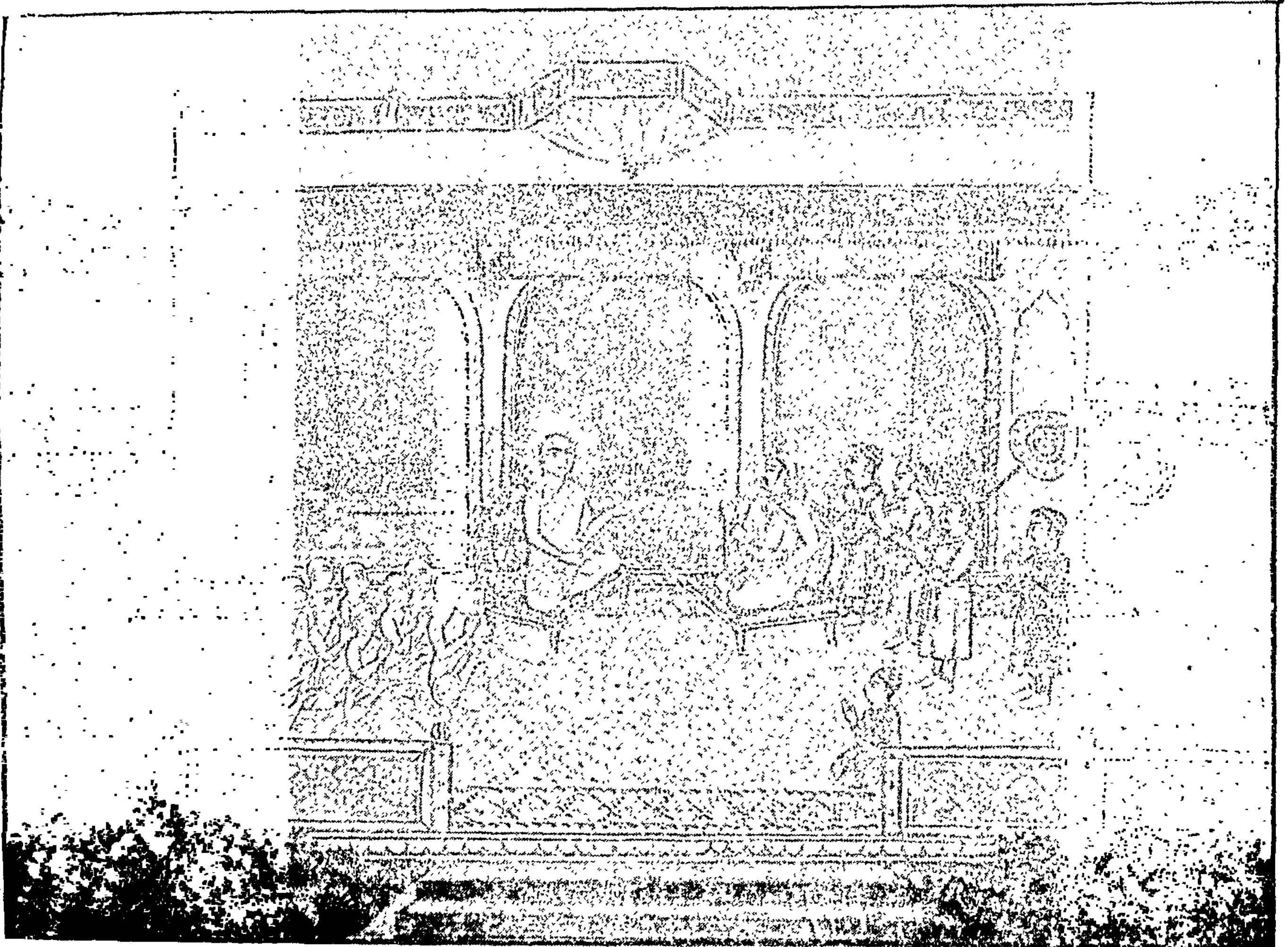
विषम—मोदकः क्वैष दश्चात्र क्व सर्पि:खण्डमोदकः।
क्वेद वैषयिकं सौख्यं क्व चिदानन्दजं सुखम् ॥६।२२

छन्दयोजना

भावव्यंजक छन्दों के प्रयोग में कीर्त्तिराज पूर्णत: सिद्ध-हस्त हैं। उनके काव्य में अनेक छन्दों का उपयोग किया गया है। प्रथम, सप्तम तथा नवम सर्ग में अनुष्टुप् की प्रधानता है। प्रथम सर्ग के अन्तिम दो पद्य मालिनी तथा उपजाति छन्द में हैं, सप्तम सर्ग के अन्त में मालिनी का प्रयोग हुआ है और नवम सर्ग का वैतालीसवां तथा अन्तिम पद्य क्रमशः उपगीति तथा नन्दिनी में निबद्ध है। ग्यारहवें सर्ग में वैतालीय छन्द अपनाया गया है। सर्गान्त में उपजाति तथा मन्दाक्रान्ता का उपयोग किया गया है। तृतीय सर्ग की रचना उपजाति में हुई है। अन्तिम दो पद्यों में मालिनी का प्रयोग हुआ है। शेष सात सर्गों में कवि ने नाना वृत्तों के प्रयोग से अपना छन्दज्ञान प्रदर्शित करने की चेष्टा की है। द्वितीय सर्ग में उपजाति (वंशस्थ इन्द्रवंशा), इन्द्रवंशा, वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, उपजाति (इन्द्रवज्रा उपेन्द्रवज्रा), वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित तथा शालिनी, इन आठ छन्दों को प्रयुक्त किया गया है। चतुर्थ सर्ग की रचना नौ छन्दों में हुई है। इनमें अनुष्टुप् का प्राधान्य है। अन्य आठ छन्दों के नाम इस प्रकार हैं—द्रुतविलम्बित, उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा), इन्द्रवज्रा, स्वागता, रथोद्धता, इन्द्रवंशा, उपजाति, (इन्द्रवंशा + वंशस्थ) तथा शालिनी। पंचम सर्ग में सात छन्दों को अपनाया गया है—उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा), इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, वंशस्थ, प्रमिताक्षरा, रथोद्धता तथा शार्दूलविक्रीडित। छठे सर्ग में पांच छन्द दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें उपजाति की प्रमुखता है। शेष चार छन्द हैं—उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित तथा मालिनी। अष्टम सर्ग मे प्रयुक्त छन्दों की संख्या ग्यारह है। उनके नाम इस प्रकार हैं—द्रुतविलम्बित, इन्द्रवज्रा, विभावरी, उपजाति (वंशस्थ + इन्द्रवंशा), स्वागता, वैतालीय, नन्दिनी, तोटक, शालिनी, स्रग्धरा तथा एक अज्ञातनामा विषम वृत्त। इस सर्ग में नाना छन्दों का प्रयोग ऋतु-परिवर्तन से उदित विविध भावों को व्यक्त करने में पूर्णतया सक्षम है। बारहवें सर्ग में भी ग्यारह छन्द प्रयोग में लाए गये हैं। वे इस प्रकार हैं—नन्दिनी, उपजाति (इन्द्रवंशा + वंशस्थ), उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा), रथोद्धता, वियोगिनी, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा, अनुष्टुप्, मालिनी, मन्दाक्रान्ता तथा आर्या। दसवें सर्ग की रचना में जिन चार छन्दों का आश्रय लिया गया है, उनके नाम इस प्रकार हैं—उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा), शार्दूलविक्रीडित, इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा। इस प्रकार नेमिनाथ महाकाव्य में कुल मिला कर पचीस छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इनमें उपजाति का प्रयोग सबसे अधिक है।

इस काव्य के मूलमात्र का संस्करण यशोविजय ग्रन्थमाला भावनगर से सं० १९७० में प्रकाशित हुआ है। उसके बाद आधुनिक टीका सहित एक पत्राकार संस्करण भी प्रकाशित हुआ है।





मणिधारी दादा श्रीजिनचन्द्रसूरिजी और दिल्लीपति राजा मदनपाल [ महावीर स्वामी का मन्दिर, कलकत्ता से ]

## उ० श्रीलब्धिमुनिविरचितम्

## नरमणि-मण्डित-भालस्थल युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि चरितम्

[खरतर गच्छ में युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी, उनके पट्टधर मणिधारी श्रीजिनचंद्रसूरिजी, प्रगट-प्रभावी श्री जिनकुशलसूरिजी और अकबर-प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरिजी, ये चारों आचार्य दादाजी के नाम से विख्यात है, हमने जब साहित्य की शोध महोपाध्याय कविवर समयसुंदर संबन्धी विशेष जानकारी प्राप्त करने लिए प्रारंभ की तो उनके दादागुरू चतुर्थ दादा साहब सम्बन्धी विपुल सामग्री हमारे सामने आई। हमने शताधिक ग्रन्थों के आधार से उनका स्वतन्त्र विस्तृत जीवनचरित्र 'युगप्रधान श्रीजिनचन्द्र सूरि' सं० १९९२ में प्रकाशित किया और उसके बाद क्रमशः दादा श्रीजिनकुशलसूरि, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि के चरित्र प्रकाशित किये। जब वे परमपूज्य आशु-कवि उपाध्याय लब्धिमुनिजी को भेजे गये तो उन्होंने उनके आधार से चार संस्कृत काव्य निर्माण कर दिये। अकबर प्रतिबोधक जिनचन्द्रसूरि चरित काव्य ६ सर्गों में १२१२ पद्यों का है। सं०१९९२ के वैशाख सुदि ७ को भुजनगर में इसकी रचना हुई है। इसके बाद श्री जिनकुशलसूरि चरित्र ६११ श्लोकों में सं० १९९६ मार्गशीर्ष सु १५ अहमदाबाद में पूर्ण किया। तदनंतर मणिधारी जिनचन्द्रसूरि चरित्र सं० १९९८ के अक्षयतृतीया को बंबई मे रचा। अंतिम श्री जिन दत्तसूरि चरित्र ४६८ श्लोकों में सं० २००५ वैशाख सुदि ५ को जयपुर में पूर्ण किया। इन चारों संस्कृत काव्यों में से अकबर-प्रतिबोधक श्री जिनचन्द्रसूरि चरित्र दादागुरु के अनन्य भक्त श्री अभयचंदजी व श्री लक्ष्मीचन्दजी सेठ द्वारा प्रकाशित हो गया है। अभी अष्टम शताब्दी के प्रसंग मे मणिधारीजी का चरित्र भी प्रकाशित करना अत्यावश्यक समझ कर उसे यहां दिया जा रहा है। —संपादक]

प्रणम्य श्रीमहावीरं चरितं लिख्यते मया।
मणिभृज्जिनचन्द्राख्य सूरीणां पुण्यशालिनाम् ॥ १ ॥
जैनसमाजे विख्याता दादेति नामधारकाः।
श्रीजिनदत्तसूरीशाः श्रीजिनचन्द्रसूरयः ॥२ ॥
जिनकुशलसूरीशाः श्रीजिनचन्द्रसूरयः।
श्रीखरतरगच्छस्य चतुर्ष्वेतेषु सूरिषु ॥ ३ ॥
श्रीजिनदत्तसूरीणां समागच्छत्यनन्तरम्।
श्रीजिनचन्द्रसूरीणा-मभिधा मणिधारिणाम् ॥४॥
त्रिभिर्विशेषकम्
ते महाप्रतिभाशालि-विद्वांसः सूरयोऽभवन्।
शुद्धज्ञान-क्रियायुक्ता जिनधर्मप्रभावकाः ॥ ५ ॥

एभिः सम्प्राप्य षड्विंशत्यब्दाल्पायुरकारयन्।
कार्यं तदस्ति चाश्चर्यजनकं गौरवान्वितम् ॥ ६ ॥
यतापि गुरुवर्येण श्रीजिनदत्तसूरिणा।
प्रतिमादिशि दीक्षितः स च महाप्रभावकः ॥ ७ ॥
दृश्यन्ते दत्तसूरीणां लोकोत्तरचमत्काराः।
श्रीजिनचन्द्रसूरीश-जीवने चांकिता गुणाः ॥ ८ ॥
मणिधारी महान् व्यक्ति-रसाधारणगौरवः।
समुदभूच्च संक्षिप्त चरितं तस्य दीयते ॥ ९ ॥
जैसलमेरुदुर्गस्य सौन्दर्यराज्यवर्तिनि।
श्रीविक्रमपुरे ग्रामे वैश्य-श्राद्धमनाकुले ॥ १० ॥

उवास रासलश्रेष्ठी श्राद्धधर्मपरायण:।
धर्मिष्ठा स्त्री गुणश्रेष्ठा तस्य देल्हणदे प्रिया ॥ ११ ॥
युग्मम्
तस्याः कुक्षेरभूदस्य शैलाङ्कहद्वत्सरे।
भाद्रशुक्लाष्टमी धस्रे ज्येष्ठायां जन्म सल्लक्षणे ॥ १२ ॥
श्रीजिनदत्तसूरीणां श्रीविक्रमपुरे महान्।
प्रभावः समभून्मार्याद्युपद्रव-निवारणात् ॥ १३ ॥
श्रीजिनदत्तसूरीशे वागड़विषये पुनः।
रचितश्चर्चरीग्रन्थोऽपभ्रंश भाषया वरः ॥ १४ ॥
मेहुर वासलादीनां विक्रमपुरवासिनाम्।
श्राद्धानां पठनार्थं च प्रेषितो विक्रमे पुरे ॥१५॥ युग्मम्
ग्रन्थेन भावितस्तेन श्रावकः सह्यितात्मजः।
देवधरः परित्यज्याम्नायं च चैत्यवासिनः ॥ १६ ॥
लाल्वाऽनमेत्तः सूरीन् श्री विक्रमपुरे स्वयम्।
अचीकरच्चतुर्मासीं प्रभूतादरपूर्वकम् ॥ १७ ॥ युग्मम् ॥
सुधामयोपदेशेन तेषां प्रभावशालिनाम्।
बहवो भविनो जीवाः प्राप्ताः सद्बोधमत्र च ॥ १८ ॥
सर्वविरतयः केचिद्देशविरतयः पुनः।
केचित्केचन सम्यक्त्व भृतो तत्राभवन् जनाः ॥ १९ ॥
माहेश्वरिवणिग्-विप्र-क्षत्रियास्तत्र सूरिणा।
प्रतिबोध्य कृताः शुद्धजैनधर्मानुयायिनः ॥ २० ॥
पुनः श्रीजिनदत्तसूरीशैस्तत्र भवाब्धितारिणी।
महावीर प्रभोर्मूर्त्तिः स्थापिताऽभूज्जिनालये ॥ २१ ॥
मात्रा सहैकदा बालावस्थो रासलनन्दनः।
सुगुरुं वन्दितुं पूज्याधिष्ठितोपाश्रयं ययौ ॥ २२ ॥
सूरिणालोक्य तं बालं शुभलक्षणलक्षितम्।
प्रतिभाशालिनं ज्ञात्वा, स्वपदयोग्यभाविनम् ॥ २३ ॥
बहिः प्रकाशिता वार्त्ता सा तां श्रुत्वा निजात्मजः।
जननीजनकाभ्यां हि गुरवे प्रत्यलाभि सः ॥२४॥ युग्मम्
श्री विक्रमपुरे कृत्वा वह्वीं धर्मप्रभावनाम्।
युगप्रधानसूरीशा अजमेरं समाययुः ॥ २५ ॥

तत्र संवद्गुणव्योमसूर्याब्दे फाल्गुनार्जुने।
नवम्यां पार्श्वनाथस्य विधिचैत्ये महोत्सवात् ॥ २६ ॥
श्रं जिनदत्तसूरीणां महाप्रभावशालिनाम्।
शिष्यत्वेनाभवद् दीक्षा लात्वा रासलनन्दनः ॥ २७ ॥
सोऽक्षावारणधीशाली स्मरणशक्तिसंयुतः।
अल्पीयसापि कालेन विकसत्प्रतिभोऽभवत् ॥ २८ ॥
चक्रे लघुवयस्कस्य सरस्वतीसुतस्य च।
मेधा श्लाघा मुनेरस्य सर्वैर्जनैः प्रहर्षितैः ॥ २९ ॥
सूरेरपि परीक्षायाः श्लाघां चक्रुर्जना अथ।
श्री विक्रमपुरे संवद्बाण-ख-सूर्य-वत्सरे ॥ ३० ॥
वैशाखे शुक्लपक्ष्यां च महावीरजिनालये।
स जिनचन्द्रसूरीशः स्वपदे स्थापितो मुनिः ॥३१॥युग्मम्
श्रीजिनचन्द्रसूरीति नाम्ना ख्यातिं गतः स च।
अस्य पित्रा महायुक्त्या सूरिपदोत्सवः कृतः ॥ ३२ ॥
श्री जिनचन्द्रसूरीशे ललाट-मणिधारिणि।
श्रीजिनदत्तसूरीणामभवन्महती कृपा ॥ ३३ ॥
यतो यैश्च स्वयं ज्योति र्मन्त्र-तन्त्रागमादिकान्।
साम्नायान् पाठयित्वाऽयं महाविशारदः कृतः ॥ ३४ ॥
सूरीशजिनचन्द्रोऽपि क्षमावान् विनयी गुणी।
सर्वदा गुरुसेवायां दत्तचित्तश्च तस्थिवान् ॥३५॥
अस्य विनयिशिष्यस्याकृत्रिमभक्तिसेवया।
आसन्नतिप्रसन्ना हि श्रीजिनदत्तसूरयः ॥ ३६ ॥
स्व-परोन्नतिकृद्गच्छ-सञ्चालनादिकाः पुनः।
अस्मै श्रीदत्तसूरीशैर्दत्ता शिक्षा अनेकशः ॥ ३७ ॥
ता सुमहत्त्वसंयुक्ताऽसीच्छिक्षैका वदामहे।
वयं यतो गुरोः सेवा-मूल्यलाभो हि विद्यते ॥ ३८ ॥
सा शिक्षेयं कदापि त्वं मा गमो योगिनीपुरम्।
तत्र ते गमने भावी मृत्यु र्दुष्ट सुरीच्छलात् ॥ ३९ ॥
यतस्तत्र क्षणे तस्मिन् दुष्टानामभवन्महान्।
योगिनीवीरवेताळादि देवानामुपद्रवः ॥ ४० ॥

सूरीशो भाविसङ्केत-भावार्थीयमभूद्यतः ।
सम्बन्धेस्मिन्नयं तिष्ठेत्सावधानतया स्वयम् ॥ ४१ ॥
रुद्र-सूर्य-समाषाढ-धवलैकादशीतिथौ ।
अजमेरे गताः स्वर्गं श्रीजिनदत्तसूरयः ॥ ४२ ॥
ततश्चन्द्रगुरौ सर्व-गच्छभारः समागतः ।
निरवहद्यथार्थेन पदमिदमसावपि ॥ ४३ ॥
पावयन्तः पुरग्रामान् श्रीजिनचन्द्रसूरयः ।
सम्वद्वेदेन्दुसूर्याब्दे त्रिभुवनगिरिं ययुः ॥ ४४ ॥
तत्रत्य शान्तिनाथस्य विधिचैत्ये प्रतिष्ठिते ।
श्रीजिनदत्तसूरीशे श्रीजिनचन्द्रसूरिणा ॥ ४५ ॥
स्वर्णमय ध्वजा दण्ड-कुम्भाः प्रतिष्ठिताः पुनः ।
प्रदत्तं गणिनी हेम-देव्यै प्रवर्तिनीपदम् ॥ ४६ ॥ युग्मम्
ततस्ते मथुरायात्रां कृत्वा गुर्मीमिपल्लिकाम् ।
तत्र सम्वन्नगेलाक्षीन्दुवर्षे फाल्गुनार्जुने ॥ ४७ ॥
दशम्यां हि महावीरचैत्ये श्रीचन्द्रसूरिणा ।
पूर्णदेव गणी वीरभद्रो जिनरथः पुनः ॥ ४८ ॥
वीरनयो जयशीलो जिनभद्रो जगद्धितः ।
श्रीनरपतिरेतेष्टौ दीक्षिता मुनयो वराः ॥ ४९ ॥
त्रिभिर्विशेषकम्
श्राद्ध-क्षेमन्धरश्रेष्ठो पुनस्तैः प्रतिबोधितः ।
ततो विहृत्य सूरीशा मरुकोट ययुः क्रमात् ॥ ५० ॥
तत्र चन्द्रप्रभस्वामिचैत्ये पूज्यैः प्रतिष्ठिताः ।
स्वर्णदण्डध्वजा कुम्भाः साधुगोल्लककारिताः ५१ ॥
उत्सवेऽस्मिन्नलौ मालां रौप्यपञ्चाशताऽर्पणात् ।
श्रेष्ठिक्षेमन्धरोऽथामीस्तत उच्चपुरं गताः ॥ ५२ ॥
तत्र सम्वद्गगजेलाक्षीन्दुवर्षे गुणवर्द्धनः ।
ऋषभदत्त-विनयशीलादि मुनयो वराः ॥ ५३ ॥
सरस्वती गुणश्रीश्च जगश्रीरार्यिकाः पुनः ।
दीक्षिताः सूरिभिश्चैव मन्येऽपि बहव क्रमात् ॥ ५४ ॥
युग्मम्
सम्वच्चन्द्रकराक्षीन्दु वर्षे श्री चन्द्रसूरिणा ।
सागरपाड़ा सद्ग्रामे पार्श्वनाथजिनालये ॥ ५५ ॥

श्री देवकुलिकाः श्रेष्ठिगयधर विधापिताः ।
प्रतिष्ठितास्तत पूज्या अजमेरं समागताः ॥५६॥ युग्मम्
तत्र स्तूपं प्रतिष्ठाप्य श्रीजिनदत्तसद्गुरोः ।
ततो विहृत्य सूरीशा बब्बेरकपुरं ययुः ॥ ५७ ॥
तत्र तैर्दीक्षिता गुण-भद्रा-भयेन्दुवाचकाः ।
यशश्चन्द्र-यशोभद्रो देवभद्रश्च तच्छिष्या ॥ ५८ ॥
ततः श्रीआशिकापुर्यां नागदत्ताय साधवे ।
अदायि वाचनाचार्यपदं श्रीचन्द्रसूरिणा ॥ ५९ ॥
ततो महावनस्थाने श्रीजिनचन्द्रसूरिणा ।
अजितजिननाथस्य विधिचैत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ ६० ॥
तत इन्द्रपुरे पूज्यैः शान्तिनाथजिनालये ।
स्वर्णमयध्वजा दण्ड-कुम्भाः प्रतिष्ठिताः पुनः ॥ ६१ ॥
तगलायां ततः पूज्यैरजितनाथमन्दिरम् ।
गुणचन्द्रमुनेः पितृमहल्हाल विनिर्मितम् ॥ ६२ ॥
पुनः कराक्षिनेत्रेन्दुवत्सरे वादलीपुरे ।
तेनैव कारिताः श्रीमत्पार्श्वनाथजिनालये ॥ ६३ ॥
स्वर्णमयध्वजा दण्डकुम्भा अम्बापुरी गृहे ।
स्वर्णकुम्भध्वजा दण्डा प्रत्यस्थापि महोत्सवात् ॥६४॥
त्रिभिर्विशेषकम्
ततः सुखेन सूरीशा विहरन्तः पुरादिषु ।
रुद्रपल्लीं गता जग्मु र्नरपालपुरं ततः ॥ ६५ ॥
तत्र गुरुं पराजेतुं ज्योतिर्विद्रेकपण्डितः ।
अभिमान्यकरोत् ज्योतिश्चर्चां श्रीगुरुणा समम् ॥६६॥
चरस्थिरादिलग्नेषु प्रभावो दर्शितां त्वया ।
एक लग्नस्य कस्यापीति पृष्टः सच सूरिणा ॥ ६७ ॥
तस्मिन्निरुत्तरीभूते नृप ज्ञानस्य सूरिणा ।
अन्तिमेकादशांशेषु मार्गशीर्षमुहूर्त्तके ॥ ६८ ॥

रुद्रपल्लीं गतास्ततः ॥ ७०

चैत्यवासिपद्मचन्द्र-सूरिणा हीर्ष्ययाऽन्यदा ।
संगच्छन्तो बहिर्भूमिं स्वाश्रयासन्नमार्गतः ॥ ७१ ॥
लघुवयस्कसूरीशाः समुनयो विलोकिताः ।
वः सुखशातिरस्तीति पृष्टास्ते अगुरेमिति ॥ ७२ ॥
पुनः पृष्टो गुरुः पद्म-सूरिणा भवताऽधुना ।
केषां केषां च शास्त्राणामध्ययनं विधीयते ॥ ७३ ॥
तत् श्रुत्वा मुनिना प्रोक्तमेकेन पार्श्ववर्तिना ।
अधीयन्तेऽधुनास्माकं गुरवो न्यायकन्दलीम् ॥ ७४ ॥
पुनः पृष्टो गुरुश्चैत्यस्य पद्मचन्द्रसूरिणा ।
ईर्ष्यालुना तमोवादो भवता पठितो न वा ॥ ७५ ॥
गुरुः प्राह तमोवादग्रन्थो विलोकितो मया ।
सोऽवग् त्वया समीचीनं तन्मननं कृतं न वा ॥ ७६ ॥
गुरु प्राह समीचीनं तदहृतं सोऽवदत्पुनः ।
स्वरूपं कीदृशं तस्य कथ्यतामपि तमोऽस्ति वा ॥ ७७ ॥
पूज्योऽवक् तत्स्वरूप न कीदृशमपि विद्यताम् ।
अधुना नास्ति तद्वाद-विवादकरणक्षणः ॥ ७८ ॥
विवादग्रस्तवस्तूनां निर्णयो राजपर्षदि ।
विद्वच्छिष्टजनाध्यक्षमेव भवितुमर्हति ॥ ७९ ॥
प्रमाण-नय-निक्षेपैः स्व-स्वपक्षसमर्थनम् ।
कृत्वा वस्तुस्वरूपस्य विचारः क्रियते बुधैः ॥ ८० ॥
निश्चितोऽयं हि यत् स्वीयपक्षे संस्थापितेऽपि च ।
द्रव्यं स्वस्य स्वरूपंच नैव त्यजति कर्हिचित् ॥ ८१ ॥
प्रोक्तं तेन पुनः स्वीयपक्षस्थापनमात्रतः ।
गुणपर्यायपुग् द्रव्यं स्व-स्वरूपं त्यजेन्न वा ॥ ८२ ॥
प्रोक्तं सर्वैस्तमो द्रव्यं तदस्ति सर्वसम्मतम् ।
पूज्योऽवादीत्तमो द्रव्यं विद्वान्नाङ्गीकरोति कः ॥ ८३ ॥
वार्त्तालापक्षणे तस्मिन् श्रीजिनचन्द्रसूरिणा ।
शिष्टता नम्रता शान्तिः प्रदर्शिता यथा यथा ॥८४ ॥
प्रकम्पितशरीरस्कः कोपातिरक्तलोचनः ।
पद्मचन्द्रोऽभिमानेनोन्मत्तोऽजनि तथा तथा ॥ ८५ ॥

तेनोक्तं च तमो द्रव्यमस्तीति न्यायरीतितः ।
यदाऽहं स्थापयिष्ये किं मदग्रे स्थास्यसे तदा ॥ ८६ ॥
गुरुः प्राह तमस्तीति योग्यता कस्य कस्य न ।
स्वतएव क्षणायाते ज्ञास्यते राजपर्षदि ॥ ८७ ॥
पशुप्रायाटवीरेव रणशूरस्त्यवेत्य च ।
मां लघुवयसं शक्ति नैवर्णीयाधिका त्वया ॥ ८८ ॥
नूनं जानीय सिंहस्य लघुदेहवतो रवं ।
तीक्ष्णं निशम्य नश्यन्ति नगाकृतिगजा अपि ॥ ८९ ॥
तदाऽनयो द्वयोः सूर्योः श्रुत्वा वाद-विवादकम् ।
तत्र च कौतुकं द्रष्टुमनेके मिलिता जनाः ॥ ९० ॥
लात्वा निजगुरोः पक्षं श्रावकाः पक्षयोर्द्वयोः ।
महान्तं दर्शयामासुरहंकारं परस्परम् ॥ ९१ ॥
अन्ते राजसभायां तच्छास्त्रार्थो निश्चितोऽजनि ।
तच्छास्त्रार्थः समारब्धो निर्णीतसमये पुनः ॥ ९२ ॥
तत्र श्रीचन्द्रसूरीशैर्नय-प्रमाण-युक्तिभिः ।
विद्वत्तया समं स्वीय पक्षसमर्थनं कृतम् ॥ ९३ ॥
प्राप्तो निरुत्तरीभूतः पद्मसूरिः पराजयम् ।
ततः श्रीगुरवे सभ्यैर्जयपत्रं समर्पितम् ॥ ९४॥
विद्वज्जनैः समं पूज्यः स्वस्थानमाययौ गुरोः
समन्तादखिलस्थाने प्रस्फुटितो जयध्वनिः ॥९५॥
प्रशंसाऽजनि सर्वत्र गुरोः सुविहिताध्वनः ।
तन्निमित्तं कृतः श्राद्धैरष्टाह्निकोत्सवो मुदा ॥९६॥
तर्कहट्टाख्यया पद्मसूरिश्राद्धा जने पुनः ।
गुरु श्राद्धागताः ख्याति जयतिहट्टसंज्ञया ॥९७॥
ततः पूज्याः सुसार्थेन समं चेलुः क्रमाच्चलन् ।
चोरसिदान सद्ग्रामोसन्नमुत्तरितः सत्र ॥९८॥
म्लेच्छागमनमाकर्ण्य तत्र तस्मिन् क्षणेऽजनि ।
सर्वः सार्थो भयभ्रान्तो नष्टुं लग्न इतस्ततः ॥९९॥
सार्थं तथाविधं दृष्ट्वा स पृष्टो गुरुणा जगौ ।
भगवन् दृश्यतामत्रागच्छन्ति म्लेच्छसैनिकाः १००॥

समुच्छलति दिव्यस्यां धूलि: कोलाहलोपि च ।
तेषां संश्रूयते सावधानो भूयावदद्गुरुः ॥१०१॥
भो भव्या धैर्यमाधायैकत्र विधीयतां निजम्
शकट वृषमाश्वोष्ट्रा खरम्रियाणकादिकम् ॥१०२॥
श्रीजिनदत्तसूरीन्द्रो युष्मद्भद्रं करिष्यति ।
तैरपि सुगुरूक्तं तत्सर्वं शीघ्रतया कृतम् ॥१०३॥
प्रच्छन्नीभूय सार्थो स्यात्ततश्चाकर्षि सूरिणा ।
मन्त्रितनिजदण्डेन रेखा सार्थं समंततः ॥१०४॥
सार्थजनैः स्वपार्श्वेन निर्गन्तो म्लेच्छ सैनिकाः ।
अश्वस्थिताः कृपाहीनाः सहस्रशो विलोकिता ॥१०५॥
परन्तु सैनिकैर्म्लेच्छै सार्थो नादर्शि किन्तु ते ।
प्राकारमेव पश्यन्तो दुष्टा दूरतरं गताः ॥१०६॥
सार्थजनोऽखिलो जातो निर्भयश्चलितस्ततः ।
सयोगिनी पुरासन्नं किंचिद् ग्रामं समागतः ॥१०७॥
ज्ञात्वासन्नागतान् सूरीन्नन्तुं दिल्लीनिवासिनः ।
ठक्कुर लोहट श्रेष्ठि महिचन्द्रकुलेन्दवः ॥१०८॥
सा पाल्हणादयश्राद्धाः संघमुख्या महर्द्धिकाः ।
चेलू रथादिमारूढ़ाः स्वपरिवार संयुताः ॥१०९॥युग्मम्
महायुक्त्या महाभूत्या विनिर्गताः पुराद्बहिः ।
प्रासादस्थो जनान् दृष्ट्वा मदनपाल भूपति ॥११०॥
अहमहमिकाः श्रेष्ठलोका अमी पुराद्बहिः ।
कथं यान्तीति पप्रच्छ स्वप्रधान नियोगिनः॥१११॥
युग्मम् ॥
तैरधिकारिभिः प्रोक्तं राजन्नीतिविशारदाः ।
अत्यन्तसुन्दराकारा अनेकशक्तिसंयुता ॥११२॥
आयान्ति गुरवोऽमीषां श्रीजिनचन्द्रसूरयः ।
ते तान् वन्दितुं यान्ति भक्तिवासितमानसा ॥११३॥
युग्मम्॥
कुतुहलवशाद्राज्ञो मनसि गुरुदर्शनम् ।
कर्तुं जागरितोत्कण्ठा ज्ञापयत्सोधिकारिणं ॥११४॥
आनीयतां च पट्टाश्व उद्घोष्यतां पुरे यथा ।
संचलेयुर्मया सार्द्धं, राज्याधिकारिणो लघु ॥११५॥

राजाज्ञां प्राप्य चारुह्य तुरङ्गमान् सहस्रशः ।
नियोगिनोऽभवन्पृष्ठे, मदनपाल भूपतेः ॥११६॥
श्राद्धेभ्यः पूर्वमेवागात्ससैन्यो भूपतिर्गुरो ।
पार्श्वं सन्मानितः सार्थलोकेन वस्तुढौकनात् ॥११७॥
सूरिणाप्यर्पिता तस्मा अमृतमयदेशना ।
देशनान्ते नृपेणाऽपि पृष्टाः श्रीचन्द्रसूरयः ॥११८॥
पूज्याः स्थानात्कुतो जातं वः शुभागमनं गुरुः ।
प्राह साम्प्रतमायामो रुद्रपल्लीपुराद्वयम् ॥११९॥
नृपेणावादि हे पूज्या उत्थीयतां प्रचल्यताम् ।
भवद्भिश्चरणन्यासैः पवित्रीक्रियतां पुरीम् ॥१२०॥
पूज्यैः स्मृत्वा गुरोः शिक्षां किमपि नैव जल्पितम् ।
मौनं दृष्ट्वा वदद्भूपः पूज्यैर्मौनं कथं धृतम् ॥१२१॥
किंवास्त्यस्मत्पुरे कोपि प्रतिपन्थी जनोऽथवा ।
प्राशुकाहारपानीय-वस्त्रादिवस्तु दुर्लभः ॥१२२॥
कोऽस्ति हेतुर्यतः पूज्यैस्त्यक्ता मार्गागतं पुरम् ।
गम्यतेऽन्यत्र पूज्यो वः धर्मक्षेत्र भवत्पुरम् ॥१२३॥
तर्हि ममानुरोधेनोत्थीयतां योगिनीपुरे ।
शीघ्रं प्रचल्यतां तत्र सर्वमभ्य भविष्यति ॥१२४॥
विश्वस्यतां भवद्भिर्मत्पुरे कोपि करिष्यति ।
नापमानं पुनर्नोल्लंघमप्युत्थापयिष्यति ॥१२५॥
पूज्यो राजानुरोधेन शिक्षामुल्लंघयन् गुरोः ।
भवितव्यतयोदासीनतया तत्पुरं ययौ ॥१२६॥
सूरीश्वरप्रवेशस्य महोत्सवेऽखिल पुरम् ।
शृङ्गारितं च सद्वस्त्रपताकातोरणादिभिः ॥१२७॥
प्रणेदुः सर्ववाद्यानि भट्टाद्या विरुदावलिम् ।
लोका जगुर्जगुर्भद्रगीतानि सधवास्त्रियः ॥१२८॥
स्थाने स्थानेऽभवन्नृत्यं स्थाने स्थाने स्त्रियः पुनः ।
स्वस्तिकादीनि चक्रुः सन्मुक्ताफलाक्षतादिभि ॥१२९॥
लक्षशो मनुजा पारसङ्कीर्णत्वेन भूपतिः ।
अचालीत्सूरिसेवायां सार्थे प्रमुदितो भृशम् ॥१३०॥

प्रवेशोत्सवदृश्योयं लोकहृदयचक्षुषाम् ।
सम्पूर्णानन्ददायीचाऽतभूत्पूर्वो भवत्पुरे ॥१३१॥
सूरिराजे समायाते योगिनीपुरवासिषु ।
नवजीवनसञ्चारो लग्नो भवितुमद्भुतः ॥१३२॥
अनेकलोकसन्ततेः आत्मनः शान्तिलाभकम् ।
लातुं लग्नाश्च सूरीशदेशनामृतधारया ॥१३३॥
मदनपालभूपोऽपि, दर्शनार्थमनेकशः ।
आगत्य सूरिराजोपदेशलाभं गृहीतवान् ॥१३४॥
द्वितीयाचन्द्रवद्राज्ञो धर्मरागो दिने दिने ।
ववृधे प्रत्यहं धर्मभावना च जनेष्वपि ॥१३५॥
स्वान्यकल्याणनिष्ठस्य तिष्ठतो योगिनीपुरे ।
श्रीजिनचन्द्रसूरेश्च कियन्तो वासरा गताः ॥१३६॥
एकस्मिन्वासरे दृष्ट्वा धनाभावेन दुर्बलम् ।
स्वभक्तं कुलचन्द्राख्यं श्राद्धं दयालुसूरिणा ॥१३७॥
लिखितमष्टगन्धेन यन्त्रं वितीर्य जल्पितम् ।
मुष्टीप्रमाणवासेन पूजनीयं त्वानिशम् ॥१३८॥
यन्त्रपट्टस्य निर्माल्य-वासक्षेपञ्च मिश्रितः ।
पारदादिप्रयोगेण सौवर्णं च भविष्यति ॥१३९॥
त्रिभिर्विशेषकम् ॥
कुलचन्द्रोपि पूज्योक्त-विध्यनुसारतोऽनिशम् ।
कुर्वाणस्तद्विधिं स्वल्पकालेन धनवानभूत् ॥१४०॥
एकस्मिन्वासरे पूज्या दिल्ल्युत्तरीयद्वारतः
वहिर्भूमिं च गच्छन्तो भवन्स्वमुनिभिः समम् ॥१४१॥
नवराज्यन्तिमाश्विन-धवलनवमीदिने ।
तदभूद्यत्र मार्यन्तेऽनेके जीवा नराधमैः ॥१४२॥
सूरिणा गच्छता मार्गे मांसार्थं कलहं मिथः ।
कुर्वाणौ द्वौ सुरौ दृष्टौ मिथ्यात्वमतिमोहितौ ॥१४३॥
दयालुहृदयाचार्यैरेकोमध्यात्तयोर्द्वयोः ।
अतिवलामिथो,देवो मिथ्यात्वी प्रतिवोधितः ॥१४४॥
सोऽपि भूत्वोपशान्तोवग् भवद्देशनया मया ।
मांसवलिः परित्यक्तो दारुणदुःखदायकः ॥१४५॥

यत्त्वदनुग्रहं कृत्वा निवासार्थं प्रदर्श्यताम् ।
स्थानं मे निवसन् यत्र त्वदाज्ञां पालयाम्यहम् ॥१४६॥
पार्श्वनाथविधिचैत्ये द्वारसमीपवर्त्तिनि ।
गत्वा त्वं दक्षिणस्तम्भे वर्त्तेति गुरुणाऽऽज्ञपि ॥१४७॥
एवं देवं समाश्वास्योपाश्रयमेत्य सूरिणा ।
लोहटादि स्वभक्तेभ्यः श्राद्धेभ्योऽश्रावि सा कथा ॥१४८॥
पुनः पार्श्वेन चैत्यस्य स्तम्भे च दक्षिण स्थिते ।
अधिष्ठातृसुरा मूर्त्युत्कीर्णार्थं सूचना कृता ॥१४९॥
तथैवाकारि तैः श्राद्धैर्गुरुणा स प्रतिष्ठितः ।
अतिविस्तरतस्तस्याऽतिवलाख्या कृता पुनः ॥१५०॥
श्राद्धास्तत्पूजनं चक्रुः स्वादिष्टखाद्यवस्तुभिः ।
स सुरः पूरयामास तन्मनःकामनां सदा ॥१५१॥
एवं सर्वत्र कुर्वाणा जैनधर्मप्रभावनाम् ।
श्रीजिनचन्द्रसूरीशा ललाटमणिधारकाः ॥१५२॥
निजायुर्निकटं ज्ञात्वा गुणाक्षिरविवत्सरे ।
द्वितीयभाद्रवत्कृष्णचतुर्दशीतिथौ पुनः ॥१५३॥
चतुर्विधेन संघेन सार्द्धं विधाय क्षामणाम् ।
प्रान्ते चानशनं कृत्वा समाधिना दिवं ययुः ॥१५४॥
मृत्युः पट्टावलिष्वेषां वभूव योगिनीच्छलात् ।
प्रान्ते भविष्यवाग्युक्ता श्राद्धाध्यक्षं च सूरिणा ॥१५५॥
अस्माकं देहसंस्कारं यावद्दूरं करिष्यथ ।
सविभूतिपुरं तावद् दूरं वर्द्धिष्यते खलु ॥१५६॥
ततः श्राद्धा महायुक्त्याऽनेकमण्डपराजिते
पूतं संस्थाप्य निर्याणविमाने सुगुरोस्तनुम् ॥१५७॥
पुराद्दूरतरं नीत्वा सहस्त्रोच्छालनादिभिः ।
चक्रुरन्तक्रियां सारचन्दनादिकवस्तुभिः ॥१५८॥
तत्स्थानं विद्यतेऽद्यापि "वड़ेदादाजी" संज्ञया ।
स साधुरथ कुर्वाणो-न्तिमपवित्रदर्शनम् ॥१५९॥
अधीरमानसः कुर्वन्नश्रुपातं शुचाकुलः ।
गुणचन्द्रगणीसूरेरित्थं चकार संस्तवम् ॥१६०॥ युग्मम्॥

चातुर्वर्ण्यमिदं मुदा प्रयतते तद्रूपमालोकितुं ।
माद्दक्षाश्च महर्षयस्तव वच. कर्तुं सदैवोद्यताः ।
शक्रोऽपि स्वयमेव देवसहितो युष्मत्प्रणामीप्सते
तत्किं श्रीजिनचन्द्रसूरिसुगुरो स्वर्गं प्रति प्रस्थितः ।१॥
साहित्य च निरर्थकं समभवन्निर्लक्षणं लक्षणम्
मन्त्रैर्मन्त्रपरैरभूयत तथा कैवल्यमेवाश्रितम्
कैवल्या जिनचन्द्रसूरिवर ते स्वर्गाधिरोहे हहा !!
सिद्धान्तः सुकरिष्यते किमपि यत्तन्नैव जानीमहे॥२॥
प्रमाणिकैराधुनिकैर्विधेयः प्रमाणमार्गः स्फुटमप्रमाण ।
हहा ! महाकष्टमुपस्थितं ते स्वर्गाधिरोहे जिनचन्द्रसूरेः
॥३॥

पूज्यस्नेहवशाचक्रुरन्येपि माधव पुनः ।
मिथःपराङ्मुखीभूयाश्रुपातं शोकविह्वलाः ॥१६१॥
उपस्थिताः पुनः श्राद्धा अपि वस्त्राञ्चलेन च ।
समाच्छाद्य स्वनेत्राणि चक्रुर्गद्गदरोदनम् ॥१६२॥
समयेऽस्मिन् समायातः शोकसिन्धुः समंततः ।
कस्य कापि कथा नाभूत्सुगुरुविरहं विना ॥१६३॥
सुनिश्चितमिदं दृश्यमपरे दर्शका अपि ।
नैष्टं दृष्ट्वाऽभवन् रोद्धुं निजहृदयमक्षमाः ॥१६४॥
गुणचन्द्रगणी दृष्ट्वेमामसमंजसां दशाम् ।
कियन्तं समयं पश्चाद्धैर्यं धृत्वा मुनीनवग् ॥१६५॥
भवन्तः स्वात्मनः शान्तिं सत्वशालिसुसाधव ।
यच्छन्तु गमितं रत्नं महार्घं दुर्लभं च यत् । १६६॥
लक्षोपायविधानेऽपि, हस्ते तन्न चटिष्यति ।
प्रान्ते मे गुरुणाऽवश्यकर्तव्यसूचनं कृतम् ॥१६७॥
करिष्याम्येवमेवाहं तेषामाज्ञानुसारतः ।
सर्वेषां भवतां येन, सुसन्तोषो भविष्यति ॥१६८॥
अधुना चल्यतां मागम्यतां मया समंवरैः
भवद्भिर्मुनिभिः शीघ्रं सर्वं भव्यं भविष्यति ॥१६९॥
क्षणेऽस्मिन् दाहसंस्कारः सत्कालिलक्रिया गणी ।
समाप्योपाश्रयं विद्वान् मुनिभिः सममागतः ॥१७०॥

तत्र स्थित्वा गणी कश्चित्कालं ततो विहृत्य च ।
चतुर्विधेन संघेन सार्द्धं वव्वेरकं ययौ ॥१७१॥
श्रीजिनचन्द्रसूरीणामाज्ञाया अनुसारतः ।
गुणचन्द्रगणी तत्र सर्वमान्यो महोत्सवात् ॥१७२॥
श्रीजिनदत्तसूरीणां वृद्धशिष्येण धीमता ।
दापयित्वा पदं सूरेः श्रीजयदेवसूरिणा ॥१७३॥
श्रीजिनपतिसूरीश इत्यभिधानपूर्वकम् ।
स्थापयामास तत्पट्टे नरपति मुनीश्वरम् ॥१७४॥
त्रिभिर्विशेषकम् ॥

नूतनसूरिपितृव्य-मानदेवोऽकरोन्महे ।
सार्द्धसहस्रसंघेन, सहस्रसौप्यकं व्ययम् ॥१७५॥
देशान्तरीयसंघेनापि मिलित्वा महोत्सवे ।
बहुद्रव्यव्ययं कृत्वा स्वजन्म सफलीकृतम् ॥१७६॥
क्षणेऽस्मिन् वाचनाचार्य-जिनभद्रोऽप्यलंकृतः ।
श्रीजिनचन्द्रसूरीश-शिष्यः सूरिपदेन हि ॥१७७॥
पाठकजिनपालेन कृताया अनुसारत ।
गुर्वावलेर्मयाऽलेखि, चरित्रं मणिधारिणाम् ॥१७८॥
क्रियानन्योपि वृत्तान्त. पट्टावलिषु दृश्यते ।
अन्याम् चन्द्रसूरीणां स्वल्प सोप्यत्र वक्ष्यते ॥१७९॥
चन्द्रसूरिललाटेऽभून्मणिश्च तेन हेतुना ।
प्रसिद्धिस्तस्य लोकेऽभून्मणिधारभिधानतः ॥१८०॥
प्रोक्त एतस्य सम्बन्ध इत्थं पट्टावलौ मणे ।
निजान्तसमयेऽवादि श्राद्धेभ्यश्चन्द्रसूरिणा ॥१८१॥
युष्माभिरग्निसंस्कार-समयात्पूर्वमेव हि ।
स्थापनीयं च मद्देहनिकषा दुग्धभाजनम् ॥१८२॥
ततो मणिः स निर्गत्यायास्यति दुग्धभाजने ।
सुगुरुविरहात् श्राद्धैस्तत्करणं तु विस्मृतम् ॥१८३॥
भवितव्यवशाद्योगि-हस्ते स चटितो मणिः ।
पूर्वोक्तविधिना ज्ञात्वा तं योगी प्रययौ मणिम् ॥१८४॥
प्रतिष्ठाप्यार्हतोमूर्ति स्तम्भितां तेन योगिना ।
अन्यदा योगितः प्राप्तः स मणिः पतिसूरीणा ॥१८५॥

श्रीजिनचन्द्रसूरीशा ललाटमणिधारकाः ।
शासनोद्योतका आसन् महाप्रभावशालिनः ॥१८६॥
अतः खरतरे गच्छे चतुर्थपट्टधारिणाम् ।
तन्नाम स्थापनायाश्च चलितारमात्पराम्परा ॥१८७॥
महत्तीयाण जातिश्चारथापि श्रीचन्द्रसूरिणा ।
प्रतिबोध्योपदेशेन श्रीमदार्हतशासने ॥१८८॥
भाषायां महत्तीयाण मंत्रिदलीयः संस्कृते ।
इत्युल्लेखः समेत्यस्या जातेर्बाहुल्यतः पुन ॥१८९॥
संस्कृतादिशिलालेख-कथनस्यानुसारतः ।
अस्या उत्पत्तिरत्यन्त-प्राचीनास्ति च तद्यथा ॥१९०॥
श्रीऋषभप्रभोः पुत्र-भरतचक्रवर्त्तिन: ।
श्रीदलमन्त्र्यभून्मुख्यो मन्त्रिगुणसमन्वितः ॥१९१॥
मन्त्रिदलीयनाम्ना तत्सन्ततिरप्यभूज्जने ।
प्रसिद्धा मन्त्रिशब्दस्यापभ्रंशमहताऽजनि ॥१९२॥
अतोऽस्य वंशजानां हि जातिनामापि भूतले ।
महत्तीयाण इत्यासीदुक्तशब्दानुसारतः ॥१९३॥
कियद्भिर्व्यक्तिभिर्यस्य वंशपरम्परागतैः
पूर्वदेशीयतीर्थानां जीर्णोद्धाराणि भूरिशः ॥१९४॥
नूतनचैत्यचैत्यानि, जिनधर्मप्रभावनाम् ।
विधायमहती सेवा कृताहच्छासनस्य च ॥१९५॥
साम्प्रतं पूर्वदेशीय-जैनतीर्थानि सन्ति यत् ।
तेषां द्रव्यात्मभागस्य सुपरिणतिरस्ति हि ॥१९६॥
अस्या जातेः समीचीना संख्याधिगतवत्सरात् ।
प्रागभूत् ह्रीयमाना सा, नामशेषाऽधुनाऽभवत् ॥१९७॥
श्रीनाहटागोत्रिभवागरेन्दुसंद्रव्यम पामय पुस्तकाच्च ।
द्रव्यं मया श्रीजिनचन्द्रसूरेरिदं चरित्रं मणिधारकस्य ॥१९८॥
इदं समाप्तं सुगुरु प्रसादात्संवद्गजाङ्काङ्कशशाङ्कवर्षे ।
वैशाखशुक्लस्य तृतीयकायां तिथौ च भौमे पुरिमोहमल्याम् ॥१९९॥
शुद्धे गणे खरतरे मुनिमोहनाख्य-
तच्छिष्यराजमुनिनज्जिनरत्नसूरेः ।
ज्ञानक्रियागुणभृतो लघुबन्धुनोपा-
ध्यायेन लब्धिमुनिना रचितं चरित्रम् ॥२००॥
महेन्द्रसूर्यपतिसद्ददीक्षः श्रीमोहनाख्यः सुमुनिस्ततश्च ।
श्रीमद्यशःसूरिवरस्ततः श्रीजिनद्धिसूरीश्वरराज्ये ॥२०१॥ युग्मम्॥

॥ इति श्रीमणिधारी दादा श्रीजिनचन्द्रसूरीश्वरचरित्रं समाप्तम् ॥ संवत् १९९८ वैशाखशुक्लतृतीयायां मङ्गले स्थानानगरे लब्धिमुनिना ऽलेखीयं प्रतिः इति ॥

[ उपर्युक्त मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी का जीवन चरित्र हमारी 'मणिधारी जिनचन्द्रसूरि' पुस्तक के पद्यबद्ध रूपमें है । इससे २८ वर्ष पूर्व पूज्य उपाध्याय श्रीलब्धिमुनिजी महाराज ने सं० १९९० में श्रीरत्नमुनिजी महाराज के सहाय्य से खरतर गच्छ पट्टावली संस्कृत में १७४५ श्लोकों में निर्माण की थी। प्रस्तुत पट्टावली की ७४ पत्र व २०७५ ग्रंथ संख्या वाली उपाध्यायजी महाराज के स्वयं महीदपुर में लिखी हुई प्रति हमारे 'अभय जैन ग्रन्थालय' बीकानेर में है जिसमें मणिधारी जी का जीवनवृत्त श्लोक ९९७ से पद्यांक १०६५ पर्य्यन्त है । प्रस्तुत चरित्र में मणिधारीजी के प्रतिबोधित जाति-गोत्रों का इतिहास भी है । हम अपने 'मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि' के द्वितीय संस्करण में महाजन वंश मुक्तावली और जैन सम्प्रदाय शिक्षा के आधार से इस विषय में प्रकाशित कर चुके हैं अतः पट्टावली के श्लोक यहां नहीं दिये जा रहे हैं ।

—सम्पादक ]

# दादाजी

आज भारतवर्ष में कौन ऐसा जैनमतावलम्बी होगा जो कि पूज्य दादा के नाम से परिचित न हो। पूज्य दादा का नाम जैनमतावलम्बी बच्चे-बच्चे तक की जिह्वा पर नर्तन करता है। केवल जैनमतावलम्बी ही नहीं जैनेतर भी अधिकांश व्यक्ति दादा के नाम से पूर्ण परिचित हैं, दादा ये दो शब्द उनके कर्णकुहरों में प्रवेश पा चुके हैं और नहीं तो देश के कोने-कोने में प्रत्येक नगरों व कस्बों में 'दादावाड़ी' नाम से प्रसिद्ध स्थानों ने इस शब्द से प्रत्येक नागरिक को परिचित बना दिया है। बहुत से नागरिक चाहे वे जैनी हों या जैनेतर, प्रातः सायं इन दादावाड़ियों में दादा की वन्दना के लिए, आराधना के लिये या स्वास्थ्यलाभार्थ भ्रमण के लिये ही सही, अवश्य जाया करते हैं। सभी व्यक्तियों को उन स्थानों में जाने से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में एक अलौकिक शान्ति का अनुभव होता है। वह और कुछ नहीं किन्तु पूज्य दादा के व्यक्तित्व का परोक्ष प्रभाव ही है।

इतना होते हुए भी जैनेतर व्यक्तियों में अधिकांश व्यक्ति दादा शब्द के अभिधेय उस अलौकिक प्रभावशाली महापुरुष तथा उसके अद्वितीय महागुणों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं वे केवल इतना ही समझते हैं कि 'दादा' जैन समाज में कोई प्रभावशाली महापुरुष हुआ है जिसके नाम पर इन दादावाड़ियों की स्थापना हुई है और उन्हीं की वन्दना के लिए प्रतिदिन हजार व्यक्ति इस जगह जाया करते हैं इतना ही नहीं कतिपय जैनी भी उनके वास्तविक व्यक्तित्व व गुणों से अपरिचित ही हैं।

वस्तुतः 'दादा' इस द्व्यक्षर शब्द से दादा इस सामान्य अर्थ की ही प्रतीति नहीं होती किन्तु इसके साथ ही साथ अनेक अन्य अर्थों की भी प्रतीति होती है। दादा शब्द के उच्चारण करने पर जिन-शासन को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने वाले, समय-प्रभाव से जैनसम्प्रदाय में समागत कुरीतियों, कदाचारों, कदाग्रहों व शिथिलाचारों का अपनी दृढ़ विवेकमयी व क्रान्तिमयी विचारधारा से समूल उच्छेद करने वाले, सिन्धु, गुजरात व मरुस्थल में सर्वाधिक जिन-शासन का प्रचार व प्रसार करने वाले, युगप्रधान आचार्यों में सर्वातिशायी चमत्कार व प्रभाव से अलङ्कृत अलौकिक महापुरुष अर्थ की प्रतीति होती है। दादा ने उस चमत्कार का प्रदर्शन किया जिससे आकृष्ट होकर चैत्यवासियों तक ने सुविहित वसतिवास को स्वीकार किया, राजाओं, महाराजाओं, योगिनियों व देवों तक ने उनके आगे अपना मस्तक झुकाया, सर्वत्र जैनधर्म का अत्यधिक प्रचार व प्रसार हुआ, बड़े-बड़े प्रतिस्पर्धी विद्वद्गजेन्द्रों का मद उनके प्रखर व प्रकाण्ड पाण्डित्य से शान्त हुआ, लाखों से अधिक व्यक्ति इच्छा से जिनशासनानुयायी बने।

उनने अपने जीवन-काल में ही अनेक चमत्कारों का प्रदर्शन किया यह बात नहीं, आज भी उनके अनेक प्रकार के चमत्कार लोगों के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभूत किये जाते हैं। जैन व जैनेतर जनता के जीवन में दादा ओतप्रोत हैं। वे किसी का व्यन्तरोपद्रव दूर करते हैं तो किसी का योगिनी उपद्रव। किसी के भूतोपद्रव को वे शान्त करते हैं तो किसी के महामारी जन्य उपद्रव को। किसी को घोर कानन में मार्ग-प्रदर्शन करते हैं तो किसी के समुद्र के तूफान से घिरे हुए जहाज को समुद्र से पार लगाते हैं। किसी की आपत्ति का निराकरण करते हैं तो किसी का मनोवाञ्छित पूर्ण करते हैं। किसी को आभास में, तो किसी को स्वप्न में किसी को प्रत्यक्ष रूप में तो किसी को अप्रत्यक्ष रूप में वे दर्शन अब भी देते हैं। पथ-भ्रष्ट का वे पथ-प्रदर्शन करते हैं और उन्मार्गप्रवृत्त को सन्मार्ग पर लाते हैं। ये ही सब नानाविध चमत्कार हैं जिनके कारण आज सब जगह दादा का नाम सुनाई देता है, सब जगह उनके स्थान बनाये जाते हैं तथा उनकी वन्दनायें की जाती हैं। धन, पद, सम्मान व परमपद की प्राप्ति के लिये भी लोग उनकी उपासना करते हैं और अपना अभीष्ट फल शीघ्र ही प्राप्त करते हैं।

[ स्वामी सुरजनदास के दादाजी और उनका साहित्य से ]

# महोपाध्याय जयसागर

[ अगरचन्द नाहटा ]

खरतर गच्छ में आचार्यों के अतिरिक्त बहुत से ऐसे प्रभावशाली विद्वान हुए हैं जिन्होंने उनके स्थानों में विचर कर अच्छा धर्म प्रचार किया और साहित्य-निर्माण में भी निरन्तर लगे रहे। पट्टावलियों में आचार्य-परम्परा का ही विवरण रहता है इसलिए ऐसे विशिष्ट विद्वानों के सम्बन्ध में भी प्राय: आवश्यक जानकारी हमें नहीं मिल पाती। मुनि जिनविजयजी ने सन् १९१६ में उपाध्याय जयसागर की विज्ञप्ति-त्रिवेणी नामक महत्वपूर्ण रचना सुसम्पादित कर जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर से प्रकाशित करवायी थी। इसके प्रारंभ में उन्होंने बहुत महत्वपूर्ण एवं विस्तृत प्रस्तावना ६६ पृष्ठों में लिखी थी, इस में जयसागर उपाध्याय के संबन्ध में लिखा था कि 'इनके जन्म स्थान और माता पितादि के विषय में कुछ भी वृत्तान्त उपलब्ध नहीं हुआ, होने की विशेष संभावना भी नहीं है। विशेषकर इन बातों का उल्लेख पट्टावली में हुआ करता है परन्तु उस में भी केवल गच्छपति आचार्य ही के सम्बन्ध की बातें लिखी जाने की प्रथा होने से इतर ऐसे व्यक्तियों का विशेष हाल नहीं मिल सकता। ऐसे व्यक्तियों के गुर्वादि एवं समयादि का जो कुछ थोड़ा बहुत पता लगता है वह केवल उनके निजके अथवा शिष्यादि के बनाये हुए ग्रन्थों वगैरह की प्रशस्तियों का प्रताप है।"

सौभाग्य से हमारे संग्रह में एक ऐसा प्राचीन पत्र मिला जिसमें उ० जयसागरजी सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण बातें लिखी हुई थी अतः हमने उसका आवश्यक अंश अपने 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' पृ० ४०० में प्रकाशित कर दिया था तथा उसका ऐतिहासिक सार, उनकी रचनाओं की नामावली सह प्रारंभ में दे दिया था। पर उसी पत्र के नीचे इनके वंश का विवरण भी लिखा हुआ था, जिसे नहीं दिया जा सका। उसे शोधपत्रिका भाग ६ अंक १ में प्रकाशित हमारे 'महोपाध्याय जयसागर और उनकी रचनाएँ' नामक लेख में छपवा दिया गया था।

सं० १९९४ में मुनि जयन्तविजयजी का 'श्री अर्बुद प्राचीन जैन लेख संदोह' नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, उसमें आबू के खरतरवसही या चौमुखजी के प्रतिमा लेख भी प्रकाशित हुए, इनमें से लेखाङ्क ४४९-५६-५७ में जयसागर महोपाध्याय के मन्दिर निर्माता दरड़ा गोत्रीय संघपति मण्डलिक के भ्राता होने का उल्लेख प्रकाशित हुआ। मुनि जयन्तविजयजी ने आबू की खरतरवसही के लेखों का गुजराती अनुवाद प्रकाशित करते हुए संघपति मन्डलिक का शिलालेखों में प्राप्त वंश वृक्ष भी दे दिया था। उसमें उन्होंने लिखा था कि संघवी मन्डलिक के ६ भाइयों में से बड़े भाई साह देल्हा और छोटे भाई साह महीपति के स्त्री पुत्र परिवार के नाम किसी प्रतिमा लेख में नहीं मिले। अत: छोटे भाई महीपति की अल्प वय में मृत्यु हो गई होगी और बड़े भाई देल्हा ने छोटी उम्र में ही दीक्षा ले ली होगी। ऐसा लगता है कि दीक्षित अवस्था में इनका नाम जयसागरजी रखा गया होगा। पीछे से योग्यता प्राप्त होने पर वे महोपाध्याय हो गए। इसी लिए संघवी मण्डलिक के कई लेखों में 'श्री जयसागर महोपाध्याय बान्धवेन' लिखा मिलता है। अर्थात् महोपाध्याय जयसागरजी संघवी मण्डलिक के संसार-पक्ष में भ्राता होते थे।

वास्तव में मुनि श्री जयन्तविजयजी के उपर्युक्त दोनों अनुमान सही नहीं हैं। पूज्य गणिवर्य श्री बुद्धिमुनिजी ने हमें उ० जयसागरजी के रचित स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र की

एक महत्वपूर्ण प्रशस्ति नकल करके भेजी थी, इससे स्पष्ट है कि संघपति मण्डलिक के भ्राता संघपति महीपति ने सं० १५०६ में यह प्रति लिखवायी थी और इस प्रशस्ति में महीपति की पत्नी पुत्रों और पुत्रवधु के नाम प्राप्त हैं, अतः महीपति की अल्पायु में मृत्यु हो गई—यह अनुमान जो आबू के प्रतिमा लेखों में महीपति के स्त्रीपुत्रों के नाम न मिलने से किया गया था, प्राप्त प्रशस्ति से असिद्ध हो जाता है। इसी तरह देल्हा के भी स्त्रीपुत्रादि का प्रतिमा लेखों में *नाम न मिलने से उन्होंने अल्पायु में दीक्षा ले ली* होगी व उनका नाम जयसागर रखा गया होगा—यह अनुमान भी प्राप्त प्रशस्ति में देल्हा के पुत्र कोल्हट का नाम मिल जाने से गलत सिद्ध हो जाता है। सब से महत्वपूर्ण बात इस प्रशस्ति से यह मालूम होती है कि हरिपाल के पुत्र आसिग या आसराज के पुत्रों में से तृतीय पुत्र जिनदत्त ने बाल्यावस्था में दीक्षा ग्रहण करली थी। आठवें श्लोक में इसका स्पष्ट उल्लेख होने से यह निश्चित हो जाता है कि जयसागरजी दरड़ा गोत्रीय आसराज के पुत्र थे और उनका 'जिनदत्त' नाम था, तथा बाल्यावस्था में दीक्षा ग्रहण कर ली थी। प्रतिमा लेखों में हरिपाल के पूर्वजों के नाम नहीं मिलते लेकिन प्रशस्ति में पद्मसिंह-सोमसिंह ये दो नाम पूर्वजों के और मिल जाते हैं तथा वंशजों के भी कई अज्ञातनाम प्राप्त हो जाते हैं। साथ ही साथ इस वंश के पुरुषों के कतिपय अन्य सुकृत्यों का भी उल्लेखनीय विवरण मिल जाता है। यथा—

संघपति आसा धर्मशाला, तीर्थयात्रा, उपाध्यायपद स्थापन और स्वधर्मी-वात्सल्यादि में द्रव्य का सद्व्यय कर कृतार्थ हुए थे। सं० १४८० में उ० जयसागरजी के सान्निध्य में मण्डलिक ने शत्रुञ्जय-गिरनार महातीर्थों की संघ सहित यात्रा की थी। एवं दूसरी बार सं० १५०३ में भी उभय-तीर्थों की यात्रा की थी। मण्डलिक आदि ने आबू पर चौमुख प्रासाद बनाया था, इसी प्रकार गिरनार तीर्थ के वीर जिनालय में देवकुलिका निर्माण करवायी थी। प्रस्तुत प्रशस्ति उपा० जयसागर की रचित है ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने से नीचे दी जा रही है।

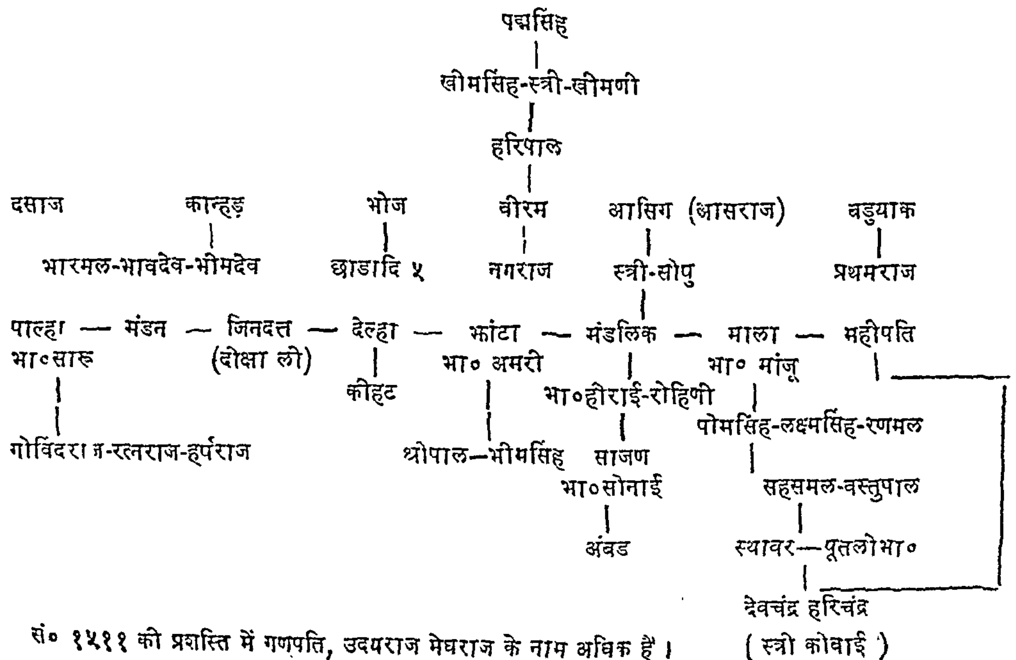
## स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्र-प्रशस्ति (१)

स्वस्ति सर्वाग्रिमन्मुख्यः, ऊकेश ज्ञातिमण्डनः ॥
पद्मसिंह पुरा जज्ञे, सोमसिंहस्ततः क्रमात् ॥१॥
सोमसिंहपिता तस्य हरिपालस्तदङ्गभूः ॥
निविष्टं यन्मनः पूणि श्राद्धधर्ममयं महः ॥२॥
धनाजकान्हड़ौ भोज वीरभावासिगस्तथा ॥
बडुयाकश्च सर्वेऽपि षडमी हरिपालजाः ॥३॥
भारमल्लो भावदेवो, भीमदेवस्तृतीयकः ॥
कान्हडस्य त्रयोऽप्येते सुताः सुजनताश्रिताः ॥४॥
धाड़ादय. पुन पञ्च नन्दना भोजसम्भवाः ॥
आसीद्वीरमसम्भूतो—नगराजः गुणाधिकः ॥ ५॥
प्रथमराज इत्यस्ति बडुयाङ्गरुहो महान् ॥
तेषु श्रीमानुदारश्च, साधुरासाको वशिष्यते ॥६॥
तत्प्रिया प्रियधर्माशो - स्सोपूरित्यमलाशया ॥
तयोरष्टसुतोत्पादः पाल्हः प्रह्लादनूमना ॥७॥
द्वितीयो मण्डना नाम कुटुम्बजनरञ्जिन ॥
तृतीयो जिनदत्तश्च यो बालेऽप्यग्रहीद्व्रतम् ॥८॥
चतुर्थः किल देल्हाख्य कूटाक पञ्चम पुन ॥
मण्डलाभिधसन्मान्यः षष्ठो मण्डलिकस्तथा ॥
सप्तमः साधुसाल्हाको—ऽष्टमः साधुमहीपतिः ॥९॥
गोविन्दरत्ननाह्वं — राजा पाल्हाङ्गजास्त्रयः ॥
कोल्हटो देल्हकस्याऽऽस्ते तस्याप्यास्यमण्डोद्भवः ॥१०॥
श्रीपाला सोमसिंहश्च, द्वाविमौ ऊगजात्मजौ ॥
साजणः सल्हणाख्ये, पुत्रौ मण्डलिकस्य तु ॥११॥
पासिंहो लक्ष्म(क्ष)सिंहो-रत्नमल्लश्च माल्हजाः ॥
सुस्थिरः स्थावरो नाम, महीपतेरङ्गसम्भवः ॥१२॥
तद्भार्या पूरलि पुण्य-वती शीलवती सती ॥
तनयौ सुनयौ तस्या देवचन्द्र-हर्षाभिधौ ॥ ३॥
कन्या देवचन्द्रस्य, कीकाई नामतः शुभा ॥
महीपतिपरीवार — श्चिरं जयतु भूतले ॥१४॥
इत्यादि सन्ततिर्भूयस्याशास्योऽभ्यने कुले ।
उत्तरोत्तर सद्धर्म-विराजते निरन्तरम् ॥१५॥
धर्मशाला तीर्थयात्रा-ऽध्याय स्थापनादिषु ।
साधर्मिकेषु चासाको धनं निन्ये कृतार्थताम् ॥१६॥

अपिच-संवत् १४८७ वर्षे सहोदरभावस्थितोपाध्याय-
श्रीजयसागरगणिसान्निध्यमासाद्य
महाविभूत्या च महामहिम्ना, यात्रां महातीर्थं युगेऽप्यकार्षीत् ।
सङ्घेन युक्तो महता महिष्ठः सङ्घेशतां मण्डलिकः प्रपन्नः ॥१७॥
सवत् १५०३ वर्षे तत्सान्निध्यादेव—
लोकोत्तरा स्फातिरुदारता च, लोकोत्तरं सङ्घजनर्चनञ्च ।
शत्रुञ्जये रैवतके च यात्रा कृताद्भुता मण्डलिकेन भूयः ॥१८॥
समं मण्डलिकेनैव, मालाकश्च महीपतिः ।
तदा सङ्घपती जातौ प्रिया-मण्डलिकस्य तु ॥१९॥
रोहिणी नामतः ख्याता मांजुर्मालाङ्गना पुनः ।
मणकाई महोत्साहा, महीपतिसधर्म्मिणी ॥२०॥
आसदन् सङ्घपत्नीत्वमेतास्तिस्रः कुलस्त्रियः ।
प्रायेण हि पुरन्ध्रीणां, महत्त्वं पुरुषाश्रितम् ॥२१॥
अर्बुदाद्रिशिरस्युच्चै-स्ते प्रासादं चतुर्मुखम् ।
भ्रातरं कारयन्ति स्म, त्रयो मण्डलिकादयः ॥२२॥
**इतश्च—**
चान्द्रे कुले श्रीजिनचन्द्रसूरिः संविग्नभावोऽभयदेवसूरिः ।
सद्वल्लभः श्रीजिनवल्लभोऽपि युगप्रधानो जिनदत्तसूरिः ॥२३॥

भाग्याद्भुतः श्रीजिनचन्द्रसूरिः क्रियाकठोरो जिनपत्तिसूरिः ।
जिनेश्वरः सूरिरुदारवृत्तो, जिनप्रबोधो दुरितान्निवृत्तः ॥२४॥
प्रभावकः श्रीजिनचन्द्रसूरिः सूरिर्जिनादिः कुशलान्तशब्दः ।
पद्मानिधिः श्रीजिनपद्मसूरि-लब्धेर्निधानं जिनलब्धिसूरिः ॥२५॥
संवेगिकः श्रीजिनचन्द्रसूरिर्जिनोदयःसूरिरभूदभूरिः ।
ततः परं श्रीजिनराजसूरिः सौभाग्यसीमा श्रुतसम्पदोकः ॥२६॥
तदास्पदव्योमतुषाररोचि र्विरोचते श्रीजिनभद्रसूरिः ।
तस्योपदेशामृतपानतुष्ट स्तेषु त्रिषु भ्रातृषु पुण्य पुष्टः ॥२७॥
श्रीरैवते वीरजिनेन्द्रचैत्ये, विधाप्य सद्देवकुलीं कुलीनः ।
महीपतिः सङ्घपतिः सुवर्णा-क्षरैर्मुदा लेखयतिस्म कल्पम् ॥
२८॥ युग्मम्

संवत् १५०६ वर्षे–
श्रीजयसागर वाचक विनिर्म्मिता सदसि वाच्यमानाऽसौ ।
कल्पप्रशस्तिरमला नन्दत्वानन्दकल्पलता ॥२९॥
इति श्री खरतर गुरुभक्त सङ्घपति मण्डलिक भ्रातृ सङ्घपति सा० महीपति कल्पपुस्तक प्रशस्तिः




सं० १५११ की प्रशस्ति में गणपति, उदयराज मेघराज के नाम अधिक हैं ।

उपाध्याय जयसागरजी की विज्ञप्ति-त्रिवेणी द्वारा अनेक नये तथ्य और जैन इतिहास तथा अप्रसिद्ध तीर्थ सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है। मुनि जिनविजयजी ने लिखा है कि विज्ञप्ति त्रिवेणी रूप पत्र ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्व का है। इसमें लिखा गया वृत्तांत मनोरंजक होकर जैन समाज की तत्कालीन परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश डालता है। उस समय भारत के उन (सिन्धु पंजाब) प्रदेशों में भी जैन धर्म का कैसा अच्छा प्रचार व सत्कार था। इन प्रदेशों में हजारों जैन बसते थे व सैकड़ों जिनालय मौजूद थे जिनमें का आज एक भी विद्यमान नहीं। जिन मरुकोट, गोपस्थल, नन्दनवनपुर और कोटिल्लग्राम आदि तीर्थस्थलों का इसमें उल्लेख है उनका आज कोई नाम तक भी नहीं जानता। जहाँ पर पांच पांच दस दस साधु चातुर्मास रहा करते थे वहां पर आज दो घण्टे ठहरने के लिये भी यथेष्ट स्थान नहीं। जिस नगरकोट महातीर्थ की यात्रा करने के लिए इतनी दूर दूर से संघ आया करते थे वह नगरकोट कहां पर आया है इसका भी किसी को पता नहीं।

इसमें केवल अलंकारिक वर्णन ही नहीं है परन्तु एक विशेष प्रसंग का सच्चा और सम्पूर्ण इतिहास भी है। ऐसा पत्र अभी तक पूर्व में कोई नहीं प्रगट हुआ। यह एक बिल्कुल नई ही चीज है।"

नगरकोट कांगड़ा में बहुत प्राचीन प्रतिमा थी। खरतरगच्छ के आचार्य जिनेश्वरसूरिजी के प्रतिष्ठित और साधु क्षेमसिंह कारित शांतिनाथ मंदिर व मूर्ति का उपाध्यायजी ने वहां दर्शन किया। वहां के राजा भी परंपरा से जैन थे। नरेन्द्र रूपचंद के बनाये हुए मंदिर मे स्वर्णमय महावीर बिम्बको भी उन्होंने नमन किया। यहाँ की खरतरवसही का उल्लेख करते हुए लिखा है —

"अपि च नगरकोट्टे देवशालत्परस्थे
प्रथम जिनपराजः स्वर्णमूर्तिस्तु वीरः
खरतरवसतौ तु श्रेयसां धाम शान्ति-
स्त्रयतिदमभिनम्याह्लादभावं भजामि ॥१८॥"

पंजाब और सिन्ध प्रदेश में शताब्दियों तक खरतरगच्छ का बहुत अच्छा प्रभाव रहा है। इस सम्बन्ध में मेरा लेख "सिन्ध प्रान्त और खरतरगच्छ" द्रष्टव्य है।

हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में जयसागरोपाध्याय सम्बन्धी जो महत्त्वपूर्ण विवरण सं० १५११ का लिखा हुआ छपा है उसका सार इस प्रकार है—

"उज्जयन्त शिखर पर नरपाल संघपति ने "लक्ष्मी-तिलक" नामक विहार बनाना प्रारंभ किया तब अम्बादेवी, श्री देवी आपके प्रत्यक्ष हुई और सेरिसा पार्श्वनाथ जिनालय में श्री शेष, पद्मावती सह प्रत्यक्ष हुआ था। मेदपाट-देशवर्त्ती नागद्रह के नवखण्डा-पार्श्व चैत्यालय में श्रीसरस्वती देवी आप पर प्रसन्न हुई थी। श्री जिनकुशलसूरिजी आदि देवता भी आप पर प्रसन्न थे। आपने पूर्व मे राजगृह नगर उद्दंड-विहारादि, उत्तर मे नगरकोट्टादि, पश्चिम में नागद्रह आदि को राजसभाओं में वादि वृन्दों को परास्त कर विजय प्राप्त की थी। आपने सन्देह, दोलावली वृत्ति, पृथ्वीचन्द्र चरित, पर्व रत्नावली, ऋषभस्तव, भावारिवारण वृत्ति एवं संस्कृत प्राकृत के हजारों स्तवनादि बनाये। अनेकों श्रावकों को संघपति बनाये और अनेक शिष्यों को पढ़ाकर विद्वान बनाये।"

इसमें उल्लिखित गिरनार के नरपाल कृत "लक्ष्मी-तिलक प्रासाद" के संबंध में रत्नसिंहसूरि रचित गिरनार तीर्थमाला में भी उल्लेख मिलता है—

'थापो श्रीतिलक प्रासादहि, साहारपालि
पुण्य प्रसादिहि सोवनमयगिरिवीरो"

महो० जयसागर जिनराजसूरिजी के शिष्य थे अतः उनकी दीक्षा सं० १४६० के आसपास होनी चाहिये। इनकी दीक्षा बाल्यकाल में हुई, ऐसा प्रशस्ति में उल्लेख है, अतः दस-बारह वर्ष की आयु में दीक्षित होने से जन्म सं०

१४४५-५० के बीच होना चाहिये। सं० १४७५ में श्रीजिनभद्रसूरिजी ने आपको उपाध्याय पद से विभूषित किया था। श्रीजिनवर्द्धनसूरिजी के पास आपने लक्षण-साहित्यादि का अध्ययन किया था। सं० १४७८ से सं० १५०३ तक की आपकी अनेक रचनायें प्राप्त हैं। सं० १५११ की प्रशस्ति के अनुसार आपने हजारों स्तुति-स्तोत्रादि बनाये थे। खेद है कि आपकी रचनाओं की तीन संग्रह-प्रतियाँ हमारे अवलोकन में आईं, वे तीनों ही अधूरी थीं, फिर भी आपकी पचासों रचनाएं संप्राप्त हैं। स्वर्गीय मुनि श्री कान्तिसागरजी के संग्रह में आपकी कृतियों का एक गुटका जानने में आया है जिसे हम अब तक नहीं देख सके हैं। सं० १५१५ के आसपास आपका स्वर्गवास अनुमानित है।

खरतर गच्छ में महोपाध्याय पद के लिए यह परम्परा है कि अपने समय में जो सब उपाध्यायों से वयोवृद्ध-गीतार्थ हो वह अपने समय का एक ही महोपाध्याय माना जाता है। आचार्य-उपाध्याय तो अनेक हो सकते पर महोपाध्याय एक ही होता है, अतः महोपाध्याय जयसागर दीर्घायु, पचहत्तर-अस्सी वर्ष के हुए होंगे। असाधारण प्रतिभा सम्पन्न विद्वान होने के नाते आपने सैकड़ों रचना अवश्य की होगी। प्राप्त रचनाओं का सुसम्पादित आलोचनात्मक संग्रह प्रकाशन होने से आपकी विद्वत्ता का सच्चा मूल्यांकन हो सकेगा।

महो० जयसागरजी की शिष्य-परम्परा भी बड़ी महत्वपूर्ण रही है। मुनि जिनविजयजी ने विज्ञप्ति त्रिवेणी की विस्तृत प्रस्तावना में आपके शिष्य समूह के सम्बन्ध में भी लिखा है। तदनुसार आपके प्रथम शिष्य मेघराज गणि थे जिनके रचित नगरकोट के आदिनाथ स्तोत्र, चौबीस पद्यों का हारबन्ध काव्य है। दूसरे शिष्य सोमकुञ्जर के विविध अलंकारिक पद्य विज्ञप्ति त्रिवेणी में प्राप्त हैं। एवं खरतरगच्छ-पट्टावली हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में पद्य ३० की प्रकाशित है। जैसलमेर के श्री संभवनाथ जिनालय की प्रशस्ति सं० १४९७ में आपने निर्माण की जो जैसलमेर जैन लेख संग्रह में मुद्रित है।

जयसागरोपाध्याय के विशिष्ट शिष्यों में उ० रत्नचन्द्र भी उल्लेखनीय है जिनकी दीक्षा सं० १४८४ के लगभग हुई होगी। सं० १५०३ में जयसागरोपाध्याय के पृथ्वीचन्द्र चरित्र की प्रशस्ति में गणि रत्नचन्द्र द्वारा रचना में सहायता का उल्लेख है। सं० १५२१ से पूर्व इन्हें उपाध्याय पद प्राप्त हो चुका था। इनके शिष्य भक्तिलाभोपाध्याय भी अच्छे विद्वान थे उनकी कई रचनायें उपलब्ध हैं। उनके शिष्य पाठक चारित्रसार के शिष्य चारुचन्द्र और भानुमेरु वाचक थे जिनके शिष्य ज्ञानविमल उपाध्याय और उनके शिष्य श्रीवल्लभोपाध्याय अपने समय के नामी विद्वान थे। आपके रचित विजयदेव माहात्म्य की मुनि जिनविजयजी ने बड़ी प्रशंसा की है। आपके अरजिनस्तव सटीक और संघपति रूपजी वंश प्रशस्ति महो० विनयसागर जी संपादित एवं विद्वद्प्रबोध तथा हेमचन्द्र के व्याकरण कोश आदि की टीका प्रकाशित हो चुकी है।



# श्रीगुणरत्नगणि की तर्कतरङ्गिणी

[ जितेन्द्र जेटली ]

अनेकान्तवाद का आचरण करने वाले जैनाचार्यों ने अपने सम्प्रदाय के दार्शनिक ग्रन्थों पर टीका-टिप्पण आदि की रचना की है यह आश्चर्य की बात नहीं है किन्तु अन्य दर्शन के ग्रन्थों पर भी प्रामाणिक व्याख्या रूप टीकायें लिखी हैं।[1] ऐसी रचनाओं में से श्रीगुणरत्नगणिजी की तर्कतरङ्गिणी भी है।

श्रीगुणरत्नगणि विनयसमुद्रगणि के शिष्य थे। विनयसमुद्रगणि जिनमाणिक्य के शिष्य थे जो कि जिनचन्द्रसूरि के समानकालीन थे। जिनचन्द्रसूरि श्रीहीरविजयसूरि के समानकालीन थे। उनका समय मोगल सम्राट अकबर के समय का है क्योंकि वे उनके दरबार में आमन्त्रित हुआ करते थे। श्री गुणरत्नगणि ने तर्कतरङ्गिणी के उपरान्त 'काव्यप्रकाश' के ऊपर एक १०००० श्लोकप्रमाण की सुन्दर टीका लिखी है। यह टीका उन्होंने अपने शिष्य रत्नविशाल के लिए लिखी है। इसी तरह यह तर्कतरङ्गिणी भी उन्होंने उसी शिष्य के वास्ते लिखा है। तर्कतरङ्गिणी पुष्पिका में यह स्पष्ट निर्देश है। वे लिखते हैं कि—

श्रीमद्रत्नविशालाख्यस्वशिष्याध्ययनहेतवे।
गुणरत्नगणिश्चक्रे टीकां तर्कतरङ्गिणीम् ॥

यह तर्कतरङ्गिणी गोवर्धन की प्रकाशिका जो कि केशव मिश्र की तर्कभाषा के ऊपर टीका है उसकी प्रतीक है। तरङ्गिणी की समाप्ति में और मङ्गल में इस विषय का निर्देश किया गया है।

इस तर्कतरङ्गिणी के अभ्यास से यह स्पष्ट प्रतीत होती है कि श्री गुणरत्नगणिजी अनेक शास्त्रों के विद्वान होते हुए एक अच्छे तार्किक थे। वे खरतरगच्छ के थे इसलिए उस गच्छ के लिए यह अत्यन्त गौरव की बात है। वे किस प्रकार के उच्च श्रेणी के तार्किक थे यह तर्कतरङ्गिणी से ही ज्ञात होता है।

तर्कतरङ्गिणी गोवर्धन की प्रकाशिका की टीका होने से सामान्यतः चर्चा में गोवर्धन का वे अनुसरण करते हैं फिर भी वे जिन सिद्धान्तों की चर्चा गोवर्धनजी ने नहीं की है उन सिद्धान्तों की चर्चा भी समय २ पर करते हैं। जैसे कि गोवर्धन मङ्गलवादकी कोई विशेष चर्चा नहीं करते हैं फिर भी गुणरत्नगणि अपनी तर्कतरङ्गिणी में अन्य नैयायिक विद्वानों की भांति मङ्गलवादकी चर्चा विस्तार से करते हैं। इस चर्चा में वे उदयनाचार्य, गङ्गेश, पक्षधर मिश्र आदि एवं प्राचीन तथा अर्वाचीन विद्वानों की वे मङ्गल विषयक मतों की आलोचना करके वे गङ्गेश उपाध्याय के मत से सम्मत होते हैं।[2]

मङ्गलवाद के अनन्तर वे न्यायसूत्र के प्रमाण प्रमेय आदि प्रथम सूत्र को लेकर समासवाद की चर्चा करते हैं। यद्यपि गोवर्धन ने यह चर्चा मोक्षवाद के अनन्तर की है। परन्तु गुणरत्नगणि ने यह चर्चा यहीं पर की है और उचित स्थान भी यही है क्योंकि समासवाद की चर्चा से ही न्यायसूत्र के प्रमाण को लेकर अपवर्ग का अर्थ स्पष्टतर होता

---

१ द्रष्टव्य 'जैनेतर ग्रन्थों पर जैन विद्वानों की टीकाएँ' भारतीय विद्या वर्ष २ अङ्क ३ ले० अगरचन्द नाहटा तथा खण्डप्रशस्ति जिनवर्धनसूरि टीका सहित प्रस्तावना पृ० ७ से ९। प्र० ला० द० भारतीय विद्यामन्दिर अहमदाबाद

२ द्रष्टव्य युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि पृ० १६३-१६४ श्री अगरचन्द नाहटा, भंवरलाल नाहटा।

है इस वास्ते यह चर्चा यहां की जाय यह अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है।

समासवाद में गोवर्धन ने न्यायसूत्र के प्रथमसूत्र में इतरेतरद्वन्द समास कहकर सूत्र को समझाया है। गुणरत्नगणि ने भिन्न-भिन्न द्वन्द्व समासों की चर्चा पाणिनि के सूत्र के आधार पर की है।[४] वे कर्मधाराय और द्वन्द्व के भेद को समझकर सूत्र में इतरेतर द्वन्द्व समास क्यों है इस विषय को स्पष्ट करते हैं। इस चर्चा से गुणरत्नगणि अच्छे वैयाकरण थे यह भी प्रतीत होता है।

समासवाद के अनन्तर प्रकाशिकाकार मोक्षवाद की चर्चा विस्तार से करते हैं। न्याय के सोलह पदार्थों का तत्वज्ञान मोक्ष का कारण किस तरह होता है यह समझाने का प्रयत्न करते है। वे शास्त्र तथा तत्वज्ञान को मोक्ष का सीधा कारण न मानकर शास्त्र तथा तत्वज्ञान मोक्ष के प्रयोजक हैं ऐसा सिद्ध करते हैं।[५] गुणरत्न प्रकाशिका के प्रामाणिक टीकाकार होनेसे गोवर्धन की इस बात का समर्थन करते हुए इसे विस्तार से समझाते हैं और किस तरह शास्त्र और तत्वज्ञान मोक्ष का सीधा जनक न होकर प्रयोजक हैं इसे स्पष्ट करते हैं।[५] इस चर्चा में गुणरत्नगणि काशीमरण से मुक्ति होती है या नहीं इसकी भी चर्चा करते हैं और नैयायिक मतानुसार काशीमरण से तत्वज्ञान होता है और तत्वज्ञान मोक्षका प्रयोजक है इस बात को वे सिद्ध करते हैं। यहां काशी मरण जैसा सरल मार्ग को छोड़कर शास्त्रभ्यास जैसा कठिन मार्ग क्यों लिया जाय? जैसे पूर्वपक्ष का खण्डन गुणरत्न प्रामाणिक टीकासार के नाते करते हैं।[६] वे चाहते तो इस विषय का अच्छी तरह खण्डन कर सकते थे पर प्रामाणिक टीकासार होनसे ही उन्होंने ऐसा यहां नहीं किया है।

न्यायसूत्र के वात्यस्यापन भाष्य में शास्त्र की विविध प्रवृत्ति, उद्देश, लक्षण तथा परीक्षा निर्दिष्ट है। तर्कभाषाकार इन तीनों का लक्षण देते हैं। प्रकाशिका के कर्त्ता गोवर्धन इन तीनों विषय की विस्तृत चर्चा करते हैं। उन्हीं का अनुसरण करते हुए गुणरत्न इन विषयों की ओर विस्तृत चर्चा करते हैं।[७] उनकी इस चर्चा में उनका नव्यन्याय का पाण्डित्य स्पष्ट प्रतीत होता है।

उद्देश, लक्षण और परीक्षा इन तीनों की चर्चा के पीछे प्रमाण वगैरह सोलह पदार्थों का विचार शुरु होता है। प्रमाण का क्रम प्रथम होने से स्वाभाविक रूप से प्रमाण का लक्षण और परीक्षा की जाती है। गुणरत्न प्रमाण के लक्षण में प्रमा की यथार्थता क्या है इसकी चर्चा गोवर्धन का अनुसरण करते हुए विस्तार से करते हैं। यथार्थत्व को समझाते हुए तद्वति तत्प्रकारात्व में गुणरत्न 'तद्वति' पद के अर्थ में जितने भी दिरोधि अर्थ हैं उनका युक्ति से खण्डन करते हैं।[८] प्रमा का करण प्रमाण है ऐसा लक्षण करने में जैसे प्रमा के लक्षण की चर्चा करनी होती है उसी तरह करण की भी चर्चा स्वाभाविक रूपसे करनी पड़ती है। गोवर्धन प्रमा करण प्रमाण को समझाते हुए 'अनुभवत्वव्याप्याजात्यवच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वे सति प्रमाकरणत्वम् प्रमात्वं' ऐसी प्रमाण की व्याख्या देते हैं। गुणरत्न नव्यन्याय की पद्धति से विस्तार से प्रमाण के इस लक्षण का पद्कृत्य करके समझाते हैं।[९] कारण के लक्षण को समझाते हुए उन्होंने पांचों अन्यथासिद्धि को भी विस्तार से स्पष्ट किया है।[१०] तदनन्तर तीनो प्रकार के करण तथा समवायि कारण और

३ द्रष्टव्य मङ्गलवाद तर्कतरङ्गिणी पृ० १ से ८ सं० डॉ० वसन्त पारीख
४ द्रष्टव्य वही पृ० १०
५ द्रष्टव्य तर्कतरङ्गिणी मोक्षवाद पृ० २३-२८
६ ,, वही पृ० ३०
७ ,, वही पृ० ३७-५१
८ द्रष्टव्य वही पृ० ५८
९ ,, ,, पृ०—६७-७१ तथा पृष्ठ ७८-८४
१० ,, ,, पृ० ८४-९०

उपादान कारण में क्या भेद है इसकी चर्चा भी की है[११]।

प्रमाण के लक्षण में प्रत्यक्ष प्रमाण की चर्चा में तर्कभाषाकार और प्रकाशिकाकार का अनुसरण करते हुए उन्होंने बौद्ध और मीमांसक के प्रत्यक्ष लक्षणों की भी विस्तार से चर्चा करके खण्डन किया है[१२]।

प्रत्यक्ष के अनन्तर अनुमान प्रमाण की चर्चा में 'अनुमान का कारण लिंग परामर्श ही है' इस तर्कभाषाकार और प्रकाशिकाकार के मत को गुणरत्न ने विशदता से नव्यन्याय के आधार पर समझाया है[१३]। इस चर्चा में व्याप्ति के लक्षण की चर्चा गोवर्धन ने अधिक नहीं की है परन्तु गुणरत्न नव्यन्याय के प्रस्थापक गंगेश उपाध्याय के व्याप्ति के लक्षण को लेकर व्याप्ति के अनेक लक्षण प्रस्तुत करते हैं और इससे उनके नव्यन्याय के ज्ञान की विशिष्टता स्पष्टतया गोचर होती है[१४]। इस चर्चा में वे उपाधि, तर्क वगैरह की चर्चा करते हुए मीमांसक जैसे अन्य दार्शनिकों के मतों की भी व्याप्तिग्राहकत्व के विषय में चर्चा करते हैं। चार्वाक जो कि प्रत्यक्ष प्रमाण का स्वीकार ही नहीं करते हैं उनके मत का भी गुणरत्न ने नैयायिक पद्धति से खण्डन किया है[१५]।

अनुमान में व्याप्ति की चर्चा के साथ हेतु की चर्चा भी अनिवार्य है। नैयायिक अन्वयव्यतिरेकी केवलान्वयी और केवलव्यतिरेकी तीनों प्रकार के हेतुओं का स्वीकार करते हैं। इस चर्चा में गुणरत्न उदयन के मत का अनुसरण करते हुए केवलव्यतिरेक व्याप्ति अन्वय रूप से भी कैसे हो सकती है उसे स्पष्ट करते हैं[१६]। पक्षता की चर्चा में 'अनुमित्साविरह विशिष्ट सिद्ध्यभाव. पक्षता' के लक्षण में विशिष्टाभाव के अर्थ की चर्चा वे विशदता से और विस्तार से करते हैं[१७]।

अनुमान की चर्चा में हेत्वाभास की चर्चा अनिवार्य है। गुणरत्न हेत्वाभास का गोवर्द्धन से प्रस्तुत लक्षण किस तरह पाँचों हेत्वाभासों को आवृत करता है यह एक प्रामाणिक टीकाकार के नाते विस्तार दिखाते हैं। वे प्रत्येक हेत्वाभास में क्या फर्क है, विशेषतः असिद्ध और विरुद्ध में क्या अन्तर है इसका सूक्ष्म निरूपण उदयन के मत का अनुसरण करते हुए देते हैं। साथ में एक ही स्थान पर हेत्वाभासों का संग्रह हो जाय, अर्थात् अनेक हेत्वाभास हों तो उसमें कोई दोष नहीं है, इस बात को भी स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करते हैं[१८]।

अनुमान के अनन्तर उपमान की चर्चा टीकाकार गोवर्धन के अनुसार अत्यन्त संक्षेप में करके वे शब्दप्रमाण की चर्चा करते हैं। गोवर्द्धन शब्द प्रमाण की चर्चा को अधिक विस्तार से "एतावन्मात्रस्य बालबोधार्थं करणात्' ऐसा कह कर नहीं करते हैं, परन्तु गुणरत्न शब्द प्रमाण की अनेक विशेषताओं की चर्चा विस्तार से करते हैं (पृ० ३०७)। वे गङ्गेश के मत को उद्धृत करके गोवर्धन के दिये हुए लक्षण को विस्तार से समझाते हैं, और आसत्ति क्या है, तथा आकांक्षा, योग्यता आदि भी क्या

११ तर्कतरङ्गिणी पृ० १८० और आगे
१२ „ „ पृ० १७४
१३ द्रष्टव्य वही पृ० १८१-१८४
१४ „ „ पृ० १८७ और आगे
१५ „ „ पृ० २४२
१६ „ „ पृ० २७२
१७ „ „ पृ० २७१

१८ 'वायुर्गन्धवान् स्नेहात्' इस हेत्वाभास के उदाहरण में वे लिखते हैं कि एकस्यैव 'स्नेहस्य गन्धेनान्वितविरुद्धेत्यादि पक्षत्वव्यवहारः पक्षनिश्चयाद्याद्यामुक्तम् – उपाधेयसङ्करेऽप्युपाध्यसङ्कर इति न्यायाद्दोषगतसंकरामावाय दुष्टहेतौ पक्षत्वादिमत्त्वव्यवहारः'—तर्कतरङ्गिणी सं० डॉ० परीख, हस्तलिखित प्रति पृ० ६०५-६०६।

है, यह भी स्पष्ट करते हैं। तर्कभाषाकार और प्रकाशिकाकार ने शब्द के अनित्यत्व की चर्चा यद्यपि नहीं की है किन्तु इसका महत्त्व समझते हुए गुणरत्न इस चर्चा को छेड़ते हैं, और शब्द-नित्यत्व आदि मीमांसक के मत का खण्डन भी करते हैं। इस चर्चा में शब्द की शक्तियाँ, अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना की चर्चा भी समाविष्ट हो जाती है (पृ० ३·५)।

चारों प्रमाणों की स्थापना के अनन्तर अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, किंवा अभाव ये दो प्रमाणों का अन्तर्भाव अनुमान में न्याय और वैशेषिक परम्परा करती है। तरङ्गिणीकार भी उनका अनुसरण करते हुए इन प्रमाणों का अनुमान में अन्तर्भाव करते हैं। प्रमाण के अन्तर्भाव की इस चर्चा में विशेषण विशेष्य भाव सम्बन्ध से अभाव का प्रत्यक्षज्ञान कैसे होता है यह भी विशदता से तरंगिणी में समझाया गया है (पृ० ३३५-३५७)।

प्रमाणों की चर्चा में तर्कभाषाकार ने प्रामाण्यवाद की चर्चा भी की है। इस विषय में तर्कभाषाकार पूर्व पक्ष में भट्टमत के सिद्धान्त को रखते हैं। प्रकाशिका का स्वतः प्रामाण्यवादो मीमांसक के तीनों मतों को लेकर उनका खण्डन करते हैं। गुणरत्न मीमांसक और नैयायिक दोनों के मतों को समझाकर प्रथम ज्ञानप्रामाण्य क्या है, यह विस्तार से समझाते हैं और मीमांसक के प्रत्येक मत को विशदता से और विस्तार से चर्चा करते हैं (पृ० ३६१-६२)। यद्यपि इस विषय में जैन सिद्धान्त न्याय वैशेषिक के सिद्धान्त से पृथक् है। फिर भी गुणरत्न इसे प्रामाणिकता से न्याय वैशेषिक के परतः प्रामाण्यवाद का स्थापन और मण्डन करते हैं। करीब आधा ग्रन्थ तरंगिणीकार ने प्रमाण की चर्चा में उपयुक्त किया है।

प्रमाण की चर्चा के अनन्तर न्याय दर्शन के बारह प्रमेयों की चर्चा शुरू होती है। इन बारह प्रमेयों में भी आध्यात्मिक दृष्टि से मुख्य आत्मा, शरीर, और इन्द्रिय की चर्चा होनी चाहिए परन्तु प्रमाण-विचार जितनी चर्चा इन प्रमेयों की नहीं की गई है। इस विषय में तर्कभाषाकार से लेकर तरङ्गिणीकार तक सब समान हैं। शरीर की चर्चा में गुणरत्न ने शरीरत्व जाति है या नहीं इसकी चर्चा छेड़ी है (पृ० ४३८-३९) और साङ्कर्य दोष होते हुए भी शरीरत्व जाति है ऐसा स्वीकार किया है।

चतुर्थ प्रमेय अर्थ की चर्चा में वैशेषिक मत के सातों पदार्थों का निरूपण तर्कभाषाकार ने किया है। इससे कुछ पदार्थों की चर्चा की पुनरुक्ति होती है। गुणरत्न इस वास्ते इस विषय की कोई विस्तृत चर्चा नहीं करते हैं। यहां 'एवम्' पद का विचार श्रीगुणरत्न विस्तार से करते हैं (पृ० ४४८)। चर्चा का समापन करते हुए 'एव' पद का अर्थ अन्योन्याभाव हो सकता है ऐसे लीलावतीकार के मत को वे समर्थित करते हैं।

अर्थ में से द्रव्य पदार्थ के निरूपण में पृथ्वी का निरूपण आता है। इसमें विशेष चर्चा पाकज प्रक्रिया की की गई है। यह चर्चा यहां संक्षेप में ही की जाती है, क्योंकि इस चर्चा का उचित स्थान गुणों की चर्चा में है। द्रव्यों की चर्चा में तेजस द्रव्य सुवर्ण की चर्चा भी स्वभावतः की जाती है। इस विषय में तरंगिणीकार सूचन करते हैं कि यद्यपि सुवर्ण में तैजस रूप तथा स्पर्श उत्पन्न होता है किन्तु वे पृथ्वी के परमाणु की अधिकता होने से पार्थिवरूप और पार्थिव स्पर्श से अभिभूत हो जाते हैं (पृ० ४५२-५४)।

पृथ्वी, जल, तेज और वायु के निरूपण के अनन्तर चारों द्रव्यों के परमाणुओं की चर्चा में परमाणुवाद की चर्चा की जाती है। जैनदर्शन के पुद्गल और न्याय-वैशेषिक के परमाणु भिन्न होने पर भी श्री गुणरत्न यहां केवल परमाणुवाद की चर्चा करते हैं। परमाणुओं से सृष्टि-संहार की प्रक्रिया कैसे होती है, यह वैशेषिक मत के अनुसार समझाया गया है। यहां पर प्रलय के समय सारे परमाणुओं का विभाजन कैसे होता है इसे विस्तार से तर्क-

तरङ्गिणीमें श्रीगुणचन्द्र समझाते हैं (पृ० ४५५-५६)। यहां पर प्राचीन और नवीन नैयायिकों के मतभेदमें गुणरत्न प्राचीन नैयायिकों के मत को समर्थित करते हुए समवायि कारण के नाश से कार्य का नाश होता है, इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। द्रव्य की चर्चा में गुणरत्न आत्मा की चर्चा प्रमेय में हो जाने के कारण पुनरुक्ति दोष के वारण के लिये नहीं करते हैं।

द्रव्य के अनन्तर गुण निरूपण में तर्कभाषाकार गुण का लक्षण "सामान्यवानसमवायिकारणमस्पन्दात्मा गुणः" ऐसा देते हैं। प्रकाशिकाकार गोवर्धन इस लक्षण में 'कर्म-द्रव्यभिन्नत्वे सति' ऐसा विशेषण बढ़ाते हैं। गुणरत्न इस विशेषण वृद्धि को विस्तार से समझाते हैं और रघुनाथ शिरोमणि के गुण के लक्षण को भी उद्धृत करते हैं। गुण की चर्चा में रूप की चर्चा भी की जाती है। गुणरत्न प्राचीन नैयायिकों के मत को पुष्ट करते हुए चित्ररूप की आवश्यकता समझाते है (पृ० ४८९)। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श इन चारों गुणों के लक्षण को पदकृत्य शैली से समझा कर पाचन प्रक्रिया की विस्तार से चर्चा करते हैं। यहां पिठर-पाकवादी नैयायिक और पीलुपाकवादी वैशेषिक के मतों को वे विस्तार से और विशदता से निष्पक्ष रूप से स्थापित करते हैं। इस प्रक्रिया में विभागज विभाग की सहायता से परमाणु में रूपादि का फर्क कैसे होता है यह बात अपने शिष्य की स्पष्टता के वास्ते वे समझाते हैं (पृ०४९४)।

चार गुणों के निरूपण में संख्या का निरूपण तर्क-भाषाकार करते हैं। गुणरत्नजी ने यहां पर गोवर्धन के लक्षण के साथ असम्मति प्रगट करते हुए कहा है कि "वस्तुतस्तु तदपि लक्षणं न संभवति तस्य लक्षणतावच्छेदकत्वात्"। इतना कह कर वे अपनी ओर से "व्यासज्यवृत्तित्वे सति पृथक्त्वात्म-गुणत्वव्याप्यजातिमत्त्वम्" (पृ० ४९९) ऐसा यथार्थ लक्षण देते हैं। यह बात उनकी सूक्ष्मेक्षिका की बोधक है। इसी तरह वे परिमाण नामक गुण का भी 'कालवृत्तिवृत्तित्वे सति एकैवृत्तिमात्रवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वं परिमाणत्वम्' (पृ० ५०४) स्पष्ट लक्षण देते हैं। 'पृथक्त्व' गुण को समझाते हुए वे अन्योन्याभाव से पृथक्त्व किस तरह भिन्न है इसका स्पष्टीकरण विशदतासे करते हैं।

तदनन्तर वे संयोग को समझाते हुए इसका भी समुचित लक्षण "विभागप्रतियोगिकान्योन्याभाववत्त्वे सति एक-वृत्तिमात्रवृत्तिगुणत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिमत्त्वं संयोगत्वम्" देते हैं। इस लक्षण को पदकृत्य शैली से समझा कर संयोग के भेद को भी वे समझाते हैं। इस विषय में नैयायिक जो कि संयोग को अव्याप्य वृत्ति कहते हैं उनके साथ अपनी असम्मति प्रकट करते हुए श्रीगुणरत्न संयोग को भी व्याप्य वृत्ति सिद्ध करते हैं। अपने मत के समर्थन में वे लीलावती को उद्धृत करते हैं (पृ० ५१३-१६)। संयोग के अनंतर स्वाभाविक क्रम से विभाग का निरूपण आता है। विभाग यह संयोग का अभाव नहीं है, किन्तु स्वतंत्र गुण है—यह बात एक अच्छे तार्किक की तरह गुणरत्न समझाते हैं।

तदनन्तर परत्व, अपरत्व इत्यादि गुणों को संक्षेप में समझा कर वे शब्द निरूपण की चर्चा विस्तार से करते हैं। 'वीचीतरङ्गन्याय' किंवा 'कदम्बमुकुलन्याय' से नये-नये शब्द किस तरह उत्पन्न होते हैं और श्रोत्रेन्द्रिय में ही उत्पन्न होकर शब्द का किस प्रकार ग्रहण होता है इसे वे विस्तार से समझाते हैं। शब्द का अनित्यत्व और केवल तीन क्षण तक शब्द कैसे रहता है यह समझाते हुए बुद्धि केवल दो क्षण तक ही रहती है ऐसा स्पष्ट करते हैं। शब्द के नाश के विषय में पूर्व पक्ष के मत को तर्कभाषाकार का मत समझने में भूल गुणरत्नजी ने यहाँ पर की है। यह बुद्ध केशव मिश्र की बात को समझने में गलती से हो गया है। शब्द के अनन्तर बुद्धि, धर्म, अधर्म आदि आत्मा के गुणों का निरूपण करते हुए भ्रम किंवा अन्यथाख्याति का भी निरूपण वे करते हैं। इस निरूपण में ख्यातिवाद और भिन्न-भिन्न ख्यातियों की चर्चा की गई है (पृ० ५३०)।

द्रव्य और गुण की चर्चा के अनन्तर कर्म निरूपण में गुणरत्न कर्म का स्वतंत्र लक्षण ही देते हैं। यह है "संयोग-विभागयोरनपेक्षकारणं कर्म" (पृ० ५३२)। यहां वे प्रशस्त-पाद भाष्य का अनुसरण करते हैं। उन्हें तर्कभाषाकार का और गोवर्धन का दिया हुआ लक्षण संतोष नहीं दे सका है। सामान्य, विशेष समवाय और अभाव ये चारों पदार्थ वैशेषिक के ही अपने पदार्थ हैं। फिर भी यहाँ गुणरत्न इन पदार्थों का खण्डन नहीं करते हैं सामान्य में सामान्य या जाति उपाधि से किस तरह भिन्न है, यह समझाते हैं। उनके मतानुसार जाति संकर से मुक्त होनी चाहिए (पृ० ५३४)। "ब्राह्मणत्व" जाति किस तरह चारों प्रकार से शक्य होती है यह तार्किक युक्ति से वे प्रस्तुत करते हैं। विशेष की खास चर्चा न करते हुए समवाय की चर्चा में स्वरूप सम्बन्ध से समवाय किस तरह भिन्न है और अवयवी केवल अवयवों का समूह न होकर अवयवों से भिन्न है यह न्याय वैशेषिक का सिद्धान्त वे अच्छी तरह प्रतिपादित करते हैं (पृ०५३७)।

समवाय के बाद अभाव की चर्चा वे विशेष रूप से करते हैं। अन्योन्याभाव से संसर्गाभाव, जिसके तीन प्रकार हैं, वह कैसे पृथक् हैं इसे विशदता से और विस्तार से वे समझते है। इसी चर्चा में प्रत्येक अभाव एक दूसरे से क्यों भिन्न हैं यह भी वे अच्छी तरह समझाते हैं (पृ०-५४१-५२)। मीमांसक जो कि अभाव को अलग नहीं मानते हैं उनका खण्डन भी वे न्याय वैशेषिक के सिद्धान्तों के अनुसार करते हैं।

आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और अर्थ के निरूपण के अनन्तर न्याय के अवशिष्ट आठ प्रभेदों में वे अत्यन्त संक्षेप करते हैं। सिद्धान्त की चर्चा में गुणरत्न गोवर्धन का अनुसरण करते हैं और गोवर्धन ने वार्तिककार के मतानुसार तर्क-भाषाकार जो कि भाष्यकार वात्स्यायन के मत का स्वीकार करते हैं उनका खण्डन करते हैं। गुणरत्न भी उसी तरह तर्कभाषाकार के मत का खंडन विशेषतः अभ्यु-पगम सिद्धान्त के भेद के विषय में करते हैं। सिद्धान्त के बाद तर्क का लक्षण देकर प्रकाशिकाकार के अनुसार तर्क के प्रकार समझाते हैं (पृ० ५८३-८४)।

न्याय शास्त्र के अन्य पदार्थों की विशेष चर्चा न करते हुए वे वादजल्प और वितण्डा ये तीन पदार्थों को समझाते हैं। यद्यपि हेमचन्द्रसूरि ने केवलवाद को ही स्वीकार जैन दर्शन की दृष्टि से प्रमाणमीमांसा में किया है फिर भी यहां प्रामाणिक टीकाकार गुणरत्न तीनों को अच्छी तरह समझा कर तीनों के भेद की आवश्यकता भी समझाते हैं। कथा की चर्चा के इस प्रसंग में निग्रहस्थान की चर्चा भी समा-विष्ट होती है। कथा में केवलवादी और प्रतिवादी ही भाग लेते हैं इस मत का खण्डन करते हुए गोवर्धन वादी और प्रतिवादी के समूह अर्थात् एक से अधिक व्यक्ति भी इसमें भाग ले सकते हैं, गुणरत्न उन्हीं का अनुसरण करते हैं। इस विषय में रत्नकोशकार ने कथा के जो अन्तर प्रकट किया है उसका खण्डन भी गुणरत्न करते हैं। निग्रह स्थान की चर्चा में हेत्वाभास की चर्चा एक बार आचुकी है वे इस वास्ते पुनरावृत्ति नहीं करते हैं। छल और गति के विषय में भी वे अधिक कुछ विवरण नहीं करते हैं क्योंकि कथा की चर्चा में ये सब आ जाते हैं।

संक्षेप में तर्कभाषाकार और उनके टीकाकार प्रका-शिकाकार गोवर्धन ने जिन विषयों की विशेष चर्चा नहीं की है, ऐसे विषयों की चर्चा गुणरत्न ने अपनी तर्कतर-ङ्गिणी में आधुनिक प्रामाणिक टीकाकार की तरह की है। ये विषय हैं (१) मङ्गलवाद, (२) काशीमरण मुक्ति, (३) उद्देश्य, लक्षण और परीक्षा का विस्तार से विवरण, (४) कारण लक्षण (५) षोढा सन्निकर्ष (६) व्याप्ति (७) अवच्छे-दकत्व (८) सामान्यलक्षणा तथा ज्ञानलक्षणा प्रत्यासत्ति (९) हेतुके तीन प्रकार (१०) सत्प्रतिपक्ष और संदेह का भेद (११) शब्द की अनित्यता (१२) शब्द शक्तियाँ (१३) प्रामाण्यवाद में मीमांसकों के तीनों मत की आलोचना (१४) शरीरत्व जाति (१५) प्रलय (१६) गुण का लक्षण (१७) चित्ररूप (१८) पाकज प्रक्रिया (१९) पृथक्त्व और अन्योन्याभाव का भेद (२०) अन्यथाख्याति और अभाव के प्रकारों के भेद इत्यादि हैं।

न्याय की अन्य कृतियों में अवचूर टिप्पण वगैरह भी उन्होंने लिखा है। काव्यप्रकाश की भी विस्तृत टीका उनकी कृति है इस तरह खरतरगच्छ के यह विद्वान अपने समय के पदवाक्यप्रमाणज्ञ ऐसे एक गच्छ के गौरव प्रदान करने वाले विद्वान थे। आशा है खरतर गच्छ के श्रेष्ठी उनकी कृतियों को प्रकाश में लाने का सविशेष प्रयत्न करेंगे।

महत्त्वपूर्ण खरतरगच्छीय ज्योतिष ग्रंथ

# जोइसहीर

[ पं० भगवानदास जैन ]

इस नाम का ज्योतिष शास्त्र के मुहूर्त विषय का प्राचीन ग्रंथ है। इसका दूसरा नाम ज्योतिषसार भी है। यह दो प्रकार की रचना वाला देखने में आता है। एक तो दूहा और चौपाई छंदों में भाषामय है। इसकी प्राचीन हस्तलिखित दो प्रति साहित्यरत्न श्रीअगरचन्दजी नाहटा बीकानेर वाले के शास्त्र संग्रह में मौजूद है। इन दोनों प्रति के पीछे का कुछ भाग बिना लिखा रह गया है, जिससे इसकी रचना समय आदि समझने में कठिनता है, परन्तु इसकी रचना करने वाला खरतरगच्छीय पं० हीरकलश मुनि ही है, ऐसा ग्रन्थ बांचने से मालूम हुआ कि छंदों में कई एक स्थान पर कर्त्ता ने अपना नाम जोड़ा है।

इस ग्रंथ की दूसरी रचना प्राकृत गाथाबद्ध है, इसकी एक प्रति जालोर (राजस्थान) में ज्ञानमुनि भण्डारी लायब्रेरी में है, प्रति में मूल ग्रंथ के अलावा प्रत्येक पन्ने के चारों तरफ खाली जगह में टिप्पणियां लिखी हुई हैं, परन्तु ग्रंथ का अन्तिम भाग कुछ बिना लिखा रह गया है। इसकी दूसरी प्रति नाहटाजी ने कलकत्ता गुलाबकुमारी लायब्रेरी से लाकर मेरे पास भेजी थी यह पूर्ण लिखी हुई थी। ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकार की प्रशस्ति होने से मालूम हुआ कि—'बृहत्खरतरगच्छीय युगप्रधान भट्टारक जैनाचार्य श्रीजिनचन्द्रसूरीश्वरजी के विजयराज्य में पंडित हीरकलश मुनि ने विक्रमसंवत् १६२१ के वर्ष में रचना की है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में लगभग १२०० गाथायें हैं। इसके दो अध्याय तरंगों के नाम से रखा है। प्रथम तरंग में ५६ विषय हैं। प्रथम मंगलाचरण यह है—

"पण परमिट्ठ णमेयं समरीय सुहगुरुं य सरसई सहियं।
कहियं जोइसहीरं गाथा छंदेण बंधेण ॥१॥"

मंगलाचरण में इष्ट देवों को नमस्कार करके ग्रन्थ का नाम 'जोइसहीर' (ज्योतिषहीर) स्पष्ट किया है। इसके बाद प्रथम तरंग में ५६ विषयों के नाम की पांच गाथाएं हैं। विषय यह है—

"तिथि १, वार २ नक्षत्र ३, योग ४, होराचक्र ५, राशि ६, दिनशुद्धि ७, पुरुष नव वाहन ८, स्वरनाडी ९, यामचक्र १०, शिवचक्र ११, योगिनीचक्र १२, राहु १३, शुक्र १४, कीलक योग १५, परिघचक्र १६, पंचक १७, शूल १८, रविचार १९, स्थिरयोग २०, सर्वांकयोग २१, रवियोग २२, राजयोग २३, कुमारयोग २४, अमृत योग २५, ज्वालामुखी योग २६, शुभयोग २७, अशुभयोग २८, अर्द्धप्रहर २९, कालवेला ३०, कुलिकयोग ३१, उपकुलिकयोग ३२, कंटकयोग ३३, कर्कटयोग ३४, यमघंटयोग ३५, उत्पातयोग ३६, मृत्युयोग ३७, काणयोग ३८, सिद्धियोग ३९, संवर्तयोग ४०, यमलयोग ४१, गंडान्तयोग ४२, आडलयोग ४३, भस्मयोग ४४, उग्रग्रहयोग ४५, दग्धयोग ४६, हालाहलयोग ४७, वज्रमुसलयोग ४८, यमदंष्ट्रायोग ४९, कूर्मचक्र ५०, भद्रा (विष्टि) योग ५१, कालपाशयोग ५२, छींक विचार ५३, विषयोग ५४, गमनकाल ५५, ताराबल ५६, ग्रहचक्र ५७, चन्द्रावस्था ५८ और करण ५९।"

इतने विषयवाले प्रथमतरङ्ग में ४१६ गाथायें हैं। इसके अन्त में ग्रन्थकार ने लिखा है कि—"इतिश्रीखरतर-

गच्छे पंडित हीरकलशकृते श्रीज्योतिषसारे प्रथमस्तरङ्गः।"

इन विषयों में प्रसंगोपात कुछेक चमत्कारि प्रयोग दिये गये हैं, जो ज्योतिष नहीं जाननेवाले भी आसानी से अपना प्रत्येक दिन का शुभाशुभ फल जान सकते हैं।

"दिनरिख जम्मरिक्खं मेली तिहिवार अंक सव्वेहिं।
सत्तेण भाग हरए सेसं अंकाइ फल भणियं ॥६३॥
लच्छी दुक्खं लाभं सोगं सुक्खं च जरा असणायं।
सव्वेहिं जोइसायं भासिअं हीरंच निव्वायं ॥६४॥"

दिन का नक्षत्र, जन्म का नक्षत्र, तिथि और वार, इन सबके अंकों को इकट्ठा करके सात से भाग देना। जो शेष बचे उसका फल कहना। एक शेष बचे तो लक्ष्मी की प्राप्ति, शेष दो बचे तो दुःख तीन बचे तो लाभ, चार बचे तो शोक, पांच बचे तो सुख, छह बचे तो वृद्धपना और सात शेष बचे तो भोजन प्राप्ति होवे। ऐसा सब ज्योतिष शास्त्र में कहा गया है, इसका अवलोकन करके हीरमुनिने यहाँ कथन किया है।

इत्यादि कईएक चमत्कारिक कथन इस ग्रन्थमें लिखे गये है।

दूसरे तरंगमें ६३ विषय इस प्रकार हैं—

"नक्षत्रों की योनि, नाड़ी, वेध, वर्ण, गण, युंजीप्रीति, षडाष्टक, ग्रहमित्र, राशिमेल, वर्ग, लेना देनी, द्विद्वादश, तृतीय एकादश, दशम चतुर्थ, उभय समराष्टक, नवपंचम, ग्रामचक्र, गृहारंभ, चुल्हीचक्र, विद्यामुहुर्त्त, ग्रहण, शिशु अन्नप्राशन, क्षौरकर्म, कर्णवेध, वस्त्राभरण, भोजन, सीमंत, स्नान, नृपमन्त्री, शुभाशुभ, मास अधिकमास, पक्ष, तिथि की हानि वृद्धि, न्यूनाधिक नक्षत्रयोग, पांचवार का फल, नक्षत्रस्नान, गर्भयोग, पंथाचक्र, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र जातक शान्ति, रोहिणीचक्र, मृतकार्य, रात्रिदिनमान, रश-शलाका, रोगीनाडीवेध, सूर्यकालानलचक्र, चन्द्रकालानल, मृत्युकालानल, चतुःनाडीचक्र, चउघडिया, विषकन्या, शील-परीक्षा, राशि आयचक्र, खंजचक्र, गतवस्तु ज्ञान, पंच तत्त्व, समयपरीक्षा, दिशाचक्र, संक्रान्ति विचार, चतुःमंडल, अकडमचक्र, लग्न और भावफल, सर्वपृच्छा, दीक्षा, वधुप्रवेश, गंडांतयोग, विवाह," इत्यादि विषय हैं।

इन विषयों में पोरसी साढ पोरसी आदि पच्चक्खाण पारने का समय अपने जानुकी छाया से जानने का बतलाया है। गाथा २३१ से गाथा ४६५ तक वर्ष का शुभाशुभफल लिखा है—वर्ष कैसा होगा? सुकाल पड़ेगा या दुष्काल, वर्षा कितनी और कब बरसेगी, धान्यादि वस्तु तेज होगी या मंदी इत्यादि जानने का अर्घकांड लिखा है। बाद में जन्म कुंडलियों का वर्णन है। विजय यंत्र आदि लिखने का प्रकार भी लिखा है। ग्रहों की शान्ति के लिये उपासना विधि बतलाई है, एवं चौबीस तीर्थंकरों की राशि तथा किसके लिये कौन तीर्थंकर लाभदायक है इत्यादि विषयों का वर्णन है।

अन्तमें ग्रंथकार ने अपनी प्रशस्ति लिखी है—

"गाहा छंद विरुद्धं अत्थ विरुद्धं च जं मए भणियं।
तं गीयत्था सव्वं करिय पसाउव्व खमियव्वं ॥२७६॥
सिरिखरतरगण गुरुणो सूरिजिणचंदविजयराएहिं।
हीरकलसेहिं गुंफिय जोइससारं हियगरत्थ ॥२७७॥
सोलसए सगवीसं वच्छर विक्कम्मविजयदसमीए।
अहिपुरमज्झे आगम उद्धरियं जोइस हीरं ॥२७८॥"

इति श्रीखरतरगच्छे पण्डितहीरकलशमुनिकृतिः श्रीज्योतिषसारे द्वितीयस्तरङ्गः सम्पूर्णः।

ऐसा महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हो जाय तो जनता को विशेष लाभ हो सकता है।

---

# महोपाध्याय समयसुन्दरजी के साहित्य में लौकिक-तत्त्व

[ डा० मनोहर शर्मा ]

जैन कवि-कोविदों ने राजस्थान साहित्य की श्रीवृद्धि में अपूर्व योगदान किया है। इनमें महोपाध्याय समयसुन्दरजी का ऊंचा स्थान है। आपकी बहुविध रचनाओं से राजस्थानी साहित्य गौरवान्वित है। आप एक साथ ही बहुत बड़े विद्वान और और उच्चकोटि के कवि थे। आपने सुदीर्घ काल तक साहित्य-साधना की और जनसाधारण में लोक धर्म का प्रचार किया। मध्यकालीन भारतीय संत-साधकों में उनका व्यक्तित्व निराला ही है।

महोपाध्याय समयसुन्दरजी की साहित्य साधना की यह एक विशेषता है कि उसमें एक साथ ही शास्त्र और लोक दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। जैन मुनि स्वयं शीलधर्म का आचरण करके उससे जनसाधारण को भी लाभान्वित करने की दिशा में सदैव प्रयत्नशील रहे हैं, अतः उनके साहित्य में लौकिक तत्त्वों का प्रवेश स्वाभाविक है। महाकवि समयसुन्दरजी के साहित्य में तो लोकसाहित्य का रंग भरपूर है। मध्यकालीन राजस्थानी (गुजराती) लोकसाहित्य के अध्ययन हेतु उनका साहित्य एक सुन्दर एवं उपयोगी साधन है। इस विषय में एक बड़ा ग्रन्थ लिखा जा सकता है परन्तु यहाँ विषय को विस्तार न देकर संक्षिप्त ज्ञातव्य ही प्रस्तुत किया जा रहा है।

लोकगीतों की महिमा निराली है। इनमें एक साथ ही शब्द और स्वर दोनों का सरस सौन्दर्य समन्वित मिलता है। यह स्वपूर्ण साधन जनसाधारण में किसी भी तत्त्व का प्रचार-प्रसार करने हेतु परमोपयोगी है। जनता इनके द्वारा स्वरों में गाए जानेवाले ज्ञान-तत्त्व को सहज ही अपनाकर उसको जीवन का अंग बना लेती है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को मुनिवरों ने पूर्णतया समझा और इसका अपने गीतों में प्रचुरता से प्रयोग किया। इसका मधुर फल यह हुआ कि उनकी दिव्यवाणी का लोक हृदय में प्रवेश हो गया तो, साथ ही लोकगीतों का अमूल्य भण्डार भी सुरक्षित हो गया। आज प्राचीन राजस्थानी लोकगीतों के अध्ययन हेतु जैन मुनियों के बनाये हुए गीत ही एक मात्र साधन स्वरूप उपलब्ध हैं। उन्होंने अपने गीतों की रचना लोक प्रचलित 'देशियों' के आधार पर की और साथ ही उस गीत की प्रथम पंक्ति का प्रारंभ में ही संकेत भी कर दिया। 'जैन गुर्जर कवियो' (भाग ३ खण्ड २) में इन देशियों की विस्तृत सूची का संकलन देखते ही बनता है।

महाकवि समयसुन्दरजी संगीत शास्त्र के प्रेमी एवं ज्ञाता थे। आपने अपने गीतों को अनेक राग रागनियों के अतिरिक्त तत्कालीन लोक प्रचलित 'ढालों' (तर्जों) में भी ग्रथित किया है। कहावत प्रसिद्ध है—'समयसुन्दर रा गीतड़ा नै राणै कुंभैरा भींतड़ा।' समयसुन्दरजी के गीतों की यह लोकप्रसिद्धि कोई साधारण बात नहीं है। परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि इस महिमा का मूल कारण उनके द्वारा लोकगीतों की स्वरलहरी को अपना कर उनके आधार पर गीत-रचना करना ही है। इस दिशा में कुछ चुने हुए उदाहरण प्रस्तुत हैं, जिनमें लोकगीतों का प्रारंभिक अंश संकेत हेतु दिया गया है—

१ चरणाली चामंड रणि चढइ, दस करि राता चोलो रे
विरती दाणव दल विचि, घाउ दीयइ घमरोलो रे,
चरणाली चामंड रणि चडइ।
सीताराम चौपई, खण्ड २, ढाल ३)

२ वेसर सोना की घरि दे वे चतुर सोनार,
वेसर सोना की।
वेसर पहिरी सोना की रंभे नंदकुमार,
वेसर सोना की।
(वही, खण्ड ४, ढ़ाल १)

३ तोरा कीजई म्हांका लाल दारु पिअइजी,
पड़वइ पधारउ म्हांका लाल, लसकर लेज्यांजी,
तोरी अजब सूरति म्हांको मनड़उ रंज्यो रे
लोभी लंज्यो जी।
(वही, खंड ५, ढाल ३)

४ सहर भलो पणि सांकड़ो रे, नगर भलो पणि दूर रे,
हठीला वयरी नाह भलो पणि नान्हड़ो रे लाल।
आयौ आयो जोवन पूर रे, हठीला वयरी
लाहो लइ हरपालका रे लाल।
(वही, खंड ५, ढाल ४)

५ लंका लीजइगी, सुणि रावण लंका लीजइगी।
ओ आवत लखमण कउ लसकर, ज्युं घण उमटे श्रावण।
(वही खंड ६, ढाल २)

६ रे रंगरता करहला, मो प्रीउ रत्तउ आणि,
हुं तो ऊपरि काढि नइ, प्राण करूं कुरवाण,
सुरंगा करहा रे, मो प्रीउ पाछउ वालि,
मजीठा करहा रे।
(वही, खंड ७, ढाल ३)

७ सिहरां सिरहर सिवपुरी रे, गढां वडउ गिरनारि रे,
राण्यां सिरहरि रुकमिणी रे, कुंमरां नन्दकुमार रे,
कंसासुर-मारण आविनइ,
प्रल्हाद-उधारण रास रमणि घरि आज्यो,
घरि आज्यो हो रामजी, रास रमणि घरि आज्यो।
(वही, खण्ड ७, ढाल ५)

८ सूंवरा तुं सूलताण,
बीजा हो, बीजा हो थारा सूंवरा ओलग् हो
(वही, खण्ड ८, ढाल ६)

९ अम्मां मोरी मोहि परणावि हे,
अम्मां मोरी जेसलमेरां जादवां हे,
जादव मोटा राय, जादव मोटा राय हे.
अम्मां मोरी कड़ि मोरी नइ घोड़े चढे हे।
(वही, खण्ड ८, ढाल ७)

१० गलियारे साजण मिल्या मारुराय,
दो नयणां दे चोट रे घण थारो लाल।
हसिया पण बोल्या नहीं मारुराय,
काइक मन मांहि खोट खोट रे,
आज रहउ रंगमहल मइं मारुराय।
(वही, खंड ९, ढाल २)

११ दिल्ली के दरबार मइं लख आवइ लख जाइ,
एक न आवइ नवरंगखान जाकी पघरी हलि
हलि जावइ वे,
नवरंग वइरागी लाल।
(वही, खण्ड ९, ढाल ४)

यहां महाकवि समयसुन्दरजी के द्वारा अपने गीतों में प्रयुक्त केवल ग्यारह 'देशियों' के संकेत दिये गए हैं, परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि इन 'देशियों' के गीत विविध प्रकार के हैं। इनमें भक्तिरस के साथ ही शृंगाररस भी है और साथ ही सामाजिक जीवन की झलक भी स्पष्ट है। महाकवि ने कई जगह पर गीत के प्रचलन-स्थान की भी सूचना दी है, जैसे 'ए गीत सिंघ मांहे प्रसिद्ध छइ' 'ए गीतनी ढाल जोधपुर, नागौर, मेड़ता नगरे प्रसिद्ध छइ' आदि। इतना ही नहीं, कहीं-कहीं प्रयुक्त 'देशी' के गेयतत्व के सम्बन्ध में भी सूचना दी गई है, जैसे—

१ 'जा जा रे बांधव तुं बड़उ'
ए गुजराती गीतनी ढाल
अथवा 'बीसरी मुन्हें वाल्हइ' तथा हरियानी
(सीताराम चौपई, खण्ड ४, ढाल २)

२ एहनी ढाल नायकानी ढाल सरीखी छइ
पण आंकणी लहरकउ छइ।
(वही, खण्ड ५, ढाल ४)

३ ए गीतनी ढाल राग खंभायती सोहलानी।
वही खण्ड ८, ढाल ७)

यहाँ तक महाकवि के गीतों में प्रयुक्त लोक-संगीत पर चर्चा हुई है। आगे उनके गीतों में प्रयुक्त लौकिक दोहों के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं, जो एक निराली ही छटा प्रकट करते हैं। लोक और शास्त्र का यह समन्वय अन्य राजस्थानी कवियों में भी अनेक देखा जाता है और यह परम्परागत चीज है। नमूने के तौर पर यहां महाकवि समयसुन्दरजी का एक पूरा गीत दिया जाता है—

## श्रीस्थूलिभद्र गीतम्

( राग सारंग )

प्रीतड़िया न कीजइ हो नारि परदेसियां रे,
खिण खिण दाझइ देह।
बीछड़िया वाल्हेसर मलवो दोहिलउ रे,
सालइ सालइ अधिक सनेह ॥प्रीत०॥
आज नइ तउ आव्या काल उठि चालवुं रे,
भमर भमंता जोइ।
साजनिया योलावि पाछा वलतां थकां रे,
धरती भारणि होइ ॥प्रीत० ॥
राति नइ तउ नावइ वाल्हा नींदड़ी रे,
दिवस न लागइ भूख।
अन्न नइ पाणी मुझ नइ नवि रुचइ रे,
दिन दिन सबलो दुख ॥ प्रीत० ॥
मन ना मनोरथ सवि मनमा रह्या रे,
कहियइ केहनइ रे साथि।
कागलिया तो लिखता भीजइ आंसुआं रे,
आवइ दोखो हाथि ॥ प्रीत० ॥
नदियां तणा व्हाला रेला वाल्हा रे,
ओछा तणां सनेह।
वहता वहइ वाल्हइ उंतावला रे,
झटकि दिखावइ छेह ॥ प्रीत० ॥
सारसड़ी चिड़िया मोती चुगइ रे,
चुगे तो निगले कांइ।
साचा सदगुरु जो आवी मिलइ रे,
मिले तो विछुड़इ कांइ ॥ प्रीत० ॥
इण परि स्यूलिभद्र कोशा प्रतिवूझवी रे,
पाली-पाली पूरव प्रीति सनेह।
शील सुरंगी दीधी चुनड़ी रे,
समयसुन्दर कहइ एह ॥ प्रीत० ॥

(समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि, पृष्ठ ३११-३१२)

उपर्युक्त गीत की प्रायः सभी 'कड़ियों' में लोक-प्रचलित दोहों का सरस एवं सुन्दर प्रयोग सहज ही देखा जा सकता है, जिनमें निम्न दोहे तो अति प्रचलित हैं—

*राति न आवइ नींदड़ी, दिवस न लागइ भूख।*
*अन्न पाणी नवि रुचइ, दिन दिन सबलो दुख ॥ १ ॥*
डूगर केरा वाहला, ओछां केरा नेह।
बहता बहइ उतावला, झटकी दिखावइ छेह ॥ २ ॥
सारसड़ी मोती चुगे, चुगे तो निगलें काय।
साचा प्रीतम जो मिले, मिले तो बिछुड़े काय ॥ ३ ॥

लोक साहित्य का दूसरा प्रमुख अंग लोककथा है। लोककथाओं के संरक्षण में जैन विद्वानों का योगदान अत्यन्त सराहनीय है। उन्होंने शीलोपदेश हेतु अनेक लोककथाओं का प्रयोग किया है और साथ ही उन्हें लिखकर भी सुरक्षित कर दिया है। उनकी टीकाओं में भी लोक-

कथाओं का बालावबोध हेतु प्रयोग हुआ है। इस प्रकार बालावबोध टीकाएं लोककथाओं के अध्ययन के लिए बड़ी उपयोगी हैं। जैन कवियों ने अपने कथा-काव्यों में भी प्रचुरता के साथ लोककथाओं का आधार ग्रहण किया है। इस प्रक्रिया ने एक नया ही वातावरण बना दिया है। वहां लोककथाओं को साधारण परिवर्तन के साथ धार्मिक परिवेश में प्रस्तुत किया गया है। पात्रों एवं स्थानों के नाम रख दिए गए हैं और उनके सुख-दुःख का कारण पूर्वजन्म के भले अथवा बुरे कर्मों को प्रगट किया गया है। जिस प्रकार बौद्ध कथा-साहित्य में लोककथाओं का धार्मिक दृष्टि से प्रयोग हुआ है, वैसा ही कुछ जैन साहित्य में भी हुआ है। परन्तु दोनों जगह प्रयोग करने की शैली में कुछ भिन्नता अथवा अपनी विशेषता है। साथ ही ध्यान रखना चाहिये कि एक ही लोककथा को आधार मान कर अनेक जैन विद्वानों ने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की है, जो उन लोककथाओं की जनप्रियता तथा बोधपूर्णता की सूचक हैं। महाकवि समयसुन्दरजी ने भी अनेक कथा-काव्यों की रचना की है, जिनको परम्परा के अनुसार 'रास' 'चौपई' अथवा 'प्रबंध' नाम दिया गया है। यह विषय अति-विस्तृत विवेचना की अपेक्षा रखता है परन्तु यहां स्थानाभाव के कारण उनकी केवल एक रचना पर ही कुछ चर्चा की जाती है। महाकवि प्रणीत 'श्री पुण्यसार चरित्र चौपई' नामक कथाकाव्य प्रसिद्ध है, जो श्री भंवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित 'समयसुन्दर रास पंचक' में प्रकाशित हो चुका है। इस काव्य की वस्तु संक्षिप्त रूप में इस प्रकार है—

धर्मात्मा पुरन्दर सेठ के पुण्यश्री नामक पतिव्रता पत्नी थी, परन्तु उनके कोई पुत्र न था। अतः वे उदास रहते थे। आखिर सेठ ने पुत्र हेतु कुलदेवी की आराधना की, जिसके वरदान से उसे पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। पुत्र का नाम पुण्यसार रखा गया और उसका बड़े दुलार से पालन किया गया।

जब पुण्यसार बड़ा हुआ तो उसको पढ़ने के लिए पाठशाला में भेजा गया। उसी पाठशाला में सेठ रत्नसार की पुत्री रत्नवती भी पढ़ती थी। वह पुरुष-निंदक थी। एक दिन इन दोनों में विवाद हो गया और पुण्यसार ने रत्नवती को पत्नी के रूप में प्राप्त करने का निश्चय प्रकट कर दिया।

पुण्यसार ने घर आकर अन्न-पान छोड़ दिया और रत्नवती से विवाह करने का निश्चय सबको कह सुनाया। उसका पिता पुरन्दर सेठ नगर में बड़ी प्रतिष्ठा रखता था। वह रत्नसार के घर गया और अपने पुत्र के लिए उनकी पुत्री रत्नवती की मांग की। परन्तु रत्नवती इस सम्बन्ध के लिए एकदम नट गई। फिर भी उसके पिता ने उसे अबोध समझ कर उसकी सगाई पुण्यसार के साथ कर दी।

जब पुण्यसार कुछ और बड़ा हुआ तो वह जुआरियों की संगत में पड़ गया और एक दिन उसके पिता के यहां धरोहर रूप में पड़ा हुआ रानी का हार जुए में हार गया। फल यह हुआ कि पुण्यसार को अपना घर छोड़ना पड़ा और वह जंगल में जाकर एक बड़ के कोटर में रात बिताने के लिए बैठ गया।

रात्रि के समय उस बड़ के पेड़ पर पुण्यसार ने दो देवियों को परस्पर में बातचीत करते हुए सुना। उनके वार्तालाप से प्रगट हुआ कि वल्लभी नगर में सुन्दर सेठ ने अपनी सात पुत्रियों के विवाह की पूर्ण तैयारी कर रखी है और लम्बोदर के आदेश से उनके लिए वर पाने की प्रतीक्षा में बैठा है। यह कौतुक की वस्तु थी। अतः उसे देखने के लिए उन देवियों ने वटवृक्ष को मन्त्र प्रभाव से उड़ाया और वे वल्लभी आ पहुँचीं। कहना न होगा कि पुण्यसार भी वृक्ष के कोटर में बैठा हुआ वहीं आ पहुँचा। फिर दोनों देवियाँ नायिका के रूप में

सुन्दर सेठ के यहाँ चली तो पुष्पसार भी उनके पीछे हो लिया। आगे सेठ ने अपनी सातों पुत्रियों का विवाह उसके साथ करके बड़ा सुख माना।

विवाह के बाद पुष्पसार अपनी पत्नियों के साथ महल में गया परन्तु उसे चिन्ता थी कि कहीं वटवृक्ष उड़ कर वापिस न चला जावे। यह देह-चिन्ता की निवृत्ति-हेतु अपनी गुणसुन्दरी नामक पत्नी के साथ महल से नीचे आया और वहाँ एक दीवार पर इस प्रकार लिख दिया—

किहां गोपाचल किहां चउहि, किहां लम्बोदर देस।
आव्यो बेटो विहि वसहि, गयो सातवि परणेवि॥
गोपाचलपुरवासानां, वटवृक्षं निवेशनम्।
परिणीय वधूः सप्त, पुनस्तत्र गतास्म्यहम्॥

इसके बाद पुष्पसार वहाँ से घुड़सवार बन कर उसी वटवृक्ष के कोटर में आ बैठा और देवियों के साथ उड़कर वापिस अपने स्थान में आ गया।

अगले दिन सुन्दर सेठ पुत्र की तलाश करता हुआ उसी वट के पास आ पहुँचा और पुत्र को वस्त्रालंकारों से सुसज्जित देख कर परम प्रसन्न हुआ। सेठ अपने बेटे को घर ले गया और उसके लाए हुए गहनों को बेच कर रानी का हार प्राप्त कर लिया गया। अब पुष्पसार ने जुए का व्यसन त्याग दिया और वह पिता के साथ अपनी दुकान पर काम करने लगा।

इधर वटवृक्ष के आकाश मार्ग से चले जाने के कारण सुन्दर सेठ के घर में बड़ी चिन्ता फैल गई और उसकी सातों पुत्रियाँ विरह में विलाप करने लगीं। गुण-सुन्दरी ने पुष्पसार द्वारा दीवार पर लिखे हुए लेख को पढ़ कर अपने पति का पता लगाने का निश्चय किया। वह पुरुषवेश धारण करके गुणसुन्दर व्यापारी के रूप में गोपा-चल जा पहुँची और वहाँ थोड़े ही समय में उसने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली।

यहाँ गुणसुन्दर (युवक-व्यापारी) पर रत्नवती की नजर पड़ी तो वह उसके रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई और उसी के साथ विवाह करने का निश्चय किया। रत्नसार सेठ ने अपनी पुत्री के विवाह हेतु गुणसुन्दर को कहा परन्तु वह इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हुआ। फिर बहुत आग्रह किए जाने पर उसे रत्नवती का पाणि-ग्रहण करना ही पड़ा।

गुणसुन्दरी ने ६ मास की अवधि में अपने पति का पता लगा लेने का प्रण किया था। यह अवधि समाप्त होने पर उसने गोपाचल में अग्निप्रवेश करने का निश्चय किया। राजा ने उसे रोका और पुष्पसार को उसे समझाने के लिए भेजा। इस समय वार्तालाप में सारा भेद प्रकट हो गया और गुणसुन्दर ने नारी-वेश धारण कर लिया।

सुन्दर सेठ की पुत्री का विवाह गुणसुन्दर के साथ हुआ था, जो स्वयं एक नारी था। अब उसके पति की समस्या सामने आई तो स्वभावतः ही पुष्पसार उसका पति माना गया। अन्त में गुणसुन्दरी की ६ बहनों को भी चउड़ी से गोपाचल बुलवा लिया गया और पुष्पसार अपनी आठों पत्नियों के साथ आनंद से रहने लगा।

पुष्पसार विषयक उपर्युक्त कथा के प्रमुख प्रसंग इस प्रकार के हैं, कि वे अन्य लोककथाओं में कुछ बदले हुए रूप में भी मिलते हैं। उनका सामान्य परिचय नीचे लिखे अनुसार है—

१ देवी अथवा देव की आराधना से सन्तानहीन व्यक्ति को पुत्र की प्राप्ति।

२ युवक तथा युवती का पाठशाला में एक साथ पढ़ना और उनमें परस्पर प्रेम अथवा विवाद का पैदा होना।

३ सेठ-पुत्र का विशिष्ट कन्या से विवाह के लिए हठ करना और उसकी इच्छापूर्ति होना।

४ धन खो देने के कारण सेठ-पुत्र का पिता द्वारा अपने घर से निकाला जाना।

५ किसी वृक्ष के नीचे सोए हुए अथवा छिपे हुए कथानायक द्वारा देवों अथवा पक्षियों की बात-चीत सुनना तथा उससे लाभान्वित होना।

६ उड़ने वाले वृक्ष पर बैठकर कथानायक का दूर देश में पहुँचना और वहाँ धन प्राप्त करना तथा विवाह करना।

७ कथानायक का देववाणी से दूर-देश में विवाहित होना।

८ वर द्वारा दीवार पर या वधू के वस्त्र पर कुछ लिख कर चुपचाप अज्ञात-दशा में चले जाना।

९ वधू द्वारा पुरुष-वेश धारण करके अपने पति की तलास में निकलना और अंत में अपने पति का पता लगाने में सफल होना।

१० पुरुष-वेश धारण करने वाली युवती का अन्य युवती से विवाह होना और अंत में उसके पति को उसका परिणीता पत्नी के रूप में प्राप्त होना।

११ घर से निकले हुए युवक कथानायक का अंत में धन-सम्पन्न होना तथा उसे सुन्दरी पत्नी प्राप्त होना।

महाकवि समयसुन्दरजी ने अपने काव्य के अंत में जैन-परम्परा के अनुसार कथानायक के पूर्वजन्म का वृत्तांत देकर उसे समाप्त किया है परन्तु उपर्युक्त प्रसंगों पर ध्यान देने से विदित होता है कि वे देश-विदेश की अनेक लोककथाओं में सहज ही देखे जा सकते हैं और कुल मिला कर एक रोचक लोककथा का ठाठ सामने खड़ा कर देते हैं।

इस कथानक में वह पद्य पाठक का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करता है, जिसे वर एक दीवार पर अपने परिचय हेतु लिख कर चुपचाप चला जाता है। इसी प्रकार की अन्य लोककथा में यह पद्य अनेक रूपान्तरों में देखा जाता है। 'ठकुरै साह री बात' में पद्य का रूप इस प्रकार है —

सरसो पाटण सरस नय, सुसरै ठकुरो नांव।
ईसर तूठे पाईये, आ गैहण ओ गांव॥

उपर्युक्त कथावस्तु में पुरुषवेश धारण करने वाली नारी द्वारा दूसरी नारी के साथ विवाह करना भी आश्चर्यजनक घटना है। यह घटना अंग्रेज-कवि शेक्सपीयर विरचित 'बारहवीं रात' ( Twelfth Night ) नामक प्रसिद्ध नाटक के कथानक का सहज ही स्मरण करवा देती है, जिसमें समान रूप वाले भाई-बहिन घर से निकलते हैं और अंत में आश्चर्यजनक रूप से उनके प्रेम-विवाह सम्पन्न होते हैं। वहाँ बहिन पुरुषवेश में एक 'ड्यूक' की सेवा करती है, जो आगे जाकर उसका पति बनता है। इन दोनों कथानकों में विशेष समानता न होने पर भी पुरुषवेश-धारिणी नारी पर दूसरी नारी का मुग्ध होना और उसके साथ विवाह करने के लिए इच्छा करना तो स्पष्ट ही है। इतना ही नहीं, वह भ्रम में पड़ कर उसी के समान रूप वाले उसके भाई से विवाह भी कर लेती है, जिसके साथ उसका पूर्व-परिचय नहीं है। महाकवि शेक्सपीयर ने अपने नाटक का कथानक किसी लोककथा के आधार पर ही खड़ा किया है। इस प्रकार लोककथाओं की सार्वभौमिक समप्राणता सिद्ध होती है।

महाकवि समयसुन्दरजी ने अपनी कथानक रचनाओं में स्थान-स्थान पर लोक-सुभाषितों का प्रयोग करके उनको सजाया है। इस क्रिया से उनकी रचना में सामर्थ्य का संचार हुआ और साथ ही अनेक लोक-सुभाषितों का सहज ही संरक्षण भी हो गया। राजस्थान के अन्य कवियों ने भी इसी प्रकार लोक-सुभाषितों का अपनी रचनाओं में बड़े चाव से प्रयोग किया है। 'बातों' में तो इनका प्रयोग और भी अधिक रुचि से हुआ है। इन लोक-सुभाषितों में कई प्राकृत-गाथाएं भी हैं, जो काफी लम्बे समय से चली आ रही थीं और थोड़ी-बहुत रूपान्तरित होकर लोकमुख पर अव•

रिचत थी। यही कारण है कि ऐसी गाथाओं को अनेक रूपों में प्रयुक्त देखा जाता है। आगे समयसुन्दरजी की रचनाओं में प्रयुक्त कुछ प्राकृत-गाथाओं के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१ किं ताणं जम्मेण वि, जणणीए पसव दुक्ख जणएण।
पर उपयार गुणो विहु, न जाण हिययंमि विप्फुरई ॥१॥
दो पुरिसे धरउ धरा, अहवा दोहिं पि धारिया धरिणी।
उवयारे जस्स मई, उवयार जो नवि म्हुसई ॥२॥
लच्छी सहाव चला, तओ वि चवलं च जीवियं होई।
भावो तउ वि चवलो, उपयार विलंवणा कीस ॥३॥
२ दीसइ विविहं चरियं, जाणिज्जइ सयण दुज्जण विसेसो।
अप्पाणं च कलिज्जइ, हिंडिज्जइ तेण पुहवीए ॥१॥
(प्रियमेलक चौपई)

३ गेहंपि तं मसाणं, जत्थ न दीसइ धूलि धूसरीया।
आवंति पडंति रडवडंति, दो तिन्नि डिंभाइं ॥१॥
(पुण्यसार चरित्र चौपई)

आगे राजस्थानी भाषा के कुछ लोक प्रचलित सुभाषित द्रष्टव्य हैं—

१ घरि घोड़उ नइ पालउ आइ,
घरि घोणउ नइ सूयउ खाइ।
घरि पलग नइ धरती सोयइ,
तिण री बइरी जीवतइ नइ रोवइ ॥
(प्रियमेलक चौपई)

२ छट्ठी राते जे लिख्या, मस्तइ देइ हत्थ।
देव लिगायइ विहु लिखइ, कुण मेटिवा समत्थ ॥
(पंचम सेठ चौपई)

३ जसु घरि बहिल न दीसइ गाडउ,
जसु घरि भइंसि न रीझै पाडउ।
जसु घरि नारि न चूड़उ खलकइ,
तसु घरि दालिद बइठो महकइ ॥
४ दोकड़ा बाल्हा रे दोकड़ा बाल्हा।
दोकड़े रोता रहइं छै बाल्हा ॥
दोकड़े ताल मादल भला वाजइ।
दोकड़े जिणवर ना गुण गाजइ ॥
दोकड़े छाडी हाथ वे जोडइ।
दोकड़ा पाखइ करडका मोड़इ ॥
(धनदत्त श्रेष्ठि चौपई)

५ जासु कहीयै एक दुख, सो ले उठे इक्वीस।
एक दुख विच में गयो, मिले बीस बगसीस ॥
(पुण्यसार चरित्र चौपई)

ऊपर जो लोक प्रचलित सुभाषित प्रस्तुत किये गए हैं, वे जनसाधारण में कहावतों के समान काम में लाये जाते रहे हैं। कहावत के समान ही उक्तियों के द्वारा वक्ता अपने कथन को प्रमाण-पुष्ट बनाकर संतोष मानते हैं। साथ ही ध्यान रखना चाहिये कि महाकवि समयसुन्दरजी ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर राजस्थानी कहावतों का भी बड़ा ही सुन्दर प्रयोग किया है। आगे इस सम्बन्ध में कुछ चुने हुए उदाहरण दिये जाते हैं—

१ ऊखाणउ कहइ लोक, मढ़ियो मोरी,
पेटइ को पालइ नहीं, अति बाल्ही छुरी रे लो।
(सीताराम चौपई, खण्ड ८, ढाल १)
२ जिण पूठइ दुस्मण फिरइ, गाफिल किम रहइ तेह रे,
सूलां री धाढा बिचइ, इम्थ्रीति कहइ सहु एहरे।
(समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जलि, पृ० ४३५)
३ उपनइ विधाणउ खाधउ, थाहीणइ सुभांणउ वे।
मूंग नइ चावल मांहि, घी घणउ पीसाणउ वे ॥
(सीताराम चौपई, खण्ड १, ढाल ६)

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट होता है कि महोपाध्याय समयसुन्दरजी के साहित्य में लौकिक-तत्त्व प्रचुर परिमाण में प्रयुक्त हैं और यही कारण है कि इनकी रचनाओं को इतनी जनप्रियता प्राप्त हुई है। इस विषय पर विस्तार से विचार किया जाय तो कई रोचक तथ्य प्रकट होंगे। आशा है राजस्थानी-साहित्य के अन्वेषक इस दिशा में प्रयत्नशील होकर मरु-गरिमा का उपयोगी एवं मधुर फल साहित्य-जगत् को भेंट करेंगे। ❍

# योगनिष्ठ आचार्य बुद्धिसागरसूरिजी रचित गुंहली

## (१) श्री अभयदेवसूरि नी गुंहली

राग—भवि तमे वंदो रे

भविजन भावे रे, अभयदेवसूरि वंदो,
आगमज्ञानी रे, मुनि वाचक सूरि इंदो,
नव अंगो नी वृत्ति करी ने, जग आगम प्रसराव्यां;
जेनी टीकाओ वांची ने, मुनिगण मन हरखायां, भवि—१
चैत्यवासी श्री द्रोणाचार्य, शोधी टीकाओ भावे ;
महावीर पाटे मोटा भक्तो, भक्ति रागना दावे, भवि०-२
वर्तमान मां अभयदेवसूरि, टीकानी शुभ स्हाय,
बुद्धिसागर सकल संघने, उपकारी सूरिराय, भवि०-३

## (२) श्रीजिनदत्तसूरिजी नी गुंहली

राग—अली सहेली ए

जिनदत्तसूरि, जैनधर्म वृद्धि करनारा थइ गया
शासन शोभा, कारक जैनो नवा करी शोभा लह्या;
जिनदत्तसूरि जगमां दादा, केहवाया गुण गणधि सादा
धन्य धन्य पिताजी ने माता…जिनदत्त-१
जगमां जिन शासन उजवाल्युं, धर्मी जीवन सघलुं गाल्युं,
घटमां परमातम पद भाल्यूं…जिनदत्त-२
खरतर गच्छे बहु पंकाया, दादा भारत सघले छाया,
बुद्धिसागर गुणी गुण गाया‥ जिनदत्त-३

## (३) श्रीमद् आनंदघनजी नी गुंहली

राग—अली साहेली जंगम तीरथ जोवा उभी रहेने,

आतमज्ञानी आनंदघन जोगी, वंदो नरनारी,
प्रख्यात थया बहु दर्शन मां, खाखी अतिशयधारी,
जेना मन नहीं म्हारुं त्हारुं, साचुं ते मान्युं मन सारुं
आतम संयम मां मन धायुं…आतम०-१
नदी कांठे जंगल मां वसिया, शुद्धातम नां घट्या रसिया,
जे ध्यान समाधि उल्लसिया…आतम०-२
सिद्धियो प्रगटी रही स्हामी, पण सिद्धिना नहीं जे कामी;
निशदिन रहेता आतम रामी…आतम०-३
पहाडो गुफा मां बहु रहीया, शुद्धातम दर्शन जे लहीया,
अध्यातम मार्ग विषे वहिया‥ आतम०-४
वाचकजी ए स्तवना कीधी, पाम्या संगत समता सिद्धिः
चोवीस पद आतम ऋद्धी‥ …आतम०-५
अवधूत अलख मुनि अवतारी, फकीराई जेनी सुखकारी;
बुद्धिसागर गुरु जयकारी आतम०-६

## (४) श्रीमद् देवचन्द्रजी नी गुंहली

राग—व्हाला गुरुराज उपदेश आपे।

गुरुदेवचन्द्र जी पद वंदो, भवोभवना पाप निकंदो, गुरु०
रच्या ग्रन्थ घणा गुणकारी, नयचक्र आगमसार भारीः
बीजा ग्रन्थ घना सुखकारी— गुरु० १
जेह अध्यातम उपयोगी, जेह आतम गुण गण भोगी
तत्त्वज्ञानी सहज गुण योगी—गु० २
निज शुद्धातम दिल प्यारो, मोह भाव ने मान्यो न्यारो,
जेना घट मां ज्ञान अपारो— गु० ३
जैन शासन नी करी सेवा, पाम्या आतम सुखना मेवा ;
प्रभु भक्ति नी साची हेवा— गु० ४
जैन कौम मा जेह प्रसिद्ध, जेना ग्रन्थ दिये सुख ऋद्धि,
बुद्धिसागर ल्हावो लीध—गु० ५

/

# महाकवि जिनहर्ष : मूल्याङ्कन और सन्देश

[ डॉ० ईश्वरानन्द शर्मा एम० ए० पी-एच० डी० ]

अठारहवीं शती के खरतरगच्छीय जैन साधु महाकवि जिनहर्ष वागीश्वरी के वरदपुत्र थे। वे जन्मजात काव्य-प्रतिभा, नवनवोन्मेषशालिनी कल्पना और विचारसार-संदोह के धनी थे। उनकी श्रमशील कुशल लेखनी सरस काव्य प्रणयन में षष्ठि ६० वर्ष पर्यन्त निरन्तर संलग्न रही। उस सुदीर्घ अवधि में उन्होंने पाँच महाकाव्यों, उन्नीस एकार्थ काव्यों एवं लगभग पैंतालीस खण्डकाव्यों एवं शतशः मुक्तकों से मा भारती के भंडार को संभरित किया। चतु.शती रचनाओं के प्रणेता वाचक एवं गायक जिनहर्ष सरस रास कथाकारों में भी शीर्षस्थ स्थान रखते हैं। गीतकारों, भक्तिपदप्रणेताओं और लोकसाहित्य मर्जकों में उनका वैशिष्ट्य निर्विवाद है। भावों की अनुपम अजस्र अभिव्यक्ति, भाषा को प्राणवन्त अभिव्यंजना, जीवन की समग्रता का व्यापक आयाम, मर्मस्थलों का संस्पर्श, व्यापक वैदुष्य और कवि-हृदय की सहृदयता आदि विशिष्ट गुण उन्हें कलाकोविद रसिक पाठक समुदाय का कलकण्ठहार बना देते हैं। वे खरतरगच्छीय क्षेमकीर्ति शाखा में दीक्षित मुनि थे; किन्तु उनका भावप्रवण मानस किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह, दुराग्रह और धर्मासहिष्णुता से सर्वथा मुक्त था। जातिभेद, धर्मभेद और सीमित साम्प्रदायिक दृष्टि-कोण से वे ऊपर उठ चुके थे। राग, द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर-मोह, जैसे दुर्गुण उनके उत्तुंग शिखर के समान व्यक्तित्व के सम्मुख बौने से प्रतीत होते थे।

जन्मना वे राजस्थानी थे; लेकिन उनके देशप्रेमी कविने भारतभूमि के विविध स्वरूपों को अपनी सरस्वती में रूपायित किया है। आर्यावर्त, भारतवर्ष, भरतक्षेत्र आदि नाम उन्हें विशेष प्रिय थे। निर्मल नीरगंगा, श्याम जलराशि जमुना, परम पवित्र गोदावरी, अन्तःसलिला सरस्वती, रजनाभ रेवा, सवेगा सरयू, नद्रूप सिन्धु आदि नदियों, हिमाचल, विन्ध्याचल, गिरिनार, वैताढ्य, रैवतक, शत्रुंजय प्रभृति पर्वतों, विविध जन्तुसंकुल वनों, पुष्पराजि शोभित उपवनों, शतदल विभूषित सरोवरों के वर्णन में कवि का देशप्रेम अभिव्यक्त हुआ है। उनके काव्य में टुहुकती कोकिल, गुंजनरत मधुप, धनगर्जित वनराज, मदझरित गजराज, चपल विलोचन हरिण, पयस्वनी धेनु का भूरिशः वर्णन-चित्रण मिलता है। जैनतीर्थों की सुषमा, प्राचीन भारतीय नगरियों का वैभव और अभ्रंकष देव-मन्दिरों का सौन्दर्यवर्णन—उनकी वाणी को प्रबल वेगवती बनाता रहा है। भारतीय राजा, प्रजा, शासन-व्यवस्था का मनोरम काव्यमय चित्रण कर उन्होंने अपने देशप्रेम का प्रकटन ही किया है। कवि ने भारत भूमि की ईषद् वर्तुल आकृति को चढ़ी सीगटी के सदृश बताकर मौलिक अप्रस्तुत का पुरःस्थापन ही नहीं किया; अपितु दक्षिणा-वर्त को भौगोलिक आकृति का स्वरूप साम्य भी व्यंजित किया है (चन्दनमलयागिरि चौपई पृष्ठ ४)। कवि की स्वदेश भक्ति का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि वे आर्यदेश में जन्मको प्रबल पुण्यका कारण मानते हैं और अपनी अचल आस्था व्यक्त करते हैं कि भारत में उत्पन्न हुए बिना पामर प्राणी ऐहिक सुख और पारलौकिक शान्ति प्राप्त ही नहीं हो सकते (शत्रुंजय रास पृष्ठ १०३)।

कविका वैदुष्य व्यापक और गहन था। उन्हें राज-स्थानी, गुजराती और संस्कृत भाषा का विशिष्ट ज्ञान

था। ज्योतिष शास्त्र में उनकी विशेष अभिरुचि थी। शास्त्रों के निदिध्यासन, विद्वत् प्रवचन-श्रवण, और लक्षण ग्रन्थों के पठन-पाठन से उनकी प्रतिभा शाण पर चढ़े मणि-रत्नके समान देदीप्यमान हो गयी थी। उन्हें जैन और जैनेतर धर्म ग्रन्थों का तलस्पर्शी बोध था। काव्यशास्त्र के वे निष्णात विद्वान् थे। स्वाध्याय प्रियता ने उन्हें पुराण, इतिहास, सामुद्रिक शास्त्र, आयुर्वेद, संगीत, शालि-वाहन प्रभृति शास्त्रों का प्रकाण्ड पण्डित बना दिया था। ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी उनके विशेष ज्ञान का निदर्शन निम्नांकित पद में प्रकट है। वीरसेन और कुसुमश्री के विवाह मुहूर्त्त के विषय में वे लिखते हैं :—

"वीरसेन कुमारनी नृपरानि कलाइ।
मिथुन रासि कन्यातणी, थापी ज्योतिष राइ॥
गौरी गुरुबल जोइयू, विदनइ रविबल जोइ।
चन्द्र बिहू नई पूजतोऊँ, जोयो यूं सुध होइ॥
दूषण दस साहा तणा, टाल्या गणिक सुजान॥
मांहों-मांहि विचारनइ, कीधतु लगन प्रमाण॥

कुसुमश्री रास पृष्ठ ४

कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि ने विवाह मुहूर्त्त और लग्न देखने की पूरी पद्धति का यहाँ विधिवत् उल्लेख किया है। कवि अपनी चलती कविता में भी समय का निर्देश ज्योतिष को सांकेतिक भाषा में करता है—जैसे—
"करक्क लगन्न भयो वर सुन्दर, राम करै तो सही सुखपावे।

ग्रन्थावली पृष्ठ ४०६

उत्तराषाढ़ा विधुवास 'लालरे'

[ शत्रुञ्जय महात्म्य रास पृष्ठ ६२ ]

कवि ने नवग्रहगर्भित स्तवनों में भी अपनी ज्योतिष सम्बन्धी अभिरुचि को प्रकट किया है। कवि का ज्योतिष विद्या पर कितना पाण्डित्य था, उसका निर्देशन नीचे कूटशैली में लिखे पद में द्रष्टव्य हैं —

"पंचम प्रवीणवार, सुणो मेरी सीख सार,
तेरमो नरात मेवा, नौमी रासि दीजिये।
दूजण आये ते द्वारि, मातन को तात छारि,
तातन को तात बिये, सुजस लहीजिये।
तीसरी संक्रान्ति तूं तो, दसमी हि रासि पासि,
सुगति को पर मनूं चौथी रासि कीजिये।
पर प्रिया छिरा रासि, सातमी निहारि यार,
जिनहर्ष पंचम रासि, उपमा लहीजिये॥"

मृगांकलेखा रास पृष्ठ १३

ज्योतिषशास्त्र के समान ही शकुनशास्त्र में भी कवि की गति और रुचि थी। उनके काव्यों में अनेक प्रसंगों में चक्रवर्ती सम्राट, महापुरुष और उच्चकोटि के रागी पुरुषों के लक्षण वर्णित हुए हैं। शुभ शकुनों की सूची पठितव्य है :—

'तरु ऊपर तीतर लवट, घुड़गिरि खेव करंत।
सकुन प्रमाण जांणिज्यो, एक अनेक विरतंत॥
भैरव तीतर कूकरइ, जाहिणो वावेह।
घरे कज्जे नीसर्या, कज्जा सफल करेह॥
वायस जिमणो ऊतरइ, हुए सांवहू स्वान।
शुभ सकुने पांमइ सही, पग-पग पुण्य निधान॥

[ जि० : ग्र० पृ० ४२४ ]

शकुनशास्त्र के समान सामुद्रिक शास्त्र में भी कवि का ज्ञान अत्यन्त व्यापक था। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—
'दीठा लक्षण नृप तणां, मेंगल मच्छ आकार।
धज सायर तोरण धनुष, छत्र चामर उदार'॥

—कुमारपाल रास पृष्ठ ८४

कवि के आयुर्वेद सम्बन्धी ज्ञान का परिचय-उसके द्वारा वर्णित अठारह प्रकार के कुष्ठों और उनके कारणों से मिलता है।

'हरिचन्द राजानो रास' और 'कलियुग आख्यान'

नाम्नी रचनाओं में कवि का पौराणिक ज्ञान विजृम्भित हुआ है।

पाटण की राजवंशावली के संवत वार वर्णन में उसका प्रमाण-पुष्ट ऐतिहासिक ज्ञान प्रकटित होता है।

कवि जिनहर्ष वीतराग साधु होने पर भी लोक विमुख नहीं थे। वे जन-कल्याण को अपनी साधना का अंग समझते थे। वे समाज के सच्चे हितचिन्तक थे और अपने ज्ञान, अनुभव तथा आचरणों से उसे सन्मार्ग पर चलाना चाहते थे। कवि का समस्त साहित्य समाज को साथ लेकर चला है। उन्होंने वर्ग-विशेष की सर्वप्रतिष्ठ शुष्क ऊहापोहात्मक मानसिक संतुष्टि का कभी प्रयत्न नहीं किया। यह भी अनुभव नहीं किया कि साधुवेश में उन्हें गृहस्थ धर्मोपदेश, विवाह विधान, प्रसूता परिचर्या आदि का वर्णन नहीं करना चाहिये था। वे भेद बुद्धि से सर्वथा परे थे। उनके लिये प्रसूता और नवोढ़ा में कोई अन्तर नहीं था। वे सर्वहित मथन में तत्पर रहते थे। जब भी उन्हें अवसर मिला—उन्होंने उसका सदुपयोग उठाया। इसी सामाजिक कल्याण दृष्टि ने उन्हें समाज का प्रकाश-स्तम्भ बना दिया था।

महाकवि परिवार हीन थे फिर भी पारिवारिकों को सदुपदेश देते थे। उन्होंने अनेक प्रसंगों में उपदेश दिया है कि सुगृहिणी ही गृहमंडन है और सुस्वामी ही गृहस्थी का प्राणतत्व। सास और बहू को परस्पर प्रेम से रहने की बात पर वे अत्यधिक बल देते हैं। पत्नी को पति से न लड़ने की सुमति देते हैं। पितृगृह से श्वसुरगृह के लिए प्रस्थानोद्यत नवोढ़ा को शिक्षा दी गयी है कि उसे सहिष्णुता रखनी चाहिये। सास, ससुर, ननद, देवरानी, जेठानी का अपमान नहीं करना चाहिये। कवि ने सास बहू के वैर को उन्दुर मार्जार का सा सहज वैर कहा है; इसलिए वह बहू को पूर्ण सावधानी का पाठ पढ़ाकर उसकी गृहस्थी की सुखद कामना करता है। कवि ने विवाह-विधि का अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। एक ओर वह कन्यादान का शास्त्रोक्त फल बताता है तो दूसरी ओर वहीं गेय लोकगीतों की स्मृति भी दिलाता है। उसने राजस्थान के सुप्रसिद्ध लोकगीत 'केशरियो लाडो' को बड़े चाव और मनोयोग से गवाया है। कवि ने घर-जामाताओं की अपमानावस्था का चित्रण भी किया है और उन्हें अविलम्ब स्वाभिमानी जीवन के लिए श्वसुर गृह से हट जाने की शुभ सम्मति दी है।

कविने सर्वसाधारण को सत्पथपर अग्रेसर होने की प्रेरणा दी है। वह पुरजोर शब्दावली में दुष्ट संग त्याग का आग्रह करता है। ऋण लेने वालों को उसके दुष्फल से परिचित कराता है और कभी भी कर्जा न लेने की शिक्षा देता है। (कुमारपाल रास पृष्ठ १०२)

कवि स्वयं भिक्षु याचक था; लेकिन उसने याचावृत्ति की कटु भर्त्सना की है। वह उन अभागे निर्धन व्यक्तियों से शिक्षा ग्रहण करने को कहता है जो स्त्री के अविचारित उपदेश, दुष्टजन की कुशिक्षा और श्रावणान्त हलकर्षण से भिक्षुक बने भटकते फिरते हैं। कवि ने धन का महत्व इसी रूपमें स्वीकार किया है कि वह जीवन के अन्यतम साधना का साधन है। उसे साध्य समझने वालों को उसने फटकार बतायी है। कवि के पुरुष पात्र बहुविवाह करते हैं; परन्तु वह इसके विपरीत है। द्विभार्य पुरुष की वही दुर्गति होती है जो दो पाटों के बीच में पड़े अन्न की। कविने 'प्रेमपत्र' लिखने का ढंग भी बताया है। उसने यह पत्र विरहिणी नायिका की ओर से प्रवासी प्रियतम को लिखा है। उसने व्यावहारिक उपदेश भी दिया है कि राजा, चोर, चोर, सर्प, बालक, कवि और अग्नि-राशि को नहीं छेड़ना चाहिये; अन्यथा ये विनाश कर देते हैं।

कहने की आवश्यकता नहीं कि महाकवि जिनहर्ष सामाजिकों के अपने ही अभिन्न अंग हैं। सास बहू का झगड़ा हो तो वे वहीं शान्ति स्थापनार्थ उपस्थित हैं। पुत्र अकर्मण्य हो गया है तो वे उसे उपदेश शिक्षण से उत्कंठ

बनाने का अमोघ अस्त्र रखते हैं। व्याधि-मन्दिर शरीर को जलोदर और कुष्ट से संरक्षण के लिए वे पूर्व सावधेती के रूपमें यूकानिगरण और करोलिया भक्षण का क्रमशः निषेध करते हैं। यात्रा, शकुन, लोक, परलोक, विधि विधान-तप, साधना-संयम—इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह हमारे साथ है;—उनका अनुभव हमें सुदूर तक मार्ग-बोध कराता है।

निर्गुणोपासनामें ब्रह्म निराकार है। वह अव्यक्त है। गुण-रहित होने के कारण निर्गुण है। घर-घर में वह व्याप्त है। जिनहर्ष का 'सिद्ध' कबीर के ब्रह्म से मिलता है। वह भी वीतराग, गुणरहित और निराकृति है। कबीर के ब्रह्म और जिनहर्ष के सिद्ध में इतना ही अन्तर समझना चाहिये कि प्रथम की व्याप्ति सर्वत्र है जबकि द्वितीय की नहीं है। वह चैतन्यावस्थामें आकाश में स्थान विशेष पर रहता है; जबकि निर्गुणियों का ब्रह्म अगजग में इस प्रकार घुला मिला है; जिस प्रकार दही में घी।

निर्गुणियों का आत्मतत्त्व विश्वव्यापी ब्रह्म का अंश है। जबकि जिनहर्ष की आत्मा कर्मफल क्षयोपरान्त स्वयं ब्रह्म बन जाती है। वह किसी ब्रह्म का अंश नहीं है। इस प्रकार जिनहर्ष के समस्त सिद्ध एक-एक ब्रह्म हैं। वे अनेक हैं; निर्गुणियों का एक है।

कबीरदास और जिनहर्षने गुरु की महत्ता समान रूपसे स्वीकार की है। दोनों में ही गुरुकृपा के लिए आकांक्षा है। दोनों ही गुरु के प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हैं। कबीर ने गुरु को गोविन्द से भी बड़ा कहा है लेकिन जिन-हर्ष ऐसा नहीं कह सके हैं। वे गुरु को ईश्वर की-सी महत्ता देते हैं। उनके काव्य में पंचपरमेष्ठियों को पंचगुरु की संज्ञा दी गयी है।

निर्गुणियों ने धर्म के बाह्य आचार का खंडन किया है। उनके आलोचना प्रहार से मंदिर मस्जिद तक नहीं बच सके। कर्मकांड, जन्मना जाति का उन्होंने घोर विरोध किया। उनकी प्रवृत्ति खण्डनात्मक अधिक रही और मण्ड-नात्मक कम।

महाकवि जिनहर्ष ने भी प्रदर्शन निमित्त किये जाने वाले बाह्याचरण का विरोध किया है। उन्होंने जैन और जैनेतर दोनों को फटकारा है लेकिन उनकी प्रवृत्ति खंडन-प्रधान नहीं है। इसमें व्यंग्य का असह्य प्रहार नहीं है। वे कहते हैं लेकिन माधुर्य के साथ। इस प्रसंग में यह बता देना अनुचित नहीं होगा कि जिनहर्ष ने मूर्तिपूजा का खंडन नहीं किया है; हां, मंडन अवश्य किया है। उनकी रचना 'जिन प्रतिमा हूंडी रास' का उद्देश्य एक मात्र मूर्तिपूजा का समर्थन ही है। मूर्तिपूजा के इस बिन्दु पर कवि जिनहर्ष निर्गुणियों से मेल नहीं खाते। निर्गुणियों ने तीर्थ और ब्राह्मणों का घोर विरोध किया है। जिनहर्ष में यह बात नहीं है। उन्होंने अनेक तीर्थों की यात्राएँ की थीं और 'तीर्थ चैत्य परिपाटी' की समर्थ रचना से पुण्य स्थल यात्रा के महत्त्व को अभिव्यंजित किया था। हिंसा-प्रधान धर्मों का घोर विरोध दोनों ने ही किया है। जिनहर्ष हिंसा परक धर्म को धर्म और शस्त्रपाणि देवताओं को देवता स्वीकारने को तत्पर नहीं हैं। निर्गुण सम्प्रदाय में व्रत उपवास पर अनास्था व्यक्त की गयी है। जिनहर्ष ने ऐसा नहीं किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जिनहर्ष और निर्गुण संत वैचारिक मग में कुछ दूरी तक तो साथ-साथ चलते हैं; पर फिर छिटक जाते हैं।

सगुण भक्ति में परमात्मा के अंशभूत अवतार की भक्ति की जाती है। यह अवतरण अधर्म के नाश और धर्म की स्थापना के निमित्त होता है। अवतारी प्रभु भक्तों का दुःख भंजन करते हैं। अपनी लीला से संसार को सन्मार्ग दिखाते हैं। वे शील, शक्ति और सौन्दर्य के निधान होते हैं। श्रीराम और श्रीकृष्ण ऐसे ही ईश्वर रूप थे। सूरदास और तुलसीदास के आराध्य वे ही थे। उनकी भक्ति सगुण भक्ति की कोटि में आती है।

जिनहर्ष ने अपनी उपासना के पुष्प अर्हन्त के चरणों में अर्पित किये हैं। अर्हन्त वे हैं जिन्होंने पहले तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया हो, किन्तु फिर भी उनको अवतार नहीं कहा जा सकता। वे तप और ध्यान के द्वारा भयंकर परीषहों को सहते हुए चार घातिया कर्मों को जलाते हैं। और तब अर्हन्त कहलाने के अधिकारी बनते हैं। अर्थात् सगुण अवतारी पहले से ही प्रभु का विशिष्ट रूप होता है किन्तु अर्हन्त स्व पौरुष से भगवान बनते हैं। साकारता, व्यक्तता और स्पष्टता की दृष्टि से दोनों में कोई अन्तर नहीं है, अतः जैन भक्ति क्षेत्र में अर्हन्त सगुण ब्रह्म के रूपमें पूजे जाते हैं।

वैष्णव भक्तों के और जिनहर्ष के भक्तिपदों में पर्याप्त भावात्मक साम्य पाया जाता है। दोनों ने ही आराध्य को इतर से देवों महत्तम समझा है। सूरदास अन्य देवों से भिक्षा मांगने को रसना का व्यर्थ प्रयास कहते हैं ( सूरसागर प्र० पृ० १२)। तुलसीदास लिखते हैं कि अन्यदेव माया में विवश हैं, उनको शरण में जाना व्यर्थ है। ( तुलसीदास—विनय पत्रिका पृ० १६२ )। जिनहर्ष भी यही कहते हैं कि इतर समस्त देवता नट और विट के समान हैं ( ग्रन्थावली पृ० २२ )। उन्हें देखने से मन खिन्न होता है। आराध्य की महत्ता के साथ-साथ भक्त अपनी हीनता का अनुभव भी करता है। तुलसी ने "तुम सम दीन बन्धु न कोउ मो सम, सुनहु नृपति रघुराइ" (विनय पत्रिका पदसंख्या २४२) और सूरदास ने अबकी कही कौन दर जाई—में यही भावना व्यक्त की है। ( सूरसागर ) भक्त जिनहर्ष का दीनभाव भी द्रष्टव्य है। कवि सांसारिक कष्ट परम्पराओं से संतप्त होकर प्रभु-शरण में पहुँचता है। वह दया की भिक्षा मांगता है। उसे स्वाचरित कुकर्मों से ग्लानि का अनुभव होता है और अपने उद्धार की प्रार्थना करता है। दीनता के साथ ही भक्त अपने दोषों का उल्लेख भी किया करते हैं। उन्हें प्रभु की करुणा का अवलम्बन रहता है। इसलिये वे करुणासागर से कुछ भी प्रच्छन्न रखना नहीं चाहते। तुलसी 'विनय पत्रिका' में अपने को 'सब विधि हीन, मलीन और विषयलीन' कहते हैं। (१ तुलसी—विनयपत्रिका पद संख्या १४४) सूरदास ने 'मोसम कौन कुटिल खल कामी' (सूरसागर) में अपने दोषों को ही गिनाया है। जिनहर्ष भी कहते हैं कि मैं मोहमाया में मग्न हो गया हूँ और उसमें ठगा भी गया हूँ। मैंने कुकर्मों के कारण अपने दोनों ही भव नष्ट कर दिये हैं। ( मोह मगन माया मैं घूतउ निज भव हारे दोउ-ग्रन्थावली पृ० ३२)

कवि के कोमल चित्त को सर्वाधिक प्रभावित करनेवाली महमन्दाकिनी मीराबाई हैं। जो अनन्यता, विरह तीव्रता और विग्रह सौन्दर्य दर्शन की ललक हम मीरा में पाते हैं, वही जिनहर्ष में। मीरा ने जबसे नन्द नन्दन गिरिधर गोपाल को देखा है, उसके नेत्र वहीं अटक गये हैं "जबसे मोहि नन्दनन्दन दृष्टि पड्यो— नैना लोभी रे बहुरि सके नहिं आय···मीरापदावली पृ० १६७)। भक्त जिनहर्ष की स्थिति भी यही है। जबसे श्री शीतलजिन की मूर्ति उन्हें दृष्टिगोचर हुई है, उनके नेत्र वहीं ठिठक गये हैं। वापिस लौटने का नाम तक नहीं लेते। ('जबसे मूरति दृष्टि परीरी—नयनन अटके रसिक सनेही, हटके न रहे एक घर री—जिनहर्ष ग्रन्थावली पृ० ७।

मीरा गिरधर गोपाल की जन्म-जन्मान्तर की दासी है, उसका प्रेम एक जन्म का नहीं, अपितु अनेक जन्मों में उपचितराशि हो चुका है। ( मैं दासी थारी जनम जनम की, थे साहिब सुगणां' मीरा पदावली पृ० १७१) जिनहर्ष भी अपने को भव भवान्तर का प्रभु-प्रेमी मानते हैं। प्रभुसे लगी उनकी लगन अनेक जन्मों की है। ('भव-भव तुमसूं प्रीतडी रे'' जिनहर्ष ग्रन्थावली पृ० १६४)। मीरा को स्वप्न में प्रभु ने अपना लिया है। गिरिधर के साथ उसका विवाह भी स्वप्न में ही हुआ है। ( 'माई म्हारो सुपणां माँ परण्यो दीनानाथ' मीरा पदावली पृ० २११)। जिनहर्ष के आराध्य भी उससे स्वप्न में मिलते हैं और सुख उमंग का

संचार करते हैं। ( 'सूतां हो प्रभु सूतां हो, सुपनां मां मिलइ जी' जिनहर्ष ग्रन्थावली पृ० १७०) । मीरा का साध्य प्रभु-चरण-वन्दन है। इसी हेतु वह गिरधर गोपाल की चाकरी करने को समुत्सुक है। उसमें उसे प्रभुदर्शन, स्मरण और भावभक्ति का त्रिगुणित लाभ प्राप्त होगा। ('चाकरी में दरसण पाऊँ-सुमिरण पाऊँ खरची' मीरापदावली पृ० २७)। जिनहर्ष भी केवल आराध्य सेवा की कामना रखते हैं। उसके अतिरिक्त उन्हें और कुछ नहीं चाहिये। ( चरण कमलनी चाऊँ चाकरी, हो राज अवर न चाऊँ बीजी बात'—जिनहर्ष ग्रन्थावली पृ० १८२)।

महाकवि जिनहर्ष बहुपठित और बहुश्रुत थे। उन्होंने अनेक भाषाओं के ग्रन्थ-रत्नों का अध्ययन, मनन किया था। वे सत्संग प्रसंग में विद्वज्जनों, पट्टधरों और मुनियों के प्रवचन श्रवण से लाभान्वित भी हुए थे। उक्त व्यापक अध्ययन, मनन और श्रवण का प्रभाव उनके काव्यों पर भी पड़ा है। यह मुख्यतः दो रूपों में उल्लक्षित होता है।

१ विचार और भाव-साम्य के रूप में।

२ प्रचलित पद पंक्तियों, सूक्तियों को अविकल स्वीकारने के रूप में।

महाकवि के महान् काव्यों में ऐसे अनेक भाव और विचार मिलते हैं जिनका वर्णन पूर्ववर्त्ती कवियों की रचनाओं में उपलब्ध होता है। कतिपय उदाहरण पठितव्य हैं :—

'दुर्जनः परिहर्त्तव्यो, विद्ययालंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितः सर्पः, किमसौ न भयंकरः॥ ...

'जिनहर्ष का छायानुवाद भी द्रष्टव्य है :—

खल संगत तजिये जसा, विद्या सोभत तोय।
पन्नग मणि संयुक्त तें, क्यूं न भंकर होय॥

इसी प्रसंग में सोमप्रभाचार्य कृत संस्कृत श्लोकों और जिनहर्ष द्वारा विहित उनके भावानुवाद का उदाहरण भी पठितव्य है :—

'स्वर्णस्थाले क्षिपति सरजः पादशौचं विधत्ते
पीयूषेण प्रवरकरिणं वाहयत्यैधभारम्।
चिन्तारत्नं विकिरति करात् वायसोड्डायनार्थम्।
यो दुष्प्रापं गमयति मुधा मर्त्यजन्म प्रमत्तः॥

इंधन चंदन काठ करे, सुरवृक्ष उपारि धतूरस बोवे।
सोवन थाल भरे रजते, सुधारसमूं कर पावहि धोवे।
हस्ती महामद मस्त मनोहर, भारवहाइ के ताइ विगोवे।
मूढ़ प्रमाद गयो जमराज न धर्म करे नर सोभत पोवे॥

कहने की आवश्यकता नहीं कि भावानुवाद में कवि बंधकर नहीं चला है। उसने 'इंधन चंदन काठ करें' का भाव अपनी ओर से जोड़कर मूल श्लोक के भाव को और भी प्रभावक बना दिया है।

निम्नांकित उदरणों में भी भावसाम्य दृष्टिगोचर होता है।

'षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः' कालिदास शाकुन्तलम्—

'लोक दीएं धनधान नो रे, रायभणी जिम लाग।
तिम मुनिवर दिए धर्म्म नो रे, छठों भाग सुं राग॥

जिनहर्ष-हरिबलमाछो रास पृ० ३२०

'सुभाषित रत्न भाण्डागार' के सुभाषित 'सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते' को जिनहर्ष 'दुख विण सुख किम थाय' से अभिव्यंजित करते हैं।

महाकवि जिनहर्ष के काव्य में पूर्ववर्त्ती कवियों की पद पंक्तियाँ भी मिलती हैं। कतिपय उदाहरण दिये जा रहे हैं।

कबीर —नौ द्वारे का पींजरा, तामे पंछी पौन।
रहने को आचरज है, गए अचम्भो कौन॥

जिनहर्ष—दस दुवार को पींजरो, तामे पंछी पौन।
रहण अचूंभो है जसा, जाण अचंबो कोण॥

मीरा—जो मैं ऐसो जांणती, प्रीत कियां दुख होय।
नगर ढंढोरो फेरती, प्रीत न करियो कोय॥

जिनहर्ष—जो हम ऐसे जानते, प्रीति बीच दुख होय।
सही ढंढोरे फेरते, प्रीति करो मत कोइ॥

'ढोला मारूरां दूहा' में पावस ऋतु का वर्णन जिनहर्ष रचित 'बरसातरा दूहा' से कितना साम्य रखता है—

ढोला मारूरा दूहा—'बीजुलियां चहलावहलि,
आभइ आभइ एक।
कदी मिलूं उण साहिबा, कर काजल की रेख॥
बीजुलियां चहलावहलि, आभइ आभइ च्यारि।
कदरे मिलउंली सज्जणां, लांबी बांह पसारि॥

जिनहर्ष—बीजुलियां चल भलियां, आभे-आभे कोड़ि।
कदे मिलेसूं सज्जणां, कंचुकी कस छोड़ि॥
बीजलियां सली बादला, सिहरां माथै छात।
कदे मिलेसूं सज्जणां, करी उघाड़ो गात॥

जैन कवियों में महाकवि जिनहर्ष, धर्मवर्द्धन, जिनराजसूरि और विनयचन्द के मत-सामयिक थे। इसलिये वे परस्पर प्रभावित प्रतीत होते हैं।

जिनहर्ष—'ओंकार अपार जगत आधार-
सबै नर नारि संसार जपै है'''

धर्मवर्द्धन—'ऊँकार उदार अगम्म अपार-संसार में सार
पदारथ नामी''' ।

महाकवि जिनहर्ष रससिद्ध कवि थे। श्रोताओं पर उनकी सरस वाणी का जादुई प्रभाव था। शृंगार के संयोग और वियोग वर्णन में उन्हें जितनी सफलता मिली है, उतनी ही शान्त वर्णन में। कवि का परदुःख कातर हृदय करुण में जितना रमा है, वह हास्य से उतना ही दूर है। बीभत्स और भयानक रस वर्णन की अपेक्षा उनका हृदय वीर और रौद्रमें उल्लसित प्रतीत होता है। भक्तिरस में कवि का भक्तोचित मानस निरन्तर निमज्जित रहने का अभिलाषी है, यद्यपि वात्सल्य रस प्रवणता में वह केवल परम्परा का निर्वाह मात्र करता है। प्रकृतिचित्रण में उसकी विशिष्ट रुचि है। कवि को प्रकृति से हार्दिक लगाव नहीं है। वह उसके उद्दीपक रूपसे जितना प्रभावित और उत्साहित होता है उतना उसके आलम्बन रूपसे नहीं। वस्तुतः जिनहर्ष मानव समाज के कवि हैं और प्रकृति को मानव के हस्तक्षेप देखकर ही हर्षित होते हैं। मानव निरपेक्ष प्रकृति का रूप उन्हें आकृष्ट नहीं करता।

नागरिक संस्कृति की अपेक्षा कवि को ग्राम्य संस्कृति से विशेष अनुराग है। ग्राम्य वेशभूषा, रहन-सहन और पर्व उत्सवों का वर्णन करने में उनका अभिनिवेश देखते ही बनता है। उसने 'रायडों, बाजरे के डंठल, पके बेर, भीचड़ा, खीचड़ी, आकमणी भेड़, दमामी के ऊंट, धर्मरज्जु, धडम, मथनी, तिल निपीडन, अर्क, अर्कतूल, कूपछाया, एरण्ड, वटवृक्ष, और अजागलस्तन को अपने काव्य में अप्रस्तुत विधान के रूपमें प्रस्तुत किया है, लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि वह नागरिक संस्कृति से अनभिज्ञ है।

यह निर्विवाद तथ्य है कि अभिव्यञ्जना साहित्य का महत्वपूर्ण अङ्ग है। उत्तम से उत्तम अनुभूति भी अभिव्यक्ति के बिना मूक रह जाती है। वस्तुतः इन दोनों में समवाय सम्बन्ध है। एक के अभाव में दूसरी का अस्तित्व सम्भव नहीं है। अनुभूति यदि आत्मा है तो अभिव्यक्ति निश्चय ही शरीर है। एक के अनस्तित्व में दूसरी का अस्तित्व निष्प्रयोजन है। कुशल कवि जिनहर्ष ने अभिव्यक्ति की रमणीयता एवं प्रभाव क्षमता की सिद्धि के लिये अनेक साधनों का उपयोग किया है। इस तथ्य को हम एक दो उदाहरण प्रस्तुत कर स्पष्ट करना चाहते हैं। जिनहर्ष ने मानव जीवन को उसकी समग्रता में ग्रहण किया है, इसलिये उनके काव्य में विविध प्रकार के चित्र उपलब्ध हैं।

स्थिर चित्र :—

वृद्ध ज्योतिषी का एक स्थिरचित्र द्रष्टव्य है :—

'लोचे बैठो सेठ मोटे भर्यो रे, दीठो ब्राह्मण एक।
नाम नारायण पोथी काखमें रे, तिलक कर्यो अनेक॥
दोआस्वरसो पहिरण धावड़ीयोरे, पहरण धोती पाग।
अवल पछेवड़ी ऊपर उढणोरे, वदन ऊजोई भाग॥

झारी जल भरीयो ग्रहीयो, जिणरे केसर तिलक अखंड।
हाथ पवित्रो पहिरी सोवनी रे, वांस तणों करदण्ड॥
गरढ़ो बूढ़ो सौ वरसां तणौ रे, केस थया सिरि पीत।
सीस हलावै जमनै ना कहैरे, दांत पड्या मुखपीत॥
पुं पुं पांसै, सूं सुं करे रे, दृष्ट अलप मुख लाल।
कहै जिनहरष जरा थयो जोजरौ रे, एवई छठी ढाल॥

[ गुणावली चौपई पृ० ३ ]

कवि ने ऐसा सजीव शब्द चित्र प्रस्तुत किया है कि यदि चित्रकार चाहे तो इसके परिवेश में अपनी तुलिका से वह ज्योतिषी का प्रभावक चित्र अंकित कर सकता है। कवि ने अनेक गति चित्रों को भी उभारा है। जिससे उसके अभिव्यंजन कौशल का निदर्शन होता है।

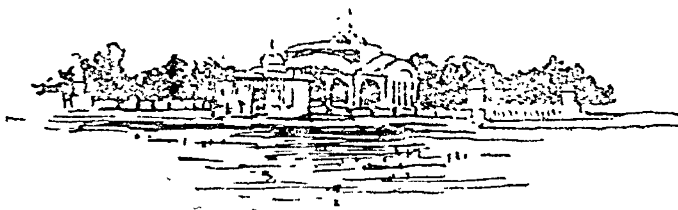
महाकवि जिनहर्ष ने अपने विपुल साहित्य के माध्यम से अभिव्यंजित किया है कि जीवन का अन्यतम उद्देश्य आत्मविकास है। सांसारिक मोह बंधनों में पड़कर प्राणी को मूल लक्ष्य से परिभ्रष्ट नहीं होना चाहिये। साधक को सदैव स्मृतिपथ में यह संरक्षित रखना चाहिये कि सब जीना चाहते हैं, कोई मरना नहीं चाहता। दयाहित और उपकार का भाजन केवल मानव ही नहीं है, प्रत्युत् संसार के समस्त प्राणी हैं। सभी सुख चाहते हैं, दुःख कोई नहीं चाहता। इसलिए सभी की सुख-सुविधा के समुचित वातावरण की सर्जना करनी चाहिये। जीव मात्र पर अहिंसा का भाव रखना चाहिये।

कवि ने बताया है कि सर्वहित कामना का मूल वैराग्य है। राग और द्वेष बन्धन के कारण हैं। इसलिये उनसे मुक्ति पाने का प्रयास करना चाहिये। प्राणी को बाह्य और आन्तरिक दृष्टियों से इतना पवित्र, निर्विकार और निष्कलुष बन जाना चाहिये कि उसका जीवन दोषों से आक्रान्त न होने पावे। उसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे महाव्रतों की स्थूल और सूक्ष्म साधना करनी चाहिये। क्रोध, लोभ, माया, मोह, जैसे दूषणों से बचना चाहिये।

कवि के शब्दों में—

'क्षार तजो मनको अरे मानव !
क्षार ते देह उबार न होई।
शान्ति भजो मन भ्रान्ति तजो
कुछ होइहि सोइ करेगो तुं जोई।
जीव को घात की बात निवारिके,
आप समान गणों सब कोई।
राग न द्वेष धरो मनमें जसराज
सुगति जों चाहिइं जोई॥

---



# पूज्य श्रीमद् देवचंद्रजी के साहित्य में से सुधाबिन्दु

[ आत्मयोग साधक स्वामीजी श्री ऋषभदासजी ]

चित्र विचित्र स्वभाववाले, विविध प्रकार के जड़ चेतन पदार्थों से परिपूर्ण इस विशाल विश्व का जब हम अवलोकन करते हैं और इस विश्वतंत्र का व्यवस्थित ढंग से संचालन देखकर इसके अन्तस्तल में रहे प्रयोजन को सूक्ष्म-दृष्टि से समझने के लिये प्रयत्न करते हैं तो सारा तन्त्र सकल जीवराशि के लिये स्वतन्त्र, स्व-पर निराबाध, सहज सुख की सिद्धि के चरम साध्य के उपलक्ष्य में परोपकार की प्रबल भूमिका पर निरन्तर श्रमशील हो, ऐसा भास हुए बिना नहीं रहता और इसके समर्थन में पूर्व महर्षियों के कई श्लोक मिलते हैं। उदाहरणार्थ—

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः, परोपकाराय सतां विभूतय'॥

वास्तव में गगन मंडल में सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह-नक्षत्र- की जगमगाती हुई ज्योति प्राणियों के प्रबोध प्राप्ति के पथ में प्रोत्साहन देती हुई उनके प्राण-रक्षण के अमृत समान अनेक पोषक तत्वों को प्रदान कर रही है। पवन, प्रकाश, पानी, अग्नि आदि भी प्राणियों के प्राण-रक्षण में सम्पूर्ण सहायता कर रहे हैं और पर्वत, नदी, नाले, वन, उपवन, उद्यान, हरे हरियाले क्षेत्र प्राणियों के प्राणों का अस्तित्व अबाधित रखने में बहुत अनुग्रह कर रहे हों, ऐसा दृष्टिगोचर हो रहा है। अगर नैसर्गिक नियंत्रण के पदार्थ विज्ञान में ऐसी परोपकारपूर्ण प्रक्रिया न होती तो प्राणी क्षण मात्र भी अपना अस्तित्व नहीं टिका सकते क्योंकि प्राणी मात्र सुख चाहते हैं, वह सुख भी सतत् चाहते हैं और सम्पूर्ण सुख चाहते हैं। इसलिये प्राणी मात्र का यह एक सनातन सिद्ध सहज स्वभाव हो, ऐसा ज्ञात होता है। अतः प्राणियों को अपने साध्य बिन्दु की सिद्धि के लिये विश्व के पदार्थ विज्ञान का प्रबोध प्राप्त करना अनिवार्य है। वह शक्ति मानव में होने के कारण मानव अपनी महानन्द मुक्ति पद का अधिकारी माना गया है।

यद्यपि मानव जन्म की महत्ता को प्रत्येक दर्शन ने प्रधान स्थान दिया है परन्तु मानव जन्म की महत्ता का रहस्य जैसा आर्हत्-दर्शन में प्रतिपादन किया गया है, वैसा कहीं भी नजर नहीं आता। आर्हत् दर्शन में समस्त चराचर प्राणियों को तीन कक्षाओं में विभाजित किया गया है। कितने ही प्राणी कर्म चेतना के वश हैं, कितने ही प्राणी कर्मफल चेतना के वश हैं और कितने ही ज्ञान चेतना के वश हैं। तीसरी ज्ञान चेतना का विशेष विकास मानव जन्म में ही दृष्टिगोचर हो रहा है। आर्हत् दर्शन में ही आत्मा के स्वभाव और विभाव धर्म का सर्वाङ्गसुन्दर प्रतिपादन है और इस उभय धर्म का अनुसन्धान करने के लिये दो प्रकार की द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दृष्टि का बड़ा सुन्दर वर्णन है। स्वभाव से ही यह अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख का स्वामी है और अजर, अमूर्त, अगुरुलघु और अव्याबाध गुणों का निधान है। इसीलिये सतत् सुखाभिलाषी और उसकी प्राप्ति के हेतु पूर्ण प्रयत्नशील है परन्तु विश्वतन्त्र की वास्तु-स्थिति के विज्ञान का विकास न पावे वहाँ तक यह अपनी अज्ञानदशा में सुख के बदले दुख परम्परावर्द्धक सुखाभास के लिये प्रयास करता रहता है और इस भ्रांति में अपने को चौरासी लाख जीवयोनि के भ्रमर-जाल में फंसाता है

तथा जन्म मरण को भयानक भवाटवी में भटकता फिरता है।

विश्व यन्त्र का पदार्थ विज्ञान कितना ही परोपकार-पूर्ण होने पर भी उसके गर्भ में रहे हुए परमानन्दकारी परमार्थ को हरएक प्राप्त नहीं कर सकता और इसके कई कारणों पर आर्हत् दर्शन में अनेक प्रकार से प्रकाश डाला गया है। उसमें एक कारण यह भी बताया गया है कि यह आत्मा उर्ध्वगमन स्वभाववाला है। जिस तरह अग्नि का धूआँ उर्ध्वगामी होने से उसका उर्ध्वगमन कराने में कोई प्रयत्न की जरूरत नहीं है लेकिन इतर दिशाओं में गमन कराने में बड़ा प्रयत्न करना पड़ता है क्योंकि वह धूएं का विभाव है, स्वभाव नहीं है। इसी तरह आत्मा अपने उर्ध्वगमन स्वभाव में सहज ही विकास साध सकता है जब कि अधोगमन एवं तिरछागमन में चेतन शक्ति का विकास दु:साध्य हो जाता है। आत्मा वनस्पतिकाय आदि स्थावर में अधोगामी [ Topsy Torby ] स्थिति में है, तिर्यंच आदि त्रस में तिरछागामी (Oblique) स्थिति में है और नरक, देव और मनुष्य गति में उर्ध्वगमन (Perpendicular) स्थिति में है। शास्त्रकार महर्षियों ने तीन चेतनाओं का वर्णन करके पहले ही खुलासा कर दिया है कि तिर्यंच गति, चाहे स्थावर में हो चाहे त्रस में हो, कर्म चेतना के वश है; नरक और देव कर्मफल चेतना के वश है और मानव एक ही ऐसी गति है जिसमें ज्ञान चेतना-प्रधान है। वनस्पति आदि में उसकी अधोगमन स्थिति होने से चेतना का बिल्कुल अल्प विकास नजर आता है क्योंकि उनकी जड़ और धड़ सब उल्टे हैं। यही कारण है कि वृक्षों की शाखा-परिशाखाओं आदि ऊपर के भागों को काटने पर भी वे जीवन का अस्तित्व बनाये रखते हैं। मानव के उर्ध्वगमन स्वभाव में विकसित होने से मस्तक के नीचे रहे हुए अधोभाग के अंगपात्रों को काटने पर भी वह जीवित रहता है व अपने जीवन का अस्तित्व टिका सकता है, क्योंकि इसकी आत्मप्रदेश रूप ज्ञान चेतना की विशेषता मस्तिष्क भाग में केंद्रित है। इसलिये वह सत्यानुसन्धान करके अपने साध्य-सहजानन्द, सच्चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। तिर्यंचों में तो, तिरछे स्वभाव के होने के कारण, ज्ञान का बहुत साधारण स्थिति में विकास होता है क्योंकि उनका मस्तिष्क तिरछा है। यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि हाथी, घोड़े आदि का मस्तिष्क कितना ही बड़ा होने पर भी, उनकी ज्ञान-चेतना बहुत सीमित है, इसलिये सत्य को साक्षात्कार करने के वे पात्र ही नहीं हैं। देव और नरक के जीव उर्ध्वगामी जरूर हैं परन्तु जन्मान्तरों के विभाव धर्म में चाहे शुभ या अशुभ न्यूनाधिक मात्रा में प्रवृत्ति हुई है जिससे उनके सुख-दुःख की स्थिति उनके स्वाधीन नहीं है। अत: वे भी सत्य साधना को चरितार्थ करने में समर्थ नहीं हैं। केवल मानव जन्म में ही वैभाविक शक्ति समतुल मात्रा में विकसित न होने से इसको स्वाभाविक शक्ति साधने का सुन्दर प्रसंग है। इसीलिये मानव जन्म को अति दुर्लभ माना गया है और इसकी दुर्लभता के दस सुन्दर दृष्टांत उत्तराध्ययन सूत्र में बड़े ढंग से दर्शाये गये हैं; ऐसा सुन्दर वर्णन और कहीं नहीं मिलता।

अब बात यह है कि हमें अपनी स्वाभाविक सच्चिदानन्द स्थिति को प्राप्त करने के लिये स्वभाव एवं विभाव के कार्य कारण भावों पर खूब विश्लेषण करना नितान्त आवश्यक है। आर्हत-दर्शन में उस विश्लेषण विश्व-विद्या का नाम द्रव्य गुण-पर्याय का चिंतन है और यही आर्हत्-दर्शन का आदर्श स्थान है, क्योंकि यह विश्वतंत्र इतना विचित्र एवं विज्ञानपूर्ण है कि इसमें कितने ही स्थूल-सूक्ष्म कारण हैं, कितने ही उपादान-निमित्त कारण हैं और कितने ही मूर्त्त अमूर्त्त कारण हैं। इसलिये आर्हत्-दर्शन में सर्वज्ञ बने बिना एवं केवलज्ञान प्राप्ति किये बिना कोई मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। इस विश्व-तन्त्र का संचालन जीव, अजीव दोनों पदार्थों के परस्पर संबंध से चलता है। इसलिये केवल

जीव को अजर, अमर, अविनाशी, सच्चिदानन्द स्वरूप की मान्यतावाले दर्शन ही जीव को मुक्तिधाम पर पहुँचाने में सफल नहीं बन सकते। साथ में अजीव तत्व जो धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल हैं, उनके पूर्ण स्वरूप को समझे बिना छुटकारा नहीं है। यद्यपि दूसरे द्रव्य अपनी गति, स्थिति, अवकाश, प्रवर्तना और परिणाम क्रिया में जीव के साथ सम्बन्धित है तथापि इनपर विशेष मंथन, परिशीलन न भी होवे परन्तु पुद्गल का स्वरूप समझना परम आवश्यक है क्योंकि पुद्गल और जीव परस्पर परिणामी द्रव्य हैं। एक दूसरे का परस्पर सम्बन्ध अलिप्त होने पर भी वे अपना प्रभाव परस्पर डाले बिना रहते नहीं।

एक दर्पण के सामने काला पर्दा रख दिया जाय तो यद्यपि पर्दा और दर्पण पृथक है, फिर भी पर्दे की परछाया दर्पण की निर्मलता को आवरित किये बिना रहती नहीं। इसी तरह आत्मा के ऊपर पुद्गल का आवरण क्या है, कैसे होता है, कैसे टिकता है और कैसे मिटता है, यह सब समझना ही पड़ेगा क्योंकि पुद्गल की भी कई वर्गणायें हैं। खासकर औदारिक आदि आठ वर्गणाएँ जीव से बहुत सम्बन्धित हैं और इनमें भी कार्मण-वर्गणा, जो अति सूक्ष्म मानी जाती है, अपने परिणाम के असर द्वारा आत्मा को स्व-पर का भान तक भुला देती है और यह जीव पर-परिणामी बन जाता है। संज्ञा, कषाय, विषय-वासना, आशा, तृष्णा ये सब पुद्गल-परिणामी होने पर भी जीव अपनी अज्ञान दशा में इनको आत्मपरिणामी समझकर उनमें परिणमन करता है और पुद्गल परिणामी बनकर चारों गतियों में परिभ्रमण करता है। अपने अनन्त प्राणों के संयोग-वियोग के चक्कर में अरघट्ट घटिका न्यायेन" अनादिकाल से संसार समुद्र के जन्म-मरण की तरंगों में गोते खाता रहता है। अतः आर्हत् दर्शन की परिभाषा में द्रव्य-गुण-पर्याय की पहचान में ही सारे संसार का चक्र चलता है। इसलिये द्रव्य-गुण पर्याय का जितना भी सूक्ष्म अध्ययन, अवलोकन, चिंतन, मथन और परिशीलन होगा, उतना ही सत्य का साक्षात्कार एवं वस्तुस्थिति का भान होता जायगा।

ग्रीष्म ऋतु की ताप से पीड़ित हाथी सरोवर के पंक (कीचड़) की शीतलता को देखकर उसमें सुख की भ्रांति में विश्रांति लेने गया। उसे शीतलता का सुख अनुभव जरूर हुआ परन्तु उस कादव में ऐसा फंस गया कि वह फिर बाहर नहीं आ सका। ग्रीष्म ऋतु के प्रचंड ताप से कीचड़ सूखता गया और हाथी को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। इसी तरह इस संसार का हाल है। इसलिये वैभाविक संबंध विकास मार्ग में कहाँ तक उपयोगी है और कहाँ तक निरुपयोगी है, इसका सम्यग्-बोध प्राप्त न हो तो वही विकास विकार रूप बनकर विनाश की तरफ ले जाता है। विश्वतंत्र के प्राणियों के लिए जीवन विकास की प्रक्रिया को और अपनी अज्ञान दशा में निरर्थक बना देता है। विश्वतंत्र में कहो या आर्हत्-दर्शन की परिभाषा में लोकस्थिति कहो या विज्ञान की भाषा में COSMIC ORDER कहो, प्रत्येक पदार्थ अपने स्वाभाविक स्वरूप में अवस्थित रहने के लिये सदा प्रवृत्तिशील है। अतः आर्हत्-दर्शन में सब बड़े तत्वों का परम तत्व (Fulorum of the whole Universe) "उवन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा" माना है। अर्हन्त भगवन्त धर्म तीर्थ स्थापित करने के लिए अपनी अमृत देशना का मंगलाचरण करते हैं तब ऐसा ही वर्णन है कि गणधर प्रश्न करते हैं कि "भंते! किं तत्त? किं तत्तं?" उसके प्रत्युत्तर में भगवन्त "उवन्नेइ वा, विगमेइ वा धुवेइ वा" फरमाते हैं। यही द्रव्य गुण पर्याय की पहचान को समझने का परमोत्कृष्ट साधन है और नैसर्गिक नियंत्रण का सारा विश्व विधान इसी विज्ञान को प्रकाश में लाने के लिये नियोजित है।

जो पुण्य-पवित्र आत्मा जन्म-जन्मान्तरों में अहिंसा संयम-तप का उत्तरोत्तर विकास साधते हुए केवलज्ञान को प्राप्त करके इस लोकालोक प्रकाशक-पूर्ण-विज्ञान प्रतिपादन के अधिकारी बनते हैं, वे ही तीर्थंकर कहलाते हैं। जीवों को तारने के लिये मार्गदर्शक आगमिक भाषा में वे महा-निर्यामक, महा-सार्थवाह, महा-माहण और महागोप कहलाते हैं। उनका प्रवचन ही परमोत्कृष्ट धर्म एवं धर्मानुशासन कहलाता है। इस विश्वतंत्र के विशिष्ट विज्ञान को प्रकाश में लाये बिना इसकी पदार्थ-व्यवस्था के परदे के पीछे रही हुई परोपकार की प्रक्रिया का परमार्थ रूप परमानन्द पद प्राणी प्राप्त करे, ऐसा जो गुप्त रहस्य रहा हुआ है, उसकी पूर्ति हेतु केवल अर्हन्त भगवंत ही अधिकारी है। अतः वे ही कार्य की सिद्धि के लिये कारण की सम्यग्-सामग्री सर्जन करते हैं और उसमें स्वाभाविक वैभाविक धर्मक्षेत्र आदि साधन ऐसा सामग्री जितनी प्राणी को अपने परमानन्द पद की प्राप्ति के लिये चाहिये, उसकी पूर्ति करते हैं; अटल नियम है। इसलिये सारा विश्वतंत्र उनकी सेवा में प्रवृत्त है (The whole Cosmic order remains at their service)। इसिलिये पदार्थ व्यवस्था के विधान के मुताबिक उनके पंच कल्याणकों में देवेन्द्रों, सुरेन्द्रों का शुभागमन होता है और सामग्री की पूर्ति करनेवाले प्रभु हैं, ऐसा संकेत करनेवाले अशोकवृक्षादि अष्ट महाप्रातिहार्य का प्रादुर्भाव होता है। प्राणियों की हरएक प्रतिकूलता को पलायन करके सानुकूलता के साधन जुटाने की विशिष्ट-विभूति जो चौंतीस अतिशयों के नाम से प्रसिद्ध है, वह भी उनके स्वाधीन हो जाती है।

इसलिये नैसर्गिक पदार्थ व्यवस्था के प्रमाणभूत प्रतिनिधि (The most bonafide representative) तीर्थंकरों और उनके स्थापित तीर्थ की आराधना-प्रभावना ही हमारे लिये परमोत्कृष्ट मंगल रूप एवं परम श्रेयस्कर है। इसी आराधना-प्रभावना के यथार्थ बोध के उपलक्ष में मुझे जब भिन्न-२ साहित्य का अवलोकन, अध्ययन, मनन और परिशीलन करना पड़ा तब उसमें मुझे द्रव्यानुयोगी महात्मा देवचन्द्रजी को 'आगमसार' आदि पुस्तकों का तथा उनके तत्वगर्भित स्तवनों आदि का अध्ययन करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिनमें से उपलब्ध बोध के लिये इन महान उपकारी के उपकार का मैं अनन्त ऋणी हूँ, और उन्हीं महापुरुष के दिव्य जीवन का यशोगान करने के उपलक्ष में ही यह लेखनी उठाई है। यद्यपि ऊपर लेख की मर्यादा के बाहर पूर्व-भूमिका बहुत बन गई है, अतः मैं उनके विषय में अब क्या लिखूँ? परन्तु यह कहावत प्रसिद्ध है कि राम के यशोगान में रावण की अनोखी कथनी इतनी विस्तृत बताई कि राम की कथनी उससे भी विशेष विस्तृत करना आवश्यक समझा गया, परन्तु उस सुज्ञचिंतक ने तो एक ही वाक्य में कह दिया कि रावण अनेक विद्या, सिद्धि, ऋद्धि, वृद्धि, संपत्ति और शक्ति का स्वामी था परन्तु राम की किसी शक्ति का वर्णन किए बिना यही कहा कि राम ने रावण को पराजित किया। इससे सिद्ध हो गया कि राम में रावण से भी अनेक विशिष्ट शक्तियाँ थीं। इसी तरह से मैं भी यहाँ कहना चाहता हूं।

आपके साहित्य में से मैं जो कुछ समझा हूँ, वह सागर रूपी गागर में बतलाना चाहता हूँ कि अपने जीवन के उत्थान के लिये, परमानन्द पद की प्राप्ति के लिये एवं मुक्ति मंगल निकेतन का निवासी बनने के लिए तीन बातें बहुत जरूरी हैं:—

**(१) प्रभु की प्रभुता (२) समर्पणभाव (३) आशय की विशुद्धि।**

उपरोक्त तीन बातें यदि ठीक तरह से समझी जावे तो मानव सुखे-सुखे नरेन्द्र देवेन्द्र, सुरेन्द्र और अहमिन्द्रों की अनुपम ऋद्धि समृद्धि की सरिता में सुख संपादन करता हुआ सिद्धिधाम में पहुँच सकता है। इन बातों को समझे बिना जो प्राणी अपनी परिमित प्रज्ञा व मर्यादित

मेधा पर आधार रखकर मुक्ति-मार्ग में प्रवास करता है तो वह परमार्थ के बदले अनर्थ, धर्म के बदले बदले अधर्म, पुण्य के बदले पाप, उपकार के बदले अपकार, हित के बदले अहित, शुभ के बदले अशुभ और शुद्ध के बदले अशुद्ध आचरण करके पराभव स्थिति को प्राप्त कर अपना अधः पतन किये बिना रहेगा नहीं।

जैसे निष्णात डाक्टर से संपर्क साधने के बाद अपने दिमागी दवाओं के झगड़े में पड़ना महामूर्खता है तथा निष्णात डाक्टर के ऊपर निर्भर रहने में ही साध्य की सिद्धि है, उसी तरह पहले हमें प्रभु की प्रभुता को खूब समझना चाहिये तभी समर्पण-भाव आयेगा और आशय को शुद्धि के लिये आतुरता विकसित होती जायगी और वह अपनी आदर्श-भावना को सफल बना सकेगा। केवल आत्मज्ञान की अपनी मति-कल्पना की मान्यतायें मानने और मनाने में अपना ही नहीं, लेकिन अनेकों के उत्थान के बदले पतन म अपने शुष्क ज्ञान को उपकरण बनाने के बदले अधिकरण बनाने के समान है। इसलिये परम-पूज्य महात्मा श्रीमद् देवचन्द्रजी ने उपरोक्त तीन विषयों की रूपरेखा को समझाने का अपने स्तवनों में प्रशमनीय प्रयत्न किया है।

श्रीशीतलनाथ प्रभु के स्तवन में आप फरमाते हैं कि—

"शीतल जीन प्रति प्रभुता प्रभु की,
मुझ थकी कहो न जावेजी"

क्योंकि सारा विश्व-विधान आपकी आज्ञा के अधीन हो गया है।

"द्रव्य, क्षेत्र ने काल, भाव, गुण,
राजनीति ए चार जी
त्रास विना जड़ चेतन प्रभु की,
कोई न लोपे कारजी"

अर्थात् जड़ चेतन रूप षट् द्रव्य के द्वारा सारे विश्व-तन्त्र का संचालन हो रहा है; ये सब आपकी आज्ञा का लोप नहीं करते। मेरे कहने का आशय यह है कि आप ही विश्व के विभु एवं प्रभु हैं। अतः ऐसे प्रभु को समर्पित होने में ही हमारा सर्वोदय है। इसलिये ऐसा शुद्ध आशय बनाकर जो प्रभु का स्मरण करता है एवं उनकी आज्ञा का पालन करता है, वह परमानन्द पद को सुलभता से प्राप्त करता है क्योंकि वे आगे फरमाते हैं कि—

"शुभाशय थिर प्रभु उपयोगे, जो-समरे तुज नामजी।
अव्याबाध अनन्तु पामे, परम अमृत सुखधामजी॥"

ऐसे ही भाव श्री सुविधिनाथ भगवान के स्तवन में मिलते हैं।

"प्रभु मुद्रा ने योग प्रभु प्रभुता लखे हो लाल
द्रव्य तणे साधर्म्य स्वसंपत्ति ओलखे हो लाल"

आगे जाते-जाते श्री महावीर स्वामी के स्तवन में तो यहाँ तक कहते हैं कि—

"तारजो बापजी बिरुद निज राखवा,
दास नी सेवना रखे जोसो"

इस तरह से सुनें तो इन तीन बातों पर श्री देवचन्द्रजी के प्रति अपनी आत्मा में इतना सद्भाव है कि जिसके वर्णन के लिये मेरे पास कोई शब्द नहीं है।

वैसे भी इनके रचना ग्रन्थों में नय, निक्षेप प्रमाण, लक्षण, मार्गणा स्थान, गुणस्थान, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, पंच समवाय, औदायिक आदि पंच भाव, पंचास्रव, षट् द्रव्य, सात धर्म-क्षेत्र, अष्ट कर्म, अष्ट करण, नौ तत्त्व, नौ पद आदि गहन विषयों का भी इतना सुन्दर और सरल ढंग से प्रतिपादन है कि सामान्य बुद्धिवाला भी अपना आत्मोत्थान साध सकता है। संस्कृत, प्राकृत के प्रौढ़ विद्वान होते हुए भी आपने सारे आगमों का अमृत-रस राजस्थानी, गुजराती, हिन्दी, व्रज भाषा में गद्य-पद्य में अपना साहित्य सर्जन करके बड़ा लोकोपयोगी बनाया जिसके लिये उनका जितना भी गुण गान गाया जावे, उतना ही थोड़ा है। वे बड़े आगम व्यवहारी, सच्चे अध्यात्म-पुरुष थे और

आर्हत्-दर्शन की मान्यतानुसार वे बड़े आत्म-योगी पुरुष थे, इसमें कोई शक नहीं।

श्रीमद् देवचन्द्रजी की साहित्य रचना में से प्रभु की प्रभुता, समर्पण भाव, आशय की विशुद्धि का आधार लेकर ही मैं आत्म योग सरोवर में चंचुपात कर रहा हूं। समुद्र के प्रवास में जैसे प्रवहण ही आधार रूप है, इसी तरह से इनके प्रवचन-रूपी प्रवहन, मेरी आत्म-योग-साधना में मेरे लिये पुष्टावलंबन रूप है। अगर यह आधार न मिला होता तो इस भयानक भवसागर को पार करने का साहस भी नहीं होता, जैसे कि अपनी भुजा से समुद्र पार करने-वाले की स्थिति होती है। वह कितना ही पराक्रम करके प्रवहन बिना अपनी भुजा बल से थोड़ी प्रगति साधे परन्तु समुद्र की एक ही तरंग में वह शक्ति है कि वह उसका सारा पुरुषार्थ निष्फल बना सकती है। जिस तरह समुद्र मच्छ, कच्छ, मगर आदि भयानक जंतुओं से भरा है, उसी तरह इस भवसागर में भी संज्ञा, कषाय, विषय वासना, तृष्णा रूपी ऐसे भयानक जंतु भरे पड़े हैं और हम प्रभु के प्रवचन रूपी प्रवहण को प्राप्त किये बिना उनसे बच ही नहीं सकते। बड़े-बड़े पुरुषार्थी पूर्वधर पुरुष भी प्रमाद के प्रवाह में से पड़कर निगोद तक पहुंचे हैं तो मेरे जैसे पुरुषार्थहीन अज्ञानी इस प्रवास में अपनी ही ज्ञान क्रिया के बल पर कैसे विकास साध सकते हैं? अतः इस अगम, अपार संसार को पार करने का मेरे जैसे पामर प्राणी का पुरुषार्थ, हिन्दू धर्म शास्त्रों में टीटोडी के अंडे समुद्र में जाने से अपने चंचु-पात से समुद्र को खाली करने जैसा दृष्टान्त है। परन्तु टीटोडी के आत्म विश्वास ने गरुड़जी को आकर्षित किया, गरुड़जी के द्वारा विष्णु भगवान की कृपा हुई। उन्होंने उसके साध्य को सफल बनाया और समुद्र को अंडे वापस देकर क्षमा मांगनी पड़ी। ऐसे ही इस प्रभु की प्रभुता में वह शक्ति रही हुई है जिसकी कृपा एवं अनुग्रह से हमारा बेड़ापार हो सकता है। इसलिये दिन प्रति दिन प्रभु के प्रति दासत्व-भाव की वृद्धि करते जाना—यही मुक्ति द्वार तक पहुंचने का सरल उपाय है। "दासोऽहं" भाव अपने आप अप्रमत्त गुणस्थानकों में 'सोऽहं' भाव पर पहुंचायेगा और अन्त में "सोऽहं" भाव भी वीतराग गुणस्थानकों में छूटकर ऐसी केवलज्ञान स्थिति में रहा हुआ अपने शुद्ध सिद्धात्म स्वरूपस्थ "अहं" "एगो मे सासओ अप्पा, नाण दंसण संजुओ" रूप पर निराबाध सहजानन्द भाव सिद्ध स्वरूप को प्राप्त करेगा।

इस प्रकार पूज्य श्रीमद् देवचन्द्रजी का मैं दिन रात जितना भी गुण गाऊं, वह थोड़ा ही है परन्तु उनके दिव्य जीवन सम्बन्धी इस स्थान पर दो शब्द उनके प्रति मेरा पूज्य भाव प्रदर्शित करने के लिये उल्लिखित किये हैं, इसमें मति मंदता के कारण कोई त्रुटि रही हो तो क्षमा चाहता हूं। बुद्धेषु किं बहुना!



# खरतर गच्छ की क्रान्तिकारी और अध्यात्मिक-परम्परा

- श्री भंवरलाल नाहटा

आर्यावर्त्त के धर्म-शरीर की आत्मा जैनधर्म है। जिस प्रकार आत्मा के बिना समस्त शरीर शव के सदृश होता है, उसी प्रकार समस्त शुष्क क्रिया काण्ड यदि उनमें अध्यात्मिकता का अभाव हो तो वे केवलकाय-क्लेश मात्र होते हैं। आधिभौतिक साधना से आत्म शांति नहीं मिलती। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जब भगवान महावीर का प्रादुर्भाव हुआ, जनता त्रिविधताप संतप्त थी। शांति के लिए तड़पते प्राणियों को मृग मरीचिका के चक्कर में गोते लगाने के सिवा परिणाम शून्य था। जहां वेद पुराणादि सभी शास्त्र भौतिक लिप्सा एवं एकान्तिक आत्म प्ररूपणा तक सीमित रह गए, जैनागमों का प्रथम अंग आचारांग "आत्मा क्या है ?" इस प्राइमरी शिक्षा का उद्घोष करता है। भगवान महावीर ने आत्मदर्शन को प्रधानता दी और लाखों वर्षों की शुष्क अज्ञान तपश्चर्या को व्यर्थ और ज्ञानी-आत्मज्ञानी की क्रिया-चर्या को सार्थक बतलाया। वह श्वासोच्छ्वास में करोड़ों वर्षों के पापों को क्षय कर देता है। इसीलिए उन्होंने "समयाए समणो होई" कहा। बाह्य आचरणों के मेरु जितने ढेर लगाकर भी कार्यसिद्धि में असफल बताकर आत्मज्ञानी श्रमणत्व की नींव दृढ़ की। धार्मिक क्षेत्र में फैले घोर रूढ़ी अन्धकार को दूर करने के लिए आत्मज्ञान की दिव्य ज्योति प्रकट की। चित्तवृत्ति प्रवाह बाहर भटकने से रोक कर अन्तर्मुखी करके अखण्ड आनंद प्राप्ति की कला बता कर निवृत्ति मार्ग को प्रशस्त करने में भगवान की अमृत वाणी बड़ी ही अमोघ सिद्ध हुई। लाखों प्राणी निर्वाण मार्ग के पथिक होकर अप्रमत्त साधना में लग कर आत्मकल्याण करने लगे। भगवान महावीर ने अपनी साधना का केन्द्र बिन्दु आत्म-विशुद्धि व आत्म साक्षात्कार को माना। साढ़े बारह वर्ष पर्यन्त ध्यान, मौन, कायोत्सर्गादि द्वारा बाहरी आकर्षणों से चित्तवृत्ति और प्रवृत्ति को हटा कर आत्मा की सम्पूर्ण शक्तियों को विकसित किया। देहात्म बुद्धि को मिथ्यात्व बतलाते हुए सम्यग्दर्शन ही वास्तव में आत्मदर्शन है, इसके प्राप्त होने पर सांसारिक या पौद्गलिक विषयों की आसक्ति स्वयं छूट जाती है, बतलाया। केवलज्ञान, केवलदर्शन आत्मा की पूर्ण निर्मलता, विशुद्धता द्वारा प्राप्त आत्मा की चैतन्य शक्ति का परिपूर्ण विकास ही है। आचारांग सूत्र में उन्होंने कहा है, जो एक आत्मा को जान लेता है वह सब को जान लेता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है – आत्मा ही अपना शत्रु और आत्मा ही अपना मित्र है, बाहरी शत्रुओं से युद्ध करने का कोई अर्थ नहीं, आत्मा के शत्रु राग, द्वेष, मोह हैं उन्हीं पर विजय प्राप्त करो। बाह्य तपश्चर्या आत्मलीनता हेतु और देहासक्ति के परित्याग रूप है। छः आवश्यकों में कायोत्सर्ग देहासक्ति का त्याग रूप ही है क्योंकि पुद्गल मोह मिटे बिना अन्तर्मुख वृत्ति नहीं होती और आत्मदर्शन नहीं होता। इच्छा ही बंधन है, इच्छा निरोध ही तप और आत्म-रमणता ही चारित्र है। हमारे समस्त धर्माचरणों का उद्देश्य आत्म विशुद्धि ही होना चाहिए। आत्मकेन्द्रित साधना ही सच्ची मोक्ष मार्ग है।

भगवान महावीर की इस अध्यात्मिक परम्परा को अनेकों महात्माओं ने अपनाते हुए आत्म कल्याण किया। समय-समय पर जो बहिर्मुखता की अभिवृद्धि हुई उसे दूर

करने के लिए ही जैनाचार्यों-मुनियों ने क्रिया उद्धार किया अर्थात् शिथिलाचार का परित्याग करके अध्यात्मिक मार्ग का पुनरुद्धार किया। मध्यकालीन चैत्यवास शिथिलाचार का एक प्रवहमान श्रोत था जिसमें बड़े-बड़े आचार्य और मुनिगण बहते चले गए फलतः अध्यात्मिक साधना क्षीण हो गई, आडम्बर और क्रिया काण्डों का आधिक्य हो गया। जनता को भी भगवान महावीर की अध्यात्मिक शिक्षाएं मिलनी कठिन हो गईं। जैनसंघ को अध्यात्मिक प्रेरणा देने वाले क्रान्तिकारी आचार्यों की युग पुकारने आचार्य हरिभद्र, जिनेश्वरसूरि, जिनवल्लभसूरि, जिनदत्तसूरि मणिधारी जिनचंद्रसूरि, और जिनपतिसूरि जैसे युगप्रधान आचार्यों को जन्म दिया जिन्होंने जैनचैत्यों और मुनियों के आचारों में आई हुई विकृति का प्रबल पुरुषार्थ द्वारा परिहार किया और सुविहित मुनि मार्ग का पुनरुद्धार किया।

आचार्य जिनेश्वरसूरि ने चैत्यवास पर एक प्रबल चोट करके उसकी जड़ें हिला दी जिनवल्लभ और जिनदत्त सूरिजी ने जगह-जगह घूमकर जनता में जागृति पदाकर युग परिवर्त्तन कर डाला और जिनपतिसूरिजी ने तो रही सही शिथिलाचार को प्रवृत्तियों का बड़े बड़े आचार्यों से लोहा लेकर नाम शेष ही कर डाला।

मानव स्वभाव की कमजोरी के कारण शनैः शनैः शिथिलाचार फिर बढ़ता गया और समय-समय पर सुविहित आचार को प्रतिष्ठित करने के लिए क्रियोद्धार की परम्परा भी चलती रही। सोलहवीं शताब्दी में तपागच्छ के आनन्दविमलसूरि आदि ने क्रियोद्धार किया तब खरतरगच्छ के जिनमाणिक्यसूरि ने भी आचार शैथिल्य को दूर करने की प्रबल भावना की और इसके लिए देरावर पूज्य दादा जिनकुशलसूरि जी के मङ्गलमय आशीर्वाद के लिये प्रस्थान किया पर मार्ग में ही स्वर्गवास हो जाने से उनकी भावना मूर्त्त रूप न ले सकी इस समय खरतरगच्छ के उपाध्याय कनकतिलक ने क्रियोद्धार किया। सं० १६१२ में श्रीजिन माणिक्यसूरि के पट्टपर श्रीजिनचन्द्रसूरि प्रतिष्ठित हुए, उन्होंने अपने गुरु की अन्तिम इच्छाको बड़े अच्छे रूप में पूर्ण किया। बीकानेर के मंत्री संग्रामसिंह बच्छावत की विनति से सं० १६१३ में बीकानेर आकर उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी कि जो साध्वाचार को ठीक से पालन करना चाहते हों वे मेरे साथ रहें और जो पालन न कर सकें वे वेश को न लजा कर गृहस्थ हो जावें। कहा जाता है कि उनके शंखनाद से तीन सौ यतियों में से केवल १६ उनके साथी साथी बने अवशेष साधुवेश परित्याग कर गृहस्थ महात्मा मथेरण कहलाये। उपाध्याय भावहर्ष ने क्रियोद्धार करके अपने साधु समुदाय को व्यवस्थित किया जो आगे चलकर भावहर्षीय शाखा के कहलाये। युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि का लोकोत्तर प्रभाव बड़ा फलतः सम्राट अकबर भी उनसे प्रभावित हुआ। जहाँगीर को भी अपनी अनुचित आज्ञा वापस लेनी पड़ी। जैन शासन का वह स्वर्ण युग था, उस समय अनेक विद्वान हुए जिनके साहित्य ने जैनधर्म का गौरव बढ़ाया।

आचार्य जिनराजसूरि के बाद फिर साध्वाचार पालन में थोड़ी शिथिलता आगई अतः श्रीजिनरत्नसूरिजी पट्टधर जिनचन्द्रसूरि ने फिर से नये नियम बनाए। जिनराजसूरि और जिनचन्द्रसूरि के मध्यकाल में ही सुप्रसिद्ध अध्यात्म अनुभव योगी आनन्दघनजी हुए जिनका मूल नाम लाभानन्द जी था। वे मूलतः खरतरगच्छ के थे। मेड़ता में ही जन्म और उच्च आत्म साधनरत विचर कर मेड़ता में ही स्वर्गवासी हुए। उनका उपाश्रय आज भी वहाँ मौजूद है। परमगीतार्थ आचार्य कृपाचन्द्रसूरि जी ने योग-निष्ठ आचार्य बुद्धिसागर जी को आनन्दघन जी के मूलतः खरतरगच्छीय होने को जो बात कही थी उसकी पुष्टि आगम-प्रभाकर मुनिराज श्री पुण्यविजयजी को प्राप्त खरतर गच्छीय श्री पुण्यकलश गणि के शिष्यों को लाभानन्दजी के अष्टसहस्री पढाने के उल्लेख द्वारा भी हो गई है।

तू तेरा सम्भाल

— सहजानन्द

योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दघन (भद्र मुनिजी) महाराज
जन्म सं० १९७० भा० सु० १० डुमरा दीक्षा सं० १९९१ वै० सु० ६ लायजा
युगप्रधान पद सं० २०१८ वै० सु० १५ बोरडी
महाप्रयाण सं० २०२७ का० सु० ३ रत्नकूट हम्पी

चित्र—श्री इन्द्र दूगड़
(जैन भवन कलकत्ता के सौजन्य से)



सं० १९९४ पालीताना में
पंक्ति (१) १ श्री बुद्धिमुनिजी २ उ० श्री लब्धिमुनिजी
३ गणिवर्यरतनमुनिजी ४ भावमुनिजी ५ प्रेममुनिजी
पंक्ति (२) श्रीनन्दनमुनिजी २ श्रीभद्रमुनिजी ३ दर्शन मुनिजी
४ पूर्णानन्दमुनिजी ६ प्रेमसागरजी ५ मुक्ति मुनिजी



श्रीजयानन्दमुनिजी



गणिवर्य श्री बुद्धिमुनिजी

सत्रहवीं शती के "सुमति" नामक खरतरगच्छीय कवि अध्यात्मरसिक हुए हैं। जिनके कतिपय पद तत्कालीन लिखित हमारे संग्रह के दो गुटकों में मिले जो "वीर वाणी" में प्रकाशित किये हैं।

सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिनप्रभसूरि शाखा के विद्वान भानुचन्द्रगणि से शिक्षा प्राप्त श्रीमालज्ञातीय बनारसीदास नामक सुकवि हुए। उन्होंने दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के समयसारादि ग्रन्थों से प्रभावित होकर अध्यात्म मार्ग को विशेष रूप से अपनाया जिससे उनका मत अध्यात्म मती-बनारसीमत नाम से प्रसिद्ध हो गया। थोड़े समय में ही इस अध्यात्म मत का दूर दूर तक जबर्दस्त प्रभाव फैला। सुदूर मुल्तान के कई खरतरगच्छीय ओसवाल श्रावकों ने भी उससे आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त की; फलतः उधर विचरने वाले सुमतिरंग, धर्ममन्दिर, और श्री मद्देवचन्द्रजी ने कई महत्वपूर्ण आध्यात्मिक रचनायें उन्हीं आध्यात्मिकरसिक श्रावकों की प्रेरणा से की। बनारसीदासजी का समयसार, बनारसी विलास, अर्द्ध कथानक आदि साहित्य उल्लेखनीय है।

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज अकबर-प्रतिबोधक चतुर्थ दादा श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के शिष्य श्री पुण्यप्रधानोपाध्याय की शिष्य-परम्परा में उ० दीपचन्द्रजी के शिष्य थे। आपका जन्म सं० १७४६ में बीकानेर के किसी गांव में लूणिया तुलसीदासजी के यहां हुआ। लघुवय में दीक्षा लेकर श्रुतज्ञान की अखण्ड उपासना की। आप अपने समय के महान् प्रभावक, गम्भीर-ज्ञानी और अद्वितीय अध्यात्म तत्ववेत्ता थे। आपकी १६ वर्ष की अवस्था में रचित ध्यानदीपिका चौपई जैसी रचनाओं से आपके प्रौढ़ पाण्डित्य और अध्यात्म ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। चौबीसी आदि रचनाओं में आपने तत्वज्ञान और भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित की है। स्नात्रपूजा आदि कृतियाँ भक्ति की अजोड़ स्रोतस्विनी हैं। आपकी कृतियों का संकलन करके ४५-५० वर्ष पूर्व योगनिष्ठ आचार्य-प्रवर श्रीबुद्धिसागरसूरिजी ने अध्यात्म-ज्ञान-प्रसारक मंडल से श्रीमद्देवचन्द्र भाग-१-२ में प्रकाशित की थी एवं आचार्य महाराज ने आपकी संस्कृत स्तुति आदि में बड़ी ही भक्ति प्रदर्शित की है। श्रीमद्देवचन्द्रजी ने क्रियोद्धार किया था, वे सर्वगच्छ समभावी और जैनशासन के स्तम्भ थे। आपने सं० १८१२ भा० व० १५ के दिन नश्वर देह का त्याग किया। विशिष्ट महापुरुषों द्वारा ज्ञात अनुश्रुतियों के अनुसार आप वर्तमान में महाविदेह क्षेत्र में केवली पर्याय में विचरते हैं।

श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराज के रास—देवविलास में आपके ध्रांगध्रा पधारने पर जिन सुखानन्दजी महाराज से मिलने का उल्लेख आया है वे सुखानन्दजी भी खरतरगच्छ के ही अध्यात्मी पुरुष थे उनके कई पद आनन्दघन बहुत्तरी में प्रकाशित पाये जाते हैं तथा कई तीर्थंकरों व दादासाहब के स्तवन भी उपलब्ध हैं। दीक्षानन्दी सूची के अनुसार आप गुणकीर्ति के शिष्य थे और सं० १७२८ पोष वदि ७ को बीकानेर में श्रीजिनचन्द्रसूरि द्वारा दीक्षित हुए थे। सं० १८०५ में ध्रांगध्रा प्रतिष्ठा के समय देवचन्द्रजी से बड़े प्रेमपूर्वक मिले उस समय आपकी आयु ९० वर्ष से कम नहीं होगी। श्रीसुखानन्दजी की कृतियां अधिक परिमाण में मिलनी अपेक्षित है।

उन्नीसवीं शताब्दी के खरतरगच्छीय विद्वानों में श्रीमद्ज्ञानसारजी बड़े ही अध्यात्मयोगी हुए हैं जिन्हें छोटे आनन्दघनजी कहा जाता है। इनकी चौबीसी, बीसी, बहुत्तरी इत्यादि संख्याबद्ध कृतियां हमारे "ज्ञानसार ग्रन्थावली" में प्रकाशित हैं। श्रीमद् आनन्दघनजी की चौबीसी और बहुत्तरी के कई पदों पर आपने वर्षों तक मनन कर बालावबोध लिखे हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। आपका जन्म सं० १८०१ दीक्षा सं० १८२१ और स्वर्गवास सं० १८९८ में हुआ था। आपका दीर्घजीवन त्याग, तपस्या, उच्चकोटि की साहित्य साधना व योग साधनामय था। बड़े-बड़े राजा-

महाराजाओं पर आपका बड़ा प्रभाव था। इनकी जीवनी के सम्बन्ध में हमारी 'ज्ञानसार ग्रन्थावली' द्रष्टव्य है।

उन्नीसवीं शताब्दी में काशी में खरतरगच्छ के उपाध्याय श्री चारित्रनन्दी गणि परम गीतार्थ थे। जिनके गुरु निधि उपाध्याय के दो शिष्य चिदानन्द जी (कपूरचन्दजी) और ज्ञानानन्द जी बड़े उच्चकोटि के कवि और आध्यात्मिक पुरुष हुए हैं। श्री चिदानन्दजी महाराज का स्वरोदय ग्रन्थ उनकी योगसाधना और तद्विषयक ज्ञान का अच्छा परिचायक है, आपकी पुद्गल-गीता, बावनी, बहुत्तरी-पद और स्तवनादि भी उच्चकोटि की काव्यकला और अनुभव ज्ञान से ओतप्रोत हैं। कविताओं का सर्जन, सौष्टव, फबते उदाहरण और हृदयग्राही भाव अत्यन्त श्लाघनीय हैं। आप गुजरात-भावनगर आदि में काफी विचरे थे। भावनगर की जैनधर्म प्रसारक सभा द्वारा चिदानन्दजी सर्वसंग्रह दो भागों में आपकी समस्त कृतियाँ प्रकाशित हैं।

श्री चिदानन्दजी के गुरुभ्राता श्री ज्ञानानन्दजी भी उच्चकोटि के अध्यात्म योगी थे। आपके शताधिक पदों का संग्रह ज्ञानविलास और संयमतरंग रूप में साठ वर्ष पूर्व वीरचन्द पानाचन्द ने प्रकाशित किया था। श्रीचिदानन्द जी महाराज पहले पावापुरी में गांवमन्दिर के पृष्ठ भाग की कोठरी में ध्यान किया करते थे और पीछे गिरनारजी, पालीताना व सम्मेतशिखरजी में भी रहे। सम्मेतशिखरजी में, गिरनारजी में तथा अन्यत्र भी आपकी ध्यान-गुफाएँ प्रसिद्ध हैं। भावनगर के पास आपने छींपा जाति को प्रतिबोध देकर जैन बनाया था। तीस वर्ष पूर्व जब भद्रमुनिश्री महाराज भावनगर पधारे। तब उस जाति वालों ने कहा—आप खतरगच्छ के हैं। हम भो खतरगच्छ के श्रीचिदानन्दजी महाराज द्वारा प्रतिबोधित हैं

इन चिदानन्द जी और ज्ञानानन्दजी के पश्चात खरतरगच्छीय संवेगी मुनि प्रेमचन्द्रजी का नाम आता है जो गिरनार पर्वत की गुफाओं में ध्यान करते थे। इनकी गुफा गिरनार पर राजुल गुफा से दक्षिण की ओर अब भी प्रसिद्ध है एवं जूनागढ़ तलहटी में धर्मशाला से संलग्न दादावाड़ी में मकसूदाबाद निवासी श्री पूरणचन्दजी गोलछा निर्मापित इनकी चरण पादुकाएँ सं० १६२१ में जूनागढ़ संघ व तीर्थ की पेढी सेठ देवचन्द लखमीचंद ने श्री जिनहंससूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित कराई थी।

बीसवीं शताब्दी के खरतरगच्छीय योग साधनारत अध्यात्मी पुरुषों में दूसरे चिदानन्दजी महाराज का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आप हाथरस के निकटवर्ती ग्राम



के अग्रवाल वैश्य थे। आपका नाम फकीरचन्द था। कलकत्ते में गंधक, सोरे की दलाली करते हुए विरक्त होकर सर्वस्वत्यागी बने और अजीमगंज जाकर शास्त्राभ्यास पूर्वक अपने को जयपुरस्थ खरतरगच्छीय श्री शिवजीरामजी महाराज के शिष्य के रूप में उद्घोषित किया। तदनन्तर पावापुरी और राजगृही में जाकर साधना की। पहले चिदानन्दजी के ध्यान स्थान में जाकर ध्यान करने पर ११वें दिन आपको आत्मानुभूति

हुई और गुरुकृपा से चिदानन्द नाम पाया। आपको 'बड़ी' दीक्षा श्री सुखसागरजी महाराज ने दी थी। आपको हठयोग साधना की जानकारी बहुत जबरदस्त थी। आपने कई ग्रन्थों की रचना की थी। जिनमें (१) द्रव्यानुभव रत्नाकर (२) अध्यात्म अनुभव योगप्रकाश (३) शुद्धदेव अनुभव विचार (४) स्याद्वादानुभव रत्नाकर (५) आगमसार हिन्दी अनुवाद (६) दयानन्दमत निर्णय (७) जिनाज्ञा विधि प्रकाश (८) आत्मभ्रमोच्छेदन भानु (९) श्रुत अनुभव विचार (१०) कुमत कुलिंगोच्छेदन भास्कर प्राप्त हैं। आपका स्वर्गवास सं० १९५६ पौष वदि ६ प्रातः १० बजे जावरा में हुआ था।

खरतरगच्छ के चारित्र सम्पन्न योगसाधकों में श्री मोतीचन्द्रजी महाराज का नाम भी उल्लेखनीय है। ये पहले लूणकरणसर के यतिजी के शिष्य थे। उत्कृष्ट वैराग्य भावना से प्रेरित हो यत्न साधु बने। इनकी साधना बड़ी कठोर थी। शास्त्रोक्त विधि से स्वाध्याय ध्यान के पश्चात् तीसरे प्रहर की चिलचिलाती धूप में बाहर में आकर रूखा सूखा आहार लेते। ये बड़े सरलस्वभावी और ध्यानयोगी थे। हमने भद्रावती की प्राचीन गुफाओं में आपके दर्शन किये थे। आपका स्वर्गवास भोपाल में हुआ था। तपस्वी श्री चारित्रमुनिजी आपके ही शिष्य थे। भद्रावती में आपकी प्रतिमा विराजमान कर संघ ने आपके प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। आपकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है।

खरतरगच्छ की आध्यात्मिक परम्परा-भवन के शिखर सदृश वर्तमान के अन्तिम महापुरुष श्रीमद्मुनिजी—सहजानन्दघनजी हुए हैं जिनका अभी-अभी मिती कार्तिक सुदी २ को हम्पी में निर्वाण हुआ है। आपकी साधना अद्भुत, अलौकिक और बड़ी ही कठिन थी। आपका जन्म सं० १९७० मिती भाद्रपद शुक्ला १० के दिन कच्छ के डुमरा गाँव में हुआ था। उन्नीस वर्ष की अवस्था में बम्बई भातबाजार में आपको ध्यान-समाधि लग गई जिसके



प्रभाव से संसार से विरक्ति होकर सिद्धभूमि में आकर गुप्तवत् साधना करने की आत्मप्रेरणा हुई। इस काल में ऐसी कठिन साधना असम्भव बता कर समुदाय में साधु जीवन अमुक काल तक बिताने की आज्ञा पाकर पुनशीभाई की प्रेरणा से खरतरगच्छीय श्री मोहनलालजी महाराज के प्रशिष्य चारित्र-चूड़ामणि गणिवर्य श्रीरत्नमुनिजी ( आचार्य श्री जिनरत्नसूरि ) के पास सं० १९८९ कच्छ देश के गाँव लायजा में दीक्षित हुए। उपाध्याय श्रीलब्धिमुनिजी के पास अल्पकाल में समस्त शास्त्रों का अभ्यास किया। आप षड्भाषा व्याकरण, काव्य, कोश, छंद, अलंकार आदि के प्रकाण्ड विद्वान बने। बारह वर्ष पर्यन्त गुरुजनों की निश्रा में चारित्र की उत्कृष्ट साधना करते हुए विचरे। सं० २००१ मिती पौष सुदि १४ सोमवार संध्या ६ बजे अमृत वेला में आपने मोकलसर गुफा में प्रवेश किया। वहाँ ऊपर बाघ की गुफा थी और इस गुफा में भी दो विषधर साँप रहते थे, जिसमें कठिन साधना की। सं० २००४ की कार्तिक पूर्णिमा को विहार कर वहाँ से गढ़सिवाणा पधारे। तत्पश्चात् पाली, ईडर आदि स्थानों में गुफावास किया। ईडर में तप्त-शिलाओं पर घण्टों कायोत्सर्ग करते थे। चारभुजा रोड ( आमेट) में चन्द्रभागा तटवर्ती गुफा में केवल एक चद्दिया और एक चद्दर के सिवा अन्य वस्त्र के बिना, कड़ाके की ठण्ड में तप करते रहे। प्रतिदिन ठाम चौविहार एकासना तो वर्षों से चलता ही था।

वह भी हाथ में अल्प आहार करते थे। नये कर्मबन्ध न हों और उदयाधीन कर्मों को खपाने का अद्भुत प्रयोग आपने मौन रहते हुए किया। फिर हृषीकेश, उत्तर-काशी और पंजाब के स्थानों में निर्विकल्प भाव से विचरते हुए सं० २०१० में महातीर्थ समेतशिखरजी पधारे। मधुवन व पहाड़ पर श्रीचिदानन्दजी महाराज की गुफा में रह कर तपश्चर्या की। वहां से विहार कर वीरप्रभु की निर्वाणभूमि पावापुरी में पधार कर छः सात मास रहे। दहाणु की लोहाणा वकील पुरुषोत्तम प्रेमजी पौंडा की पुत्री सरला के लिये समाधि-शतक रचकर मौन साधना में भी एक घण्टा प्रवचन करके उसे समाधिमरण कराया। आत्मभावना की अखण्ड धुन प्रसारित कर राजगृहादि यात्रा कर गया होते हुए गोकाक पधारे। वहां तीन वर्ष अखंड मौन साधना में गुफावास किया। इस समय ठाम चौविहार में केवल दूध और केला के सिवा अन्नादि का त्याग था। फिर मध्य प्रदेश में पधार कर तारणपंथ के तीर्थ धाम निसिईजी में कुछ दिन रह कर आत्मसिद्धि का हिन्दी पद्यानुवाद करके प्रवचन किया। मथुरा, बीकानेर आदि पधार कर सं० २०१४ का चातुर्मास प्राचीन तीर्थ खण्डगिरि ( भुवनेश्वर ) में विताया। तीर्थयात्रा करते हुए क्षत्रियकुण्ड पहाड़ पर तपस्वी साधक श्रीमनमोहनराजजी भणशाली के आग्रह से दो मास रहे। फिर हृषीकेश आदि स्थानों में होकर मध्यप्रदेश पधारे और चातुर्मास ऊन में विताया। फिर बीकानेर पधारे, जैसलमेर की यात्रा की। शिववाड़ी और उदरामसर के धोरों में रहकर बोरड़ी पधारे। सं० २०१८ के ज्येष्ट शुक्ला १५ की रात्रि में सातसौ नर-नारियों की उपस्थिति में दिव्य वस्तुओं के साथ युगप्रधान पद का श्लोक प्रकट हुआ जिसके साक्षी स्वरूप अनेक विशिष्ट व्यक्ति विद्यमान थे। तत्पश्चात् क्रमशः पूर्व जन्मों की साधना भूमि हम्पी पधारे जो रामायणकालीन किष्किन्ध्या और मध्यकाल के विजयनगर का ध्वंशावशेष है। वहां १४० जैन मन्दिर वाले हेमकूट पर कुछ दिन रहकर सामने की पहाड़ी रत्नकूट की गुफा में अधिवास किया। श्रीमद्‌राजचन्द्र आश्रम की स्थापना हुई। मैसूर सरकार और हेमकूट के महन्त जागीरदार ने समूचा पहाड़ जैन संघ को निशुल्क भेंट किया। जहाँ के भयानक वातावरण में दिन में भी लोग जाने में हिचकिचाते थे, आपके विराजने से दिव्यतीर्थ हो गया। बहुत से मकान और गुफाओं का निर्माण हुआ। विद्युत् और जल की सुविधा तो है ही। श्रीमद्‌राजचन्द्र जन्मशताब्दी के अवसर पर पक्की सड़क का निर्माण हो गया है जिससे मोटरें भी ऊपर जाती हैं। विशाल व्याख्यान हाल, फ्री भोजनालय आदि तो हो ही गये, विशाल मन्दिर और दादावाड़ी के निर्माण की भी योजनाएँ हैं। प्रतिवर्ष लाखों रुपयों का आमद-खर्च है। पर्यूषण में तो उस निर्जन स्थल में चार पाँच सौ व्यक्ति पर्वाराधन करते रहे हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल और मध्यान्ह के प्रवचन में भी बहुत से भावुक लाभ उठाते रहे। आपने तीन वर्ष पूर्व समस्त तीर्थ यात्रा और पचासों स्थानों में भ्रमण करके जो व्यक्ति हम्पी नहीं पहुँच सकते थे उन्हें भी अपनी अमृत वाणी से लाभान्वित किया। आप ध्यान और योग के पारगामी थे। चंचल मन को वश करने, देहाध्यास मिटा कर आत्मदर्शन प्राप्त करने की शास्त्रीय कुंजियाँ आपके हस्तगत थीं। आप की प्रवचन शैली अद्वितीय थी। तत्वज्ञान और अध्यात्मवाद जैसे शुष्क विषय की निरूपण-शैली आपकी अजोड़ थी। हजारों श्रोताओं के मनोगत प्रश्नों को बिना प्रश्न किये प्रवचन में समाधान कर देने की अद्भुत प्रतिभा थी। अनेक सद्गत महापुरुषों से आपका संपर्क था, और दिव्य सुंगधी दिव्य वृष्टि आदि होते रहते। अनेक लब्धि सिद्धियाँ जो युगप्रधान पुरुष में स्वाभाविक प्रगट होती हैं, विद्यमान रहते हुए भी कभी उस तरफ लक्ष्य नहीं करते। ज्वर, सर्दी आदि व्याधि की कृपा बनी रहती पर कर्म खपाने के लिये वे उसका स्वागत करते और औष-

धादि का प्रयोग न कर उदयागत कर्मों को भोगकर नाश करना ही उनका ध्येय था। ऐसे समय में उनकी ध्यान समाधि और भी उच्चतर पर पहुँच जाती। सत्य है जिसे देहाध्यास नहीं, आत्मा के शास्वत अविनाशीपन का अखण्ड ज्ञान है उसे शरीर की चिन्ता हो भी कैसे सकती है? सो इस प्रकार की आत्मरमणता और शरीर के प्रति निर्मोहीपन से आप के शरीर को असंध्याधि ने जोर मारा और अशक्ति बढ़ती गई। गत पर्युषण पर देह व्याधि का ख्याल न कर श्रोताओं को अपने प्रवचनों का खूब लाभ दिया। २८ कीलो से भी क्रमश: शरीर क्षीण होता गया घटता गया पर सतत आत्मचिन्तन में रहे उन महायोगी ने गत कार्तिक शुक्ल २ की रात्रि में इस नश्वर देह का त्याग कर दिया।

दादा साहब श्री जिनदत्तसूरिजी आदि गुरुजनों के प्रति आपकी अनन्य भक्ति थी और आपका जीवन भी उन्हीं के पथ-प्रदर्शन में उदयाधीन प्रवृत्त था। दादा साहब ने ही आपको "तू तेरा संभाल" ध्येय मंत्र देकर आत्म साक्षात्कार की प्रेरणा दी थी। वर्तमान जैन समाज अपने आत्म दर्शन मार्ग से हजारों योजन दूर चला गया है और शास्त्र-निर्दिष्ट आत्मसिद्धि से वञ्चित आत्म-रमणता से दूर केवल बाह्य चकाचौंध में भटका हुआ है। इस वर्तमान प्रवृत्ति से आपको भाव दया प्रेरित उपकार बुद्धि आत्मदर्शन की प्रेरणा देती रही। आपके हृदय में गच्छों की तो बात ही क्या पर दिगम्बर-श्वेताम्बर भेद-भावों को भी मिटा देने की भावना थी वे स्वयं दिगम्बर अध्यात्मिक ग्रंथों को अध्ययन करते और उन्होंने उन ग्रंथों को भाषा पद्यों में गुंफित कर अध्यात्मिक जगत् का महान् उपकार किया है। नियमसार, समाधिशतक आदि कृतियां उसी का परिणाम है। श्रीमद् आनंदघन जी की चौबीसी का आपने १७-१८ स्तवनों तक का मननीय विवेचन लिखा व पदों का भी अर्थ संकलन किया था। आपने प्राकृत व भाषा में दादा साहब के स्तोत्र स्तवनादि रचे चैत्यवन्दन चौबीसी, अनुभूति की आवाज, सप्याबद्ध स्तवन व पदों का निर्माण किया। पचीस तीस वर्ष पूर्व आपने प्राकृत व्याकरण की भी रचना की थी जिसे गुफावास की एकाकी भावना ने अलभ्य कर दिया। इसी प्रकार "सरल-समाधि" की दोनों कापियाँ जिसमें अपनी प्रसिद्धि की संभावना समझ कर तीव्र वैराग्यवश अप्राप्य कर दिया। गुरुवर्य श्री जिनरत्नसूरि जी व विद्यागुरु उपाध्याय जी श्री लब्धिमुनिजी की स्तवना में संस्कृत व भाषा में कई पद्य रचे। आपकी सभी रचनाएं प्रकाशित करने की भावना होते हुए भी हम आपकी आज्ञा न होने से प्रकाशित न कर सके। आपके प्रवचनों का यदि सांगोपांग संग्रह किया जाता तो वह मुमुक्षुओं के लिए बड़ा ही उपकारी कार्य होता।

वर्तमान युग में श्रीमद् राजचंद्र सर्वोच्च कोटि के धर्मिष्ठ, साधक और आत्मज्ञानी हुए हैं। दादा साहब की उदार प्रेरणावश आपने उनके ग्रन्थों को आत्मसात् कर अधिकाधिक विवेचन अपने प्रवचनों में किया। उनके प्रति आपकी अटूट श्रद्धा-भक्ति थी जिससे आपने श्रीमद् के अनुभव पथ को खूब प्रशस्त किया। श्रीमद् राजचंद्र ग्रंथ में से "तत्त्व-विज्ञान" नाम से उनकी चुनी हुई रचनाओं का संग्रह प्रकाशित करवाया। श्रीमद् देवचंद्रजी की रचनाओं का पुनः सम्पादन प्रकाशन करने के लिए हमें हस्तलिखित प्रतियों के आधार से "श्रीमद् देवचन्द्र" ग्रंथ तैयार करने की प्रेरणा दी। इसी प्रकार श्रीमद् आनन्दघन जी की कृतियों (बावीसी स्तवन और पद बहुत्तरी) के पाठों को भी प्राचीन प्रतियों के आधार से सुसम्पादित संस्करण प्रकाशन करने का सुझाव दिया। हमने आपके आदेशानुसार ये दोनों कार्य यथाशक्ति किये हैं और उन्हें शीघ्र ही प्रकाशन किया जायगा। हमारी भावना थी कि ये दोनों ग्रन्थ आपश्री के निरीक्षण में प्रकाशित हों पर भवितव्यता को ऐसा स्वीकार नहीं था।

खरतर गच्छ में और भी कई त्यागी वैरागी अध्यात्म प्रिय साधु साध्वी हुए हैं उनमें से प्रवर्त्तिनी स्वर्णश्री जी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में उ० श्री क्षमाकल्याण जी ने संवेगी मुनियों की परम्परा प्रारम्भ की उनमें श्री सुखसागर जी का समुदाय आज तक विद्यमान है, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यति सम्प्रदाय में से श्रीमोहनलालजी महाराज और श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी महाराज ने क्रियोद्धार करके पचासों साधु-साध्वियों को संयमाराधन में प्रवृत्त किए उनकी परम्परा भी चल रही है।



# उपाध्याय क्षमाकल्याणजी और उनका साधु समुदाय

[ लेखक—अगरचन्द नाहटा ]

भगवान महावीर के शासन की यह एक विशेषता रही है कि मानव प्रकृत्यनुसार साध्वाचार में जब-जब शिथिलता आयी तो उसके परिहार के लिए कई क्रान्तिकारी महापुरुष प्रकट हुए। क्योंकि भ० महावीर ने जैनमुनियों का आचार बड़ा कठिन और निरवद्य रखा था इसलिए उनकी वाणी का जिन्होंने भी ठीक से स्वाध्याय मनन किया उन्हें जैनधर्म का आदर्श सदा यह प्रेरणा देता रहा कि विशुद्ध साध्वाचार पालन करना ही प्रत्येक साधु-साध्वी का कर्त्तव्य है। यदि उसमें कहीं दोष लगता है तो उसका परिमार्जन किया जाना भी अत्यावश्यक है।

खरतरगच्छ अपनी विशुद्ध साध्वाचार की परम्परा के लिए प्रसिद्ध रहा है। इसे सुविहित विधिमार्ग इस उपनाम से भी उल्लिखित किया जाता रहा है। समय-समय पर जब भी शिथिलाचार पनपा तब खरतरगच्छ के आचार्यों और मुनियों ने क्रियोद्धार द्वारा पुनः शुद्ध साध्वाचार प्रतिष्ठित किया। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी वाचक अमृतधर्मगणि ने संवेग भाव से कतिपय साधूचित नियमों को ग्रहण कर आचार-निष्ठा का भव्य उदाहरण उपस्थित किया। ये जिनभक्तिसूरिजी के शिष्य प्रीतिसागर उपाध्याय के शिष्य थे। सं० १८३८ मिती माघसुदि ५ को आपने परिग्रह का सर्वथा त्याग कर दिया था। इन्हीं के शिष्य उपाध्याय क्षमाकल्याणजी हुए जिनकी परम्परा का साधु समुदाय आज भी सुखसागरजी के संघाड़े के नाम से विद्यमान हैं।

पं० नित्यानंदजी विरचित संस्कृत क्षमाकल्याणचरित के अनुसार क्षमाकल्याणजी का जन्म बीकानेर के समीपवर्त्ती केसरदेसर गाँव के ओसवंशीय मालू गोत्र में सं० १८०१ में हुआ था। आपका जन्म नाम खुशालचन्द्र था। दीक्षानन्दी सूची के अनुसार सं० १८१५-१६ में श्रीजिनलाभसूरिजी के पास आपने यति-दीक्षा ग्रहण की। आपके धर्म-प्रतिबोधक और गुरु वाचक अमृतधर्मजी थे। विद्यागुरु उपाध्याय राजसोम और उपाध्याय रामविजय (रूपचन्द्र) थे। संवत् १८२६ से ४० तक आप वाचक अमृतधर्मजी, श्रीजिनलाभसूरिजी और श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के साथ राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात-सौराष्ट्र-कच्छादि में विचरे और तत्रस्थ तीर्थों की यात्रा कर सं० १८४३ में पूर्वदेश की ओर अपने गुरु महाराज के साथ विहार किया। सं० १८४३ का चातुर्मास बालूचर में करके भगवती सूत्रकी वाचना की। पाँचवर्ष तक बंगाल-विहार में विचरण कर आपने कई मंदिर-मूर्त्तियों-पादुकाओं आदि की प्रतिष्ठा की। वहां के श्रावकों की प्रेरणासे हिन्दी-राजस्थानी में कई रचनाएँ भी कीं।

सं० १८५० का चातुर्मास बीकानेर करके सं० १८५१ का जेसलमेर किया और वहीं माघ सुदि ८ को आपके गुरु महाराज का स्वर्गवास हो गया। जेसलमेर में आज भी अमृतधर्म शाला उनकी स्मृति में विद्यमान है। सं० १८५५ में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने आपको वाचक पद दिया और दो तीन वर्ष बाद श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने आपको उपाध्याय पद से विभूषित किया। सं० १८५८-५९ में आप उपाध्याय के रूप में सूरिजी के साथ जेसलमेर थे। सं० १८२६ से लेकर १८७३ तक आप निरन्तर साहित्य निर्माण करते रहे। अजीमगंज, महिमापुर, महाजन टोली, पटना, देवीकोट,

अजमेर, बीकानेर, जोधपुर, मंडोवर में आपने प्रतिष्ठाएं करवायीं। अनेक श्रावक श्राविकाओं ने आपसे व्रत ग्रहण किया। सभी प्रसिद्ध तीर्थों की आपने यात्राएं कीं। सं० १८६६ में गिड़िया राजाराम व संघपति तिलोकचंद लूणिया के विशाल संघ के साथ शत्रुञ्जय गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा की।

आपने अनेक सुयोग्य शिष्यादि को विद्याध्ययन करवाया। जिनमें से सुमतिवर्द्धन और उमेदचन्द्र की उल्लेखनीय रचनायें प्राप्त हैं। सं० १८६८ में शारीरिक अस्वस्थता के कारण आप किशनगढ़ से बीकानेर आ गये और अन्तिम समय तक वहीं विराजे। सं० १८७३ पौष बदि १४ मंगलवार को बीकानेर में आपका स्वर्गवास हुआ। आपके अग्नि संस्कार स्थान पर रेल दादाजी में चरणपादुका एवं स्तूप प्रतिष्ठित हैं। श्री सीमंधर स्वामीजी के मन्दिर व सुगनजी के उपाश्रय में आपकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। आपकी तरुण और वृद्धावस्था के कई चित्र भी उपलब्ध हैं। आपके अक्षर बड़े सुन्दर थे आपके लिखे हुए पत्र का ब्लाक, आपका चित्र, रचनाओं की सूची और विशेष जीवन परिचय श्री पुण्यस्वर्ण ज्ञानपीठ, जयपुर से प्रकाशित आपके प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक के हिन्दी अनुवाद में प्रकाशित कर चुका हूं। आपकी कई संस्कृत की रचनाएं व स्तवनादि प्रकाशित हो चुके हैं। कल्याणविजय, विवेकविजय, विद्यानन्दन, धर्मविशाल आपके शिष्य थे। धर्मानन्दजी के शिष्य राजसागरजी उनके शिष्य ऋद्धिसागरजी के शिष्य सुखसागरजी हुए। क्षमाकल्याणजी अपने समय के बड़े आगमज्ञ और गीतार्थ पुरुष थे।



श्री मद् देवचन्द्रजी के हस्ताक्षरों में आनंदवर्द्धन कृत चौबीसी का अन्तिम पत्र ( १७७० )

[ अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर

# सुविहिताग्रणी गणाधीश सुखसागरजी का जीवन परिचय

[ लेखक—अगरचन्द नाहटा ]

महापुरुषों का नाम स्मरण ही महामाङ्गल्यप्रद माना जाता है। जन साधारण के जीवनस्तर को ऊँचा उठाने में महापुरुषों का जीवनचरित्र जितना उपयोगी होता है, अन्य कोई भी साधन नहीं होता। शास्त्रवाक्य मार्ग दिखाते हैं और उन आदर्शों के उदाहरण महापुरुष अपनी जीवनी द्वारा उपस्थित करते हैं। अतः उनसे अधिक एवं सद्यः प्रेरणा मिलना स्वाभाविक है। यही कारण है कि प्रत्येक आस्तिक व्यक्ति महापुरुषों के नाम स्मरण, भक्ति एवं पूजादि द्वारा अपने को कृतकृत्य होने का अनुभव करता है।

जैन धर्म में समय-समय पर अनेक महापुरुष हुए हैं। जिनमें से कइयों का प्रभाव तो अपने समय तक ही अधिक रहा और कइयों के दीर्घकाल तक उनके शिष्य संततिद्वारा लोकोपकार होता रहा है। यहाँ जिन महापुरुषों का परिचय कराया जा रहा है वे द्वितीय प्रकार के हैं। उनकी पुण्य परम्परा में आज भी दर्जन से अधिक साधु व २०० के लगभग साध्वियों का विशाल समुदाय विद्यमान है। जो कि स्थान-स्थान पर विहार कर स्वपरोपकार कर रहे हैं। इन महापुरुष का शुभ नाम मुनिवर्य सुखसागरजी था। श्वे० जैन समाज के सुविहित शिरोमणि जिनेश्वर-सूरिजी की संतति खरतरगच्छ के नाम से प्रसिद्ध है। इस गच्छ में १८वीं शती में जिनभक्तिसूरिजी आचार्य हो चुके हैं। उनके शिष्य प्रीतिसागरजी के शिष्य अमृतधर्म के शिष्य क्षमाकल्याणजी १९वीं शती के नामांकित विद्वानों में से है। आपने तत्कालीन शिथिलाचार से अपने को ऊंचा उठाकर सुविहित मार्ग में नवचेतना का संचार किया था। जनसाधारण के उपकार के लिये आपने अनेक उपयोगी ग्रन्थों को रचना की थी। आपके शिष्य धर्मानन्दजी के शिष्य राजसागरजी से चरित्रनायक ने दीक्षा ग्रहण की थी और उनके शिष्य ऋद्धिसागरजी के शिष्य के रूप में आप प्रसिद्ध हैं।

स्वर्गीय मुनिवर्य श्रीसुखसागरजी का जन्म सं० १८७६ में सरस्वती पत्तन ( सरसा ) नामक स्थान में हुआ था। आपके पिताजीका नाम मनसुखलालजी व मातुश्री का नाम जेती बाई था। ओसवाल जाति के दूगड़ गोत्र के आप रत्न थे। आपके यौवनावस्था में प्रवेश से पूर्व ही माता पिता दोनों का वियोग हो गया। अतः अपनी बहन के आग्रह से ये जयपुर में आ गये, व गोलछा माणिकचन्दजी लक्ष्मीचन्दजी की सहायता से किरियाणे का व्यापार करने लगे। थोड़े समय में ही अपनी व्यवहार कुशलता से आप उनके यहां मुनीम जैसे उत्तरदायित्व पूर्ण पद पर सुशोभित हो गये।

बाल्यावस्था से ही आपकी रुचि धर्मध्यान की ओर विशेष थी। इसी से पिताजी के अनुरोध करने पर भी आपने विवाह करना स्वीकार नहीं किया था व सामायिक, पूजा, तपश्चर्यादि में संलग्न रहते थे। सं० १९०६ में जय-पुर में मुनि श्रीराजसागरजो व ऋद्धिसागरजी का चातुर्मास हुआ। फलतः आपकी धर्मभावना के सींचन का शभन सुयोग प्राप्त हो गया। अपनी चढ़ती भावना से आपने मुनिश्री से साधु-धर्म स्वीकार करने की उत्कंठा प्रकट की। उन्होंने भी आपको वैराग्यवान व दीक्षा की उत्कट भावना वाला ज्ञात कर चातुर्मास होने पर भी आपके आग्रह को स्वीकार किया। नियमानुसार अपने निकट सम्बन्धियों से

भद्रेश्वर ( कच्छ ), तीर्थ की दादावाड़ी



छोटा दादाजी, दिल्ली



श्रीइन्द्रदूगड़ चित्रित, श्रीजिनदत्तसूरिजी के जीवनवृत्त चित्र, कलकत्ता दादावाड़ी

शासन प्रभाविका प्रवर्त्तिनी श्री विचक्षण श्री जी महाराज



प्रवर्त्तिनीजी श्री वल्लभ श्री जी महाराज

चारित्र धर्म स्वीकार करने की अनुमति प्राप्तकर सांवत्सरिक क्षमत क्षामणा के मांगलिक पर्व के दिन गुरुजी के पास आपने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा का महोत्सव उपर्युक्त गोलछा परिवार ने किया। मुनिवर राजसागरजी ने प्रव्रज्या ग्रहण कराते हुए आपको मुनिश्री ऋद्धिसागरजी का शिष्य घोषित किया।

साध्वाचार की समुचित शिक्षा के अनन्तर मार्गशीर्ष मास में आपकी बड़ी दीक्षा भी हो गयी। अब आप जैन सिद्धान्त के विशेष अध्ययन में संलग्न हो गये और थोड़े ही समय में जैनागमों में दक्षता प्राप्त कर ली।

आगमवाचना के समय शास्त्रोक्त साधु जीवन से अपने वर्तमान जीवन की तुलना करने पर शिथिलता नजर आई। अतः साध्वाचार को लुप्त होते देख आपने मुनि पद्मसागरजी व गुणवन्तसागरजी के साथ गुरुजी से अलग होकर सं० १९१८ सिरोही में क्रिया-उद्धार कर लिया। तदनन्तर सुविहित मार्ग का प्रचार व तप संयम से अपनी आत्मा को भावित करते हुए सर्वत्र विहार करने लगे। अनुक्रम से तीर्थाधिराज शत्रुंजय की यात्रा करके आप फलोदी पधारे।

इधर साध्वीजी रूपश्रीजी की शिष्या उद्योतश्रीजी शिथिलाचार से सम्बन्ध-विच्छेद कर सं० १९२२ में फलोदी आयी। और आपको योग्य सुविहित गुरु जानकर आपसे वासक्षेप लेकर आज्ञानुवर्तिनि हो गई। सं० १९२४ में लक्ष्मी बाई दीक्षित होकर उनकी लक्ष्मीश्रीजी के नाम से शिष्या हो गयी। सं० १९२५ में भगवानदास श्रावक ने गुरुश्री से दीक्षा ग्रहण की। और भगवानसागरजी के नाम से वे प्रसिद्ध हो गये। मुनि पद्मसागरजी फलोदी पधारने के पूर्व ही अलग हो चुके थे अतः ३ साधु और ३ साध्वी का आपका समुदाय हुआ।

एक बार आपने स्वप्न में मनोहर वाटिका में बछड़ों के झुण्डसह गायों को विचरते हुए देखा जिसके फलस्वरूप आपने भविष्य में साध्वी समुदाय का विस्तार होना बताया और आपकी यह भविष्यवाणी पूर्णरूपसे सिद्ध हुई।

जैनागमों के निरन्तर अध्ययन से आपके ज्ञान की वृद्धि हुई और जन साधारण के सुबोध के लिये आपने जीवाजीव, राशिप्रकाश (१९१० में सैलाने से प्रकाशित) भाषा कल्पसूत्र, १०८ बोल, ६२ मार्गणायन्त्र, दशक, शतक, अष्टक एवं कई अन्य बोल-चाल के ग्रन्थों की रचना की।

इस प्रकार सुविहित मार्ग का पुनरुद्धार कर धर्मप्रचार करते हुए ३६ वर्ष ४ महीने १४ दिन का निर्मल संयम पालन कर सं० १९४२ के माघ वदि ४ शनिवार के प्रातः काल फलोदी में अनशन द्वारा आप ध्यानपूर्वक स्वर्ग सिधारे।

आप बड़े पुण्यशाली महापुरुष थे। यद्यपि आपकी विद्यमानता में ५ साधु व १४ साध्वियों का समुदाय ही हुआ पर वह क्रमशः वृद्धि को प्राप्त हुआ और थोड़े समय के अनन्तर ही साध्वियों की सं० २०० के लगभग पहुँच गई है।

बीसवीं शती के खरतरगच्छीय विद्वान ग्रन्थकार व क्रियापात्र योगिराज चिदानन्दजी ने शिवजीराम से अलग होकर पूज्य सुखसागरजी महाराज से अजमेर में उपस्थापना दीक्षा ग्रहण की थी। इससे उस समय आपके विशुद्ध चारित्र की स्फाति किरणें फलित थी, इसका भली भाँति परिचय मिलता है।

ऐसे महापुरुष जैन संघ में अधिकाधिक अवतरित हों यही हार्दिक अभिलाषा है।

o

# प्रभावक आचार्यदेव श्री जिनहरिसागरसूरीश्वर

[ ले० मुनिश्री कान्तिसागरजी ]

## आचार्य पद की महत्ता

जैन शासन में आचार्यों का स्थान श्री तीर्थंकर भगवान् से दूसरे नम्बर पर ही आता है क्योंकि जिस समय भव्यात्माओं को मोक्ष-मार्ग दिखा कर श्रीतीर्थंकर भगवान् अजरामर पद को प्राप्त हो जाते हैं, उस समय उनके विरहकाल में द्वादशाङ्गी रूप सम्पूर्ण प्रवचन को और जैन-संघ के विशिष्ट उत्तरदायित्व को आचार्य देव ही धारण करते हैं। अतएव प्रवचन-प्रभावक प्रातःस्मरणीय आचार्य-देवों के पुनीत चरित्रों को जानना प्रत्येक आत्महितैषी का कर्तव्य हो जाता है। अतः एक ऐसे ही आचार्यदेव के दिव्य जीवन से परिचय कराया जाता है। जिसकी अतुल-कीर्त्ति-किरणों से मारवाड का प्रत्येक प्रदेश आज प्रकाशमान है।

## पूर्व सम्बन्ध

श्रीमन्महावीर भगवान् के ६७वें पट्टधर श्रीजिनभक्ति सूरिजी म० के पट्टशिष्य श्रीप्रीतिसागरजी महाराजने वि० की १९वीं-शताब्दी में यति समुदाय में बढ़ते हुए शिथिलाचार को और प्रभुपूजा विरोधी ढुंढक मत के प्रचार को देखकर वाचनाचार्य श्री अमृतधर्मजी म० और महोपाध्याय श्रीक्षमाकल्याणजी महाराज-जो कि आपके शिष्य-प्रशिष्य थे— के साथ श्रीसिद्धाचल तीर्थाधिराज पर क्रियोद्धार किया था। महोपाध्याय श्रीक्षमाकल्याणजी म० की शिष्य परम्परा में परमोपकारी सिद्धान्तदधि गणाधीश्वर श्रीसुखसागरजी महाराज हुए। आपका समुदाय खरतर गच्छीय साधुओं में अधिक प्राचीन एवं सुविस्तृत रूपसे वर्तमान है। श्रीसुखसागरजी महाराज की समुदाय के अधिनायक आबाल-ब्रह्मचारी प्रवचन-प्रभावक पूज्य श्रीजिनहरिसागर सूरीश्वरजी महाराज थे। आपका ही पुनीत चरित्र प्रस्तुत लेख में प्रकाशित किया जाता है।

## कुमार हरिसिंह

जोधपुर राज्य के नागोर परगने में प्राकृतिक सौन्दर्य से हराभरा 'रोहिणा' नाम का एक छोटा सा गांव है। वहां खेती-पशुपालन आदि स्वावलम्बी कर्म वाले और युद्धभूमि में दुश्मनों से लोहा लेनेवाले, क्षत्रियोचित गुणों से स्वतन्त्र जीवन वाले, जाट वंशीय भूरिया खानदान के लोगों की जमींदारी है। जमींदारों के प्रधान पुरुष— श्रीहनुमन्तसिंहजी की धर्मपत्नी श्रीमती केसरदेवी की पवित्र कुँख से वि० सं० १९४९ के मार्गशीर्ष शुक्ला ७ के दिन दिव्य मुहूर्त्त में हमारे चरित-नायक का जन्म हुआ था। हरि-सूर्य और सिंह के समान तेजोमय भव्य आकृति और महापुरुषों के प्रधान लक्षणों से युक्त अपने सुकुमार को देखकर माता-पिता ने आपका गुणानुरूप नाम 'श्रीहरिसिंह' रखा था।

## सफल संयोग

अपनी अलौकिक लीलाओं से माता-पितादि परिजनों को आनन्दित करते हुए कुमार हरिसिंह जब करीब ६-७ वर्ष के हुए तब अपने पिता के साथ पूज्य गणाधीश्वर श्री भगवान्सागरजी महाराज-जो कि गृहस्थावस्था में आपके चाचा लगते थे – के दर्शन के लिये फलोदी (मारवाड़) गये। बाल लीला के साथ आपने वंदन करके श्रीगुरुमहाराज की पापहारिणी चरणधूलि को अपने मस्तक में लगाई। श्रीगुरुदेव ने दिव्य-दृष्टि से आप में भावी प्रभाव-

कता के प्रशस्त चिन्ह पाये। लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित हो गुरु-महाराज ने श्रीहनुमन्तसिंह जी को उपदेश दिया कि तुम्हारे ५ लड़के हैं। उनमें से इस मध्यम कुमार को आप हमें दे दो। क्योंकि यह कुमार बड़ा भारी साधु होगा, और अपने उपदेशों से जैनशासन की महती सेवा करेगा। इसको देने से तुमको भी अपूर्व धर्म-लाभ होगा। गुरुमहाराज की इस पुण्य प्रेरणा से प्रेरित हो वीरहृदयी हनुमन्तसिंहजी ने बड़ी वीरता के साथ अपने प्राण प्यारे पुत्र को धर्म के नाम पर श्रीगुरुमहाराज को भेंट कर दिया। गुरुदेव और कुमार के इस सफल संयोग से 'सोने में सुगन्ध की कहावत चरितार्थ हुई। धन्य गुरु! धन्य पिता!! धन्य कुमार!!!

## साधुता के अङ्कुर

श्री गुरु महाराज ने अपनी वृद्धावस्था के कारण कुमार की विशेष देखभाल और पठन-पाठन का भार अपने सहयोगी महातपस्वी श्री छगनसागरजी महाराज को दिया। पूज्य तपस्वीजी के योग्य अनुशासन में महामहिम शालिनी मेधावाले कुमार ने साधु क्रिया के सूत्र थोड़े ही समय में सीख लिये। पूर्व जन्म के पुण्योदय की प्रबलता से आठ वर्ष की बाल्य अवस्था में गुरु महाराज की परम दया से साधुता के बीज अङ्कुरित हो गये।

## साधु श्री हरिसागरजी

कुमार हरिसिंह जब कुछ अधिक साढे आठ वर्ष के हुए, तब युवकों का सा जोश, और वृद्धों का सा अनुभव रखते थे। गुरु महाराज ने माता पिता को और स्थानीय (फलोदी) जैन संघ को अनुमति से आपकी दीक्षा का प्रशस्त मुहूर्त्त १९५७ आषाढ़ कृष्ण ५ के दिन निर्धारित किया। अपने आयुष्य की अवधि निकट आ जाने से श्री गुरु महाराज ने श्री संघ से खमत-खामणा करते हुए अन्तिम आज्ञा दो कि 'हरिसिंह को योग्य अवस्था होने पर इसे मेरा उत्तराधिकारी मानना'। संघ के मुखिया महातपस्वी श्रीछगनसागरजी म० ने अपने पूज्य गणाधीश्वरजी की इस आज्ञा को शिरोधार्य करके, उनको निश्चिन्त बना दिया। मुनि श्रीभगवानसागरजी महाराज आत्मरमण करते हुए दिव्य लोक को सिधार गये तब संघ में एक दम शोक छा गया। परंतु गुरुदेव के प्रतिनिधि स्वरूप कुमार हरिसिंह के दीक्षा-महोत्सव ने शोक को मिटा कर अपूर्व आनन्द को फैला दिया। श्री संघ के सामने बड़े भारी समारोह के साथ पू० त० श्री छगनसागरजी महाराज ने कुमार हरिसिंह को उसी पूर्व निश्चित सुमुहूर्त्त में भागवती दीक्षा प्रदान कर पूज्य गणाधीश्वर श्री भगवानसागरजी महाराज के शिष्य 'श्री हरिसागरजी' नाम से उद्घोषित किये।

## चरित नायक के गुरु भाई

गणाधीश्वर पूज्य श्री भगवानसागरजी महाराज साहब के शिष्य अध्यात्म योगी चैतन्यसागरजी म० उर्फ चिदानन्दजी महाराज महोपाध्याय श्री सुमतिसागरजी महाराज, मुनि श्री धनसागरजी महाराज, मुनि श्री तेजसागरजी महाराज, श्री त्रैलोक्यसागरजी महाराज और हमारे चरितनायक आचार्य श्री जिनहरिसागरसूरीश्वरजी महाराज हुए।

## आदर्श जीवन

पूज्य श्री छगनसागरजी महाराज को वृद्धावस्था होने से और हमारे चरितनायक की बाल अवस्था होने से सं० १९५७ से १९६५ तक के चातुर्मास लोहावट और फलोदी (मारवाड़) में ही हुए। इस सानुकूल संयोग में ज्ञान-तप और अवस्था से स्थविर पद को पाये हुए पूज्य श्री छगनसागरजी महाराज ने आपको संस्कृत व प्राकृत भाषा को पढ़ाने के साथ-साथ प्रकरणों का तत्त्व-ज्ञान और आगमों का मौलिक रहस्य भली प्रकार से समझा दिया। विद्यागुरु की परम दया और आपकी प्रौढ़ प्रज्ञा ने आपके व्यक्तित्व को आदर्श और उन्नत बना दिया।

## चरितनायक गणाधीश

श्री भगवान्सागरजी महाराज की अन्तिम आज्ञानुसार हमारे चरितनायक को महातपस्वी श्री छगनसागर जी महाराज ने सं० १९६६ द्वि० श्रा० शु० ५ को अपने ५२ वें उपवास की महातपश्चर्या के पुनीत दिन में जोधपुर, फलोदी, तीवरी, जेतारण, पाली आदि अन्यान्य नगरों के उपस्थित जैन संघ के सामने महा समारोह के साथ लोहावट में गणाधीश पद से अलंकृत किया। आपके गणाधीश पद के समय उपस्थित साधुओं में मुख्य श्री त्रैलोक्यसागरजी महाराज आदि, साध्वियों में श्री दीपश्रीजी आदि, श्रावकों में लोहावट के श्रीयुत् नेनमलजी कोचर, फलोदी के श्रीयुत् सुजानमलजी गोलेछा—स्व० फूलचंदजी गोलेछा, जोधपुर के स्व० कानमलजी पटवा आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। शान्त दान्त धीर गुण योग्य गणाधीश को पाकर साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ ने अपना अहोभाग्य माना।

## चरितनायक और समुदाय वृद्धि

हमारे चरितनायक गणाधीश्वर श्री हरिसागरजी महाराज के अनुशासन में करीब सवासो साधु-साध्वियों की अभिवृद्धि हुई है। इस समय आपकी आज्ञा में करीब दो सौ साधु-साध्वियाँ वर्तमान हैं। साधुओं में कई महात्मा आबाल-ब्रह्मचारी, प्रखरवक्ता, महातपस्वी, विद्वान् और कवि रूप से जैन शासन की सेवा कर रहे हैं। साध्वियों के तीन समुदाय (१-प्रवर्त्तिनी श्री भावश्रीजी का, २–प्र० श्री पुण्यश्रीजी का और ३—प्र० श्री सिंहश्रीजी का है)। इनमें भी कई आजीवन ब्रह्मचारिणी, विशिष्ट व्याख्यान दात्री, महातपस्विनी एवं विदुषी प्रचारिका रूप में जैन सिद्धान्तों का प्रचार कर रही हैं। अन्यान्य गच्छीय साधुओं के जैसे कच्छ, काठियावाड, गुजरात आदि जैन प्रधान देशों में आपके साधु-साध्वी प्रचार करते ही हैं परन्तु मारवाड़, मालवा, मेवाड़, उ० प्र०, म० प्र०, आदि अजैन प्रधान विकट प्रदेशों में भी प्रायः ये लोग ही प्रचार प्रसार कर रहे हैं।

## चरितनायक और प्रतिष्ठाएँ

हमारे चरितनायक की अध्यक्षता में कई प्रभु मन्दिरों की और गुरु मन्दिरों की पुण्य प्रतिष्ठाएँ हुई हैं। सुजानगढ़ में श्रीपनेचंदजी सिंघी के बनाये श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के मन्दिर की, केलु (जोधपुर) में पंचायती श्रीऋषभदेव स्वामी के मन्दिर की, मोहनवाडी (जयपुर) में सेठ श्रीदुलीचंदजी हमीरमलजी गोलेछा द्वारा विराजमान किये श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की, श्रीसागरमलजी सिरहमलजी संचेती के बनाये श्रीनवपद पट्ट की, कोटे में दिवान बाहादुर सेठ केसरीसिंहजी के, और हाथरस (उ० प्र०) में सेठ विहारीलाल मोहकमचंदजी के बनाये श्रीदादा-गुरु के मन्दिरों की, लोहावट में पंचायती गुरु मन्दिर में गणनायक श्रीसुखसागरजी महाराज साहब की और ग० श्रीभगवान्सागरजी म० एवं श्रीछगनसागरजी म० के मूर्त्ति चरणों की प्रतिष्ठाएं उल्लेखनीय है।

## चरितनायक और उद्यापन

हमारे चरितनायक की अध्यक्षता में कई धर्मप्रेमी श्रीमान् श्रावकों ने अपनी २ तपस्याओं की पूर्णाहूति के उपलक्ष में बड़े-बड़े उद्यापन महोत्सव किये हैं। उनमें फलोदी (मारवाड़) में श्रीरतनलालजी गोलेछा का किया हुआ श्रीनवपदजी का, कोटे में दिवान बहादुर सेठ केसरीसिंहजी का किया हुआ पौष-दशमी का, जयपुर में सेठ गोकलचन्दजी पुंगलिया, सेठ हमीरमलजी गोलेछा, सेठ सागरमलजी सिरहमलजी, सेठ विजयचन्दजी पालेचा, आदि के किये हुए ज्ञान पंचमी, नवपदजी और वीसस्थानकजी के तीवरी (मारवाड़) में श्रीमती जेठीबाई का किया हुआ ज्ञान-पंचमी का, और देहली के लाला केसरचन्दजी बोहरा के किये हुए ज्ञानपंचमी और नवपदजी के उद्यापन महोत्सव विशेष उल्लेखनीय हुए हैं।

## चरित्र नायक और संघ

हमारे चरितनायक के पवित्र उपदेश से प्रेरित हो कई भव्यात्माओं ने तारणहार तीर्थों की यात्रा के लिये छरी-पालक बड़े-बड़े संघ निकाले हैं। उनमें श्रीजेसलमेर महा-तीर्थ के लिए फलोदी से पहली बार सेठ सहसमलजी गोलेछा द्वारा, और दूसरी बार सेठ सुगनमलजी गोलेछा की धर्मपत्नी श्रीमती राधाबाई द्वारा, श्रीवारेजा पार्श्व-नाथ तीर्थ के लिये मांगरोल से पहली बार सेठ जमनादास मोरारजी द्वारा और दूसरी बार सेठ मदनजी कानजी द्वारा, श्रीअंजारा पार्श्वनाथ तीर्थ के लिये वेरावलसे खरतर-गच्छ पंचायती द्वारा, सालमज महातीर्थ के लिये श्रीपा-लीताना से आहोर निवासी सेठ चन्दनमल छोगाजी द्वारा, तीर्थाधिराज श्रीसिद्धाचलजी के लिए अहमदाबाद से सेठ डाह्याभाई द्वारा और देहली से श्री हस्तीनापुर महातीर्थ के लिये लाला चांदमलजी चेवरिया की धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरीदेवी द्वारा आदि २ छरी-पालते हुए बड़े-बड़े संघ विशेष उल्लेख योग्य हुए हैं।

## चरित्र नायक और संस्थाएं

हमारे चरितनायक के अमोघ उपदेश से कई शहरों में विद्यालय, पुस्तकालय, मित्रमण्डल आदि कई संस्थाएं स्थापित हुई हैं। पालीताना में श्रीजिनदत्तसूरि ब्रह्मचर्याश्रम जामनगर में श्रीखरतरगच्छ ज्ञानमन्दिर-जैनशाला, लोहावट में जैनमित्रमण्डल, श्रीहरिसागर जैनपुस्तकालय, कलकत्ते में श्रीश्वेताम्बर जैन सेवासंघ-विद्यालय, बालुचर (मुर्शि-दाबाद) में श्रीहरिसागर जैन ज्ञानमन्दिर-जैन पाठशाला आदि विशिष्ट संस्थाएं समाजसेवा और जैन संस्कृति का प्रचार कर रही हैं।

## चरित्र नायक और पुरातत्त्वरक्षा

हमारे चरित नायक ने श्रीसिद्धाचल तीर्थाधिराज पर 'खरतर वसही' के प्राचीन इतिहास की सुरक्षा के निमित्त प्रबल आन्दोलन करके श्रीआनन्दजी कल्याणजी की पेढी के किसी महाविरोधी मेनेजर के हटाया हुआ 'श्रीखरतर वसही' नाम का साइन बोर्ड उसी पेढी के जरिये वापिस लगवाया। वहीं श्रीखरतर गच्छ की बिखरी हुई शक्तियों संगठित करने के लिये श्रीखरतरगच्छ संघ सम्मेलन का बृहद् आयोजन करवाया। बीकानेर में श्रीक्षमाकल्याणजी के और जयपुर में पंचायती के प्राचीन हस्तलिखित जैनज्ञान भण्डार का जीर्णोद्धार करवाया। कई तीर्थों के-मूर्तियों के प्राचीन शिलालेखों का, प्रभावक आचार्यों की कई प्राचीन पट्टावलियों का, और पुष्प प्रशस्तियों का बृहद् संग्रह आपने तैयार किया है।

## चरित्र नायक और साहित्यिक प्रवृत्ति

हमारे चरितनायक श्री उववाई सूत्र का सटीक हिन्दी अनुवाद दादागुरु श्री जिनदत्तसूरिजी महाराज की ऐति-हासिक पूजा, महातपस्वी श्री छगनसागर जी महाराज का दिव्य जीवनवृत्त, हरि-विलास स्तवनावली के दो भाग, आदि कई ग्रन्थों का नव सर्जन किया है। लोहावट से प्रकाशित होनेवाले श्री सुगनसागर ज्ञान बिन्दु जिनकी संख्या इस समय ५० है—आपकी साहित्यिक भावना का मधुर फल है। इन्हीं ज्ञान बिन्दुओं से सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक प० लालचन्द भगवानदास गांधी द्वारा लिखित श्रीजिनप्रभ-सूरिजी म० का ऐतिहासिक जीवनचरित्र, जयानन्द-केवली चरित्र, भाव प्रकाश, संबोध-सत्तरी आदि महत्त्वपूर्ण साहित्य ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। श्री हिन्दी जैनागम-सुमति प्रकाशन कार्यालय कोटा से प्रकाशित होनेवाले-जैनागम साहित्य के लिये आप श्री के सदुपदेश से भागलपुर के रईस रायबहादुर सुखराजजी ने, उनके सुपुत्र बाबू रायकुमार सिंह जी ने मलोमगज के राजा विजयसिंह जी की माता श्री सुगनकुमारीजी ने-और कई श्रीमानों ने काफी सहायता पहुँचाई है। आपकी प्रकृष्ट-साहित्यिक सम्पत्ति का स्व० बाबू पूरनचन्दजी नाहर M. A, B. L,

विहार पुरातत्व विभाग के प्रमुख प्रोफेसर जी० सी० चन्द्रा साहब, राय बहादुर बृजमोहन जी व्यास आदि जैन अजैन विद्वान बहुत आदर करते रहे हैं।

## चरित्र नायक का विहार

हमारे चरित नायक ने अपने ३७ वर्ष के लम्बे दोक्षा-पर्याय में संयम की साधना, तीर्थों की स्पर्शना और लोक-कल्याण की विशिष्ट भावना से प्रेरित हो काठियावाड़, गुजरात, राजपूताना-मारवाड़, मेवाड़, मालवा, यू० पी० पंजाब, विहार, बंगाल आदि प्रदेशों में विहार करके कर्म वाद, अनेकान्तवाद, अहिंसावाद आदि मुख्य जैन सिद्धान्तों का प्रचार किया है। आपके हृदयंगम उपदेशों से प्रभावित होकर कई बंगाली भाइयों ने आजीवन मत्स्य-मांस और मदिरा का त्याग करके जीवन को आदर्श बनाया है। आप ने तीर्थाधिराज श्री सिद्धाचल-तालध्वज-गिरनार-प्रभास पाटन-पोर्तुगीज साम्राज्य के दीवतीर्थ-शंखेश्वर-तारंगा अह-मदाबाद-पाटण-पालनपुर-आबू-देलवाड़ा-राणकपुर-जैसलमेर-लोद्रवा, नाकोड़ा-करेड़ा पार्श्वनाथ-केशरियानाथ-अजमेर-जय-पुर-देहली-हस्तिनापुर-सौरिपुर-कम्पिलपुर-रत्नपुरी-अयोध्या-कानपुर-लखनऊ-बनारस-सिंहपुरी-चन्द्रपुरी-पटना-चम्पापुरी-श्रीसमेतशिखरजी - कलकत्ता - मुर्शिदाबाद-भद्दिलपुर आदि तारणहार तीर्थों की यात्राएँ की हैं।

## चरितनायक का आचार्य पद

हमारे चरितनायक को १९६३ में म० त० श्री छगन-सागरजी महाराज ने और जोधपुर आदि शहरों के प्रमुख जैन संघ ने लोहावट में गणाधीश्वर पूज्य श्री सुखसागरजी महाराज के समुदाय के गणाधीश पद से सुचारु रूप से विभू-षित किया था। फिर भी अजीमगंज (मुर्शिदाबाद) के राज मान्य धर्मप्रेमी जैन संघ ने कलकत्ता, देहली, लखनऊ, फलोदी आदि नगरों के प्रमुख व्यक्तियों के विशाल जन-समूह के बीच महा समारोह के साथ वि०सं० १९९२ मार्ग-शीर्ष शुद १४ को विजय मुहूर्त्त में 'श्रीजिनहरिसागरसूरी-श्वर जी महाराज की जय' ध्वनि के साथ अभिनन्दन पूर्वक आचार्य पद से आपको सम्मानित किया।

## उपसंहार

पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय जैनाचार्य श्रीजिनहरिसागर सूरीश्वरजी महाराज का यह संक्षिप्त चरित्र है। हमारे चरितनायक आचार्यदेव श्री और आपकी आज्ञा को मानने वाले लगभग २०० साधु-साध्वियां हैं। एवं आचार्य श्री के शिष्य म० गणाधीश मुनि श्री हेमेन्द्र सागर जी म० मुनि श्री दर्शनसागरजी म०, मु० श्री तीर्थ सागरजी म०, एवं मुनि श्री कल्याणसागरजी महाराज आदि मुनि महोदय जैन संघ की अभिवृद्धि करते हुए अपने आदर्श जीवन के प्रकाश से भव्यात्माओं को प्रकाशित करें।

हमारे चरितनायक दो वर्ष तक जैसलमेर में विराजे और वहाँ प्राचीन भण्डार का निरीक्षण किया। इतना ही नहीं पर ५ पंडित और ५ लहिये (लेखक) रखकर गुरुदेव श्री ने प्राचीन अलभ्य ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ कराईं, संशोधनात्मक कार्यों में विशेष श्रम करने से गुरुदेव का स्वास्थ्य विगड़ता गया। जैसलमेर से गुरुदेव ने विहार किया, रास्ते में विशेष तबीयत बिगड़ने से आचार्य श्री ने फरमाया—मैं अपना अन्तिम समय किसी तीर्थ पर व्यतीत करना चाहता हूँ अतः आप श्री फलौदी पार्श्वनाथ मेड़तारोड़ पधारे, स्वास्थ्य प्रतिदिन गिरता ही गया, आहार लेना भी बन्द किया और अर्हम् अर्हम् ध्वनि लगाते रहे। दो दिन-रात निरन्तर ध्वनि करते रहे, अन्त में जबान बन्द हो गई तब बीकानेर, जोधपुर आदि से बड़े २ वैद्य, डाक्टर आये किन्तु गुरुदेव श्री ने अपना आयुष्य सन्निकट जानकर 'अप्पाणं वोसिरामि' कर दिया। संवत् २००६ पोषवदि ८ मङ्गलवार प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् आप श्री सर्व चतुर्विध संघ को विलखता हुआ छोड़कर स्वर्ग पधार गये।

# शासनप्रभावक आचार्य श्रीजिनानंदसागरसूरि

[ ले०—[redacted]● मुनि महोदयसागर ]

इस संसार की धराटी पर अनेकों जन्मे और अनेकों मर गये, किन्तु अमर कौन है ? जो व्यक्ति धर्म, राष्ट्र एवं समाज के हित के लिये शहीद हो गये, वे मर कर भी आज संसार में अमर हैं।

जिन्होंने अपना पूरा जीवन जगत की भलाई में बिताया, सेवा करते समर्पित हो गये, वे देह रूप से भले विद्यमान न हों किन्तु कार्य से वे सदा के लिये अमर हैं।

पृथ्वी को 'बहुरत्ना' का पद दिया गया है। इस पृथ्वी पर अनेक संत, महंत, पीर पैगम्बर हो गये सभी ने जगत को शान्ति का मार्ग दिखाया, परस्पर मैत्री भाव का उपदेश दिया। संसार भी ऐसे ही महापुरुषों की प्रशंसा करता है। उन्हीं महापुरुषों के गुणों को याद कर, उनके पथ के अनुगामी बनकर जगत उनके उपकारों को कभी नहीं भूलता। उन्हीं महानुभावों की तो जयंतियाँ मनाई जाती हैं। सभी धर्म व सभी सम्प्रदायों में महापुरुष उत्पन्न हुये हैं। सदा से कड़ी से कड़ी जुड़ती आई है, ज्योत से ज्योत जलती आ रही है।

उन्हीं महापुरुषों में से हैं—हमारे परमपूज्य, परम उपकारी, परम-आदरणीय, प्रखर-वक्ता, आगम-ज्ञाता, शासन प्रभावक आचार्यदेव श्री १००८ वीरपुत्र श्रीजिन आनन्दसागरसूरीश्वरजी म० सा० हैं। आपकी संक्षिप्त जीवनी लिखकर मैं अपने को कृतार्थ समझता हूँ।

भारत भूमि के मालवा प्रांत में सैलाना नगर में विक्रम सं० १९४१ आषाढ़ सुद १२ सोमवार कोठारी खानदान में [illegible] श्री सा० की भार्या केसरदेवी की रत्नकुक्षी से आपका जन्म हुआ। आपका नाम यादवसिंहजी रखा गया।

सैलाना में मुत्सद्दी कोठारी खानदान, सर्वश्रेष्ठ, धर्मशील, सुसंस्कार युक्त एवं राजखानदान में भी सम्माननीय माना जाता है। आपकी तेजस्वी मुख मुद्रा, व सुन्दर लक्षण युक्त शरीर, भावि में होनहार की निशानी थी। व्यवहारिक शिक्षा आपश्री ने बाल्य अवस्था में प्राप्त करली थी।

स्व० प्रवर्तिनीजी श्री ज्ञानश्रीजी का चातुर्मास सैलाना में हुआ। बचपन से ही आप में धार्मिक सुसंस्कार के कारण आप साध्वीजी के प्रवचन में आया करते थे, समय समय पर आप उनसे धार्मिक चर्चा, शंका-समाधान किया करते थे। चातुर्मास समय में आपने सत्संग का अच्छा लाभ लिया। उसके फलस्वरूप त्यागमय जीवन पर आपका अच्छा आकर्षण रहा।

विक्रम सं० १९६८ वैशाख सुदी १२ बुधवार के शुभ दिन रतलाम नगर में चारित्र-रत्न, पूज्यपाद, गणाधीश्वर श्री श्रीमद् त्रैलोक्यसागरजी म० सा० के करकमलों से २२ वर्ष की युवावस्था में आपने संयम स्वीकार किया। [illegible], दीवान-बहादुर, सेठ केसरीसिंहजी सा० बाफना ने दीक्षा महोत्सव धाम धूम से किया।

विनयादि श्रेष्ठ गुण, गुरुभक्ति, एवं निष्ठ सेवा, आदि गुणों से सदा काल से तीव्र स्मरणशक्ति वाले होने के कारण थोड़े ही समय में आपने शास्त्रों की गहन शिक्षा प्राप्त कर ली। अंग्रेजी भाषा के साथ हिन्दी पर भी

आपका वर्चस्व अच्छा था। आपने हिन्दी भाषा में गद्य व पद्य की रचना की। प्राकृत भाषा के कई आगमों का भाषांतर हिन्दी में किया। कई स्वतंत्र ग्रन्थों की हिन्दी भाषा में रचना की।

आपश्री ने राजावाटी, तोरावाटी, शेखावाटी, गोडवाड, झोरामगरा, मालवा, राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र कच्छ, खानदेश आदि भारत के विभिन्न प्रांतों में विचरकर जैनधर्म का प्रचार किया।

सं० १९८६ में कच्छ प्रान्त के अंजार नगर में देश के स्वतंत्रता संग्राम के सेनानी महात्मा गांधी से मुलाकात हुई। "खादी और जैन साधु" इस विषय पर काफी महत्वपूर्ण चर्चा हुई। आपके सुधारकवादी विचारधारा से महात्मा जी प्रभावित हुए।

आपश्री के गुरुवर्य, चरित्ररत्न, गणाधीश्वरजी श्रीमद् त्रैलोक्यसागरजी म० सा० सं० १९७४ राजस्थान के लोहावट नगर में श्रावण शुक्ला १५ के दिन स्वर्ग सिधाये। उसके पश्चात् प० पू० प्रातः स्मरणीय, शान्त-स्वभावी, आचार्यदेव श्री १००८ श्रीजिनहरिसागरसूरीश्वरजी म० सा० समुदाय के संचालक बने। आपश्री सरल स्वभाव के चारित्र-सम्पन्न, आचार्य थे। आप पूज्यपाद श्री ने काफी समय तक समुदाय का संचालन किया। सं० २००६ में श्री फलोदी पार्श्वनाथ तीर्थ ( मेडतारोड ) में स्वर्ग सिधाये। तत्पश्चात् सं० २००६ माघशुदी ५ को प्रतापगढ़ (राजस्थान) में भारतवर्ष के समस्त खरतरगच्छ श्रीसंघ ने भारी समारोह पूर्वक आपश्री को आचार्य पद पर विभूषित किया। जवसे समुदाय संचालन को सारा उत्तरदायित्व आपके ऊपर आ गया।

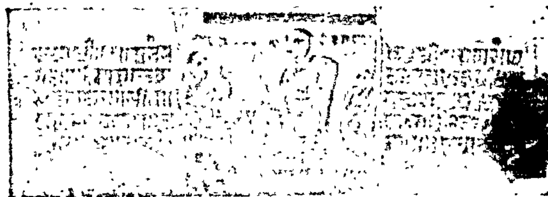
आपश्री ने कई जगह विद्याशाला, पाठशाला, पुस्तकालय आदि की स्थापना करवाई। आप नवयुग के निर्माता थे, उस समय जनता में पढ़ने-लिखने का अधिक प्रचार नहीं था, जिसमें कन्याशिक्षा प्रायः शून्य-सी थी।

हिन्दी भाषा के आप प्रखर हिमायती थे। आपकी व्याख्यान शैली बड़ी विद्वता पूर्ण व रोचक थी। साधु साध्वी वर्ग को अभ्यास कराना, उसे प्रवचन ( भाषण ) शैली सिखाना आपश्री का खास लक्ष था।

प्रवर्तनी श्रीवल्लभश्रीजी, प्र० श्रीप्रमोदश्रीजी, प्र० श्रीविचक्षणश्रीजी आदि साध्वी वर्ग को आपने ही अभ्यास कराया व भाषण शैली सिखायी। समुदाय पर आपका भारी उपकार है। आप द्रव्यानुयोग के अच्छे व्याख्याता थे। कई जिज्ञासु व्यक्ति आपसे तत्वचर्चा कर ज्ञानकी प्यास बुझाने आते थे। तत्वचर्चा के रसिकों के लिये "आगमसार" नामक विवेचनात्मक ग्रंथ की रचना की। आपश्री ने अपने जीवन काल में करीवन ४६ पुस्तकों का प्रकाशन किया। प्रचुर मात्रा में आपने साहित्य की सेवा की, खूब ज्ञान दान दिया। जगह-जगह ज्ञान की प्याऊ खोले।

पूज्य स्व० आचार्य श्री ने अपने जन्म स्थान सैलाना नगर (जि० रतलाम में) ज्ञानमंदिर की स्थापना की। वहाँ के राजा साहव आपके गृहस्थी जीवन के मित्र व सहपाठी थे। राजा साहव के आग्रह से आपने सैलाना में श्रीआनंदज्ञानमंदिर की स्थापना की। ज्ञानमन्दिर का शिला स्थापन, सेठ बुद्धिसिंहजी वाफना के कर कमलों से सम्पन्न हुआ, एवं ज्ञानमंदिर का उद्‌घाटन सैलाना-नरेश के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ। श्रीआनंद ज्ञानमंदिर आपके जीवनकी जीती जागती अमर ज्योति है।

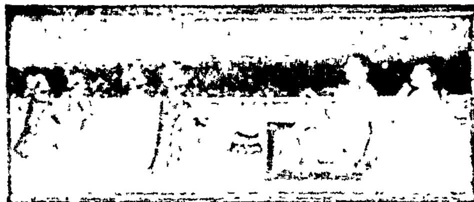
आचार्य पद पर विभूषित होने के पश्चात् वि० सं० २००७ का चातुर्मास, करने आप कोटा पधारे। सेठ साहव क कई समय से आग्रह था, अतः आप कोटा पधारे। कोटा के चातुर्मास को ऐतिहासिक चातुर्मास माना जा सकता है। आप चातुर्मास विराजे वहां उसी कोटा नगर में दिगंवर आचार्य पू० श्री सूर्यसागरजी म० व स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्य श्रीचौथमलजी म० भी वहीं चातुर्मास रहे। तीनों महारथियों ने एकही पाद



श्री जिनेश्वरसूरि ( द्वितीय )



युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि और सम्राट अकबर



[illegible]



मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि छतरी, महरौली

मणिधारी जिनचन्द्रसूरिजी मन्दिर, बड़े दादाजी महरौली

पर से वीतराग की वाणी सुनाई। प्रतिदिन व्याख्यान की झड़ियाँ बरसने लगी। तीनों महापुरुष भिन्न-भिन्न मान्यता वाले होने पर भी एक जगह पर साथ-साथ प्रवचन देते। मधुर मिलन से जनता को ऐक्यता की अच्छी प्रेरणा मिली।

गच्छमें साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं का मजबूत संगठन एवं योजनाबद्ध प्रचार व विकास के लिये आपश्रीने समस्त श्रीसंघ से परामर्श कर सं० २०११ में अजमेर में प० पू० युगप्रधान दादा साहब श्रीजिनदत्तसूरिजी म० सा० की अष्टम शताब्दी समारोह के अवसर पर आप श्री की प्रेरणा व शासनरागी श्रीप्रतापमलजी सा० सेठिया के परिश्रम से "अखिल भारतीय श्री जिनदत्तसूरि सेवा-संघ" की स्थापना हुई। गच्छ को मानने वाले श्रावक-गण पूरे भारत के कोने-कोने में फैले हुए हैं। अत एक ऐसी संग-ठनात्मक संस्था हो, जो सारे देश में गच्छ के मन्दिर, दादावाड़ी, ज्ञानभंडार, शिलालेख आदि की देख भाल व उच व्यवस्था कर सके, इस वस्तु को सामने रखकर श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ की स्थापना हुई।

आप श्री ने कई जगह पर दीक्षाऐं, प्रतिष्ठाऐं, अञ्जन-शलाका, उपधान, छःरी पाल्ते संघ निकलवाये जिसमें प्रमुख :—फलोदी से जैसलमेर, इन्दौर से मांडवगढ़, मांडवी से भद्रेश्वरजीतीर्थ, मांडवी से सुथरी तीर्थ आदि।

शाश्वता तीर्थाधिराज श्री सिद्धाचलजी तीर्थ पर दादा साहब की टोंक में, युगप्रधान पू० दादा गुरुदेव श्री जिन-दत्तसूरिजी म० व श्री जिनकुशलसूरिजी म० सा० के चरण जिनकी प्रतिष्ठा मुगल सम्राट अकबर-प्रतिबोधक, युग-प्रधान, जिनचन्द्रसूरीश्वरजी म० सा० के कर कमलों से सैकड़ों वर्ष पूर्व हुई थी, वह छत्री प्रायः जीर्ण अवस्था में पहुँचने का कारण उनके जीर्णोद्धार के लिये तीर्थ की व्यव-स्था करने वाली, सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी से आज्ञा प्राप्त करने में श्री जिनदत्तसूरि सेवा संघ को भारी पुरुषार्थ करना पड़ा। अन्त में आज्ञा मिली और जीर्णोद्धार का पूरा लाभ बम्बई निवासी गुरुदेव भक्त, दानवीर सेठ पुनमचन्दजी गुलाबचन्दजी गोलेछा ने लिया। जीर्णोद्धार होने के बाद उनकी पुनः प्रतिष्ठा के लिये एवं श्रीजिनदत्तसूरि सेवा संघ के द्वितीय अधिवेशन के आयोजन पर पधारने के लिये संघ के प्रमुख श्रावक वर्ग, पूज्यश्रीकी सेवा में सैलाना पहुँचा। श्री संघ की आग्रहपूर्वक की हुई विनति से लाभ का कारण जानकर आप श्री ने पालीताना की ओर विहार किया। गच्छ व समुदाय के पू० मुनिवर्ग व साध्वीजी गण भी पालीताना पधार गये। सेठ आनन्दजी कल्याणजी की पेढ़ी की ओर से पूज्य आचार्यश्री के भव्य प्रवेश महोत्सव का आयोजन किया गया।

सं० २०२६ वैशाख शुक्ला ६ को सिद्धाचलजी तीर्थ पर नव-निर्मित देहरियों में पू० दादा-गुरुदेवों के प्राचीन चरणों की प्रतिष्ठा आप पूज्य श्री के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुई। चातुर्मास का समय निकट आया। श्री संघ के आग्रह से आप मुनि-मंडल सहित वहीं चातुर्मास विराजे। पू० उपाध्यायजी, बहुश्रुत श्री कवीन्द्रसागरजी म० सा० (बाद मे आचार्य) पू० श्रीहेमेन्द्रसागरजी म० सा० (वर्तमान गणाधीशजी) पू० आर्यपुत्र श्री उदय-सागरजी म० सा० पू० श्री कान्तिसागरजी म० सा० आदि १४ मुनिराज, एवं कुल मिला कर २६ मुनिराजों व ६२ साध्वीजीगण का संयुक्त चातुर्मास पालीताना में हुआ।

चातुर्मास काल मे साधु-साध्वियों का पठन-पाठन, भाषण देने की शिक्षा आपश्रीने प्रारम्भ की। चातुर्मास में वर्षा की झड़ियों के साथ-साथ तपस्या की भी झड़ियें लगनी प्रारम्भ हुई। आपश्री की निश्रामें १० मासक्षमण हुए। तपस्वियों का भव्यजुलूस, अट्ठाई महोत्सव, शान्ति-स्नात्र, स्वामी-वात्सल्य का आयोजन हुआ। जिनदत्तसूरि ने श्री संघ की ओर से स्थानीय नवरंगपुर मे उपधान का

की आराधना प्रारम्भ हुई। शानदार ढंग से चातुर्मास का समय पूरा हुआ।

प्रतिवर्ष पालीताना में यात्रा के लिये पधारने वाले साधु-साध्वी व श्रावक-श्राविकाओं को धर्मशाला में ठहरने का स्थान नहीं मिलता था, और मिलता भी था तो उसमें कई झंझटें आती थी। इस संकट को सदा के लिये दूर करने की योजना पूज्यवर आपश्री एवं पू० उपाध्यायजी म० सा० श्रीकवीन्द्रसागरजी म० सा० (बादमें आचार्य) ने बनाई। जयपुर संघ के प्रमुख श्रावक श्रेष्ठिवर्य श्रीहमीरमलजी सा० गोलेच्छा व श्री सिरेमलजी सा० संचेती आदि से परामर्श कर धर्मशाला बनाने के लिये "श्रीजिनहरि विहार" के नाम पर प्लॉट खरीदा गया।

चातुर्मास का समय संपूर्ण हो चुका था, सभी विहार की तैयारियाँ में लगे थे। पू० उपाध्यायजी म० सा० ने पालनपुर की ओर प्रस्थान किया। आप पूज्यवर भी बड़ोदा की ओर प्रस्थान करने वाले थे किन्तु भावी होनहार होकर ही रहता है। एकाएक आपश्री को हार्ट एटेक सा हुआ, किसी प्रकार की बिना बिमारी के समाधिस्थ हुये। आपके अचानक स्वर्गवास से सारे संघ में शोक छागया। आकाशवाणी द्वारा सर्वत्र समाचार प्रसारित किये गये। आपश्री के अन्तिम संस्कार का पूरा लाभ बड़ोदा निवासी, सेठ शान्तिलाल हेमराज पारख ने लिया।

भवितव्यता की खास बात तो यह थी की आपकी निश्रामें पूर्वाचार्य के नाम पर खरिदे हुए प्लाट में पक्की लिखापढी होने के बाद एकही माह के भीतर उसी ही प्लॉट में आपका अग्निदाह हुआ। उस भूमि को भी महान् सौभाग्य समझें कि मकान बनने के पूर्व महापुरुष को स्थापित किया।

कंकुबाई की धर्मशाला में पूज्यवरश्रीजी के आत्म श्रेयार्थ अट्ठाई महोत्सव व शान्तिस्नात्र का भव्य आयोजन किया गया।

पू० स्व० आचार्यश्री अब हमारे बीचमें नहीं रहे किन्तु आप पूज्यवरश्री का आदर्श जीवन आपकी हित शिक्षायें हमारे सामने हैं। हम उनका पालन करते हुए आपश्री के चरणों में हमारी नम्र व हार्दिक श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हैं।

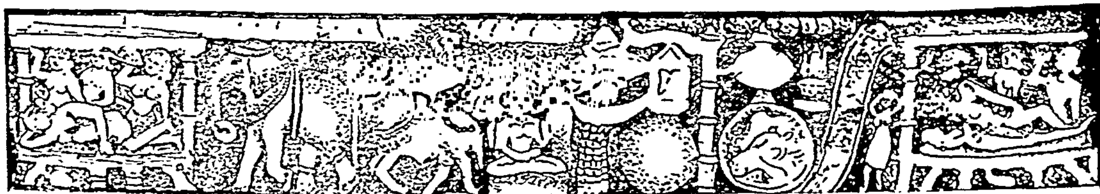
आपके आत्मा की महान् पुण्याई थी कि यौवन अवस्था में चारित्र लेकर वीतराग के शासन व गच्छ को दीपाया। आपने शासन पर किये महान् उपकार, श्रीसंघ कदापि नहीं भूल सकता।

वर्तमान में आपके मुनि व साध्वीगण, पू० गणाधीश्वर श्रीहेमेन्द्रसागरजी म० सा० की आज्ञामें महाकौशल, आंध्रप्रदेश, तामिलनाडु, कर्नाटक, बंगाल, राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र महाराष्ट्र आदि प्रदेशों में विचर कर शासन का प्रचार करते हैं।

जो अच्छे हैं, और सभी के भलाई की चिंता करते हैं वे सदा के लिये जनता के हृदयपटल पर अजर हैं! अमर हैं!

पूज्य गुरुदेव की पवित्र आत्मा को शत-शत प्रणाम

ॐ शान्ति—



# आचार्य श्रीजिनकवीन्द्रसागरसूरि

[ ले०—साध्वीजी श्री सज्जनश्रीजी 'विशारद' ]

इस अनादिकालीन चतुर्गत्यात्मक संसार कानन में अनन्त प्राणी स्व स्व कर्मानुसार विचित्र-विचित्र शरीर धारण करके कर्म विपाक को शुभाशुभ रूप से भोगते हुए भ्रमण करते रहते हैं। उनमें से कोई आत्मा किसी महान् पुण्योदय से मानव शरीर पाकर सद्गुरु संयोग से स्वरूप का भान करके प्रकृति की ओर गमन करते हैं। जन्म और जरामरण से छूट कर वास्तविक मुक्ति प्राप्त करने के लिये तप संयम की साधना पूर्वक स्व पर कल्याण साधते हैं। ऐसे ही प्राणियों में से स्वर्गीय आचार्यदेव थे, जिन्होंने बाल्यावस्था से आत्मविकास के पथ पर चल पर मानव जीवन को कृतार्थ किया।

### वंश-परिचय व जन्म

आपश्री के पूर्वज सोनीगरा चौहान क्षत्रिय थे और वीर प्रसविनी मरुभूमि के धन्नाणी ग्राम में निवास करते थे। वि० सं० ६०५ में श्री देवानन्दसूरि से प्रतिबोध पाकर जैन ओसवाल बने और अहिंसा धर्म धारण किया। पूर्व पुरुष जगाजी शाह 'रानी' आकर रहने लगे। रानी से पाहण और फिर व्यापारार्थ इन्हीं के वंशज श्रीमलजी सं० १९१९ में लालपुरा चले गये थे। वहाँ भी स्थिति ठीक न होने से इनके वंशज शोभमलजी पालनपुर आये और वहीं निवास कर लिया। इसी वंश में वेचरभाई के सुपुत्र श्री निहालचन्द शाह की धर्मपत्नी श्रीमती चम्पू बाई की रत्नकुक्षि से वि० सं० १९६४ को चैत्र शुक्ला १३ को शुभ लग्न सुविधि एक दिव्य बालक ने अवतार लिया। शिशु-धारा के इनके पूर्व कई बालक बाल्यावस्था में ही काल कवलित हो चुके थे। अतः उन्होंने विचार किया कि हमारा यह बालक जीवित रहा तो इसे शासन सेवार्थ समर्पित कर देंगे। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात' के अनुसार यह बालक शैशवावस्था से ही तेजस्वी और तीव्र बुद्धि का था।

जब हमारे यह दिव्य पुरुष केवल १० वर्ष के ही थे तभी पिता की छत्र-छाया उठ गई और यह प्रसंग इस बालक के लिये वैराग्योद्भव का कारण बना।

शोक-ग्रस्त माता पुत्र अपनी अनाथ दशा से अत्यन्त दु:खी हो गये। 'दुःख' में भगवान याद आता है यह कहावत सही है। कुछ दिन तो शोकाभिभूत हो व्यतीत किये। बालक धनराज ने कहा, माँ मैं दीक्षा लूंगा। मुझे किसी अच्छे गुरुजी को सौंप दें।

माता ने विचार किया, अब एक बार बड़ी बहिन के दर्शन करने चलना चाहिये। माताजी की बड़ी बहिन, जिनका नाम जीवीबाई था, स्वनामधन्या प्रसिद्ध विदुषी आर्यारत्न श्रीमती पुण्यश्रीजी म० सा० के पास दीक्षा लेकर साध्वी बन गई थी। उनका नाम श्रीमती दयाश्री जी म० था। वे इस समय श्रीमती रत्नश्रीजी म० सा० के साथ मारवाड़ में विचरती थी, वहीं माता पुत्र दर्शनार्थ जा पहुँचे।

श्रीमती रत्नश्रीजी म० सा० ने इस बुद्धिमान तेजस्वी बालक की भावना को वैराग्यमय आकांक्षाओं से परिपुष्ट किया और गणाधीश्वर श्रीमान् हरिसागरजी म० सा० के पास धार्मिक शिक्षा-दीक्षा लेने को कोटे भेज दिया। वहीं रह कर शिक्षा प्राप्त करने लगे। थोड़े दिनों में ही

इन्होंने जीवविचार, नवतत्त्व आदि प्रकरण एवं प्रतिक्रमण, स्तवन, सज्झाय आदि सीख लिये।

गणाधीश महोदय कोटा से जयपुर पधारे। वहीं वि० सं० १९७६ के फाल्गुन मास की कृष्ण पंचमी को १२ वर्ष के किशोर बालक धनपतशाह ने शुभ मुहूर्त में बड़ी धूमधाम से ४ अन्य वैरागियों के साथ दीक्षा धारण की। इनका नाम 'कवीन्द्रसागर' रखा गया और गणाधीश महोदय के शिष्य बने।

## अध्ययन

अपने योग्य गुरुदेव की छत्रछाया में निवास करके व्याकरण, न्याय, काव्य, कोश, छन्द, अलंकार आदि शास्त्र पढ़े एवं संस्कृत प्राकृत गुर्जर आदि भाषाओं का सम्यग् ज्ञान प्राप्त किया व जैन शास्त्रों का भी गम्भीर अध्ययन किया। 'यथानाम तथागुणः' के अनुरूप आप सोलह वर्ष की आयु से ही काव्य प्रणयन करने लग गये थे। स्वल्प काल में ही आशु कवि बन गये। आपने संस्कृत और राष्ट्रभाषा में काव्य साहित्य में अनुपम वृद्धि की है। दार्शनिक एवं तत्वज्ञान से पूर्ण अनेक चैत्यवन्दन, स्तवन, स्तुतियाँ सज्झाएँ और पुजाएँ बनाई है जो जैन साहित्य की अनुपम कृतियां हैं। जैन साहित्य के गम्भीर ज्ञान का सरल एवं सरस विवेचन पढ़ कर पाठक अनायास ही तत्वज्ञान को हृदयंगम कर सकता है और आनन्द-समुद्र में मग्न हो सकता है। आधुनिक काल में इस प्रकार तत्त्व-ज्ञानमय साहित्य बहुत कम दृष्टिगोचर होता है। जैन समाज को आपसे अत्यधिक आशाएं थीं, कि असामयिक निधन से वे सब निराशा में परिवर्तित हो गई।

आपने ४१ वर्ष के संयमी जीवन में ३० वर्ष गुरुदेव के चरणों में व्यतीत किये और मारवाड़, कच्छ, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल में विहार करके तीर्थ यात्रा के साथ ही धर्म प्रचार किया। जयपुर, जैसलमेर आदि कई ज्ञान भंडारों को सुव्यवस्थित करने, सूचीपत्र बनाने आदि में गुरुवर्य महोदय की सहायता की।

आप ही के अदम्य साहस और प्रेरणा से वि० सं० २००६ में मेड़ता रोड फलोधी पार्श्वनाथ विद्यालय की स्थापना हुई। उसी वर्ष गुरुदेव ने मेडता रोड में उपधान मालारोहण के अवसर पर मार्गशीर्ष शुक्ला १० के दिन आपको उपाध्याय पद से विभूषित किया। आपके गुरुदेव का पक्षाघात से उसी वर्ष पोष कृष्णा अष्टमी को स्वर्गवास हो जाने पर उपस्थित श्रीसंघ ने आप श्री को आचार्यपद पर विराजमान होने की प्रार्थना की, किन्तु आपश्री ने फरमाया हमारे समुदाय में परम्परा से वड़े ही इस पद को अलंकृत करते हैं। अतः यह पद वीरपुत्र श्रीमान आनन्दसागरजी महाराज सा० सुशोभित करेंगे। मुझे जो गुरुदेव बना गये हैं, वही रहूँगा। कितनी विनम्रता और निःस्पृहता!

## योग-साधना

आपको आत्मसाधना के लिये एकान्त स्थान अत्यधिक रुचिकर थे। विद्याव्ययनान्तर आपश्री योगसाधना के लिये कुछ समय ओसियां के निकट पर्वत गुफा में रहे थे, एवं लोहावट के पास की टेकरी भी आपका साधना स्थल रहा था।

जयपुर में मोहनवाड़ी नामक स्थान पर भी आपने कई बार तपस्या पूर्वक साधना की थी। वहाँ आपके सामने नागदेव फन उठाये रात्रि भर बैठे रहे थे। यह दृश्य कई व्यक्तियों ने आँखों देखा था। आप हठयोग की आसन प्राणायाम मुद्रानेति, धौती आदि कई क्रियायें किया करते थे।

## तपश्चर्या

प्रायः देखा जाता है कि ज्ञानाभ्यासी साधु साध्वी वर्ग तपस्या से वंचित रह जाते हैं किन्तु आप महानुभाव इसके अपवाद रूप थे। ज्ञानार्जन, एवं काव्य-प्रणयन के के साथ ही तपश्चर्या भी समय समय पर किया करते थे। ४१ वर्ष के संयमी जीवन में आपने मास-क्षमण, पक्ष-

समण, अट्ठाइयाँ, पंचौले, आदि किये। तेलों की तो गिनती ही नहीं की जा सकती।

## साहित्य सेवा

आपने सेंकड़ों छोटे मोटे चैत्यवन्दन, स्तुतियाँ स्तवन, सज्झाय आदि बनाये, रत्नत्रय पूजा, पार्श्वनाथ पंचकल्याणक पूजा, महावीर पंचकल्याणक पूजा, चौसठप्रकारी पूजा, तथा चारों दादा गुरुओं की पृथक २ पूजाएँ एवं चैत्रो-पूर्णिमा कार्तिक-पूर्णिमा विधि, उपधान, विंशतिस्थानक, वर्षीतप छम्मासी तप आदि के देव-वन्दन आदि विशिष्ट रचनाएँ की हैं। आप संस्कृत प्राकृत हिन्दी में समान रूप में रचनाएँ करते थे। बहुत सी रचनाओं में आपने अपना नाम न देकर अपने पूज्य गुरुदेव का, गुरुभ्राताओं का एवं अन्यों का नाम दिया है। इस सारे साहित्य का पूर्ण परिचय विस्तार भय से यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

आपकी प्रवचन शैली ओजस्वी व दार्शनिक ज्ञानयुक्त थी। भाषा सरल, सुबोध और प्रसाद गुणयुक्त थी। रचनाओं में अलंकार स्वभावतः ही आ गये हैं। अत: आपको एक प्रतिभाशाली कवि भी कहा जा सकता है।

## आचार्य पद

विक्रम सं० २०१७ की पौष शुक्ला १० को प्रखरवक्ता व्याख्यान-वाचस्पति वीरपुत्र श्री जिन आनन्दसागर सूरीश्वर जी म० सा० के आकस्मिक स्वर्ग गमनानन्तर सारी समुदाय ने आपही को समुदायाधीश बनाया। अहमदाबाद में चैत्र कृष्ण ७ को श्री खरतरगच्छ संघ द्वारा आपको महोत्सव पूर्वक आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

आपश्री स्वभाव से ही सरल मिलनसार और गम्भीर थे। दयालुता और हृदय की विशालता आदि सद्गुणों से सुशोभित थे। आपश्री के अन्तःकरण में शासन, व गच्छ व समुदाय के उत्कर्ष की भावनाएँ सतत् जाग्रत रहती थी। पालीताना में "श्री जिन हरि विहार" आपश्री की सत्प्रेरणा का कीर्तिस्तम्भ है।

आपश्री के कई शिष्य हुए, पर वर्तमान में केवल श्री कल्याणसागरजी तथा मुनिश्री कैलाशसागर जी विद्यमान है।

समुदाय के दुर्भाग्य से आपश्री पूरे एक वर्ष भी आचार्य पद द्वारा सेवा नहीं कर पाये कि करालकाल ने निर्दयता पूर्वक इस रत्न को समुदाय से छीन लिया। उग्र विहार करते हुए स्वस्थ्य सबळ देहधारी ये महानपुरुष अहमदाबाद से केवल २० दिन में मन्दसौर के पास बूढा ग्राम में फा० शु० एकम को संध्या समय पधारे। वहाँ प्रतिष्ठा कार्य व योगोद्वहन कराने पधारे थे किन्तु फा० शु० ५ शनिवार २०१८ की रात्रि को १२॥ बजे अकस्मात हार्टफेल हो जाने से नश्वर का त्याग करते एवं प्रतिष्ठा कार्य के लिये ध्यान में अवस्थित ये महानुभाव संघ व समुदाय को निराधार निराश्रित बनाकर देवलोक में जा विराजे दादा गुरुदेव व शासनदेव उस महापुरुष की आत्मा को शांति एवं समुदाय को उनके पदानुसरण की शक्ति प्रदान करें, यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है।

○

# महान् प्रतापी श्रीमोहनलालजी महाराज

[ भँवरलाल नाहटा ]

पंचमकाल में जिनेश्वर भगवान के अभाव में जिनशासन को अक्षुण्ण रखने में जिनप्रतिमा और जैनागम दोनों प्रबल कारण हैं जिसकी रक्षा का श्रेय श्रमण परम्परा को है। उन्होंने ही अपने उपदेशों द्वारा श्रावक-गृहस्थ वर्ग को धर्म में स्थिर रखा और फलस्वरूप सातों क्षेत्र समुन्नत होते रहे। सुदूर बंगाल जैसे हिंसाप्रधान देश में तो यतिजनों ने विचर कर जैन धर्मी लोगों को धर्म-मार्ग में स्थिर रखा है। समय-समय पर आये हुए शैथिल्य को परित्याग कर शुद्ध साध्वाचार की प्रतिष्ठा बढाने वाले वर्तमान साधु-समुदाय के तीनों महापुरुषों ने क्रियोद्धार किया था। श्रीमद् देवचन्द्रजी, जिनहर्षजी आदि अनेक सुविहित साधुओं की परम्परा अब नहीं रही है पर क्षमाकल्याणजी महाराज जिनका साधु-साध्वी समुदाय खरतर गच्छ में सर्वाधिक है, के पश्चात् महान्-प्रतापी तपोमूर्त्ति श्रीमोहनलालजी महाराज का पुनीत नाम आता है। आपने पहले यति दीक्षा लेकर लख-नऊ में काफी वर्ष रहे फिर कलकत्ता-बंगाल में विचरणकर यहीं से वैराग्य में अभिवृद्धि होने पर तीर्थयात्रा करते हुए अजमेर जाकर फिर त्याग-मार्ग की ओर अग्रसर हुए थे, उनका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जाता है।

महान् शासन-प्रभावक श्रीमोहनलालजी महाराज अठारहवीं शताब्दी के आचार्यप्रवर श्रीजिनसुखसूरिजी के विद्वान् शिष्य यति कर्मचन्द्रजी-ईश्वरदासजी-वृद्धिचन्द्रजी-लालचन्दजी के क्रमागत यति श्रीरूपचन्दजी के शिष्यरत्न थे। आपका जन्म सं० १८८७ वैशाख सुदि ६ को मथुरा के निकटवर्ती चन्द्रपुर ग्राम में सनाढ्य ब्राह्मण बादरमलजी की सुशीला धर्मपत्नी सुन्दरबाई की कुक्षि से हुआ था। आपका नाम मोहनलाल रखा गया, जब आप सात वर्ष के हुए माता-पिता ने नागोर आकर सं० १८९४ में यति श्रीरूपचन्द्रजी को शिष्य रूपमें समर्पण कर दिया। यतिजी ने आपको योग्य समझकर विद्याभ्यास कराना प्रारम्भ किया। अल्प समय में हुई प्रगति से गुरुजी आप पर बड़े प्रसन्न रहने लगे। उस समय श्रीपूज्याचार्य श्रीजिनमहेन्द्र-सूरिजी बड़े प्रभावशाली थे और उन्हीं के आज्ञानुवर्त्ती यति श्रीरूपचन्द्रजी थे। दीक्षानंदी सूची के अनुसार आप की दीक्षा सं० १९०० में नागोर में होना सम्भव है। मोहन का नाम मानोदय और लक्ष्मीमेरु मुनि के पौत्र-शिष्य लिखा है। जीवनचरित के अनुसार आपकी दीक्षा मालव देश के मकसीजी तीर्थ में श्री जिनमहेन्द्रसूरिजी के कर कमलों से हुई थी। इन्हीं जिनमहेन्द्रसूरि जी महाराज ने तीर्थाधिराज शत्रुञ्जय पर बम्बई के नगरसेठ नाहटा गोत्रीय श्री मोतीशाह की टूंक में मूलनायकादि अनेकों जिनप्रतिमाओं की अंजनशलाका प्रतिष्ठा बड़े भारी ठाठ से कराई थी।

श्रीमोहनलालजी महाराज ने ३० वर्ष तक यतिपर्याय में रहकर सं० १९३० में कलकत्ता से अजमेर पधारकर क्रियोद्धार करके संवेगपक्ष धारण किया। आपका साध्वा-चार बड़ा कठिन और ध्यान योग में रत रहते थे एकबार अकेले विचरते हुए चल रहे थे नगर में न पहुंच सके तो वृक्ष के नीचे ही कायोत्सर्ग में स्थित रहे, आपके ध्यान प्रभाव से निकट आया हुआ सिंह भी शान्त हो गया।

तपश्चर्यारत संयमी जीवन में आपको रात्रि में पानी तक रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। पीछे जब साधु समुदाय बड़ा तब रखने लगे। एकबार आप प्राचीन तीर्थ श्रीओसियां पधारे तो वहां का मन्दिर-गर्भगृह और प्रभु प्रतिमा तक बालु में ढके हुए थे। आपने जबतक जीर्णोद्धार कार्य न हो विगय का त्याग कर दिया। पीछे नगरसेठ को मालूम पड़ा और जीर्णोद्धार करवाया गया। ओसियां के मन्दिर में आपश्री की मूर्ति विराजमान है।

आपने मारवाड़, गुजरात, काठियावाड़ आदि अनेक ग्राम नगरों में अप्रतिबद्ध विहार किया था। बम्बई जैसी महानगरी में जैन साधुओं का विचरण सर्वप्रथम आपने ही प्रारंभ किया। वहाँ आपका बड़ा प्रभाव हुआ, वचन-सिद्ध प्रतापी महापुरुष तो थे ही, बम्बई में घर घरमें आपके चित्र देखे जाते हैं। आपने अनेकों भव्यात्माओं का देशविरति-सर्वविरति धर्म में दीक्षित किया। आपका विशाल साधु समुदाय हुआ। अनेक स्थानों में जीर्णोद्धार-प्रतिष्ठाएं आदि आपके उपदेशों से हुई। सं० १९४१ में महातीर्थ शत्रुञ्जय की इगरहूँ में मुर्शिदाबाद निवासी रायबहादुर बाबू धनपतसिंहजी दूगड़ द्वारा निर्मापित विशाल जिनालय की प्रतिष्ठा-अंजनशलाका आपही के कर-कमलों से सम्पन्न हुई थी।

आपका शिष्य परिवार विशाल था, आपमें सर्वगच्छ समभाव का आदर्श गुण था अतः आपका शिष्य समुदाय आज भी खरतर और तपगच्छ दोनों में सुशोभित है। आपके व आपके शिष्यों द्वारा अनेक मन्दिरों, दादावाड़ियों के निर्माण, जीर्णोद्धारादि हुए, ज्ञानभंडार आदि संस्थाएं स्थापित हुई, मन्दिरोद्धार हुआ। आप अपने समय के एक तेजस्वी युगपुरुष थे। निर्मल तप-संयम से आत्मा को भावित कर अनेक प्रकार से शासन-प्रभावना करके सं० १९६४ वैशाख कृष्ण १४ को सूरत नगर में आप समाधि पूर्वक स्वर्ग सिधारे।

# आचार्य-प्रवर श्रीजिनयशःसूरिजी

[ भंवरलाल नाहटा ]

खरतर गच्छ विभूषण, वचनसिद्ध योगीश्वर श्री मोहनलालजी महाराज के पट्ट-शिष्य श्री यशोमुनिजी का जन्म सं० १९१२ में जोधपुर के पूनमचंदजी सांड की धर्मपत्नी मांगीबाई की कुक्षि से हुआ। इनका नाम जेठमल था, पिताश्री का देहान्त हो जाने पर अपने पैरों पर खड़े होने और धार्मिक अभ्यास करने के लिये माता की आज्ञा लेकर किसी गाड़ीवाले के साथ अहमदाबाद की ओर चल पड़े। इनके पास थोड़ा सा भाता और राह खर्च के लिये मात्र दो रुपये थे। इनके पास पार्श्वनाथ भगवान के नाम का संबल था अतः भूख प्यास का ख्याल किये बिना अविरत यात्रा करते हुए अहमदाबाद जा पहुँचे। किसी सेठ की दुकान में जाकर मधुर व्यवहार से उसे प्रसन्न कर नौकरी कर ली और निष्ठापूर्वक काम करने लगे। मुनि महाराजों के पास धार्मिक अभ्यास चालु किया एवं व्याख्यान-श्रवण व पर्वतिथि को तपस्या करने लगे। एकबार कच्छ के पत्रासवा गांव गए; जहाँ जीतविजयजी महाराज का समागम हुआ। आपकी धार्मिकवृत्ति और अभ्यास देखकर धर्माध्यापक रूप में नियुक्ति हो गई। धार्मिक शिक्षा देते हुए भी आपने ४५ उपवास की दीर्घतपश्चर्या की। स्वधर्मी-बन्धुओं के साथ सम्मेतशिखरजी आदि पंचतीर्थी की यात्रा की।

पन्द्रह वर्ष के दीर्घ प्रवास से जेठमलजी जोधपुर लौटे और विनयपूर्वक माता को स्थानकवासी मान्यता छुड़ाकर जिनप्रतिमा के प्रति श्रद्धालु बनाया। तदनन्तर उन्होंने ५१ दिन की दीर्घ तपश्चर्या प्रारम्भ की दीवान कुंदनमलजी ने बड़े ठाटसे अपने घर ले जाकर पारणा कराया। माता-पुत्र दोनों वैराग्य रस ओत-प्रोत थे। माता को दीक्षा दिलाने के अनन्तर जेठमलजी ने खरतरगच्छ नभोमणि श्री मोहनलाल जी महाराज के वन्दनार्थ नवानगर जाकर दीक्षा की भावना व्यक्त कर जोधपुर पधारने के लिये वीनती की। गुरुमहाराज के जोधपुर पधारने पर आपने सं० १९४१ जेठ शु०५ के दिन उनके करकमलों से दीक्षा ली और 'जसमुनि' बने। व्याकरण, काव्य, जैनागमादि के अभ्यास में दत्त-चित होकर अभ्यास करते हुए गुरुमहाराज के साथ अजमेर, पाटण और पालनपुर चातुर्मास कर फलोदी पधारे। जोधपुर संघ की वीनती से गुरु महाराजने जसमुनिजी को वहां चातुर्मास के लिये भेजा। तपस्वी तो आप थे ही सारे चातुर्मास में आयंबिल तप करते तथा उत्तराध्ययन सूत्र का प्रवचन करते थे। अपनी भूमि के मुनिरत्न को देख संघ आनन्द-विभोर हो गया। चातुर्मास के अनन्तर फलोदी पधार कर गुरुमहाराज के साथ जेसलमेर, आबू, अचलगढ आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए अहमदाबाद पधार कर चातुर्मास किया। तदनन्तर पालीताना, सूरत, बंबई, सूरत, पालीताना चातुर्मास किया सातवें चातुर्मास में आपने गुणमुनि को दीक्षित किया।

सिद्धाचलजी की जया तलहटी में राय धनपतसिंहजी बहादुर ने धनवसी टुंक का निर्माण कराया। उनकी धर्म-पत्नी रानी मैनासुन्दरी को स्वप्न में आदेश हुआ कि जिनालय की प्रतिष्ठा श्री मोहनलालजी महाराज के करकमलों से करावे। उन्होंने बाबूसाहब को अपने स्वप्न की बात कही। उनके मन में भी वही विचार था अतः अपने पुत्र बाबू नरपतसिंह को भेजकर महाराज साहब को प्रतिष्ठा के हेतु पालीताना पधारने की प्रार्थना की।

बाबू साहब की भक्तिसिक्त प्रार्थना स्वीकार कर पूज्यवर श्री मोहनलालजी महाराज अपने शिष्य समुदाय सहित पालीताना पधारे और सौ द्वार वाले विशाल जिनालय की प्रतिष्ठा सं० १९४९ माघ सुदि १० के दिन बड़े ठाठ के साथ कराई। १५ हजार मानव मेदिनी की उपस्थिति में अंजनशलाका के विधि-विधान के कार्यों में गुरु महाराज के साथ श्रीयशोमुनि जी की उपस्थिति और पूरा पूरा सहयोग था।

इसी वर्ष मिती असाढ़ सुदि ६ को चूरु के यति राम-कुमारजी को दीक्षा देकर ऋद्धिमुनिजी के नाम से यशो-मुनिजी के शिष्य प्रसिद्ध किये। फिर केवलमुनि और अमर मुनि भी आपके शिष्य हुए। सूरत-अहमदाबाद के संघ की आग्रहभरी वीनती थी। अतः सं० १९५२-५३ के चातुर्मास सूरत में करके अहमदाबाद पधारे। सं० १९५४-५५-५६ के चातुर्मास करके पन्यास श्री दयाविमल जी के पास ४५ आगमोंके योगोद्वहन किये। समस्त संघ ने आपको पन्यास और गणिपद से विभूषित किया। तदनन्तर गुरु महाराज के चरणों में सूरत आकर हरखमुनिजी को योगोद्वहन कराया। सं० १९५७ सूरत चौमासा कर १९५८ बम्बई पधारे और हरखमुनिजी को पन्यास पद प्रदान किया।

राजस्थान में धर्म प्रचार और विहार के लिये गुरु महाराज की आज्ञा हुई तो आपश्री ने सात शिष्यों के साथ शिवगंज चातुर्मास कर उपधान कराया। राजमुनिजी के शिष्य रत्नमुनिजी, लब्धिमुनिजी और हेतश्रीजी को बड़ी दीक्षा दी। सं० १९६० का चातुर्मास जोधपुर में किया और सं० १९६१ का चातुर्मास अजमेर विराजे। इसी समय कान्फ्रेन्स अधिवेशन पर गए हुए कलकत्ताके राय बद्री-दास मुकीम बहादुर, रतलाम के सेठ चांदमलजी पटवा, ग्वालियर के रायबहादुर नथमलजी गोलछा और फलोदी के सेठ फूलचन्दजी गोलछा ने श्री मोहनलालजी महाराज



महान प्रतापी श्रीमोहनलालजी महाराज



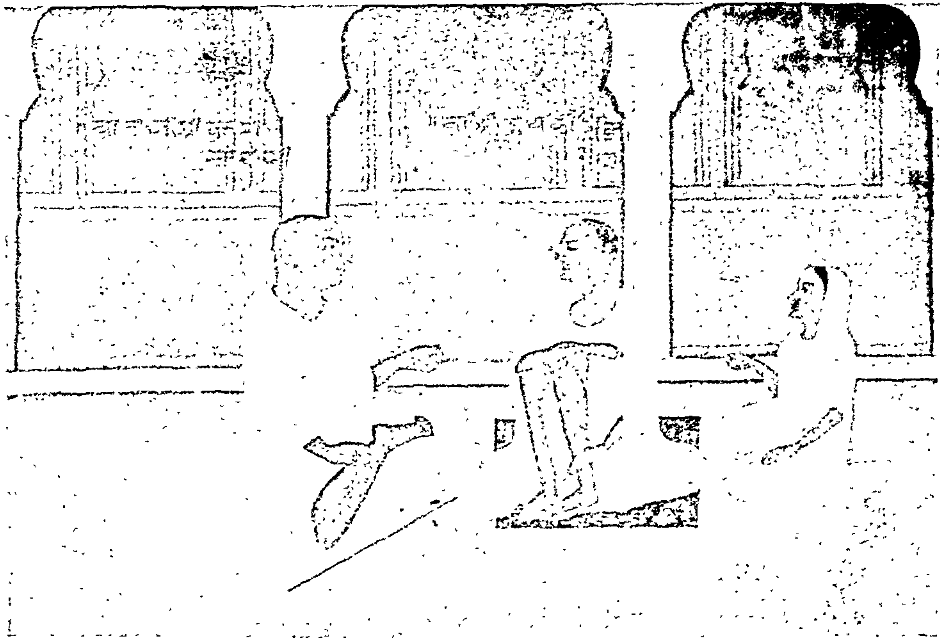
महान तपस्वी श्रीजिनयशःसूरिजी महाराज



जैनाचार्य श्री जिनऋद्धिसूरिजी महाराज



विद्वद्वर्य उपाध्याय श्री लब्धिमुनिजी



मस्तयोगी श्री ज्ञानसा■रजी और वा० जयकीर्त्तिजी

जं. यु. प्र. भ. स्व. जैनाचार्य पुज्य श्री हरिसागर सूरीश्वरजी महाराज साहव

शिष्यरत्न

शिष्यरत्न

जन्म-१९४९; दिक्षा-१९५७

आचार्यपद- स्वर्गवास-

श्री. कांतीसागरजी महाराज साहव [सं.१९९२ – सं.२००६] श्री दर्शनसागरजी महाराज साहव

जन्म-१९६८ दिक्षा-१९७६ जन्म-१९८४ दिक्षा-२००२

[चांदा चातुर्मासमें सं. २०१२]

जैनाचार्य श्री जिनहरिसागरसूरिजी शिष्य रत्न मुनि कान्तिसागरजी व दर्शनसागरजी

से अर्ज की कि आप खरतर गच्छ के हैं और इधर धर्म का उद्योत करते हैं तो राजस्थान, उत्तर प्रदेश और बंगाल को भी धर्म में टिकाये रखिये। गुरुमहाराज ने पं० हरखमुनिजी को कहा कि तुम खरतरगच्छ के हो, पारख गोत्रीय हो अतः खरतर गच्छ की क्रिया करो। पंन्यास जी ने गुर्वाज्ञा-शिरोधार्य मानते हुए भी चालू क्रिया करते हुए उधर के क्षेत्रों को सभालने की इच्छा प्रकट की। गुरुमहाराज ने अजमेर स्थित हमारे चरित्र नायक यशोमुनि जी को आज्ञापत्र लिखा जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। गुरु महाराज को इससे बड़ा सन्तोष हुआ। चातुर्मास बाद पंन्यास जी बम्बई की ओर पधारे और दहाणु मे गुरुमहाराज के चरणों में उपस्थित हुए। आपने गुरु-महाराज की बड़ी सेवाभक्ति की, वैयावच्च में सतत् रहने लगे।

एकदिन गुरुमहाराज ने यशोमुनिजी को बुलाकर शत्रुञ्जय यात्रार्थ जाने की आज्ञा दी। वे ८ शिष्यों के साथ वल्लभीपुर तक पहुँचे तो उन्हें गुरुमहाराज के स्वर्गवास के समाचार मिले।

सं० १९६४ का चातुर्मास पालीताना करके सेठाणी आणंदकुंवर बाई की प्रार्थना से रतलाम पधारे। सेठानीजी ने उद्यापनादिमें प्रचुर द्रव्य व्यय किया। सूरत के नवलचन्द भाई को दीक्षा देकर नीतिमुनि नाम से ऋद्धिमुनिजी के शिष्य किये। इसी समय सूरत के पास कठोर गांव मे प्रतिष्ठा के अवसर पर एकत्र मोहनलालजी महाराज के संघाड़े के कान्तिमुनि, देवमुनि, ऋद्धिमुनि, नयमुनि, दयाधमुनि दानमुनि आदि ३० साधुओं ने श्रीयशोमुनिजी को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करने का लिखित निर्णय किया।

श्रीयशोमुनिजी महाराज सेमलिया, उज्जैन, मक्सीजी होते हुए इन्दोर पधारे और केशरमुनि, रत्नमुनि, भावमुनि को योगोद्वहन कराया। ऋद्धिमुनिजी भी सूरत से विहार कर मांडवगढ में आ मिले। जयपुर से गुमानमुनिजी भी गुना की छावनी आ पहुँचे। आपने दोनों को योगोद्वहन क्रिया में प्रवेश कराया। सं० १९६५ का चातुर्मास ग्वालियर मे किया। योगोद्वहन पूर्ण होने पर गुमानमुनिजी, ऋद्धिमुनिजी और केशरमुनिजी को उत्सव पूर्वक पंन्यास पद से विभूषित किया। पूर्व देश के तीर्थों की यात्रा की भावना होने से ग्वालियर से विहार कर दतिया, झांसी, कानपुर, लखनऊ, अयोध्या, काशी, पटना होते हुए पावापुरी पधारे। वीरप्रभु की निर्वाणभूमि की यात्रा कर कुंडलपुर, राजगृही, क्षत्रियकुंड आदि होते हुए सम्मेतशिखरजी पधारे। कलकत्ता संघ ने उपस्थित होकर कलकत्ता पधारने की वीनति की। आपश्री साधुमण्डल सहित कलकत्ता पधारे और एक मास रहकर सं० १९६६ का चातुर्मास किया। सं० १९६७ अजीमगंज और सं० १९६८ का चातुर्मास बालूचर में किया। आपके सत्संग में श्रीअमरचन्दजी बोथरा ने धर्म का रहस्य समझकर सपरिवार तेरापथ की श्रद्धात्यागकर जिनप्रतिमा की दृढ मान्यता स्वीकार की। संघ की वीनति से श्रीगमानमुनिजी, केशरमुनिजी और वृद्धिमुनिजी को कलकत्ता चातुर्मास के लिए आपश्री ने भेजा।

आपश्री शान्तदान्त, विद्वान और तपस्वी थे। सारा संघ आपको आचार्य पद प्रदान करने के पक्ष में था। सूरत में किये हुए ३० मुनि-सम्मेलन का निर्णय, कृपाचन्द्रजी महाराज व अनेक स्थान के संघ के पत्र आजाने से जगत् सेठ फतेचन्द, रा० ब० केशरीमलजी, रा० ब० बद्रीदासजी, नथमलजी गोलछा आदि के आग्रह से आपको सं० १९६९ ज्येष्ठ सुद ६ के दिन आपको आचार्य पद से विभूषित किया गया। आपश्री का लक्ष आत्मशुद्धि की ओर था मौन अभिग्रह पूर्वक तपश्चर्या करने लगे। पं० केशरमुनि भावमुनिजी साधुओं के साथ भागलपुर, चम्पापुरी, शिखरजी की यात्रा कर पावापुरी पधारे। आश्विन सुदी में आपने ध्यान और जापपूर्वक दीर्घतपस्या प्रारम्भ की। इच्छा न होते हुए भी संघ के आग्रह से मिगसरवदि १२ को ५३ उपवास का पारणा किया। दुपहर में उल्टी होने के बाद अशाता बढती गई और मि० सु०३ सं० १९७० में समाधि पूर्वक रात्रि में २ बजे नश्वर देह को त्यागकर स्वर्गवासी हुए। पावापुरी में तालाव के सामने देहरी मे आपकी प्रतिमा विराजमान की गई।

# प्रभावक आचार्य श्रीजिनऋद्धिसूरि

[ भंवरलाल नाहटा ]

सुविहित शिरोमणि महामुनिराज श्री मोहनलाल जी महाराज के स्वहस्त दीक्षित प्रशिष्य श्रीजिनऋद्धिसूरि जी विद्वान, सरल-स्वभावी और तप जप रत एक चरित्रवान् महात्मा थे। उनका जन्म चूरु के ब्राह्मण परिवार में हुआ था और वहीं के यतिवर्य चिमनीरामजी के पास आपने दीक्षा ली थी, आपका नाम रामकुमारजी था। आपके बड़े गुरु भाई ऋद्धिकरणजी भी उच्चकोटि के त्याग वैराग्य परिणाम वाले थे इन्होंने देखा कि उनसे पहले मैं त्यागी बन जाऊं अन्यथा गद्दी का जाल मेरे गले में आ जायगा। आप चुरु से निकल कर बीकानेर गये, मंदिरों व नाल में दादा साहब के दर्शन कर पैदल ही चलकर आबू जा पहुँचे क्योंकि रेल भाड़े का पैसा कहां था? वहाँ से एक यतिजी के साथ गिरनारजी गये। और फिर सिद्धाचलजी आकर यात्रा करने लगे। श्रीमोहनलालजी महाराज के पास सं० १६४६ आषाढ़ सुदि ६ को दीक्षित होकर रामकुमारजी से श्रीऋद्धिमुनि जी बने, आपको श्रीयशोमुनि जी का शिष्य घोषित किया गया। आपने दत्त चित होकर विद्याध्ययन किया, तप जप पूर्वक संयम साधना करते हुए गुरु महाराज श्री सेवा में तत्पर रहे जब तक मोहनलालजी महाराज विद्यमान थे, अधिकांश उन्होंने आपको अपने साथ रखा, और उनका वरद हाथ आपके मस्तक पर रहा। सात चौमासे साथ करने के बाद अलग विचरने की भी आज्ञा देते थे। सं० १६५६ में गुरु श्री यशोमुनि जी के साथ रोहिड़ा प्रतिष्ठा कराई। अनेक स्थानों में विचर कर तीर्थ यात्राएं की। सं० १६६१ में बुहारी में प्रतिष्ठा कराने आप और चतुरमुनि जी गए। प्रतिष्ठा समय आगंतुक लोगों ने उत्सव में ग्रामोफोन के अश्लील रिकार्ड बजाने प्रारंभ किये। और मना करने पर भी न माने तो आप मौन धारण कर बैठ गए। ग्रामोफोन भी मौन हो गया और लाख उपाय करने पर भी ठीक न हुआ। आखिर आपसे प्रार्थना की और अहाते से बाहर जाने पर ठीक हो गया। सं० १६६३ में मोहनलालजी महाराज का स्वर्गवास हो गया तो कठोर चौमासा कर आपने गुजराती-मारवाड़ी का क्लेश दूर कर परस्पर संप कराया। मोहनलालजी म० के चरणों की प्रतिष्ठा करवाई। मारवाड़ी साथ का नया मन्दिर हुआ, चमत्कार पूर्ण प्रतिष्ठा करवाई यहीं यशोमुनि जी को आचार्य पद पर स्थापित करने का सारे साधु समुदाय ने निर्णय किया। झगड़िया संघ में यात्रा कर बड़ोद में सं० १६६४ माघ में शांतिनाथ भ० की प्रतिष्ठा कराई। व्यारे में अजितनाथ भ० की वैशाख में तथा सरभोण में जेठ महीने में प्रतिष्ठा करवायी। सूरत-नवापुरा में शामला पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा की। आपके उपदेश से उपाश्रय का जीर्णोद्धार हुआ। गुरु महाराज की आज्ञा से मांडवगढ़ पधार कर योगोद्वहन किया। सं० १६६६ मार्गशीर्ष शुक्ल ३ के दिन ग्वालियर में आपको गुरुमहाराज ने पन्यास पद से विभूषित किया। गुरुमहाराज पूर्व देश यात्रार्थ पधारे आपने जयपुर आकर चौमासा किया बड़े भारी उत्सव हुए। दीक्षा के बाद प्रथम बार चूरु में आकर २० दिन स्थिरता की तेरापंथियों को शास्त्र चर्चा में निरुत्तर किया। नागोर के संघ में अनैक्य दूर कर संप कराया, दीक्षा महोत्सवादि हुए।

सं० १९६७ का चातुर्मास पन्यास जी ने कूचेरा किया। यज्ञ-होम, शांतिपाठ और ठाकुरजी की सवारी निकलने पर भी बूंद न गिरी तो आपश्री के उपदेश से जैन रथयात्रा निकली, स्नात्र पूजा होते ही मूसलधार वर्षा से तालाब भर गए। वहां से तीन मील खुजसर में भी इसी प्रकार वर्षा हुई तो कूचेरा के ३० घर स्थानकवासियों ने पुनः मन्दिर आम्नाय स्वीकार कर उत्सवादि किए, दोडसौ व्यक्तियों के संघ ने प्रथमवार शत्रुञ्जय यात्रा की। तदनन्तर फलोदी, पुष्कर, अजमेर होकर जयपुर पधारे, उद्यापनादि उत्सव हुए। पंचतीर्थी कर अनेक नगरों में विचरते बम्बई पधारे। दो चातुर्मास कर पालीताना पधारे ८१ आंबिल और ५० नवकारवाली पूर्वक निन्नाणुं यात्रा की। सं०१९७१ का चातुर्मास खंभात में करके मोहनलालजी जैन पुस्तकशाला और पाठशाला स्थापित की। सं० १९७२ में सूरत चातुर्मास में उपधान तप एवं अनेक उत्सव हुए। सं १९७३-७४ लालबाग बम्बई का उपधान कराया, उत्सवादि हुए। पालीताना पधार कर एकान्तर उपवास और पारणे में आंबिल पूर्वक उग्रतपश्चर्या की कई वर्षों से मन्दिर के प्रति श्रद्धालु बने स्थानकवासी मुनि रूपचन्दजी के शिष्य गुलाबचन्द जी ने अपने शिष्य गिरधारीलालजी के साथ आकर आपके पास सं० १९७५ वै० सु० ६ को दीक्षा ली। उनका श्री गुलाबमुनि और उनके शिष्य का गिरिवर मुनि नाम स्थापन किया। तदनन्तर सं० १९७६ का चौमासा बम्बई कर शीघ्र आये और अठाई-महोत्सवादि के बाद सूरत पधारे।

सूरत में दादागुरु श्रीमोहनलालजी के ज्ञानभंडार को सुव्यवस्थित करने का बीड़ा उठाया और ४५ अलमारियों को अलग-अलग दाताओं से व्यवस्था की। आलीशान मकान था, उपधान तप में माला की बोली आदि के मिलाकर ज्ञानभण्डार में तीस हजार जमा हुए। मोहनलालजी जैन पाठशाला की भी स्थापना हुई। सं० १९७९ खंभात व १९८० कड़ोद चातुर्मास किया। वहाँ लाडुआ श्रीमाली भाइयों को संघ के जीमनवार में शामिल नहीं किया जाता था, पन्यासजी ने उपदेश देकर भेदभाव दूर कराया। सं० १९८१ वलसाड करके नंदरबार पधारे आपके उपदेश से नवीन उपाश्रय का निर्माण हुआ। प्रभु प्रतिष्ठा, ध्वजदंडारोहण आदि बड़े ही ठाठ-माठ से हुए। सं० १९८२ व्यारा चौमासे में भी उपधान आदि प्रचुर धर्मकार्य हुए। टांकेल गाँव में मन्दिर और उपाश्रय निर्माण हुए, और भी ग्रामानुग्राम विचरते अनेक प्रकार के शासनोन्नति के कार्य किये। सं० १९८३ वैशाख में सामटा बन्दर में मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। सं० १९८३-८४ के चातुर्मास बम्बई हुए। घोलवड़ में मन्दिर व उपाश्रय उपदेश देकर करवाया। सं० १९८५ सूरत, १९८६ कठोर में चौमासा किया। आपने चार और पाँच उपवास से एक-एक पारणा करने की कठिन तपस्या तीन महीने तक की। फिर सायण होकर सूरत आदि अनेक स्थानों में विचरते हुए सं० १९८७ का चातुर्मास दहाणु किया। बोरडी पधार कर उपाश्रय के अटके हुए काम को पूरा कराया। फणसा में उपाश्रय-देहरासर बना। गुजरात में स्थान-स्थान में विचर कर विविध धर्म कार्य कराये। मरोली में उपाश्रय हुआ। खंभात की दादावाड़ी की चारों देहरियों का जीर्णोद्धार होने पर सूरत से विविध गांवों में विचरते हुए खंभात पधार कर दादावाड़ी की प्रतिष्ठा सं० १९८८ ज्येष्ठ सुदि १० को की। कटारिया गोत्रीय पारेख छोटालाल मगनलाल मामावाडी ने प्रतिष्ठा, स्वधर्मीवत्सल आदि में अच्छा द्रव्य व्यय किया। चातुर्मास के बाद मातर तीर्थ की यात्रा कर खेड़ा पधारने पर माणिभद्रवीर की देहरी से आशातनायें हुई कि खंभात जाकर माणेकचौक के उपाश्रय स्थित माणिभद्र देहरी को जीर्णोद्धार का उपदेश दो। खंभात में पन्यासजी उपदेश से सं० १९८९ फा० सु० १ को जीर्णोद्धार सम्पन्न हुआ। कार्तिक पूर्णिमा के दिन

महोदयमुनि को दीक्षा देकर श्री गुलाबमुनिजी के शिष्य बनाये। अनेक गाँवों में विचरते हुए अहमदाबाद पधारे। संघ की वीनति से जीर्णोद्धारित कंसारी पार्श्वनाथजी की प्रतिष्ठा खंभात जाकर बड़े समारोह से कराई। अहमदाबाद पधार कर दादासाहबकी जयन्ती मनाई, दादावाड़ी का जीर्णोद्धार हुआ। अनेक स्थान के मन्दिर-उपाश्रयों के जीर्णोद्धारादि के उपदेश देते हुए दवीयर पधार कर प्रतिष्ठा कराई। घोलवड में जैन बोर्डिंग की स्थापना करवायी। सं० १९९१ का चातुर्मास बम्बई किया। पन्यास श्रीकेशरमुनिजी ठा० ३ महावीर स्वामी में व कच्छी वीसा ओसवालों के आग्रह से श्रीऋद्धिमुनिजी ने मांडवी में चौमासा किया। वर्द्धमानतप आंबिल खाता खुलवाया। अनेक धर्मकार्य हुए। सं० १९९२ लालवाड़ी चौमासा किया भाद्रव दो होने से खरतरगच्छ और अंचलगच्छ के पर्यूषण साथ हुए। दूसरे भाद्रव में गुलाबमुनिजी ने दादर में व पन्यासजी ने लालवाड़ी में तपागच्छीय पर्यूषण पर्वाराधन कराया। पन्यास केशरमुनिजी का कार्ती सुदि ६ को स्वर्गवास होने पर पायधुनी पधारे।

जयपुर निवासी नथमलजी को दीक्षा देकर बुद्धिमुनिजी के शिष्य नंदनमुनि नाम से प्रसिद्ध किये। पन्यासजी का १९९३ का चातुर्मास दादर हुआ। ठाणा नगर में पधार कर संघ में व्याप्त कुसंप को दूर कर बारह वर्ष से अटके हुए मन्दिर के काम को चालू करवाया। सं० १९९४ मिती वै० सु० ६ को ठाना मन्दिर की प्रतिष्ठा का मुहूर्त्त निकला। यह मन्दिर अत्यन्त सुन्दर और श्रीपाल चरित्र के शिल्प चित्रों से अद्वितीय शोभनीक हो गया। प्रतिष्ठा कार्य वै० व० १३ को प्रारम्भ होकर अठाई महोत्सवादि द्वारा बड़े ठाठ से हुआ। वै० सु० १२ को पन्यासजी महाराज विहार कर बम्बई के उपनगरों में विचरे। माटुंगा में रवजी सोजपाल के देरासर में प्रतिमाजी पधराये। मलाड़में सेठ बालूभाई के देरासर में प्रतिमाजी विराजमान की। सं० १९९४ का चातुर्मास ठाणा संघ के अत्याग्रह से स्वयं विराजे। दादासाहब की जयन्ती-पूजा बड़े ठाठ से हुई। वर्द्धमानतप आयंबिल खाता खोला गया। साहमी वच्छलादि में कच्छी, गुजराती और मारवाड़ी भाइयों का सहभोज नहीं होता था, वह प्रारम्भ हुआ। ठाणा और बम्बई संघ पन्यासजी महाराज को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करने का विचार करता था पर पन्यासजी स्वीकार नहीं करते थे। अन्त में रवजी सोजपाल आदि समस्त श्री संघ के आग्रह से सं० १९९५ फागुन सुदि ५ को बड़े भारी समारोह पूर्वक आपको आचार्य पद से अलंकृत किया गया। अब पन्यास ऋद्धिमुनिजी श्रीजिनयशःसूरिजी के पट्टधर जैनाचार्य भट्टारक श्रीजिनऋद्धिसूरिजी नाम से प्रसिद्ध हुए।

सं० १९९६ में जब आप दहाणु में विराजमान थे तो गनिवर्य श्री रत्नमुनिजी, लब्धिमुनिजी भी आकर मिले। अपूर्व आनन्द हुआ। आपश्री की हार्दिक इच्छा थी ही कि सुयोग्य चारित्र-चूडामणि रत्नमुनिजी को आचार्य पद और श्रीलब्धिमुनिजी को उपाध्याय पद दिया जाय। बम्बई संघने श्री आचार्य महाराज के व्याख्यान में यही मनोरथ प्रकट किया। आचार्य महाराज और संघ की आज्ञा से रत्नमुनिजी और लब्धिमुनिजी पदवी लेने में निस्पृह होते हुए भी उन्हें स्वीकार करना पड़ा। दस दिन पर्यन्त महोत्सव करके श्रीजिनऋद्धिसूरिजी महाराज ने रत्नमुनिजी को आचार्य पद एवं लब्धिमुनिजी को उपाध्याय पद से अलंकृत किया। मिती आषाढ़ सुदि ७ के दिन शुभ मुहूर्त्त में यह पद महोत्सव हुआ।

तदनंतर अनेक स्थानों में विचरण करते हुए आप राजस्थान पधारे और जन्म भूमि चूरू के भक्तों के आग्रह से वहाँ चातुर्मास किया। उपधान तपके मालारोपण के अवसर पर बीकानेर पधार कर उ० श्रीमणिसागरजी महाराज को आचार्य-पद से अलंकृत किया। फिर नागोर आदि स्थानों में विचरण करते हुए जीर्णोद्धार, प्रतिष्ठादि द्वारा शासनोन्नति कार्य करने लगे।

अन्त में बम्बई पधार कर बोरीवली में संभवनाथ जिनालय निर्माण का उपदेश देकर कार्य प्रारम्भ करवाया। सं० २००८ में आपका स्वर्गवास हो गया। महावीर स्वामी के मन्दिर में आपकी तदाकार मूर्त्ति विराजमान की गई। आपका जीवन वृतान्त श्रीजिनऋद्धिसूरि जीवन-प्रभा में सं० १९९५ में छपा था और विद्वत् शिरोमणि उ० लब्धिमुनिजी ने सं० २०१४ में संस्कृत काव्यमय चरित कच्छ मांडवी में निर्माण किया जो अप्रकाशित है।

# आचार्यरत्न श्रीजिनरत्नसूरि

[ भंवरलाल नाहटा ]

जगत्पूज्य मोहनलालजी महाराज के संघाड़े में आचार्य श्रीजिनरत्नसूरिजी वस्तुत: रत्न ही थे। आपका जन्म कच्छ देश के लायजा में सं० १९३८ में हुआ। आपका जन्म नाम देवजी था। आठ वर्ष की आयु में पाठशाला में प्रवेश किया। धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त कर बम्बई में अपने पिताजी की दुकान का काम संभाल कर अर्थोपार्जन द्वारा माता-पिता को सन्तोष दिया। देश में आपके सगाई-विवाह की बात चल रही थी और वे उत्सुकता से देवजी भाई की राह देखते थे। पर इधर बम्बई में श्रीमोहनलालजी महाराज का चातुर्मास होने से संस्कार-संपन्न देवजी भाई प्रतिदिन अपने मित्र लधाभाई के साथ व्याख्यान सुनने जाते और उनकी अमृत वाणी से दोनों की आत्मा में वैराग्य बीज अंकुरित हो गए। दोनों मित्रों ने यथावसर पूज्यश्री से दीक्षा प्रदान करने की प्रार्थना की। पूज्यश्री ने उन्हें योग्य ज्ञातकर अपने शिष्य श्रीराजमुनिजी के पास रेवदर भेजा। सं० १९५८ चैत्रवदि ३ को दीक्षा देकर देवजी का रत्नमुनि और लधाभाई का लब्धि मुनि नाम दिया। सं० १९५९ का चातुर्मास मंडार में करने के बाद सं० १९६० वै०-सु०-१० को शिवगंज में पन्यास श्रीयशोमुनिजी के करकमलों से बड़ी दीक्षा हुई। सं० १९६० शिवगंज, १९६१ नवाशहर सं० १९६२ का चातुर्मास पीपाड़ में गुरुवर्य श्रीराजमुनिजी के साथ हुआ। व्याकरण, अलंकार, काव्यादिका अध्ययन सुचारुतया करके कुचेरा पधारे। यहां राजमुनिजी के उपदेश से २५ घर स्थानकवासी मन्दिर आम्नाय के बने।

श्रीरत्नमुनिजी योगोद्वहनके लिए पन्यासजी के पास चाणोद गये। उनके पास आपका शास्त्राभ्यास अच्छी तरह चलता था, इधर श्रीमोहनलालजी महाराज की अस्वस्थता के कारण पन्यासजी के साथ बम्बई की ओर विहार किया, पर भक्तों के आग्रहवश मोहनलालजी महाराज ने सूरत की ओर विहार किया था, अत: मार्ग में ही दहाणुं में गुरुदेव के दर्शन हो गए। श्रीमोहनलालजी महाराज १८ शिष्य-प्रशिष्यों के साथ सूरत पधारे। श्रीरत्नमुनिजी उनकी सेवा में दत्तचित्त थे। उनका हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त कर उनकी आज्ञा से पन्यासजी के साथ आप पालीताणा पधारे। फिर रतलाम आदि में विचर कर उनकी आज्ञासे भावमुनिजी के साथ केशरियाजी पधारे। शरीर अस्वस्थ होते हुए भी आपने २१ मास पर्यन्त आंबिल तप किया। पन्यासजी ने सं० १९६६ में ग्वालियर में उत्तराध्ययन व भगवती सूत्र का योगोद्वहन श्रीकेशरमुनिजी, भावमुनिजी और चिमन मुनिजी के साथ आपको भी कराया। तदनन्तर आप गणि पद से विभूषित हुए। सं० १९६७ का चातुर्मास गुरु महाराज श्रीराजमुनिजी के साथ करके १९६८ महीदपुर पधारे। तदनन्तर सं० १९६९ का चातुर्मास बम्बई किया। यहां फा० सु० २ को गुरु महाराज की आज्ञा से बोघडोद के श्रीपन्नालाल को दीक्षा देकर प्रेममुनि नाम से प्रसिद्ध किया। सं० १९७० का चातुर्मास भी बम्बई किया। यहाँ श्रीजिनयशःसूरिजी महाराज के पावापुरी में स्वर्गवासी होने के दुःखद समाचार सुने।

गणिवर्य श्रीरत्नमुनिजी को जन्मभूमि छोड़े बहुत वर्ष हो गए थे अत: श्रावकसंघ की प्रार्थना स्वीकार कर शत्रुंजय यात्रा करते हुए अपने शिष्यों के साथ कच्छ में प्रविष्ट हो

अंजार होते हुए भद्रेश्वर तीर्थ की यात्राकर लायजा पधारे। यहाँ पूजा प्रभावना, उद्यापनादि अनेक हुए। सं० १९७१ का चातुर्मास बीदड़ा, १९७२ का मांडवी किया। यहां से नांगलपुर पधारने पर गुरुवर्य राजमुनिजी के स्वर्गवास होने के समाचार मिले। सं० १९७३ भुज, १९७४ लायजा चातुर्मास किया। फिर मांडवी में राजश्रीजी को दीक्षा दी। कच्छ देश में धर्म प्रचार करते हुए १९७५ सं० में दुर्गापुर (नवावास) चौमासा किया और संघ में पड़े हुए दो तड़ोंको एक कर शान्ति की। इन्फ्लुएंजा फैलने से शहर खाली हुआ और रायण जाकर चातुर्मास पूर्ण किया। सं० १९७३ में डोसाभाई लालचन्द का संघ निकला ही था, फिर भुज से शा० वसनजी वाघजी ने भद्रेश्वर का संघ निकाला। गणिवर्य यात्रा करके अंजार पधारे। इधर सिद्धाचलजी यात्रा करते हुए श्रीलब्धिमुनिजी आ मिले। उनके साथ फिर भद्रेश्वर पधारे। सं० १९७६ का चातुर्मास भुज और सं० १९७७ का मांडवी किया। फिर जामनगर, सूरत, कतार गांव, अहमदाबाद, सेरिसा, भोयणीजी, पानसर, तारंगा, कुंभारियाजी, आबू यात्रा करते हुए अणादरा पधारे। लब्धिमुनिजी, भावमुनिजी को शिवगंज भेजा और स्वयं प्रेममुनिजी के साथ मंढार चातुर्मास किया। पाली में पन्यास श्रीकेशरमुनिजी से मिले। दयाश्रीजी को दीक्षा दी। सं० १९८० का चातुर्मास जेसलमेर किया। किले पर दादा साहब की नवीन देहरी में दोनों दादासाहब की प्रतिष्ठा कराई। सं० १९८१ में फलोदी चातुर्मास किया। ज्ञानश्रीजीव वल्लभश्रीजी के आग्रह से हेमश्रीजी को दीक्षा दी। लोहावट में गौतमस्वामी और चक्रेश्वरीजी की प्रतिष्ठा कर अजमेर पधारे। तदनन्तर रतलाम, सेमलिया, पधारे। सं० १९८२ नलखेड़ा चातुर्मास किया, चौदह प्रतिमाओं की अंजनशलाका की। मंडोदा में रिखबचन्दजी चोरड़िया के बनवाये हुए गुरुमंदिर में दादा जिनदत्तसूरि आदि की प्रतिष्ठा करवायी। खुजनेर और पड़ाणा में गुरुपादुकाएं प्रतिष्ठित कीं। डग पधारने पर श्रीलक्ष्मीचन्दजी वैद के तरफसे उद्यापनादि हुए और दादा जिनकुशलसूरिजी व रत्नप्रभसूरिजी की पादुका-प्रतिष्ठा की। मांडवगढ यात्रा करके इन्दौर मक्सीजी, उज्जैन, होते हुए महीदपुर पधारे। लब्धिमुनिजी और प्रेममुनिजी को बोद्धटोद चातुर्मासार्थ भेजा। स्वयं भावमुनिजी के साथ रुणीजा पधारकर सं० १९८३ का चातुर्मास किया। १९८४ महीदपुर, सं० १९८५ का चातुर्मास भाणपुरा किया। उद्यापन और बड़ी दीक्षादि हुए। मालवा में गणिजी महाराज को विचरते सुनकर बम्बई से रवजी सोजपाल ने आग्रह पूर्वक बम्बई पधारने की विनती की। आपश्री ग्रामानुग्राम विचरते हुए घाटकोपर पहुँचे। मेघजी सोजपाल, गणजी भीमसी आदि की विनतिसे बम्बई लालवाड़ी पधारे। दादासाहब की जयन्ती श्रीगोड़ीजी के उपाश्रय में श्रीविजयवल्लभसूरिजी की अध्यक्षता में बड़े ठाट-माठ से मनायी। सं० १९८६ का चौमासा लालबाड़ी में किया।

गणिवर्य श्रीरतनमुनिजी के उपदेश और मूलचन्द हीराचन्द भगत के प्रयास से महावीर स्वामी के पीछे के खरतरगच्छीय उपाश्रय का जीर्णोद्धार हुआ। सं० १९८७ का चातुर्मास वहीं कर लब्धिमुनिजी के भाई लालजी भाई को सं० १९८८ पो० सु० १० को दीक्षितकर महेन्द्र मुनि नाम से लब्धिमुनि जी के शिष्य बनाये। प्रेममुनिजी को योगोद्वहन के लिए श्री केशरमुनिजी के पास पालीताना भेजा। वहां कच्छ के मेघजी को सं० १९८९ पोष सुदि १२ के दिन केशरमुनिजी के हाथ से दीक्षित कर प्रेममुनिजी का शिष्य बनाया।

श्री रत्नमुनिजी महाराज सूरत, खंभात होते हुए पालीताना पधारे। श्री केशरमुनिजी को वन्दन कर फिर गिरनारजी की यात्रा की और मुक्तिमुनिजी को बड़ी दीक्षा दी। सं० १९८९ का चातुर्मास जामनगर करके अंजार पधारे। भद्रेश्वर, मुंद्रा, मांडवी होकर मेराबा पधारे।

दिनबाई को बड़े समारोह और विविध धर्मकार्यों में सद्द्रव्यव्यय करने के अनन्तर दीक्षा देकर राजश्रीजी की शिष्या रत्नश्री नाम से प्रसिद्ध किया।

सं० १९९१ का चातुर्मास अपने प्रेममुनिजी और मुक्तिमुनिजी के साथ भुज में किया। महेन्द्रमुनिजी की बीमारी के कारण लब्धिमुनिजी मांडवी रहे। उमरसी भाई की धर्मपत्नी इन्द्राबाई ने उपधान, अठाई महोत्सव पूजा, प्रभावनादि किये। तदनन्तर भुज से अंजार, मुन्द्रा, होते हुए मांडवी पधारे। यहाँ महेन्द्रमुनि बीमार तो थे ही चै० सु० २ को कालधर्म प्राप्त हुए। गणिवर्य लायजा पधारे, खेराज भाई ने उत्सव, उद्यापन, स्वधर्मीवात्सल्यादि किये।

कच्छ के डुमरा निवासी नागजी-नेणबाई के पुत्र मूलजी भाई—जो अन्तर्वैराग्य से रंगे हुए थे—माता पिता की आज्ञा प्राप्त कर गणिवर्य श्री रत्नमुनिजी के पास आये। दीक्षा का मुहूर्त निकला। नित्य नई पूजा-प्रभावना और उत्सवों की धूम मच गई। दीक्षा का वरघोड़ा बहुत ही शानदार निकला। मूलजी भाई का वैराग्य और दीक्षा लेने का उल्लास अपूर्व था। रथ में बैठे वरसीदान देते हुए जय-जयकारपूर्वक आकर चै० सु० ६ के दिन गणीश्वरजी के पास विधिवत् दीक्षा ली। आपका नाम भद्रमुनिजी रखा गया। सं० १९९२ का चातुर्मास रत्नमुनिजी ने लायजा, लब्धिमुनिजी, भावमुनिजी का अंजार व प्रेममुनिजी, भद्रमुनिजी, का मांडवी हुआ। चातुर्मास के बाद मांडवी आकर गुरु महाराज ने भद्रमुनिजी को बड़ी दीक्षा दी।

तुंबड़ी के पटेल धामजी भाई के संघ सहित पंचतीर्थी यात्रा की। सुथरी में घृतकल्लोल पार्श्वनाथजी के समक्ष संघपति माला धामजी को पहनायी गई। सं० १९९३ में मांडवी चातुर्मास कर मुंद्रा में पधारे और रामश्रीजी को दीक्षित किया। यहीं इनकी बड़ी दीक्षा हुई और कल्याणश्रीजी की शिष्या प्रसिद्ध की गई। वहाँ से शासन में सं० १९९४ चातुर्मास कर सिद्धाचलजी पधारे। इस समय आप का १० साधु थे। प्रेममुनिजी के भगवती सूत्र का योगोद्वहन और नन्दनमुनिजी की बड़ी दीक्षा हुई। कल्याणभुवन में कल्पसूत्र के योग कराये, पन्नवणा सूत्र बाचा, प्रचुर तपश्चर्याएं हुईं। पूजा प्रभावना स्वधर्मीवात्सल्यादि खूब हुए। मुर्शिदाबाद निवासी राजा विजयसिंहजी की माता सुगुण कुमारी की तरफ से उपधानतप हुआ। मार्गशीर्ष सुदि ५ को गणिवर्य रत्नमुनिजी के हाथ से मालरोपण हुआ। दूसरे दिन श्री बुद्धिमुनिजी और प्रेममुनिजी को 'गणि' पद से भूषित किया गया। जावरा के सेठ जड़ावचन्दजी की ओर से उद्यापनोत्सव हुआ।

सं० १९९६ का चातुर्मास अहमदाबाद हुआ। फिर बड़ौदा पधारकर गणिवर्य ने नेमिनाथ जिनालय के पास गुरुमन्दिर में दादा गुरुदेव श्रीजिनदत्तसूरि की मूर्त्ति पादुका आदि की प्रतिष्ठा बड़े ही ठाठ-बाट से की। वहाँ से बंबईकी ओर विहार कर दहाणु पधारे। श्रीजिनऋद्धिसूरिजी वहाँ विराजमान थे, आनन्द पूर्वक मिलन हुआ। संघ की विनति से बम्बई पधारे। संघ को अपार हर्ष हुआ। श्रीरत्नमुनिजी के चरित्र गुण की सौरभ सर्वत्र व्याप्त थी। आचार्य श्री जिनऋद्धिसूरिजी महाराज ने संघ की विनति से आपको आचार्य पद देना निश्चय किया। बम्बई में विविध प्रकार के महोत्सव होने लगे। मिती अषाढ़ सुदि ७ को सूरिजी ने आपको आचार्य पद से विभूषित किया। सं० १९९७ का चातुर्मास बम्बई पायधुनी में किया। श्रीजिनऋद्धिसूरि दादर, लब्धिमुनिजी घाटकोपर और प्रेममुनिजी ने लालबाड़ी में चौमासा किया। चरित्रनायक के उपदेश से श्री जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार स्थापित हुआ। लालबाड़ी में विविध प्रकार के उत्सव हुए। आचार्य श्री ने अपने भाई रामजी भाई की प्रार्थना से सं० १९९८ का चातुर्मास

लालवाड़ी किया। देलजी भाई को दीक्षा देकर मेघमुनि नाम से प्रसिद्ध किया, बहुत से उत्सव हुए।

सं० १९९९ में दस साधुओं के साथ चरित्रनायक ने सूरत चौमासा किया। फिर बड़ौदा पधारकर लब्धिमुनिजी के शिष्य मेघमुनिजी व गुलाबमुनिजी के शिष्य रत्नाकरमुनि को बड़ी दीक्षा दी। सं० २००० का चातुर्मास रतलाम किया, उपधान तप आदि अनेक धर्म कार्य हुए। सेमलिया जी की यात्रा कर महीदपुर पधारे। महीदपुर में राजमुनि जी के भाई चुनीलालजी बाफणा ने मन्दिर निर्माण कराया था, प्रतिष्ठा कार्य बाकी था, अतः खरतरगच्छ संघ को इसका भार सौंपा गया पर वह लेख पत्र उनके बहिन के पास रखा, वह तपागच्छ की थी उसने उनलोगों को दे दिया। कोर्ट चढ़ने पर दोनों को मिलकर प्रतिष्ठा करने का आदेश हुआ, पर उन्होंने कब्जा नहीं छोड़ा तो क्लेश बढ़ता देख खरतरगच्छ वालों ने नई जमीन लेकर मन्दिर बनाया और उसमें राजमुनिजी व नयमुनिजी के ग्रन्थों का ज्ञान भंडार स्थापित किया। प्रतिमा की अप्राप्ति से संघ चिन्तित था क्योंकि उत्सव प्रारंभ हो गया था फिर उपाध्यायजी, रत्नश्रीजी और श्रावक और श्राविका गोमी बाई को एक सा प्रतिमा प्राप्त होने व पुष्पादि से पूजा करने का स्वप्न आया। आचार्य श्री ने बीकानेर जाकर प्रतिमा प्राप्त करने की प्रेरणा दी। सं० ११५५ की प्रतिमा तत्काल प्राप्त हो गई और आनन्दपूर्वक प्रतिष्ठासम्पन्न हुई। दादा साहब की मूर्त्ति पादुकाएँ, राजमुनिजी व मुखसागर जी की पादुकाएं तथा चक्रेश्वरी देवी की भी प्रतिष्ठा हुई। सं० २००१ का चातुर्मास महीदपुर हुआ। बड़ोदिया में पधारने पर उद्यापन व दादासाहब की चरण प्रतिष्ठा हुई। सुजालपुर के मंदिर में दादासाहब की चरण प्रतिष्ठा की। सं० २००२ का चातुर्मास कर आसामपुरा, इन्दौर होते हुए मांडवगढ़ यात्रा कर रतलाम पधारे। गरवट्ट गाँव में दादासाहब की चरण प्रतिष्ठा की। तदनंतर मनासा, भुवनेश्वर, प्रतापगढ़ व करजोद पधारे। करजोद में प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न कराके सं० २००३ को प्रतापगढ़ में चातुर्मास किया। मंदसौर में चक्रेश्वरीजी की प्रतिष्ठा कराई। जावरा से सेमलियाजी का संघ निकला, संघपति चांदमलजी चोपड़ा को तीर्थमाला पहनाई। रतलाम से करजोद पधारे। जावरा के प्यारचंद जी पगारिया ने वह पार्श्वनाथजी का संघ निकाला। तदनंतर जयपुर की ओर विहार कर कोटा पधारे। गणि श्री भावमुनिजी को पक्षाघात हो गया और जेठ वदि १५ को रात्रि में उनका समाधिपूर्वक स्वर्गवास हो गया।

सं० २००४ का चातुर्मास कोटा में हुआ। भगवती सूत्रवाचना, अठाई महोत्सव एवं स्वधर्मी-वात्सल्यादि अनेक धर्मकार्य सेठ केसरीसिंहजी बाफणा ने करवाये। तदनंतर सूरिजी जयपुर पधारे। असातावेदनीय के उदय से शरीर में उत्पन्न व्याधि को समता से सहन किया। श्रीमालों के मंदिर में डेरागाजीखान से लाई हुई प्रतिमाएं स्थापित की। कच्छभुज की दादावाड़ी की प्रतिष्ठा के लिये संघ की ओर से विनती करने रवजी शिवजी बोरा आये। सं० २००५ का चातुर्मास जयपुर कर स० २००६ का अजमेर में किया। सं० २००७ ज्येष्ठ सुदि ५ को विजयनगर में प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ, चन्द्रप्रभस्वामी आदि के सह दादासाहब के चरणों की प्रतिष्ठा की। फिर रतनचन्दजी संचेती की विनती से अजमेर पधारे। उनके बीस-स्थानक का उद्यापन हुआ। मड़गतियाजी की कोठी के देहरासर में दादा साहब जिनदत्तसूरि मूर्ति की प्रतिष्ठा करवायी। अजमेर से ब्यावर पधार कर मुलतान निवासी हीरालालजी नुगड़ी को स० २००७ आषाढ़ सुदि १ को दीक्षित कर हीरमुनि बनाये। उपधान तप हुआ। सूरिजी चातुर्मास पूर्ण कर पाली, राता महावीर जी, शिवगंज, कोरटा होते हुए गढ़सिवाणा पधारे। फिर बांकली, तखतगढ़ होकर श्रीवेशरमुनिजी की जन्मभूमि

चूड़ा पधारे। सं० २००८ जेठ बदि ७ को दादा जिनदत्तसूरि मूर्ति, मणिधारी जिनचंद्रसूरि व जिनकुशलसूरि एवं पं० केशरमुनिजी की पादुकाएँ प्रतिष्ठित की। वहाँ से आहोर, जालोर होते हुए गढ़सिवाणा आकर चातुर्मास किया। फिर नाकोड़ाजी पधार कर मार्गशिर सुदि १ को दादासाहब जिनदत्तसूरि मूर्ति व श्रीकीर्तिरत्नसूरिजी की जीर्णोद्धारित देहरी में प्रतिष्ठा करवाई। नाकोड़ाजी से विहार कर सूरिजी डीसा कैंप भीलड़ियाजी होते हुए राधनपुर, कटारिया, अंजार होते हुए भद्रेश्वर तीर्थ पहुँचे।

भद्रेश्वरजी की यात्रा कर मांडवी होते हुए भुज पधारे, संघ का चिरमनोरथ पूर्ण हुआ। यहाँ दादावाड़ी निर्माण का लम्बा इतिहास है पर इसकी चेष्टा करने वाले हेमचन्द भाई जिस दिन स्वर्गवासी हुए उसी दिन आपने स्वप्न में पुरानी और नई दादावाड़ी आदि सहित उत्सव को व हेमचंद भाई आदि को देखा वही दृश्य भुज की दादावाडी प्रतिष्ठा के समय साक्षात् हो गया। सं० २००९ माघ सुदि ११ को बड़े समारोह पूर्वक प्रतिष्ठा हुई। सूरत से सेठ बालूभाई विधि-विधान के लिये आये। जिनदत्तसूरि की प्रतिमा व मणिधारी जिनचन्द्रसूरि व श्रीजिनकुशलसूरि के चरणों की प्रतिष्ठा बड़े धूमधाम से हुई।

सं० २०१० का चातुर्मास सूरिजी ने मांडवी किया। मि० व० २ को धर्मनाथ जिनालय पर ध्वजदंड चढ़ाया गया, उत्सव हुए। मोटा आसंबिया में मंदिर का शताब्दी महोत्सव हुआ। भुज की दादावाड़ी में हेमचंद भाई की ओर से नवीन जिनालय निर्माण हेतु सं० २०११ वै० सु० १२ को सूरिजी के कर-कमलों से खात मुहूर्त्त हुआ। तदनंतर सूरिजी ने अंजार चातुर्मास किया।

चातुर्मास के पश्चात् भद्रेश्वर यात्रा कर मांडवी पधारे। वहाँ की विशाल रमणीय दादावाड़ी में दादा जिनदत्तसूरि प्रतिमा विराजमान करने का उपदेश दिया, पटेल वीकमसी राघवजी ने इस कार्य को सम्पन्न करने की अपनी भावना व्यक्त की। सूरिजी का शरीर स्वस्थ था, आँख का मोतियाबिंद उतरता था जिसका इलाज कराना था पर माघ वदी ८ को अर्द्धाङ्ग व्याधि हो गयी और माघ सुदि १ के दिन समाधिपूर्वक स्वर्गवासी हुए। आपने अपने जीवन में शुद्ध चरित्र पालन करते हुए, शासन और गच्छ की खूब प्रभावना की थी।



# विद्वद्वर्य उपाध्याय श्रीलब्धिमुनिजी

[ भंवरलाल नाहटा ]

बीसवीं शताब्दी के महापुरुषों में खरतरगच्छ विभूषण श्री मोहनलालजी महाराज का स्थान सर्वोपरि है। वे बड़े प्रतापी, क्रियापात्र, त्यागी-तपस्वी और वचनसिद्ध योगी पुरुष थे। उनमें गच्छ कदाग्रह न होकर संयम साधन और समभावी श्रमणत्व सुविशेष था। उनका शिष्य समुदाय भी खरतर और तपा दोनों गच्छों की शोभा बढ़ाने वाला है। उ० श्रीलब्धिमुनिजी महाराज ने आपके वचनामृत से संसार से विरक्त होकर संयम स्वीकार किया था।

श्रीलब्धिमुनिजी का जन्म कच्छ के मोटी खाखर गाँव में हुआ था। आपके पिता दनाभाई देढिया वीसा ओसवाल थे। सं० १९३५ में जन्म लेकर धार्मिक संस्कार युक्त माता-पिता की छत्र-छाया में बड़े हुए। आपका नाम

लधाभाई था। आपसे छोटे भाई नानजी और रतनवाई नामक बहिन थी। सं० १६५८ में पिताजी के साथ वम्बई जाकर लधाभाई, मायखला में सेठ रतनसी की दुकान में काम करने लगे। यहाँ से थोड़ी दूर पर सेठ भीमसी करमसी की दुकान थी, उनके ज्येष्ठ पुत्र देवजी भाई के साथ आपकी घनिष्ठता हो गई क्योंकि वे भी धार्मिक संस्कार वाले व्यक्ति थे। सं० १६५८ में प्लेग की वीमारी फैली जिसमें सेठ रतनसी भाई चल बसे। उनका स्वस्थ शरीर देखते-देखते चला गया, यही घटना संसार की क्षणभंगुरता वताने के लिये आपके संस्कारी मनको पर्याप्त थी। मित्र देवजी भाई से बात हुई, वे भी संसार से विरक्त थे। संयोगवश उस वर्ष परमपूज्य श्रीमोहनलालजी महाराज का वम्बई में चातुर्मास था। दोनों मित्रों ने उनकी अमृत-वाणी से वैराग्य-वासित होकर दीक्षा देने की प्रार्थना की।

पूज्यश्री ने मुमुक्षु चिमनाजी के साथ आपको अपने विद्वान शिष्य श्रीराजमुनिजी के पास आवू के निकटवर्ती मंढार गांव में भेजा। राजमुनिजी ने दोनों मित्रों को सं० १६५८ चैत्रवदि ३ को शुभमुहूर्त्त में दीक्षा दी। श्रीदेवजी भाई रत्नमुनि (आचार्य श्रीजिनरत्नसूरि) और लधा भाई लब्धिमुनि वने। प्रथम चातुर्मास में पंच प्रतिक्रमणादि का अभ्यास पूर्ण हो गया। सं० १६६० वैशाख सुदि १० को पन्यास श्रीयशोमुनिजी (आ० जिनयशःसूरिजी) के पास आप दोनों की वड़ो दीक्षा हुई। तदनन्तर सं० १६७२ तक राजस्थान, सौराष्ट्र, गुजरात और मालवा में गुरुवर्य श्रीराज-मुनिजी के साथ विचरे। उनके स्वर्गवासी हो जाने से डग में चातुर्मास करके सं० १६७४-७५ के चातुर्मास वम्बई और सूरत में पं० श्रीऋद्धिमुनिजी और कान्तिमुनिजी के साथ किये। तदनन्तर कच्छ पधार कर सं० १६७६-७७ के चातुर्मास भुज व माँडवी में अपने गुरु-भ्राता श्रीरत्नमुनिजी के साथ किये। सं० १६७८ में उन्हीं के साथ सूरत चौमासा कर १६७६ से ८५ तक राजस्थान व मालवा में केशरमुनिजी व रत्नमुनिजी के साथ विचर कर चार वर्ष वम्वई विराजे। सं० १६८६ का चौमासा जामनगर करके फिर कच्छ पधारे। मेराऊ, माँडवी, अंजार, मोटी खाखर, मोटा आसंविया में क्रमशः चातुर्मास करके पालीताना और अहमदावाद में दो चातुर्मास व वम्वई, घाटकोपर में दो चातुर्मास किये। सं० १६६६ में सूरत चातुर्मास करके फिर मालवा पधारे। महीदपुर, उज्जैन, रतलाम में चातुर्मास कर सं० २००४ में कोटा, फिर जयपुर, अजमेर, व्यावर और गढ़ सिवाणा में सं० २००८ का चातुर्मास विता कर कच्छ पधारे। सं० २००६ में भुज चातुर्मास कर श्रीजिनरत्नसूरिजी के साथ ही दादावाड़ी की प्रतिष्ठा की। फिर मांडवी, अंजार, मोटा आसंविया, भुज आदि में विचरते रहे। सं० १६७६ से २०११ तक जबतक श्रीजिनरत्नसूरिजी विद्यमान थे, अधिकांश उन्हीं के साथ विचरे, केवल दस वारह चौमासे अलग किये थे। उनके स्वर्गवास के पश्चात् भी आप वृद्धावस्था में कच्छ देश के विभिन्न क्षेत्रों को पावन करते रहे।

आप वड़े विद्वान, गंभीर और अप्रमत्त विहारी थे। विद्यादान का गुण तो आप में वहुत ही श्लाघनीय था। काव्य, कोश, न्याय, अलंकार, व्याकरण और जैनागमों के दिग्गज विद्वान होने पर भी सरल और निरहंकार रह कर न केवल अपने शिष्यों को ही उन्होंने अध्ययन कराया अपितु जो भी आया उसे खूब विद्यादान दिया। श्रीजिन-रत्नसूरिजी के शिष्य अध्यात्मयोगी सन्त प्रवर श्रीभद्रमुनि ( सहजानंदघन ) जी महाराज के आप ही विद्यागुरु थे। उन्होंने विद्यागुरु की एक संस्कृत व छः स्तुतियाँ भाषा में निर्माण की जो लब्धि-जीवन प्रकाश में प्रकाशित हैं।

उपाध्यायजी महाराज अपना अधिक समय जाप में तो विताते ही थे पर संस्कृत काव्यरचना में आप वड़े सिद्ध-हस्त थे। सरल भाषा में काव्य रचना करके साधारण व्यक्ति भी आसानीसे समझ सके इसका ध्यान रख कर

क्लिष्ट शब्दों द्वारा विद्वत्ता प्रदर्शन से दूर रहे। आप संस्कृत भाषा के प्रखर विद्वान और आशुकवि थे। सं० १९७० में खरतरगच्छ पट्टावली की रचना आपने १७४५ श्लोकों में की। सं० १९७२ में कल्पसूत्रटीका रची। नवपद स्तुति, दादासाहब के स्तोत्र, दीक्षाविधि, योगोद्वहन विधि आदि की रचना आपने १९७७-७९ में की। सं० १९९० में श्रीपालचरित्र रचा।

सं० १९९२ में हमारा युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि ग्रन्थ प्रकाशित होते ही तदनुसार १२१२ श्लोक और छः सर्गों में संस्कृत काव्य रच डाला। सं० १९९० में आपने जेसलमेर चातुर्मास में वहाँ के ज्ञानभंडार से कितने ही प्राचीन ग्रन्थों की प्रतिलिपियां की थीं। सं० १९९६ में ६३३ पद्यों में श्रीजिनकुशलसूरि चरित्र, सं० १९९८ में २०१ श्लोकों में मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि चरित्र एवं सं० २००५ में ५६८ श्लोकमय श्रीजिनदत्तसूरि चरित्र काव्य की रचना की।

सं० २०११ में श्री जिनरत्नसूरि चरित्र, सं० २०१२ में श्रीजिनयशःसूरि चरित्र, सं० २०१४ में श्रीजिनऋद्धि सूरि चरित्र, सं० २०१५ में श्री मोहनलालजी महाराज का जीवन चरित्र श्लोकबद्ध लिखा। इस प्रकार आपने नौ ऐतिहासिक काव्यों के रचने का अभूतपूर्व कार्य किया। इसके अतिरिक्त आपने सं० २००१ में आत्म-भावना, सं० २००५ में द्वादश पर्व कथा, चैत्यवन्दन चौवीसी, बीस स्थानक चैत्यवन्दन, स्तुतियों और पांचपर्व-स्तुतियों की भी रचना की। सं० २००७ में संस्कृत श्लोकबद्ध मुलड चरित्र का निर्माण व २००८ में सिद्धाचलजी के १०८ खमासमण भी श्लोकबद्ध बनाये।

आपने जैनमन्दिरों, दादावाड़ियों और गुरु चरण-मूर्तियों की अनेक स्थानों में प्रतिष्ठाएं करवायी। आपके उपदेश से अनेक मन्दिरों का नवनिर्माण व जीर्णोद्धार हुआ। सं० १९७३ में पणासली में जिनालय की प्रतिष्ठा कराई। सं० २०१३ में कच्छ मांडवी की दादावाड़ी का माघबदि २ के दिन शिलारोपण कराया। सं० २०१४ में निर्माण कार्य सम्पन्न होने पर श्रीजिनदत्तसूरि मन्दिर की प्रतिष्ठा करवायी और धर्मनाथ स्वामी के मन्दिर के पास खरतर गच्छोपाश्रय में श्रीजिनरत्नसूरिजी की मूर्ति प्रतिष्ठित करवायी। सं० २०१६ में कच्छ-भुज की दादावाड़ी में सं० हेमचन्द भाई के बनवाये हुए जिनालय में संभवनाथ भगवान आदि जिनबिम्बों की अञ्जनशलाका करवायी। और भी अनेक स्थानों में गुरुमहाराज और श्रीजिनरत्नसूरि जी के साथ प्रतिष्ठादि शासनोन्नायक कार्यों में बराबर भाग लेते रहे।

ढाई हजार वर्ष प्राचीन कच्छ देश के सुप्रसिद्ध भद्रेश्वर तीर्थ में आपके उपदेश से श्रीजिनदत्तसूरिजी आदि गुरुदेवों का भव्य गुरु मन्दिर निर्मित हुआ। जिसकी प्रतिष्ठा आपके स्वर्गवास के पश्चात् बड़े समारोह पूर्वक गणिवर्य श्रीप्रेम-मुनिजी व श्रीजयानन्दमुनिजी के करकमलों से सं० २०२६ वैशाख सुदि १० को सम्पन्न हुई।

उपाध्याय श्रीलब्धिमुनिजी महाराज बाल-ब्रह्मचारी, उदारचेता, निरभिमानी, शान्त-दान्त और सरलप्रकृति के दिग्गज विद्वान थे। वे ६५ वर्ष पर्यन्त उत्कृष्ट संयम साधना करके ८८ वर्ष की आयु में सं० २०२३ में कच्छ के मोटा आसंबिया गाँव में स्वर्ग सिधारे।

# स्वर्गीय गणिवर्य बुद्धिमुनिजी

[ अगरचन्द नाहटा ]

जैन धर्म के अनुसार सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र ही मोक्षमार्ग है। जो व्यक्ति अपने जीवन में इस रत्नत्रयी की जितने परिमाण से आराधना करता है वह उतना ही मोक्ष के समीप पहुंचता है, मानव जीवन का उद्देश्य या चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना ही है। मनुष्य के सिवा कोई भी अन्य प्राणी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये मनुष्य जीवन को पाकर जो भी व्यक्ति उपरोक्त रत्नत्रयी की आराधना में लग जाता है उसी का जीवन धन्य है, यद्यपि इस पंचम काल में इस क्षेत्र से सीधे मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, फिर भी अनन्तकाल के भव-भ्रमण को बहुत ही सीमित किया जा सकता है। यावत् साधना सही और उच्चस्तर की हो तो भवान्तर (दूसरे भव में) भी मोक्ष प्राप्त हो सकता है। चाहिये संयमनिष्ठा और निरंतर सम्यक्साधना। यहां ऐसे ही एक संयमनिष्ठ मुनि महाराज का परिचय दिया जा रहा है जिन्होंने अपने जीवन में रत्नत्रयी की आराधना बहुत ही अच्छे रूप में की है, कई व्यक्ति ज्ञान तो काफी प्राप्त कर लेते हैं पर ज्ञान का फल विरति है उसे प्राप्त नहीं कर पाते और जब तक ज्ञान के अनुसार क्रिया-चारित्र का विकास नहीं किया जाय वहां तक मोक्ष प्राप्त नहीं किया जा सकता--'ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः। गणिवर्य बुद्धिमुनिजी के जीवन में ज्ञान और चारित्र इन दोनों का अद्भुत सुमेल हो गया था यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आपका जन्म जोधपुर प्रदेशान्तर्गत गंगाणी तीर्थ के समीपवर्ती बिलारे गांव में हुआ था। चौधरी (जाट) वंश में जन्म लेकर भी संयोगवश आपने जैन—दीक्षा ग्रहण की। आपके पिता का स्वर्गवास आपके बचपन में ही हो गया था और आपकी माता ने भी अपना अन्तिम समय जान कर इन्हें एक मठाधीश-महंत को सौंप दिया था, वहां रहते समय सुयोगवश पन्यास श्री केसरमुनिजी का सत्समागम आपको मिला और जैन मुनि की दीक्षा लेने की भावना जाग्रत हुई। पन्यासजी के साथ पैदल चलते हुए लूणी जंक्शन के पास जब आप आये तो सं० १९६३ में ९ वर्ष की छोटी सी आयु में ही आप दीक्षित हो गये आपका जन्म नाम नवल था, अब आपका दीक्षा नाम बुद्धिमुनि रखा गया वास्तव में यह नाम पूर्ण सार्थक हुआ आपने अपनी बुद्धि का विकास करके ज्ञान और चारित्र की अद्भुत आराधना की। थोड़े वर्षों में ही आप अच्छे विद्वान हो गये और अपने गुरुश्री को ज्ञान सेवा में सहयोग देने लगे।

तत्कालीन आचार्य जिनयशःसूरिजी और अपने गुरु केसरमुनिजी के साथ सम्मेतशिखरजी की यात्रा करके आप महावीर निर्वाण-भूमि-पावापुरी में पधारे आचार्यश्री का चतुर्मास वहीं हुआ और ५३ उपवास करके वे वहीं स्वर्गवासी हो गये, तदनन्तर अनेक स्थानों में विचरते हुए आप गुरुश्री के साथ सूरत पधारे, वहां गुरुश्री अस्वस्थ हो गये और बम्बई जाकर चतुर्मास किया उसी चातुर्मास में कार्तिक शुक्ला ६ को पूज्य केसरमुनिजी का स्वर्गवास हो गया। करीब २० वर्ष तक आपने गुरुश्री की सेवा में रहकर ज्ञानवृद्धि और संयम और तप—जो मुनि-जीवन के दो विशिष्ट गुण हैं—में आपने अपना जीवन लगा दिया आभ्यंतर तप के ६ भेदों में वैयावृत्य सेवा में आपकी बड़ी रुचि थी, आपके गुरुश्री के भ्राता पूर्णमुनिजी के शरीर में

एक भयंकर फोड़ा हो गया -उससे मवाद निकलता था और उसमें कीड़े पड़ गये थे दुर्गन्ध के कारण कोई आदमी पास भी बैठ नहीं पाता था, पर आपने ६ महीनों तक अपने हाथों से उसे धोने मल्हमपट्टी करने आदि का काम सहर्ष किया। इससे पूर्णमुनिजी को बहुत शाता पहुँची, वे स्वस्थ हो गये।

आगमों का अध्ययन करने के लिए आपने सम्पूर्ण आगमों का योगोद्वहन किया। इसके बाद सं० १९९५ में सिद्धक्षेत्र पालीताना में आचार्य श्रीजिनरत्नसूरिजी ने आपको गणिपद से विभूषित किया।

मारवाड़, गुजरात, कच्छ, सौराष्ट्र और पूर्व प्रदेश तक में आप निरंतर विचरते रहे। कच्छ और मारवाड़ में तो आपने कई मन्दिरमूर्तियों एवं पादुकाओं की प्रतिष्ठा भी करवायी। श्रीजिनरत्नसूरिजी की आज्ञा से भुज में दादा-जिनदत्तसूरिजी की मूर्ति एवं अन्य पादुकाओं की प्रतिष्ठा बड़ी धूमधाम से करवाई। वहाँ से मारवाड़ के चूड़ा ग्राम में आकर जिनप्रतिमा, नूतन दादावाड़ी और जिनदत्तसूरिजी की मूर्ति-प्रतिष्ठा करवाई। चूड़ा चातुर्मास के समय ही आपको जिनरत्नसूरिजी के स्वर्गवास का समाचार मिला आचार्यश्री की अन्तिम आज्ञानुसार आपने जिनऋद्धिसूरिजी के शिष्य गुलाबमुनिजी की सेवा के लिए बम्बई की ओर विहार किया और उनको अंतिम समय तक अपने साथ रख कर उनकी खूब सेवा की, उनके साथ गिरनार, पालीताना आदि तीर्थों की यात्रा की। इसी बीच उपाध्याय लब्धि-मुनिजी का दर्शन एवं सेवा करने के लिये आप कच्छ पधारे और वहाँ मंजलग्राम में नये मन्दिर और दादावाड़ी की प्रतिष्ठा उपाध्यायजी के सान्निध्य में करवाई, इसी तरह अंजार (कच्छ) के शान्तिनाथ जिनालय के ध्वजादंड एवं गुरुमूर्ति आदि की प्रतिष्ठा करवाई। वहां से विचरते हुये पालीताना पधारे असाता वेदनीय के उदय से आप अस्वस्थ रहने लगे, फिर भी ज्ञान और संयम की आराधना में निरन्तर लगे रहते थे।

कदम्बगिरि के संघ में सम्मिलित होकर सौभागचन्दजी मेहता को आपने संघपति की माला पहनाई और तदनन्तर उपाध्यायजी की आज्ञानुसार अस्वस्थ होते हुए भी भुज-कच्छ के सम्भवनाथ जिनालय की अंजनशलाका और प्रतिष्ठा उपाध्यायजी के सान्निध्य में करवाई फिर पालीताना पधारे और सिद्धगिरि पर स्थित दादाजी के चरण-पादुकाओं की प्रतिष्ठा और श्रीजिनदत्तसूरि सेवा संघ के अधिवेशन में सम्मिलित हुए। वहाँ श्रीगुलाबमुनिजी काफी दिनों से अस्वस्थ थे। आपने उनकी सेवामें कोई कसर नहीं रखी, पर उनकी आयुष्य की समाप्ति का अवसर आ चुका था, अतः सं० २०१७ वैसाख सुदि १० महावीर केवलज्ञान तिथि के दिन गुलाबमुनिजी स्वर्गस्थ हो गये।

आपका स्वास्थ्य पहले से ही नरम चल रहा था और काफी अशक्ति आ गई थी। तलहट्टी तक जाने में भी आप थकजाते थे। पर सं० २०१८ के मिगसर से स्वास्थ्य और भी गिरने लगा और वैद्यों के दवा से भी कोई फायदा नहीं हुआ तो आप को डोली में विहार करके हवापानी बदलने के लिए अन्यत्र चलने को कहा गया। पर आपने यही कहा कि मैं डोली में बैठकर कभी विहार नहीं करूंगा फाल्गुन महीने से ज्वर भी काफी रहने लगा और वैद्यों ने आपको श्रम करने का मना कर दिया। पर आप ज्वर मे भी अपने अधूरे कामों को पूरा करने-लिखने आदि में लगे रहते थे। चिकित्सक को आपने यही उत्तर दिया कि यह तो मेरी रुचि का विषय है, लिखना बन्द कर देने पर तो और भी बीमार पड़ जाऊँगा। वैद्यों की दवा में लाभ होता न देखकर आपसे डाक्टरी इलाज करने का अनुरोध किया गया, तो आपने कहा कि मैं कोई डाक्टरी दवा-इंजेक्शन-मिक्सचर आदि नहीं लूंगा। तुम लोग आग्रह करते

होतो फिर सूखी दवा ले सकता हूं। दो तीन महीने दवा ली भी, पर कोई फायदा नहीं हुआ। तब श्रीप्रतापमलजी सेठिया और अरचतलाल शिवलाल ने बम्बई से एक कुशल वैद्य को भेजा। पर असाता वेदनीय कर्मोदय से कोई भी दवा लागू नहीं पड़ी। आप अपने शिष्यों को हित की शिक्षा देते रहते थे। शिष्यों ने कहा कि कल्पसूत्र के गुजराती अनुवाद का मुद्रण अधूरा पड़ा है। उसे कौन पूरा करेगा? प्रत्युत्तर में आपने कहा—इसकी चिन्ता मत करो, जहां तक वह पूरा नहीं होगा, मेरी मृत्यु नहीं होगी। आपका दृढ़ निश्चय और भविष्यवाणी सफल हुई और आपके स्वर्गवास के दो-तीन दिन पहले ही कल्पसूत्र छप कर आ गया और उसे दिखाने पर आपने उसे मस्तक से लगाया, ऐसी आपकी अपूर्व ज्ञान-भक्ति थी।

श्रावण सुदी पंचमी से आपकी तबियत और भी बिगड़ने लगी पर आप पूर्ण शांति के साथ उत्तराध्ययन, पद्मावती सज्झाय, प्रभंजना व पंचभावना की सज्झाय आदि सुनते रहते थे। सप्तमी के दिन आपका शरीर ठंडा पड़ने लगा। उस समय भी आपने कहा—मुझे जल्दी प्रतिक्रमण कराओ। प्रतिक्रमण के बाद नवकार मंत्र की अखण्ड धुन चालू हो गयी। सबसे क्षमापना कर ली। दूसरे दिन साढ़े तीन बजे आपने कहा मुझे बैठाओ! पर एक मिनट से अधिक न बैठ सके और नवकार मन्त्र का स्मरण करते हुए श्रावण शुक्ल अष्टमी पार्श्वनाथ मोक्ष कल्याणक के दिन स्वर्गवासी हो गये।

आप एक विरल विभूति थे। आपके चारित्र की की प्रशंसा स्वगच्छ और परगच्छ के सभी लोग मुक्त कण्ठ से करते थे। ज्ञानोपासना भी आपकी निरन्तर चलती रहती थी। एक मिनट का समय भी व्यर्थ खोना आपको बहुत ही अखरता था। साध्वोचित क्रियाकलाप करने के अतिरिक्त जो भी समय बचता था; आप ज्ञान सेवा में लगाते थे। इसीलिए आपने कई ज्ञानभन्डारों की सुव्यवस्था की, सूची बनाई। आप जो काम स्वयं कर सकते थे, दूसरों से न हो करवाते थे। श्रावक समाज का थोड़ा-सा भी पैसा बरबाद न हो और साध्वाचार में तनिक भी दूषण न लगे इसका आप पूर्ण ध्यान रखते थे। अनेक ग्रन्थों का सम्पादन एवं संशोधन बड़े परिश्रम पूर्वक आपने किया था। खरतरगच्छ गुर्वावली के हिंदी अनुवाद का संशोधन-कार्य जब आपको सौंपा गया तब ग्रन्थ के शब्द व भाव को ठीक से समझ कर पंक्ति पंक्ति का संशोधन किया। आपके सम्पादित एवं संशोधित ग्रन्थों में प्रश्नोत्तरसार्धशती, पिंडविशुद्धि, नवतत्व संवेदन, चातुर्मासिक व्याख्यान पद्धति, प्रतिक्रमण हेतुगर्भ, कल्पसूत्र संस्कृत टीका, आत्मप्रबोध, पुष्पमाला लघुवृत्ति आदि प्राकृत-संस्कृत ग्रन्थों का तथा जिनकुशलसूरि, मणिधारी जिनचन्द्रसूरि, युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि आदि ग्रन्थों के गुजराती अनुवाद के संशोधन में आपने काफी श्रम किया। सूत्रकृतांग सूत्र भाग १-२ द्वादशपर्वकथा के अतिरिक्त जयसोमोपाध्याय के प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत् शतक का सम्पादन एवं गुजराती अनुवाद बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ के सम्पादन के द्वारा आपने खरतरगच्छ की महान् सेवा की है। आपने और भी कई छोटे मोटे ग्रन्थों का सम्पादन एवं संशोधन नाम और यश की कामना रहित होकर किया। ऐसे महान मुनिवर्य का अभाव बहुत ही खटकता है। श्री जयानंदमुनिजी आदि आपके शिष्यों से भी आशा है, अपने गुरुदेव का अनुकरण कर गच्छ एवं शासन की सेवा करने का प्रयत्न करेंगे।

स्वर्गीय गणिवर्य को श्रीमद्देवचन्द्रजी की रचनाओं के स्वाध्याय एवं प्रचार में विशेष रुचि थी। कई वर्ष पूर्व श्रीमद् देवचन्द्रजी को अप्रसिद्ध रचनाओं का संकलन करके एक पुस्तक प्रकाशित करवाई थी। जिस रहस्य को श्रीमद् देवचन्दजी ने अपूर्व शैली द्वारा प्रकाशित किया है, पूज्य बुद्धिमुनिजी का जीवन बहुत कुछ उन्हीं आदर्शों से ओतप्रोत था।

# श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी और उनका साधु समुदाय

[ भंवरलाल नाहटा ]

बीसवीं शताब्दी के चारित्रनिष्ठ प्रभावक महापुरुषों में श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने अपने जीवन में जैन शासन की उल्लेखनीय सेवाएँ की और गुजरात, राजस्थान, कच्छ और मध्यप्रदेश में उग्रविहार करके खरतरगच्छ की प्रतिष्ठा में समुचित अभिवृद्धि की थी। वे एक तेजस्वी, विद्वान और महान् प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। उन्हें देखकर पूर्वाचार्यों की स्मृति साकार हो जाती थी। खरतरगच्छ की सुविहित परम्परा में अनेक महापुरुषों ने यतिपने के परिग्रह त्याग स्वरूप क्रियोद्धार करके आत्म-साधना क्रम को अक्षुण्ण रखा है उन्हीं में से आप एक थे।

आपका जन्म जोधपुर राज्य के चामु गांव में बाफणा मेघराजजी की धर्मपत्नी अमरादेवी की कुक्षि से सं० १९१३ में हुआ था। पूर्व पुण्य के प्राबल्य से आपको साधारण विद्याध्ययन के पश्चात् गुरुवर्य श्रीयुक्तिअमृत मुनि का संयोग प्राप्त हुआ जिनसे पंचप्रतिक्रमणादि धार्मिक अभ्यास के पश्चात् व्याकरण, न्याय, कोष आदि विषयों का अच्छा ज्ञान हो गया। सदाचारी और त्याग वैराग्यवान् होने से सिद्धान्त पढ़ाने योग्य ज्ञात कर गुरुजी ने आपको सं० १९३६ में यति दीक्षा दी। गुरुमहाराज के साथ अनेक स्थानों की तीर्थयात्रा व धर्मप्रचार हेतु आपने अनेक स्थानों में चातुर्मास किये। रायपुर, नागपुर आदि मध्य प्रदेश में आपने पर्याप्त विचरण किया था। संयम मार्ग में आगे बढ़ने की भावना थी ही। सं० १९४१ में गुरु महाराज का स्वर्गवास हो जाने से वैराग्य परिणति में और भी अभिवृद्धि हुई। परिणाम स्वरूप आपने ज्ञानभंडार, दो उपाश्रय मन्दिर, माल की धर्मशाला आदि लाखों की सम्पत्ति-परिग्रह का त्याग कर क्रियोद्धार किया। इन्दौर में पैंतालीस आगम बांचे। आपने बत्तीस वर्ष पर्यन्त विद्याध्ययन किया था। यति अवस्था में आपने ज्योतिष विषयक ग्रन्थों का भी गहन अध्ययन किया था पर साधु होने के बाद उस ओर लक्ष नहीं दिया। चायणा में एक दीक्षा दी। यति अवस्था के शिष्य तिलोकमुनि भी कुछ दिन साधुपने में रहे थे। सं० १९५२ में उदयपुर चौमासा कर केशरियाजी पधारे। खैरवाड़ा में जैनमन्दिर की प्रतिष्ठा करवायी। सं० १९५३ देसूरी, १९५४ जोधपुर, सं० १९५५ जेसलमेर, १९५६ फलोदी चौमासा करके १९५७ में बीकानेर पधारे और अपनी यतिपने की सारी सम्पत्ति को जिसे पहले ही परित्याग कर चुके थे विधिवत् ट्रस्टी आदि कायमकर संघ को सुपुर्द की। सं० १९५८ जैतारण चौमासा कर गोडवाड़ पंचतीर्थी करते हुए फलोदी निवासी सेठ फूलचन्दजी गोलछा के संघ सहित शत्रुंजय-यात्रा की। सं० १९५९ पालीताना, १९६० पोरबन्दर चातुर्मास कर कच्छ देश में पदार्पण किया। मुंद्रा, मांडवी, बिदड़ा, माडिया, अंजार आदि स्थानों में पांच वर्ष विचरे और पांच उपधान करवाये। दस साधु-साध्वियों को दीक्षा दी। आपश्री के उपदेश से सेठ भापाभाई ने शत्रुंजय का संघ निकाला। सं० १९६६ में आपश्री ने १७ ठाणों से चातुर्मास पालीताना में किया। नन्दीश्वर द्वीप की रचना हुई और पांच साधु-साध्वियों को दीक्षित किया। सं० १९६७ में जामनगर चातुर्मास कर उपधानतप कराया, चार दीक्षाएं हुईं। सं० १९६८ में मोरबी चातुर्मास कर मोदनी, संखेश्वर होते

हुए अहमदाबाद पधारे। १९६९ का चातुर्मास किया। फिर तारंगाजी, खंभात यात्रा कर सं० १९७० का चौमासा पालीताना किया। रतलाम वाले सेठ चाँदमलजी की धर्मपत्नी फूलकुँवर बाई ने आपसे भगवतीसूत्र बंचाया, उपधान करवाया। सोने की मोहरों की प्रभावना और स्वधर्मीवात्सल्यादि किये।

पालीताना से आपश्री भावनगर, तलाजा होते हुए खंभात पधारे। वहाँ से सेठ पानाचन्द भगुभाई की विनती से सूरत पधार कर सं० १९७१ का चौमासा किया। वहाँ साधुओं को दीक्षा दी। तदनन्तर जगड़िया, भरौंच, कावी तीर्थ होते हुए पादरा पधारे। वहाँ से बड़ोदा होते हुए बम्बई पधारे। मोतीशाह सेठ के वंशज सेठ रतनचन्द खीमचन्द, मूलचन्द हीराचंद, प्रेमचन्द कल्याणचन्द, केशरीचन्द कल्याणचन्द आदि संघ ने आपका प्रवेशोत्सव बड़े ठाठ से कराया। लालबाग में सं० १९७२ का चौमासा करके भगवतीसूत्र वाँचा। आपकी विद्वत्ता, वाचनकला और उच्चचरित्र से संघ बड़ा प्रभावित हुआ और आपकी इच्छा न होते हुए भी संघ के अत्यन्त आग्रह से आचार्यपद स्वीकार करना पड़ा। इस अवसर पर लालबाग में पंचतीर्थी की रचना हुई। बीकानेर से श्रीजिनचारित्रसूरिजी को साम्नाय सूरिमंत्र देने के लिए बुलाया गया।

सं० १९७३ का चौमासा भी बम्बई हुआ। विहार करके मार्ग में तीन साधुओं को दीक्षित किया। सूरतवाली कमलाबाई की विनती से बुहारी पधार कर चातुर्मास किया और श्रीवासुपूज्य भगवान के जिनालय की प्रतिष्ठा करवायी। तीन दीक्षाएं दीं। सुरत चातुर्मास के लिए पानाचन्द भगुभाई और कल्याणचन्द घेलाभाई आदि की विशेष विनति से शीतलवाड़ी उपाश्रय में विराजे। पानाचन्द भाई ने जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार बनवाया व उद्यापन किया। इस अवसर पर श्रीजयसागरजी को उपाध्यायपद व सुखसागरजी को प्रवर्त्तक पद से विभूषित किया। प्रेमचंद केशरीचन्द ने उद्यापन किया। धरमाभाई, पानाभाई, मोतीभाई आदि ने चतुर्थ व्रत ग्रहण किया। सं० १९७५-७६ का चातुर्मास करके सं० १९७७ में बड़ोदा चातुर्मास किया। रतलाम वाले सेठजी ने आपसे मालवा पधारने की वीनती की और रुपया-नारेल की प्रभावना की। तदनन्तर आप अहमदाबाद, कपड़वंज, रम्भापुर, झाबुआ होते हुए रतलाम पधारे। उद्यापनादि के अवसर पर रतलाम-नरेश सज्जनसिंहजी भी दर्शनार्थ पधारे। यहाँ पाँच साधु-साध्वियों को दीक्षित कर इन्दौर पधारे। सं० १९७९ का चातुर्मास कर भगवती सूत्र वांचा। रतलाम वाले सेठानीजी ने रुपया नारेल की प्रभावना की। श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी ज्ञान भण्डार की स्थापना हुई। उ० सुमतिसागरजी को महोपाध्याय पद, राजसागरजी को वाचक पद व मणिसागरजी को पण्डित पद से विभूषित किया गया। संघ सहित मांडवगढ़ की यात्रा कर भोपावर, राजगढ़, खाचरोद, सेमलिया होते हुए सैलाना पधारे। सैलाना नरेश आपके उपदेशों से बड़े प्रभावित हुए। तदनन्तर प्रतापगढ़ होते हुए मंदसौर में सं० १९७९ का चातुर्मास किया। वहाँ से नीमच, नींबाहेड़ा, चित्तौड़ होते हुए करहेड़ा पार्श्वनाथ और देलवाड़ा होकर उदयपुर पधारे। कलकत्ता वाले बाबू चंपालाल प्यारेलाल के संघ सहित केशरियाजी पधारे। वहाँ से लौटकर सं० १९८१ का चातुर्मास ठाणा २५ से उदयपुर किया। तदनन्तर राणकपुर पंचतीर्थी करके जालोर, बालोतरा पधारे। सं० १९८२ का चातुर्मास बालोतरा किया। नाकोड़ा पार्श्वनाथ यात्राकरके संघसहित जेसलमेर पधारे। साधु-विहार न होने से मारवाड़ में लोग धर्म विमुख हो गये थे। आपने जिनप्रतिमा के आस्थावान करके बाड़मेर में एक दिन में ४०० मुहपत्तियां तोड़वाकर श्रद्धालु बनाया। सं० १९८३ में जेसलमेर चातुर्मासकर वहां के श्रीजिनभद्रसूरि ज्ञानभंडार के ताड़पत्रीय ग्रन्थों का जीर्णोद्धार कराया। कई प्रतियों के फोटो स्टेट व नकलें करवाई।

कई ग्रन्थों की प्रेसकापियाँ करवा लाये। सं० १९८४ का चौमासा फलोदी करके मा० सु० ५ को बीकानेर पधारे। बीकानेर में आपने तीन चातुर्मास किये जिसमें उपधान, दीक्षा उद्यापनादि हुए। श्री प्रेमचन्दजी सवानची ने उपधान करवाया। उस समय रुग्णावस्था में भी उन्होंने शिष्यों को समस्त आगमों की वाचना दी थी। हमारी कोटड़ी में चातुर्मास होने से हमें धार्मिक अभ्यास, धर्मचर्चा, व्याख्यान-श्रवण, प्रतिक्रमणादि का अच्छा लाभ मिला।

सं० १९८७ के चातुर्मास के अनन्तर आप सूरतवाले श्री फतेचन्द प्रेमचन्द भाई की बीनति से पालीताना पधार कर सं० १९९४ मिती माघ सुदि ११ के दिन स्वर्गवासी हुए।

आपकी प्रतिमाएं शत्रुंजय तलहटी मंदिर-धनावसही दादावाड़ी में, जैनभवन में, और बीकानेर श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि उपाश्रय में है रायपुर के मंदिर में भी आपकी प्रतिमा पूज्यमान है।

आपके उपदेश से इन्दौर, सूरत, बीकानेर आदि ज्ञान-भंडार, पाठशालाएं, कन्याशालाएं, गुम्फी। कल्याणभुवन, चांदभुवन आदि धर्मशालाएँ तथा जिनदत्तसूरि ब्रह्मचर्याश्रम संस्थाओं के स्थापन में आपका उपदेश मुख्य था। आपने बहुत से स्तवन, सज्झाय, गिरनार पूजा आदि कृतियों की रचना की जो कृपाविनोद में प्रकाशित हैं। कल्पसूत्र टीका द्वादश पर्वव्याख्यान व श्रीपाल चरित्र के हिन्दी अनुवाद करके आपने हिन्दी भाषा की बड़ी सेवा की।

सूरत से श्रीजिनदत्तसूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार फण्ड ग्रन्थमाला चालू कर बहुत से महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन करवाया। स्वर्गवास के समय आपकी साधु साध्वी समुदाय लगभग ७० के आस पास था। तदनन्तर नए साधु दीक्षित न होने से पहले २ सभी साधुओं में केवल वयोवृद्ध मुनि मंगलसागर जी और २०-२२ साध्वियाँ ही रहे हैं।

सूरिजी के तीन चौमासा में हमें उन्हें निकट से देखने का अवसर मिला। जो गुण उनमें देखे गये अद्यतन कालीन साधुओं में दुर्लभ हैं। उनमें समय की पाबन्दी बड़ी जबर्दस्त थी। विहार, प्रतिक्रमणादि किसी भी क्रिया में कोई आवे या न आवे, एक मिनिट भी विलम्ब नहीं करते। शास्त्रों का अध्ययन-अभ्यास एवं स्मरणशक्ति भी बहुत गजब की थी। भगवती सूत्र जैसे अर्थ गंभीर आगम को बिना मूल पढ़े सीधा अर्थ करते जाते थे। यह उनके गहरे आगम ज्ञान का परिचायक था।

आप एक आसन पर बैठे हुए घण्टों जाप करते, व्याख्यान देते। आपके पास गुरु-परम्परागत आम्नाय और गच्छमर्यादा आदि का पूर्ण अनुभव था। आपने अपने जीवन में जैन संघ का जो उपकार किया, वर्णनातीत है। आप प्रतिदिन एकाशना व तिथियों के दिन प्रायः उपवास किया करते थे। आप अप्रमत्त संयमपालन में प्रयत्नशील रहते थे।

## आचार्य श्रीजयसागरसूरिजी

श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी का शिष्य-समुदाय बड़ा विशाल था। आपके विद्वान शिष्य आणंदमुनिजी का स्वर्गवास आपके समक्ष ही बहुत पहले हो गया था। द्वितीय शिष्य उपाध्याय जयसागरजी थे जिन्हें आचार्य पद देकर आपने जयसागरसूरिजी बनाया, बड़े विद्वान और क्रियापात्र थे। श्रीजयसागरसूरिजी के छोटे भाई राजसागरजी ने भी सूरिजी के पास दीक्षा ली थी उन्होंने सूरिजी की बहुत सेवा की और छोटी बहिन ने भी दीक्षा ली थी जिनका नाम हेतश्रीजी था, जिनकी शिष्याएं कीर्तिश्रीजी, महेन्द्रश्रीजी आदि हैं, कीर्तिश्रीजी अभी मन्दसौर में विराजमान हैं।

श्रीजयसागरसूरिजी महाराज प्रकाण्ड विद्वान थे। बिना शास्त्र हाथ में लिए भी शृंखलाबद्ध व्याख्यान देने का अच्छा अभ्यास था। आपने श्रीजिनदत्तसूरि चरित्र दो भागों में तथा गणधर-सार्धशतक भाषान्तर आदि कई पुस्तकें लिखी थीं। आप ठाम चोविहार करते थे, अपने व्रत-नियमों में बड़े दृढ़ थे। बीकानेर की भयंकर गर्मी में

भी आपने पानी लेना स्वीकार नहीं किया और समाधि पूर्वक अपनी देह का त्याग कर दिया। बीकानेर रेलदादाजी में आपके अग्निसंस्कार स्थान में स्मारक विद्यमान है। गढसिवाणा, मोकलसर आदि में आपने चातुर्मास किए थे गढसिवाणा में आपके ग्रन्थों का दादावाड़ी में संग्रह विद्यमान है। श्रीजिनजयसागरसूरिजी कृत श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि चरित्र ५ सर्ग और १५७० पद्यों में सं० १९९४ फा० सु० १३ पालीताना में रचित है जो जिनपालोपाध्यायकृत द्वादशकुलकवृत्ति के साथ श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभंडार पालीताना से प्रकाशित है। इसमें इन्होंने अपना जन्म १९४३ दीक्षा १९५६ उपाध्याय पद १९७६ व आचार्य पद १९९० पालीताना में होना लिखा है।

## उपाध्याय सुखसागरजी

श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी के शिष्यों में उपाध्यायजी का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आप प्रसिद्ध वक्ता थे। आपकी बुलन्द वाणी बहुत दूर-दूर तक सुनाई देती थी। आप अधिकतर गुरुमहाराज के साथ विचरे और धार्मिक क्रियाएं कराने आदि से संघ को सम्भालने का काम आपके जिम्मे था। आप ने संस्कृत, काव्य, अलंकार आदि का भी अच्छा अभ्यास किया था। बीकानेर चातुर्मास के समय आपको हजारों श्लोक कण्ठस्थ थे। ग्रन्थ सम्पादनादि कामों में आप हरदम लगे रहते और श्रीजिनदत्तसूरि प्राचीन पुस्तकोद्धार फंड सूरत से सर्व प्रथम गणधर सार्द्धशतक प्रकरण व बाद में पचासों ग्रन्थों का प्रकाशन हो पाये वह आप के ही परिश्रम और उपदेशों का परिणाम था। गुरुमहाराज के स्वर्गवास के पश्चात् भी आपने वह काम जारी रखा और फलस्वरूप बहुत ग्रन्थ प्रकाश में आये।

आप इन्दौर के निवासी मराठा जाति के थे। सेठ कानमलजी के परिचय में आने पर उल्लासपूर्वक उनके सहाय्य से गुरुमहाराज के पास कच्छ में जाकर दीक्षित हुए। आपका नाम सुखसागर रखा गया। शास्त्राभ्यास करके विद्वान हुए और व्याख्यान-वाणी में निष्णात हो गए। सं० १९७४ मा० सु० १० को गुरुमहाराज ने सूरत में मंगलसागरजी को दीक्षित कर आपके शिष्य रूप में प्रसिद्ध किया। उस समय कृपाचन्द्रसूरिजी १८ ठाणों से थे, इनका १९वां नंबर था। सूरिजी के प्रत्येक कार्यों में आपका पूरा हाथ था। इन्दौर में श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरि ज्ञानभण्डार की स्थापना की। आपको सूरिजी ने प्रवर्त्तक पद से विभूषित किया। बालोतरा चौमासा में बहुत से स्थानकवासियों को उपदेश देकर जिनप्रतिमा के प्रति श्रद्धालु बनाया। मध्याह्न में आप जसोल गांव में व्याख्यान देने जाते व शास्त्रचर्चा व धर्मोपदेश देकर जिनप्रतिमा-पूजा की पुष्टि करते थे। आप उपधान आदि की प्रेरणा करके स्थान-स्थान पर करवाते, संस्थाएं स्थापित करवाते एवं सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध क्रान्तिकारी उपदेश देकर समाज में फैले हुए मिथ्यात्व को दूर कर व्रत-पच्चक्खाण दिलाते थे। आपके कई चातुर्मास गुरुमहाराज के साथ व कई अलग भी हुए।

जैसलमेर चौमासे में ज्ञानभण्डार के जीर्णोद्धार, व प्राचीन प्रतियों की नकलें फोटोस्टेट करवाने में आपका पूरा योगदान था। फलौदी, बीकानेर में भी उपधान आदि हुए। फिर गुरुमहाराज के साथ पालीताना पधारे। सं० १९९२ में शत्रुञ्जय तलहटी की धनवसही में आपकी प्रेरणा से भव्य दादावाड़ी हुई जिसमें श्रीपूज्य श्रीजिनचारित्रसूरिजी के पास प्रतिष्ठा सम्पन्न करवायी उस समय आप उपाध्याय पद से विभूषित हुए एवं मुनि कान्तिसागरजी को दीक्षा हुई। इसके बाद सूरत, अमलनेर, बम्बई आदि में चातुर्मास किया। ग्रन्थ सम्पादन-प्रकाशन तो सतत् चालू ही था। नागपुर, सिवनी, बालाघाट, गोंदिया आदि स्थानों में चातुर्मास किये। उपधान तप आदि हुए। गोंदिया का पन्द्रह वर्षों से चला आता मनमुटाव दूर कर

के सं० १९९९ के माघ महीने में समारोह पूर्वक मन्दिर की प्रतिष्ठा करवायी। तदनन्तर राजनांदगांव के चातुर्मास में भी उपधान आदि करवाये। रायपुर होकर महासमुन्द में चातुर्मास किया। धमतरी पधारकर सं० २००१ के फाल्गुन में अञ्जनशलाका प्रतिष्ठा, गुरुमूर्ति प्रतिष्ठादि विशाल रूप से उत्सव करवाये। कान्तिसागरजी की प्रेरणा से महाकोशल जैन सम्मेलन बुलाया गया जिसमें अनेक विद्वान पधारे थे। फिर रायपुर चातुर्मास कर सम्मेतशिखर महातीर्थ की यात्रार्थ पधारे। कलकत्ता संघ की वीनती से दो चातुर्मास किये, बड़ा ठाठ रहा। फिर पटना और वाराणसी में चातुर्मास किये, फिर मिर्जापुर, रीवां होते हुए जबलपुर पधारे। वहाँ ध्वजदण्डारोपण, अनेक तपश्चर्यादि के उत्सव हुए। वहाँ से सिवनी होते हुए राजनांदगांव में सं० २००८ का चातुर्मास किया। आपके उपदेश से नवीन दादावाड़ी का निर्माण होकर प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। वहां से सिवनी हो भोपाल व लश्कर, ग्वालियर चातुर्मास किये। जयपुर पधारकर चातुर्मास किया। अजमेर दादासाहब के अष्टम शताब्दी उत्सव में भाग लेकर उदयपुर चातुर्मास किया। तदनन्तर गढसिवाणा चातुर्मास कर गोगोलाव जिनालय की प्रतिष्ठा कराई। गुजरात छोड़े बहुत वर्ष हो गये थे, अहमदाबाद संघ के आग्रह से वहां चातुर्मास कर पालीताना पधारे सं० २०१९ में उपधान तप हुआ। गिरिराज पर विमलवसही में दादासाहब की प्रतिष्ठा के समय जिनदत्तसूरि सेवासंघ के अधिवेशन व साधु सम्मेलन आदि में सब से मिलना हुआ।

पालीताना-जैन भवन में चातुर्मास किये। आपकी प्रेरणा से जैनभवन की भूमि पर गुरुमन्दिर का निर्माण हुआ। दादा साहब व गुरुमूर्तियों की प्रतिष्ठा हुई। सं० २०२२ में घण्टाकर्ण महावीर की प्रतिष्ठा हुई। पालनपुर के गुरु भक्त केशरिया कम्पनी वालों के तरफ से ५१ किलो का महाघण्ट प्रतिष्ठित किया। दादासाहब के चित्र, पंचप्रतिक्रमण एवं अन्य प्रकाशन कार्य होते रहे। वृद्धावस्था के कारण गिरिराज की छाया में ही विराजमान रह कर सं० २०२४ के वैशाख सुदि ९ को आपका स्वर्गवास हो गया।



# पुरातत्व एवं कलामर्मज्ञ प्रतिभामूर्ति मुनि श्रीकान्तिसागरजी को श्रद्धांजलि

[ लेखक-अगरचन्द नाहटा ]

संसार में दो तरह के विशिष्ट व्यक्ति मिलते हैं। जिनमें से किसी में तो श्रद्धा की प्रधानता होती है किसी में प्रतिभा की। वैसे प्रतिभा के विकास के लिए श्रद्धा भी आवश्यकता होती है और अध्ययन व साधना में परिश्रम करने से प्रतिभा चमक उठती है। फिर भी जन्म जात प्रतिभा कुछ विरला ही होती है, जो बहुत परिश्रम करने पर भी प्रायः प्राप्त नहीं होती। अभी-अभी जयपुर में जिन उद्भट-रत्नाकर पुरातत्वज्ञ और कलामर्मज्ञ मुनिश्री कान्तिसागरजी का असामयिक स्वर्गवास ता: २८ सितम्बर को शाम को हो गया है, वे ऐसे ही प्रतिभा सम्पन्न विद्वान मुनि थे। जिनका संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है।

बीसवीं शताब्दी के आचार्यों में खरतरगच्छ के आचार्य श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी बड़े गीतार्थ विद्वान और क्रियावान आचार्य हो गये हैं। आप पहले बीकानेर के यति सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। फिर उन्होंने सारे परिग्रह को बीकानेर के खरतरगच्छ संघ को सुपुर्द करके

क्रियोद्धार करते हुए साधु हो गये। आगमों आदि का विशेष अध्ययन करके आचार्य बने। उनके शिष्य उपाध्याय सुखसागरजी ने अनेकों ग्रन्थों को प्रकाशित कराया और अच्छे वक्ता थे। उनके लघुशिष्य स्वर्गीय कान्तिसागरजी हुए। जिनके बड़े गुरुभाई मंगलसागरजी अभी पालीताना में हैं।

जन्मत: वे सौराष्ट्र जामनगर के थे। छोटी अवस्था में ही जैनेतर कुल में जन्म लेने पर भी उ० सुखसागरजी के दीक्षित शिष्य बने। अपनी असाधारण प्रतिभा से थोड़े समय में ही उन्होंने अनेक विषयों में अच्छी गति प्राप्त कर ली। हिन्दी भाषा पर उनका बहुत अच्छा अधिकार हो गया। संस्कृतनिष्ठ प्राञ्जल भाषामें उनके लिखे हुए ग्रन्थ एवं लेख विद्वद्-मान्य हुए। 'खण्डहरों का वैभव' और 'खाज की पगडंडिया' ये दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ तो भारतीय ज्ञानपीठ जैसी प्रसिद्ध संस्था से प्रकाशित हुए। उत्तरप्रदेश सरकार ने इनकी श्रेष्ठता पर पुरस्कार भी घोषित किया। विशालभारत, अनेकान्त, भारतीय, साहित्य, नागरी प्रचारणी पत्रिका आदि हिन्दी की कई प्रसिद्ध और विशिष्ट पत्रिकाओं में आपके महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते रहे हैं। जिनसे हिन्दी साहित्य में आपका अच्छा स्थान बन गया। 'ज्ञानोदय' आदि कई पत्रों के तो आप सम्पादकमण्डल में भी रहे हैं।

वक्तृत्वकला भी आपकी उच्चकोटि की थी साधारणतया बहुत से व्यक्ति अच्छे लेखक तो होते हैं वे उत्कृष्ट वक्ता नहीं होते। या वक्ता होते हैं तो अच्छे लेखक नहीं होते। पर आप दोनों में समान गति रखते थे। अर्थात् अच्छे लेखक और प्रभावशाली वक्ता दोनों रूपों में आपने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

पुरातत्व और कला के तो आप मर्मज्ञ विद्वान थे। जैनसाधुओं और आचार्यों में तो इन विषयों के आप सर्वोच्च विद्वान माने जा सकते हैं। प्राचीन मन्दिरों, मूर्तियों और कलावशेषों के खोज एवं अध्ययन में आपकी जबरदस्त रुचि थी। मध्यप्रदेश के अनेक गांव नगरों में घूमकर आपने उपरोक्त दोनों ग्रन्थ और बहुत से महत्वपूर्ण लेख लिखे थे। छोटी-छोटी बातों पर भी आप बहुत सूक्ष्मता से ध्यान देते थे और थोड़ी सी बात को अपनी प्रतिभा के बल पर बहुत विस्तार से और बड़े अच्छे रूप में प्रगट कर सकते थे। इतिहास, पुरातत्व और कला में तो आपकी गहरी पैठ थी। जबलपुर चौमासे के समय आपने काफी प्राचीन अवशेषों (मूर्तिखण्डों) को इधर उधर से बड़े प्रयत्न पूर्वक संग्रह किया था। जिसे मध्यप्रदेश सरकार ने अधिकार में ले लिया। राजस्थान में रहते हुए आपने उदयपुर महाराणा के इष्ट देव-एकलिंगजी पर एक बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ तैयार किया था। आस-पास के नागदा आदि प्राचीन कलाधामों-जैन मन्दिरों व मूर्तियों पर आपने नया प्रकाश डाला। सैकड़ों कलापूर्ण प्राचीन अवशेषों के फोटो लिवाये। खेद है आप के घोर परिश्रम से तैयार किया हुआ एकलिंग जी वाला महत्वपूर्ण बृहद् ग्रंथ अभी तक प्रकाश में नहीं आ सका। प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति जिस किसी विषय को हाथ में लेता है उसी में अद्भुत चमत्कार पैदा कर देता है। उदयपुर रहते हुए कई कारणों से आपको आर्युवेद का अध्ययन व प्रयोग करना आवश्यक हो गया, तब आपने बहुत से असाध्य रोगियों को रोग मुक्त कर दिया था। आयुर्वेदिक सम्बन्धी अनुभूत प्रयोगों का एक संग्रह "आयुर्वेदना अनुभूत प्रयोगो" भाग १ नामक ग्रन्थ आपने गुजराती में प्रकाशित किया है। वैसे और भी कई ग्रन्थ आप प्रकाशित करने वाले थे। पर आयुष्य कर्म ने साथ नहीं दिया। 'जैन धातु प्रतिमा लेख,' नगर वर्णनात्मक हिन्दी पद्य संग्रह आदि आपके और भी ग्रन्थ प्रकाशित हैं। संगीत के भी आप अच्छे ज्ञाता थे। बुलन्द आवाज और अच्छा कंठ होने से आप 'अजित शान्ति स्तोत्र' आदि को ताल लय बद्ध बड़े अच्छे रूप में गाते थे।

पुरातत्व और कला के प्रति आपकी बाल्यकाल से ही गहरी अनुरक्ति रही है। खोज की पगडण्डियां के प्रारम्भिक वक्तव्य में आप ने लिखा है कि "बचपन से ही मुझे निर्जन वन व एकांत खण्डहरों से विशेष स्नेह रहा है। अपनी जन्मभूमि जामनगर की बात लिख रहा हूं। वहां का खण्डित दुर्ग ही मेरा क्रीडास्थल रहा है। आज से २२ वर्ष पूर्व की बात है—सरोवर के किनारे पर टूटे हुए खण्डहरों की लम्बी पंक्ति थी। जहां बारहमास प्रकृति स्वाभाविक शृंगार किये रहती है। कहना चाहिये वे खण्डहर संस्कृति, प्रकृति और कला के समन्वयात्मक केन्द्र थे। उनदिनों में गुजराती चौथी कक्षा में पढ़ता था। पढ़ने में भारी परेशानी का अनुभव होता था। शाला के समय अपने बस्ते लेकर हमलोग सरोवर तटवर्ती खण्डहरों में छिपा देते और वहीं खेला करते। खण्डहर बनाने वालों के प्रति उन दिनों भी हमारे बाल-हृदय में अपार श्रद्धा थी। जैन कुल में उत्पन्न न होते हुए भी अल्पवय में मैंने जैन मुनि-दीक्षा अंगीकार की। सौभाग्यवश चातुर्मास के लिये बंबई जाना पड़ा। वहां प्राचीन गुजराती भाषा और साहित्य के गम्भीर गवेषक श्रीयुक्त मोहनलाल भाई दलीचन्द देसाई एडवोकेट, भारतीय विद्या भवन के प्रधान संचालक-पुरातत्वाचार्यमुनि श्रीजिनविजय और प्रख्यात पुरातत्वज्ञ डा० हंसमुखलाल धीरजलाल सांकलिया आदि अध्यवसायी अन्वेषकों का सत्संग मिला। उनके दीर्घ अनुभव द्वारा शोधविषयक जो मार्ग दर्शन मिला उससे मेरी अभिरुचि और भी गहरी होती गयी। मेरे मानसिक विकास पर और कलापरक दृष्टिदान में उपर्युक्त विद्वत् त्रिपुटी ने जो श्रम किया है, फलस्वरूप खण्डहरों का वैभव एवं प्रस्तुत पुस्तक है।"

उपरोक्त दोनों पुस्तकें सन् १९५३ में प्रकाशित हुई थी। 'खोज की पगडण्डियों' की प्रस्तावना डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वान ने लिखी थी। उन्होंने लिखा है "श्री मुनि कान्तिसागरजी प्राचीन विद्याओं के मर्मज्ञ अनुसन्धाता हैं। मुनिजी प्राचीन स्थानों को देखकर स्वयं आनन्द विह्वल होते हैं और अपने पाठकों को भी उस आनन्द का उपभोक्ता बना देते हैं। उनकी दृष्टि बहुत ही व्यापक एवं उदार है। जैन शास्त्रों के वे अच्छे ज्ञाता भी हैं। मुनिजी के कहने का ढंग भी बहुत रोचक है। बीच-बीच में उन्होंने व्यंग विनोद की भी हल्की छीटें रख दी है। इतिहास को सहज और रसमय बनाने का उनका प्रयत्न बहुत ही अभिनन्दनीय है।"

करीब डेढ़ साल पहले जयपुर संघ के अनुरोध से वे लम्बा विहार करके पालीताना से जयपुर चौमासा करने पहुँचे तो अस्वस्थ हो गये। उसी हालत में पर्यूषणा के व्याख्यान आदि का श्रम अधिक पड़ा। तब से उनका शरीर क्षीण होने लगा। जयपुर संघ ने उपचार में कोई कमी नहीं रखी पर स्वास्थ्य गिरता ही गया और ता० २८ सितम्बर की शाम को हृदयगति अवरुद्ध हो के स्वर्गवास हो गया। जैन संघ ने एक नामी लेखक और उद्भट पुरातत्वज्ञ विद्वान और प्रतिभाशाली मुनि को खो दिया जिसकी पूर्ति होनी कठिन है। मुनिजी के प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

# आचार्य श्रीजिनमणिसागरसूरि

[ भँवरलाल नाहटा ]

श्रीक्षमाकल्याणजी महाराज के संघाड़े में श्रीजिनमणिसागरसूरिजी महाराज एक विशिष्ट विद्वान, लेखक, शान्तमूर्ति और सत्क्रियाशील साधु हुए हैं। वे निस्पृह, त्यागी और सुविहित क्रियाओं, विधि-मर्यादाओं के रक्षक थे। आपका जन्म संवत् १९४३ में रूपावटी गांव के पोरवाड़ गुलाबचन्दजी की पत्नी पानोबाई की कुक्षि से हुआ। आपका मनजी नाम था और मनमौजी ऐसे थे कि साधुओं के पास तो नहीं जाते पर सांपों से खेलते थे, उन्हें उनका कोई भय नहीं था। एक बार गाँव वालों के साथ सिद्धाचलजी यात्रार्थ चैत्रीपूनम पर गये और वहाँ पर आपको अपूर्व शान्ति मिली। आपका हृदय आत्मकल्याण करने और प्रभु के मार्ग पर चलने के लिये लालायित हो गया। माता-पिता वृद्ध थे, लोगों ने गाँव जाकर कहा—माता पिता आये पर मनजी तो अपनी धुन के पक्के थे भगवान के समक्ष सर्व त्याग का व्रत ले लिया था। माता-पिता को निरुपाय होकर आज्ञा देनी पड़ी। आपने सं० १९६० वैशाख सुदि २ को सिद्धाचलजी में मुनि सुमतिसागरजी के पास दीक्षा ली। दीक्षा से दो दिन पूर्व एक वृद्ध मुनिराज ने कहा—तुम तपागच्छ के पोरवाड़ हो, खरतरगच्छ में क्यों दीक्षा लेते हो! पर उन्होंने साधा धर्म के नाम पर यह भेद बुद्धि क्यों? मुझे आत्म कल्याण करना है, शास्त्रों का अध्ययन करके सही मार्ग पर चलना ही श्रेयस्कर है न कि गड्डर प्रवाह से। उन्होंने शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ किया और सं० १९६४ में तो संघ के आग्रह और उपकार बुद्धि से गुरु-शिष्यों ने रायपुर और राजनांदगाँव अलग अलग चातुर्मास किया। योगिराज श्रीचिदानन्दजी (द्वितीय) कृत 'आत्मभ्रमोच्छेदन भानु' नामक ८० पृष्ठ की पुस्तिका को विस्तृत कर ३५० पेज में उन्हीं के नाम से प्रकाशन करवाया, यह घटना आपकी निःस्वार्थता और उदारता को प्रकट करती है।

उस समय समेतशिखरजी के अधिकार को लेकर श्वेताम्बर और दिगम्बर समाज में बड़ा भारी केस चल रहा था, उधर सरकार अपनी सेना के लिये बूचड़खाना खोलना चाहती थी। श्वे० समाज की ओर से पैरवी करने वाले कलकत्ता के राय बद्रीदासजी थे। उन्होंने कार्य सिद्धि के लिये अध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता महसूस की और देवी सहायता प्राप्त करने के लिये साधु समाज से निवेदन किया। समय इतना कम था कि पैदल पहुँचना सम्भव नहीं था। सुमतिसागरजी के पास यह प्रस्ताव आया तो उन्होंने मणिसागरजी को माननीय गुलाबचंदजी ढड्ढा और धनराजजी बोथरा के साथ रेल में सम्मेतशिखरजी भेज दिया। मणिसागरजी की तरुणावस्था थी, धुन के पक्के और गुरु आम्नाय के बल पर उन्होंने तपश्चर्यापूर्वक सम्मेतशिखरजी पर जाकर जो अनुष्ठान किया, उससे श्वेताम्बर समाज को पूर्ण सफलता प्राप्त हो गई। समाज में इनकी बहुत बड़ी प्रतिष्ठा बढी, कलकत्ता संघ ने इन्हें कलकत्ता बुलाया और छः वर्ष कलकत्ता बिताये। अनुष्ठान के लिये रेल में शिखरजी आने का दण्ड प्रायश्चित मांगा तो उस समय के महामुनि कृपाचन्दजी, आदि खरतरगच्छ एवं तपागच्छ के मुनियों की ओर से निर्णय मिला कि यह दण्ड देने का काम नहीं, शासन प्रभावना के कार्य में प्रायश्चित्त के उपवासादि तथा ईर्यापथिकी नित्य-क्रिया ही पर्याप्त है।

सं० १९९९ में विद्याविजयजी ने "खरतरगच्छ वालों की पर्युषणादि क्रियायें लौकिक पंचांगानुसार होने से अशास्त्रीय हैं, इस विषय का विज्ञापन निकाला। राय बद्रीदास जी आदि खरतरगच्छ के श्रावकों के आग्रह से उन्होंने इस भ्रमपूर्ण प्रचार को रोकने के लिये विद्वत्तापूर्ण उत्तर देने की प्रार्थना की तो आपने शास्त्र प्रमाण के हेतु ग्रन्थ सुलभ करने के लिये लम्बी सूची दी। बद्रीदासजी ने तत्काल पाटण, खंभात आदि स्थानों से प्राचीन ताडपत्रीय और कागज की हस्तलिखित प्रतियां मंगा कर प्रस्तुत की। मणिसागरजी ने पहले तो एक सारगर्भित छोटा लेख लिखकर जिनयशः सूरिजी, शिवजीरामजी, कृपाचन्दजी व प्रवर्तिनी पुण्यश्रीजी आदि को भेजा। सबने मणिसागरजी के लेख की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की, उसे प्रकाशित करवाया यही लेख आगे चलकर एक हजार पेज के 'बृहत्पर्युषणा निर्णय' ग्रन्थरूप में प्रकाशित हुआ।

कलकत्ते से विचरते हुए बम्बई पधारने पर कृपाचन्द्र-सूरिजी ने सुमतिसागरजी को उपाध्याय पद व मणिसागरजी को पन्डित पद से विभूषित किया। सं० १९७- में तपा-गच्छ के कई महारथी बम्बई में आ विराजे और तपागच्छ की ओर से कलकत्ते वाले विवाद को उठाने के साथ साथ प्रभु महावीर के षट् कल्याणक मान्यता का भी विरोध किया। दोनों ओर से इस विवाद में चालीसों पर्चे निकले। मणिसागरजी द्वारा शास्त्रार्थ का आह्वान करने पर कोई उनका सामना न कर सका जिससे सर्वत्र खरतरगच्छ का सिक्का जम गया और कोई खरतरगच्छ की मान्यता को अशास्त्रीय कहने का दुस्साहस न कर सका।

जैन समाज में मणिसागरजी अपने पांडित्य और शास्त्रार्थ के लिये प्रसिद्धि पा चुके थे। देवद्रव्य के विषय को लेकर सागरानन्दसूरिजी और विजयधर्मसूरिजी के मतभेद-विवाद चलता था। मणिसागरजी भी शास्त्र चर्चा के लिये इन्दौर पधारे। और विजयधर्मसूरिजी से पत्र व्यवहार किया। जब टालमटूल होने लगी तो मणिसागरजी ने देवद्रव्य निर्णय नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। इन्दौर में स्थानकवासी प्रसिद्धवक्ता चौथमल जी के शिष्य ने 'गुरु गुण महिमा' पुस्तिका में मुखवस्त्रिका को लेकर विवाद खड़ा किया जिसमें मूर्तिपूजक समाज की निन्दा की गई। आचार्य श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी वहां पर थे। उपधान चलता था, पूर्णाहुति पर सुमतिसागरजी को महोपाध्याय पद व मणिसागरजी को पन्यास पद दिया गया। स्थानकवासियों की ओर से आचार्य श्री के पास पुस्तक का उत्तर मांगा गया तो शान्तमूर्ति आचार्य महाराज ने मणिसागरजी की ओर साभिप्राय देखा। उन्होंने दूसरे ही दिन विज्ञप्ति निकालकर शास्त्रार्थ के लिए आह्वान किया, पर निर्धारित मिती से पूर्व ही मुनि चौथमल जी अपने शिष्य सहित विहार कर गये। मणिसागरजी चुप न बैठे उन्होंने आगम प्रमाण सह 'आगमानुसार मुँहपत्ति का निर्णय और जाहिर उद्घोषणा नं० १-२-३ पुस्तक लिखकर प्रकाशित करवा दी।

वर्तमान काल में हिन्दी भाषा में जैनागमों के प्रकाशन से जनता का विशेष उपकार हो सकता है, इस उद्देश्य से आपने कोटा में जैन प्रिन्टिंग प्रेस की स्थापना करवाई और इसके द्वारा ७-८ आगमों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाये। गुरुजी की वृद्धावस्था और प्रकाशनादि के लिए आप १४ वर्ष तक कोटा के आस-पास रहे। प्रकाशन व्यवस्था आदि बन्धन उनके त्यागी जीवन के लिये बाधक था, अतः सब कुछ छोड़कर निकल पड़े और केशरियाजी यात्रा करके आबू में योगिराज शांतिविजयजी महाराज के पास गये। वे उनके पास एक वर्ष रहे, रात्रि में घण्टों एकान्त वार्तालाप करते, गुप्त साधना करते। योगिराज ने आपको उपाध्याय पद से अलंकृत किया। मणिसागरजी में यह विशेषता थी कि प्रति-पक्षियों की कड़ी आलोचना करते हुए भी शिष्ट भाषा

और प्रेम व्यवहार रखते थे। योगिराज ने आपकी योग्यता, विद्वत्ता, निराभिमानीपन आदि का वड़ा आदर किया।

आवू से विहार कर मणिसागरजी लोहावट पधारे। श्रीहरिसागरजी महाराज और आपके गुरु महाराज एक ही गुरु के शिष्य थे अत: छोटे होने पर भी वे काका गुरु थे। दोनों का कभी परस्पर मिलना नहीं हुआ परन्तु आचार्यश्री इन्हें गच्छ का 'प्राण' समझते थे और वर्षों से वुलाते थे, अत: लोहावट जाकर आचार्य महाराज से वड़े प्रेम पूर्वक मिले। श्रावकों के आग्रह से फलोदी पधारे। फलोदी चातुर्मास में कई वालक आपके पास धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने आते थे उनमें से वस्तीमल झावक ने मित्रों के वीच दीक्षा लेने की प्रतिज्ञा कर ली और वह दीक्षा मणिसागरजी से ही लेने के कृतप्रतिज्ञ थे। मणिसागरजी ने कभी किसी को दीक्षित नहीं किया था पर वस्तीमल के निश्चय के आगे उनको दीक्षा देकर मुनि विनयसागर वनाना पड़ा। आचार्य महाराज और वीरपुत्र आनंदसागरजी के पारस्परिक मतभेद को मिटा कर गच्छ में ऐक्य स्थापित करने के लिये आपने सत्प्रयत्न करके फलोदी में एक वृहत्सम्मेलन वुला कर संगठन किया।

कँवलागच्छीय मुनि ज्ञानसुन्दरजी ने एक पुस्तक लिखी—'क्या पुरुषों की परिषद् में जैन साध्वी व्याख्यान दे सकती है?' इसे पढ़कर आपकी शास्त्रार्थ-प्रवृत्ति जाग उठी और 'जैनध्वज में' 'हाँ!' साध्वी को व्याख्यान देने का अधिकार है" शीर्षक लेखमाला २० अंकों में निकाली जो "साध्वी व्याख्यान निर्णय" नामक पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित हुई।

आपने उपधान तप की आवश्यकता महसूस कर छ: उपधान कराये थे। सं० २००० में वीकानेर में पौष कृष्णा १ को उपधान कराया और मालारोपण के अवसर पर स्वनामधन्य जैनाचार्य श्रीजिनऋद्धिसूरिजी महाराज ने आपको आचार्य पदसे अलंकृत किया। यद्यपि आपको पद-लालसा लेशमात्र भी नहीं थी। सम्मेतशिखर तीर्थ रक्षा के समय २२ वर्ष की उम्र में कलकत्ता संघ ने आचार्य पद देना चाहा तो आपने सर्वथा अस्वीकार कर दिया था पर वीकानेर में संघ के आग्रह और आचार्य महाराज की आज्ञा को शिरोधार्य करना पड़ा।

सं० २००३ कोटा चातुर्मास में आपने गुणचंद्र, भक्तिचन्द्र और गौतमचन्दजी को दीक्षित किया। आचार्य श्रीजिनरत्नसूरिजी, उपाध्याय लब्धिमुनिजी आदि के साथ चतुर्मास कर अन्यान्य स्थानों में विचरण करने लगे। मालवाड़ा में आपने उपधान तप करवाया और मालारोपण महोत्सव पर विनयसागरजी को उपाध्याय पद दिया। इसके डेढ़ महीने वाद ता० ६ फरवरी १९५१ को वे स्वर्गवासी हो गये।

आप वड़े गीतार्थ, सरल और आत्मार्थी थे। २२ घंटे तक का मौन धारण करते और १५-१६ घंटे जप-ध्यान में विताते थे। विनय-वेयावच्च का अद्भुत गुण था, अपने गुरुमहाराज की तो सेवा की ही पर साथियों द्वारा त्यक्त इतर साधुओं की महीनों सेवा की। मलमूत्र उठाया। आप साध्वी और श्राविका समाज से कम परिचय रखते। विहार में आरम्भ आदि न हो इसलिए रसोइया आदि साथ नहीं रखते। जैनों का घर न होता तो मार्गदर्शक के पास खाखरे आदि लेकर गाँव-गोठ में छाछ आदि लेकर विहार करते रहते। विहार में गरम पानी आदि की व्यवस्था-आरम्भ से वचकर लौंग-त्रिफलादि के प्राशुक जल से संयम साधना करते थे। आपको नाम का मोह नहीं था। लम्वे जीवन में हजारों ग्रन्थ आये, अध्ययनकर ज्ञानभंडार आदि में दे दिये पर अपने नाम से कोई ज्ञानभंडार आदि संस्था नहीं खोली। निस्पृह, शान्त और साधुता की मूर्त्ति मणिसागरजी वास्तव में एक मणि ही थे। उनका आदर्श जीवन साधकों के लिए प्रेरणासूत्र वने।

# खरतरगच्छ के साहित्यसर्जक श्रावकगण

[ लेखक—अगरचन्द नाहटा ]

जैनधर्म महान् तीर्थंकरों की एक साधना परम्परा है। साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका चतुर्विध संघ-तीर्थ की स्थापना तीर्थङ्कर करते हैं। साधना के दो मुख्य मार्ग उन्होंने बतलाये हैं, अणगार धर्म और सागार धर्म। साधु-साध्वी अणगार धर्म का व श्रावक श्राविका आगार धर्म का पालन करते हैं अर्थात् साधु-साध्वी पंचमहाव्रतधारी होते हैं और श्रावक-श्राविका सम्यक्त्व तथा बारह व्रतों के धारक होते हैं। साधु-साध्वी की आवश्यकताएं सीमित होने से उनका अधिकांश समय स्वाध्याय ध्यान और तप संयम में व्यतीत होता है अतः उन्हें अपनी ज्ञान-वृद्धि, साधु-साध्वियों को वाचना प्रदान, श्रावक-श्राविकादि भव्यों को धर्मोपदेश देनेके साथ-साथ ग्रन्थ-निर्माण और लेखन के लिए काफी समय मिल जाता इसलिए अधिकांश जैनसाहित्य जैनाचार्यों व मुनियों द्वारा रचित प्राप्त है। पर श्रावक समाज अपनी आजीविका व गृह-व्यापार में अधिक व्यस्त रहता है इसलिए उनके रचित साहित्य अल्प परिमाण में प्राप्त होता है। खरतरगच्छ में भी आचार्यों व मुनियों का जितना विशाल साहित्य उपलब्ध है, उसके अनुपात में श्रावकों का रचित साहित्य बहुत ही कम है। फिर भी समय-समय पर जिन विद्वान एवं कवि श्रावकों ने प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश राजस्थानी-गुजराती-हिन्दी आदि में जो रचना की है उनका यथाज्ञात विवरण यहां प्रकाशित किया जा रहा है।

ग्यारहवीं शताब्दी के आचार्य वर्द्धमानसूरि और उनके विद्वान शिष्य जिनेश्वरसूरि से खरतरगच्छ की विशिष्ट परम्परा प्रारम्भ होती है। सं० १४२२ में खरतरगच्छ के रुद्रपल्लीय शाखा के सोमतिलकसूरि रचित सम्यक्त्व सप्ततिका वृत्ति के अनुसार ग्यारहवीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध तिलकमंजरी नामक अप्रतिम कथा ग्रन्थ के प्रणेता महाकवि धनपाल के पिता जिनेश्वरसूरि के मित्र थे और धनपाल के भ्राता शोभन (चतुर्विंशति के प्रणेता) जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। इस प्रवाद के अनुसार खरतरगच्छ के प्रथम श्रावक कवि धनपाल माने जा सकते हैं। महाकवि धनपाल की तिलकमंजरी के अतिरिक्त ऋषभपंचाशिका, सत्यपुरीय महावीर उत्साह, जिनपूजा व श्रावक-विधि प्रकरण आदि रचनाएं प्राप्त है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश तीनों भाषाओं में प्राप्त ये रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं।

श्रीजिनदत्तसूरिजी के उल्लेखानुसार श्रीजिनवल्लभसूरिजी कालीदास के सदृश विशिष्ट कवि थे। उनकेभक्त नागोर निवासी धनदेव श्रावक के पुत्र पद्मानंद संस्कृत भाषा के अच्छे कवि थे। उनके रचित वैराग्य शतक प्रकाशित हो चुका है।

श्रीजिनदत्तसूरिजी के श्रावक पल्हकवि रचित जिनदत्तसूरि स्तुति की ताड़पत्रीय प्रति जैसलमेर भंडार में प्राप्त है। यह स्तुति हमारे 'ऐतिहासिक जैनकाव्य-संग्रह' में प्रकाशित है। जिनदत्तसूरिजी के अन्य श्रावक बपूरमल ने प्रश्नवर्द्ध परिकरणम् ( गा० ४५ ) मणिधारी जिनचन्द्रसूरिजी के समय में बनाया था जिसे हम 'मणिधारी जिनचन्द्रसूरि' की प्रथमावृत्ति में प्रकाशित कर चुके हैं। मणिधारीजी के श्रावक 'लखण' कृत 'जिनचन्द्रसूरि अष्टक' उपर्युक्त ग्रन्थ की द्वितीयावृत्ति में प्रकाशित है।

वादि-विजेता जिनपतिसूरिजी ने मरोट के नेमिचन्द भंडारी को सं० १२५३ में प्रतिबोध दिया। भंडारीजी के पुत्र ने जिनपतिसूरिजी से दीक्षाग्रहण की वे उनके पुत्र जिनेश्वरसूरि बने। श्रीनेमिचन्द्र भंडारी अच्छे विद्वान थे, उनका प्राकृत भाषा में रचित "षष्टिशतक प्रकरण" श्वेताम्बर समाज में ही नहीं, दिगम्बर समाज तक में मान्य हुआ। उसकी कई टीकाएं और बालावबोध विद्वान मुनियों द्वारा रचित उपलब्ध और प्रकाशित हैं। भंडारीजी की दूसरी रचना जिनवल्लभसूरि गुणवर्णन ( गा० ३५ ) है और हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में प्रकाशित हो चुकी है। इनके अतिरिक्त एक ९ गाथा का पार्श्वनाथ स्तोत्र जेसलमेर भंडार में मिला है।

जिनपतिसूरिजी के दो भक्त श्रावक साह रयण और कविभत्तउ ने २० गाथाओं के "जिनपतिसूरि धवल गीत बनाये जो हमारे ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह में प्रकाशित हैं।

जिनेश्वरसूरि के समय श्रावककवि भगडूने "सम्यक्त्व माई चौपाई" सं० १३३१ में बनाई जो बड़ौदा से प्रकाशित "प्राचीन गूर्जर काव्य संचय में छप चुकी है।

श्रीजिनकुशलसूरिजी के गुरु श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के श्रावक लखमसीह रचित जिनचन्द्रसूरि वर्णनारास ( गा० ४७ ) जेसलमेर भंडार से प्राप्त हुआ है, प्रतिलिपि हमारे संग्रह में है।

उपर्युक्त श्रीजिनचन्द्रसूरिजी के समय में ठक्कुर फेरू नामक बहुत बड़े ग्रन्थकार खरतरगच्छ में हुए। उनकी प्रथम रचना "युगप्रधान चतुष्पदिका" सं० १३४७ में रची गई उक्त रचना को हमने संस्कृत छाया व हिन्दी अनुवाद सहित 'राजस्थान भारती' में प्रकाशित की थी। ठक्कुर फेरू कन्नाणा निवासी थे यह चतुष्पदिका अपभ्रंश के २९ पद्यों में राजशेखर वाचक के सानिध्य में माघ महीने में रची गई। ये फेरू, श्रीमाल धांधिया चन्द्र के सुपुत्र थे, आगे चलकर दिल्ली सम्राट अलाउद्दीनखिलजी के कोश और टंकशाल के अधिकारी बने और अपने विविधविषयक अनुभव के आधार से रत्नपरीक्षा सं० १३७२ में पुत्र हेमपाल के लिए गा० १३२ में रचा, जिसको हिन्दी अनुवाद और अन्य महत्वपूर्ण रचनाओं के साथ हमने अपने "रत्नपरीक्षा" ग्रन्थ में प्रकाशित किया है। वास्तुशास्त्र संबन्धी वस्तुसार नामक रचना भी प्राकृत की २०५ गाथाओं में है जो कन्नाणापुर में सं० १३७२ विजयादशमी को रची गई और हिन्दी अनुवाद सह पंडित भगवानदासजी ने इसे प्रकाशित कर दी है। ज्योतिष विषयक गा० २४३ का ज्योतिषसार ग्रन्थ भी सं० १३७२ में रचा। गणित विषयक गणितसार नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ ३११ गाथा का रचा। आपकी अन्य महत्वपूर्ण रचना धातोत्पत्ति गा० ५७ की है इसे भी हमने अनुवाद सहित यू० पी० हिस्टोरीकल जर्नल में प्रकाशित करवा दिया है।

भारतीय साहित्य का अद्वितीय ग्रन्थ-द्रव्यपरीक्षा मुद्राशास्त्र सम्बन्धी है जो १४९ गाथाओं में सं० १३७५ में रचा गया। इसमें भारतीय प्राचीन सिक्कों का बहुत ही महत्वपूर्ण वैज्ञानिक विवरण दिया है जिससे अनेक महत्वपूर्ण नवीनतथ्य प्रकाश में आते हैं। उन सिक्कों का माप तोल भी सही रूप में दिया गया है क्योंकि वे स्वयं अलाउद्दीन बादशाह की टंकशाल में अधिकारी रहे थे। अतः उसमें अलाउद्दीन के समय तक की मुद्राओं का विशद विवरण दिया गया है। ठक्कुर फेरू के ग्रन्थों की एकमात्र प्रति हमने कलकत्ते के नित्य मणि जीवन जैन लाइब्रेरी के ज्ञानभंडार में खोज के निकाली थी। इन महत्वपूर्ण ग्रन्थों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम हमने विश्ववाणी में लेख प्रकाशित किया था। स्वर्गीय मुनि कान्तिसागरजी के भी विशाल-भारत में लेख प्रकाशित हुए थे। प्राप्त सभी ग्रन्थों का संकलन करके हमने पुरातत्त्वाचार्य मुनिजिनविजयजी द्वारा राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से "रत्नपरीक्षादि-सप्त-ग्रन्थ संग्रह"

नाम से प्रकाशित करवा दिया है। स्व० मुनि कान्ति-सागरजी ने इनके एक अन्य ग्रन्थ भूगर्भप्रकाश ( श्लोक ५१ ) का उल्लेख किया है पर हमें अभी तक कहीं से प्राप्त नहीं हो सका है।

चौदहवीं शताब्दी के श्रावक कवि समधर रचित नेमि-नाथ फागु गा० १४ का प्रकाशित हो चुका है। पन्द्रहवीं शताब्दी के जिनोदयसूरि के श्रावक विद्धणु की ज्ञानपंचमी चौपई सं० १४२१ भा० सु० ११ गुरु को रची गई। कवि विद्धणु ठक्कुर माहेल के पुत्र थे, इनकी प्रति पाटण के संघ भंडार में उपलब्ध है।

खरतरगच्छ के महान् संस्कृत विद्वान श्रावक कवि मण्डन मांडवगढ में रहते थे और आचार्य श्रीजिनभद्रसूरिजी के परम-भक्त थे। इन्होंने ठक्कुर फेरू की भांति इतने अधिक विषयों पर संस्कृत ग्रन्थ बनाये हैं जितने और किसी श्रावक के प्राप्त नहीं है। मंत्री मंडन श्रीमाल बाहड़ के पुत्र थे इनके जीवनी के संबन्ध में इनके आश्रित महेश्वर कवि ने "काव्य मनोहर" नामक काव्य रचा है। मुनि जिनविजयजी ने विज्ञप्ति-त्रिवेणी में मंत्री मंडन संबन्धी अच्छा प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—"ये श्रीमाल जाति के सोनिगिरा वंश के थे। इनका वंश बड़ा गौरवपूर्ण व प्रतिष्ठावान् था। मंत्री मंडन और धनदराज के पितामह का नाम 'झंझण' था। मंडण बाहड़ का छोटा पुत्र था व धनदराज देहड़ का एक मात्र पुत्र था इन दोनों चचेरे भाइयों पर लक्ष्मीदेवी की जैसी प्रसन्न दृष्टि थी वैसे सर-स्वती देवी की पूर्ण कृपा थी अर्थात् ये दोनों भाई श्रीमान् होकर विद्वान भी वैसे ही उच्चकोटि के थे।"

"मंडन ने व्याकरण, काव्य, साहित्य, अलंकार और संगीत आदि भिन्न-भिन्न विषयों पर मंडन शब्दाङ्कित अनेक ग्रंथ लिखे हैं। इनमें से ६ ग्रंथ तो पाटन के बाड़ी पार्श्व-नाथ भंडार में सं० १५०४ लिखित उपलब्ध हैं: जो ये हैं—१ काव्यमंडन ( कौरव पांडव विषयक ) २ चम्पूमंडन ( द्रौपदी विषयक ) ३ कादम्बरी मंडन ( कादम्बरी का सार ) ४ शृंगार मंडन ५ अलंकार मंडन ६ संगीत मंडन ७ उपसर्ग मंडन ८ सारस्वत मंडन ( सारस्वत व्याकरण पर विस्तृत विवेचन ) ९ चंद्रविजय प्रबन्ध।" इनमें से कई ग्रंथ तो मंडन ग्रंथावली के नाम से दो भागों में "हेमचंद्र सूरि ग्रंथमाला" पाटण से प्रकाशित हो चुके हैं।

"मंडन की तरह धनराज या धनद भी बड़ा अच्छा विद्वान था। इसने 'धनद त्रिशती' नामक ग्रंथ भर्तृहरि की तरह शतकत्रयी का अनुकरण करने वाला लिखा है। यह काव्यत्रय निर्णयसागर प्रेस काव्यमाला १३ वें गुच्छक में छप चुका है। इन ग्रंथों में इनका पाण्डित्य और कवित्व अच्छी तरह प्रगट हो रहा है।

मंडन का वंश और कुटुम्ब खरतरगच्छ का अनुयायी था। इन भ्राताओं ने जो उच्च कोटि का शिक्षण प्राप्त किया था वह इसी गच्छ के साधुओं की कृपा का फल था। इस समय इस गच्छ के नेता जिनभद्रसूरि थे इस लिये उनपर इनका अनुराग व सद्भाव स्वभावतः ही अधिक था। इन दोनों भाइयों ने अपने अपने ग्रंथों में इन आचार्य की भूरि भूरि प्रशंसा की है। इनने जिनभद्रसूरि के उपदेश से एक विशाल सिद्धान्त कोष लिखाया था। वह ज्ञानभंडार मांडवगढ का विध्वंस होने से बिखर गया पर उसकी कई प्रतियां अन्यत्र कई ज्ञानभंडारों में प्राप्त है।

प्रगट-प्रभावी श्रीजिनकुशलसूरिजी के छिपाष्टक, जिसकी रचना जिनपद्मसूरिजी ने की थी, पर धरणीधर की अवचूरि प्राप्त है पर कवि का विशेष परिचय और समय की निश्चित जानकारी नहीं मिल सकी। सोलहवीं शताब्दी के श्रावक कवि लक्ष्मीसेन बोरदास के पौत्र एवं हमीर के पुत्र थे। उन्होंने केवल सोलह वर्ष की आयु में जिन वल्लभसूरि के संघपट्टक जैसे कठिन काव्य की वृत्ति सं० १५११ में श्रावन में बनाई।

जिनदत्तसूरि ज्ञान भंडार सातवें ग्रन्थांक के रूप में उ० हर्षराज की लघु वृत्ति एवं साधुकीर्ति की अवचूरि सह प्रकाशित हो चुकी है।

सतरहवीं शताब्दी में हिन्दी जैन कवियों में कविवर बनारसीदास सर्व श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। वे श्रीमाल जाति के खड्गसेन बिहोलिया के पुत्र और जौनपुर के निवासी थे। खरतरगच्छ की श्रीजिनप्रभसूरि शाखा के विद्वान भानुचन्द्रगणि से आपने विद्याध्ययन और धार्मिक अभ्यास किया था। बनारसीदासजी के लिये भानुचन्द्रजी ने मृगांक-लेखा चौपाई सं० १६६३ में जौनपुर में बनाई। बनारसी-दासजी ने अपनी नाममाला आदि रचनाओं में अपने विद्यागुरु भानुचन्द्र का सादर स्मरण किया है। आगे चलकर ये व्यापार के हेतु आगरा आये और समयसार, गोमट्टसार आदि दिगम्बर ग्रन्थों के अध्ययन से इनका झुकाव दिगम्बर सम्प्रदाय की ओर हो गया। उनके साथी कुंवरपाल चोरड़िया भी 'सिंदुरप्रकर के' पद्यानुवाद में सहयोगी रहे हैं और भी कई व्यक्ति आपकी अध्यात्मिक चर्चा से प्रभावित हुए और बनारसीदासजी का मत अध्या-त्ममती या बनारसीमत नाम से प्रसिद्ध हुआ। मुलतान आदि दूरवर्त्ती खरतरगच्छ के ओसवाल भी अध्यात्ममत से प्रभावित हुए और वहाँ जो भी श्वेताम्बर कवि एवं विद्वान गए उन्हें भी अध्यात्मिक रचना करने के लिये प्रेरित किया। बनारसीदासजी का वह अध्यात्म-मत अब दिगम्बरों में तेरहपंथ नाम से प्रसिद्ध है और लाखों व्यक्ति दिगम्बर सम्प्रदाय में उस तेरहपंथी सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। मूलतः कविवर बनारसीदासजी खरतरगच्छ के ही विशिष्ट कवि थे। उपाध्याय मेघविजय ने भी अपने युक्ति-प्रबोध नाटक में इनके खरतर गच्छानुयायी होने का उल्लेख किया है। बनारसीदासजी की प्रारम्भिक रचनायें श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं।

बनारसीदासजी का अर्द्धकथानक नामक हिन्दी की पहला पद्यबद्ध आत्मचरित हिन्दी साहित्य में अपने ढंगका अद्वितीय ग्रन्थ है। समयसार, बनारसी-विलास, नाममाला आदि आपकी रचनाएं पर्याप्त प्रसिद्ध हैं और प्रकाशित हैं।

सतरहवीं शताब्दी के अंत में लखपत नामक खरतर-गच्छ के एक श्रावक कवि हुए हैं जो सिन्धु देश के सामुही नगर के कूकड़ चोपड़ा तेजसी के पुत्र थे। इनकी प्रथम रचना तिलोयसुंदरी मंगलकलश चौ० सं० १६९१ के आ० सु० ७ थट्टानगर में बुहरा अमरसी के कथन से रचित है। १२ पत्रों की प्रति का केवल अंतिम पत्र ही तपागच्छ भंडार जेसलमेर में हमारे अवलोकन में आया था। कवि की दूसरी रचना मृगांकलेखा रास सं १६९४ श्रा० सु० १५ बुधवार को जिनराजसूरि-जिनसागरसूरि के समय में रची गई। २५ पत्रों के अन्तिम २ पत्र ही तपागच्छ भंडार जेसलमेर में हमारे देखने में आये।

१८वीं शताब्दी में कवि उदयचन्द मथेन बीकानेर में हुए, जो महाराजा अनूपसिंह से आदर प्राप्त थे। अनूपसिंह के नाम से इन्होंने हिन्दी में अनूप शृंगार नामक ग्रन्थ सं० १७२८ में बनाया, जिसकी एक मात्र प्रति अनुप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर में है। इसकी रचना सं० १७६५ में हुई। उदयचन्द मथेन का तीसरा ग्रन्थ पांडित्य-दर्पण प्राप्त है।

मलूकचन्द रचित पारसी वैद्यकग्रन्थ तिब्बसहावी का हिन्दी पद्यानुवाद 'वैद्यहुलास'नाम से प्राप्त है। कवि ने अपना विशेष परिचय या रचनाकालादि नहीं दिए पर इसकी कई हस्तलिखित प्रतियां खरतरगच्छ के ज्ञानभंडारों में देखने में आई अतः इसके खरतर गच्छीय होने की संभावना है।

१९वीं शताब्दी में अजीमगंज-मकसूदाबाद के श्रावक सबलसिंघ अच्छे कवि हुए जिन्होंने सं० १८६१ में चौबीस

जिन स्तवनों और विहरमान बीसी की रचना की। इन्होंने अपनी रचना में श्रीजिनहर्षसूरि के प्रसाद से रचे जाने का उल्लेख किया है।

२०वीं शताब्दी में नाथनगर में श्री अमरचन्द जी बोथरा खरतरगच्छ के कट्टर अनुयायी और सुकवि थे। इनके रचित दो चौबीसियां प्रकाशित हो चुकी है। ये पहले तेरापंथी थे श्रीजिनयशःसूरिजी महाराज के अजीमगंज पधारने पर अनेक वादविवाद के पश्चात् ये खरतरगच्छानुयायी मन्दिर-मार्गी बने। खरतरगच्छ की आचरणाओं आदि के विषय में आपका गहरा अध्ययन व चिन्तन था। श्रीमद् देवचन्द्रजी की रचनाएं आपको अत्यन्त प्रिय थी।

उपर्युक्त खरतर गच्छ के श्रावक कवियों के अतिरिक्त कतिपय छोटे मोटे और भी अनेक कवि हुए हैं जिनके जिनभद्रसूरि गीत आदि रचनाएं हमारे अवलोकन में आई है। खोज करने पर और कई खरतरगच्छीय कवियों की रचनाएं प्राप्त होंगी। बीसवीं शताब्दी में तो हिन्दी गद्य-पद्य लेखक, कई कवि हो गए है जिनमें से राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद बहुत ही प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। खरतर गच्छीय यति रायचन्द जी ने इनके खानदान के राजा डालचन्द के लिये सं० १८३८ में कल्पसूत्र का पद्यानुवाद किया था। उन्होंने विचित्र मालिका और अवयदी शकुनावली की रचना की। राजाशिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' के बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है उनकी दादी रत्नकुंवरि बीबी लखनऊ के राजा बच्छराज नाहटा की पुत्री थी। उसने सं० १८४४ में माघ वदि ५ को प्रेमरत्ननामक हिन्दीकाव्य बनाया। कवियित्री रत्नकुंवरि बहुत बड़ी पंडिता थी और उनका झुकाव कृष्ण-भक्ति की ओर दिखाई देता है। राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद की लड़की गोमती बीबी जैनधर्म की अच्छी जानकार थी। यह्खानदान खरतरगच्छीय हैं।

स्वयं ग्रन्थ रचना करने के अतिरिक्त खरतरगच्छ के बहुत से श्रावकों ने विद्वान यतिमुनियों से अनुरोध कर अनेकों रचनाएं करवायी थी। उनसब का विवरण देखने से खरतर गच्छीय श्रावकों के साहित्य प्रेम का अच्छा परिचय मिल जाता है।

ज्ञानभंडारों की स्थापना और अभिवृद्धि में तो श्रावक समाज का महत्वपूर्ण योग रहा है। हजारों प्रतियां उन्होंने प्रचुर द्रव्य व्यय कर लिखवायी। कविजनों को समय समय पर पुरस्कार आदि देकर प्रोत्साहित किया। कई श्रावक अच्छे विद्वान थे, पर साहित्य निर्माण का उन्हें सुयोग प्राप्त नहीं हुआ। विद्वानों का सत्संग, स्वाध्याय प्रेम उन्हें बहुत रुचिकर रहा है। समय समय पर विद्वान मुनियों सेउन्होंने गम्भीर विषयों पर प्रश्न उपस्थित कर उनसे समाधान लिया जिसका उल्लेख कई प्रश्नोत्तर ग्रन्थों में पाया जाता है।

खरतर गच्छ की कई सम्स्थाओं ने विद्वान बनाने की योजना बनाई थी पर खेद है कि वह योजना सफल नहीं हो पायी। आज भी इस बात की बड़ी आवश्यकता प्रतीत होती है कि उचित व्यवस्था करके उच्चस्तरीय अध्ययन कर जिज्ञासु विद्यार्थियों को विद्वान बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया जाय। खरतरगच्छ के साहित्य के सम्पादन प्रकाशन, नवीन साहित्य निर्माण में विद्वान श्रावकों की अत्यन्त आवश्यकता है।

○

# अपभ्रंशकाव्यत्रयी : एक अनुशीलन

[ ले०—डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री ]

युगप्रधानाचार्य जिनवल्लभसूरिजी के पट्टधर, खरतर-गच्छ के परमगुरु एवं बहुश्रुत विद्वान् कवि श्रीजिनदत्तसूरि खरतरगच्छ के प्रसिद्ध आचार्य थे। यतः –

एतत्कुले श्रीजिनवल्लभाख्यो गुरुस्ततः श्रीजिनचन्द्रसूरिः।
सुपूर्वसूरिस्तदनुक्रमेण बभूव वर्यो बहुलैस्तपोभिः॥

—अपभ्रंशकाव्यत्रयी, पृ० ३५

उन्होंने केवल संस्कृत और प्राकृत भाषा में ही नहीं अपभ्रंश भाषा में भी अनेक ग्रन्थों की रचना कर भारतीय साहित्य के भाण्डार को अत्यन्त समृद्ध किया। उनका जन्म गुर्जर देश में धवलक्कपुर में वि० सं० ११३२ में हुआ था। वे हूमड़ जाति के वणिक् थे। वि० सं० ११४१ में उन्होंने दीक्षा धारण की थी और वि० सं० ११६९ में वे सूरि-पद को प्राप्त हुए थे। अपभ्रंश भाषा में रची हुई उनकी तीन काव्य-कृतियाँ परिलक्षित होती है। ये तीनों रचनाएँ टीका सहित 'अपभ्रंशकाव्यत्रयी' में—संकलित हैं। अपभ्रंशकाव्यत्रयी का सम्पादन बड़ौदा के प्रसिद्ध जैनपण्डित श्रीलालचन्द्र भगवानदास गांधी ने सुयोग्य रीति से किया और जिसका प्रकाशन सन् १९२७ में ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा से ग्रन्थ क्रमांक ३७ के अन्तर्गत गायकवाड़ ओरियण्टल सीरिज में हो चुका है।

अपभ्रंश भाषा में रचे गये श्रीमज्जिनदत्तसूरि के ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

१. चर्चरी २. उपदेशरसायनरास ३. कालस्वरूपकुलकम्

चर्चरी ४७ पद्यों की लघु तथा सुन्दर रचना है। लोकभाषा तथा शैली में यह रचना नृत्यपूर्वक गान करने के लिए पूज्य गुरु श्रीजिनवल्लभसूरि के गुणों की स्तुति के निमित्त रची गई। श्रीजिनपालोपाध्याय के द्वारा विहित वृत्ति से यह स्पष्ट है कि इस चर्चरी की रचना वागजददेश के प्रमुख भ० धर्मनाथ के जिनालय व्याघ्रपुर में श्रीजिनदत्तसूरि द्वारा की गयी थी। श्रीजिनवल्लभसूरि का स्मरण दो विशेषणों के साथ किया गया है—

जुगपवरागमसूरिहि गुणिगणदुल्लहह।

युगप्रवर तथा आगमसूरि श्रीजिनवल्लभसूरि का स्मरण बहुविध किया गया है। वस्तुतः अपभ्रंश लोकभाषा होने के कारण गुरु-स्तुतियाँ इस भाषा में लिखी जाती थीं। अपभ्रंश में चर्चरी या गीत लिखे जाने के दो मुख्य कारण थे—लोक प्रचलित शैली में भावों की अभिव्यक्ति तथा जन साधारण की समझ में आने वाली बोली का प्रयोग। अभी खोज करते समय लेखक को चित्तौड़गढ़ से श्रीजिनवल्लभसूरि के गीत अपभ्रंश भाषा में लिखे हुए मिले हैं। इस रचना से यह भी पता चलता है कि श्रीजिनदत्तसूरि की कवित्वशक्ति गुरु परम्परा से प्राप्त हुई थी। उनका कथन है—लोक में कवि कालिदास की रचनाओं का वर्णन किया जाता है। किन्तु वह तभी तक है जब तक कवि जिनवल्लभ को नहीं सुना। इसी प्रकार सुकवि वाक्पतिराज की अत्यंत प्रसिद्धि है, किन्तु वह भी जिनवल्लभ के आगे फीकी पड़ जाती है। अन्य अनेक सुकवि उनके काव्यामृत के लोभी इनकी समता नहीं कर पाते। जो सिद्धान्त के जानकार हैं वे उनका नाम सुनकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। इसलिये लोकप्रवाह से बचकर कुमार्ग को छोड़ कर सत्मार्ग में लगना चाहिये। यथा—

परिहरि लोयपवाहु पयट्टिउ विहिविसउ
पारतंति सहु जेण निहोडि कुमग्गसउ।
दंसिण जेण दुसंघ-सुसंघह अंतरउ
वद्धमाणजिणतित्थह कियउ निरन्तरउ ॥१०॥

दूसरी रचना उपदेश (धर्म) रसायनरास है। इस पर भी श्रीजिनपालोपाध्याय की वृत्ति मिलती है। यह पद्धडियाबन्ध रचना है। वृत्ति से स्पष्ट है कि कवि ने लोकप्रवाह के विवेक को जाग्रत करने के हेतु सद्गुरु स्वरूप, चैत्यविधिविशेष, तथा धर्मरसायनरास की रचना की। सद्गुरु के सम्बन्ध में उसके लक्षणों का निर्देश करता हुआ कवि कहता है—

सुगुरु सु वुच्चइ सच्चउ भासइ
परपरिवायि नियरु जसु नासइ।
सव्वि जीव जिव अप्पउ रक्खइ
मुक्खु मग्गु पुच्छियउ जु अक्खइ ॥४॥

अर्थात् जो सच बोलता है उसे सुगुरु कहते हैं। जिस के वचनों को सुनकर अन्य वादियों का भय नष्ट हो जाता है, सभी जीवों की रक्षा अपनी रक्षा की भांति करने लगते हैं और मोक्ष-मार्ग के पूछने पर जो सभी को बतलाता है वह सुगुरु है। तथा—

जो जिनवचनों को ज्यों का त्यों जानता है, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को भी जानता है और उनके अनुसार वर्तन भी कराता है तथा उन्मार्ग में जाते हुए लोगों को रोकता है (वह सुगुरु है)।

जो जिणवयणु जहट्ठिउ जाणइ
दव्वु खित्तु कालु वि परियाणइ।
जो उस्सग्गववाय वि कारइ
उम्मग्गिण जणु जंतउ वारइ ॥५॥

इस रचना में कुल ८० पद्य हैं। कवि के युग में माघमाला जलक्रीडा, लगुडरास तथा विविध नृत्य-गानों का चैत्यगृहों में विशेष प्रचार था। मन्दिरों में नाटक भी होते जाते थे। तालरासक एवं विविध वाद्य-ध्वनियों का भी वादन होता था। विविध प्रकार से लोग अपने भक्ति-भावों को प्रदर्शित करते थे। कवि का कथन है— जिन मन्दिरों में उचित स्तुति और स्तोत्र पढ़े जाते थे, जो जिनसिद्धान्तों के अनुकूल होते थे। यद्यापि रात होने पर भी रात में तालरासक प्रदर्शित नहीं होता था। दिन में भी महिलायें पुरुषों के साथ लगुडरास नहीं खेलती थीं।

उचिय थुत्ति थुयपाढ पढिज्जहिं
जे सिद्धंतिहिं सहु संधिज्जहिं।
तालारासु वि दिंति न रयणिहिं
दिवसि वि लउडारसु सहुं पुरिसिहिं ॥१६॥

धार्मिक लोग केवल नाटकों में नृत्य करते थे और चक्रवर्ती भरत तथा सगर के अभिनिष्क्रमण का एवं अन्य चक्रवर्ती चरित्रों का प्रदर्शन करते थे।

धम्मिय नाडय पर नच्चिज्जहिं
भरहसगरनिक्खमण कहिज्जहिं।
चक्कवट्टिबलरायहं चरियइं
नच्चिवि अंति हुंति पव्वइयइं ॥१७॥

इस प्रकार कवि ने यह बताया है कि इन विविध रासों, नृत्य-गानों का अभिप्राय मनोरंजन न होकर अन्त में वैराग्य-भावना की अभिव्यंजना रही है। अतएव माघमाला जलक्रीड़ा तथा झूला-झूलना तीनों जिनालय में करना निषिद्ध है। घर पर किये जाने वाले कार्य भी जिन-मन्दिर में करना उचित नहीं है।

माहमाल - जलकोलंदोलय
तिवि अजुत्त न करंति गुणालय।
बलि अत्थमियइ दिणयरि न धरहिं
घरकज्जइं पुण जिणहरि न करहिं ॥३६॥

लोकव्यवहार के सम्बन्ध में उन के विचार थे—कि जो बेटा-बेटियों को परणाते हैं वे समानधर्म वाले घरों में विवाह रचते हैं। क्योंकि यदि विमत वालों के घर

सम्बन्ध किया जाता है तो निश्चय से सम्यक्त्व की हानि होती है। आचार्य श्री का यह भी कथन है कि अल्प धन से ही संसार के सावद्य कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। धन केवल मनुष्य के कुटुम्ब के निर्वाह का साधन है। अतएव धार्मिक कार्यों में धन का सदुपयोग कर सम्यक्त्व की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिये। सम्यक्त्व की प्राप्ति प्रतिक्रमण, वन्दना, नवकार की सज्झाय आदि से होती है। उनके ही शब्दों में—

पडिकमणह वंदणइ आउल्लो
चित धरंति करेइ अणुल्लो
मणह मज्झि नवकारु वि ज्झायइ
तासु सुट्ठु सम्मतु वि रायइ ॥१॥

अपभ्रंश की तीसरी रचना कालस्वरूपकुलकम् है। यद्यपि यह बत्तीस छन्दों में निबद्ध लघु रचना है, किन्तु विषय और भावों की दृष्टि से यह सशक्त रचना है। जन सामान्य के लिए यह रचना अत्यन्त उपयोगी है। रचना सरल और भावपूर्ण है। इसपर सूरप्रभ उपाध्याय की लिखी हुई वृत्ति भी साथ में प्रकाशित है।

मनुष्य जन्म के सफल न होने का कारण बताता हुआ कवि कहता है—यह जन मोह की नींद में सो रहा है, कभी जागता ही नहीं है। मोहनींद में से उठे बिना यह शिवमार्ग में नहीं लग सकता। यदि किसी सुखकर उपाय से कोई गुरु उसे जगाता है तो उसके वचन उसे अच्छे नहीं लगते।

मोहनिद्द जणु सुत्तु न जग्गइ
तिण उट्ठिवि सिवमग्गि न लग्गइ।
जइ सुहत्थु कु वि गुरु जगावइ
तु वि तव्वयणु तासु नवि भावइ ॥५॥

जिस प्रकार हिन्दी भाषा में निर्गुण सन्तों ने सिर मुंडा लेने मात्र का निषेध किया है उसी प्रकार आचार्य जिनदत्तसूरि भी कहते हैं कि लोक में बहुत से साधु सन्यासी मुण्डित दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु उनमें राग द्वेष भरपूर विलसित है। इसी प्रकार बहुत से शास्त्र पढ़ते हैं, उनका निर्वचन तथा व्याख्यान करते हैं, किन्तु परमार्थ नहीं जानते हैं। उनके शब्द हैं—

बहु य लोय लुंचियसिर दीसहिं
पर रागद्दोसिहिं सहुं विलसहिं।
पढहिं गुणहिं सत्थइं वक्खाणहिं
परि परमत्थु तित्थु सु न जाणहिं ॥७॥

कवि का यह कथन कितना सुन्दर है कि यह संसार धतूरे के उस सफेद फूल के समान सुन्दर तथा आकर्षित करने वाला है, जो पौधे में लगा हुआ मनोहर लगता है। किन्तु जब उसका रस पिया जाता है तब सब सूना लगता है। मनुष्य का आयुष्य थोड़ा है। अतएव गुरुभक्ति कर मनुष्यजन्म सफल बनाना चाहिए।

जहिं घरि बंधु जुय जुय दीसइ
तं घरु पडइ वहंतु न दीसइ।
जं दढबंधु गेहु तं बलियउ
जडि भिज्जंतउ सेसउ गलिउ ॥२६॥

अर्थात् जिस घर में बान्धव अलग-अलग दिखलाई पड़ते हैं वह घर नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार से बन्धु-बान्धवों के एक घर से अलग-अलग हो जाने पर वह घर फूट जाता है उसी प्रकार संयमी जनों से रहित घर भी विनष्ट हो जाता है। दृढ़बन्ध होने पर भी जिस घर की नींव में पानी हो वह गल कर नष्ट हो जाता है। अतएव लौकिक समृद्धि प्राप्त करना हो तो घर को बुहारी की भाँति बाँधना चाहिए। यदि बुहारी का एक-एक तिनका अलग-अलग कर दिया जाये तो फिर उससे कैसे बुहारा जा सकता है?

कज्जउ करइ बुहारी बद्धी
सोहइ गेहु करेइ समिद्धी।
जइ पुण सा वि जुयं जुय किज्जइ
ता किं कज्ज तीए साहिज्जइ ॥२७॥

युगप्रवर आचार्य जिनदत्तसूरिजी के पट्टधर शिष्य मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि के अष्टमशताब्दी समारोह के शुभ सन्देश के रूप में आज भी उनके ये वचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा प्रेरणादायक हैं कि हम सबको (सभी सम्प्रदायों को) अब एक जुट होकर बुहारी की भाँति जिनशासन के एक सूत्र में बंध जाना चाहिए, ताकि मानवता एवं धर्म की अधिक से अधिक सेवा हो सके।

पता—
डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, एम० ए०,
पी-एच० डी०,
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
नीमच (मन्दसौर) म० प्र०

# खरतरगच्छ परम्परा और चित्तौड़

[ रामवल्लभ सोमानी ]

मेवाड़ का जैनधर्म से सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से था। बड़ली के वीर सं० ८४ के लेख में मध्यमिका नगरी का उल्लेख है[1]। श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यहाँ कई उल्लेखनीय साधु हुये हैं। इनमें सिद्धसेन दिवाकर, और हरिभद्रसूरि बड़े प्रसिद्ध हुये हैं। ९वीं शताब्दी में कृष्णर्षि[2] नामक एक जैन साधु बड़े विख्यात हुए हैं। इन्होंने चित्तौड़ में कई श्रावकों को जैन धर्म में दीक्षित किया, इस समय चित्तौड़ में श्वेताम्बरों के साथ-साथ दिगम्बरों का भी प्राबल्य था। महारावल अल्लट के शासनकाल में श्वेताम्बरों को राज्याश्रय मिलना शुरू हुआ था। इस समय कई श्वेताम्बर मन्दिर बने जिनकी प्रतिष्ठा संडेरगच्छ के यशोभद्रसूरि ने की थी[3]। उस समय चैत्यवासियों का बड़ा प्रबल प्रचार था।

खरतरगच्छ के साधुओं का प्रारम्भ में जालोर, गुजरात आदि क्षेत्रों में अच्छा प्रचार था। उस समय ये चन्द्रगच्छीय कहलाते थे। मेवाड़ के चित्तौड़ में सबसे अधिक सम्पर्क इस गच्छ के जिनवल्लभसूरि का हुआ। ये प्रारम्भ में चैत्यवासी थे और आसिकादुर्ग के कूर्चपुरीय गच्छ के जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। ये पाटन में अभयदेवसूरि के पास शिक्षार्थ आये थे। इन्होंने चैत्यवासियों की शास्त्र विरोधी प्रक्रियाओं से अप्रसन्न होकर उसे त्यागकर अभयदेवसूरि से फिर से दीक्षा ग्रहण की थी। यह घटना वि० सं० ११३८ के बाद सम्पन्न हुई थी क्योंकि इस संवत् में लिखी "विशेषावश्यक टीका" की प्रशस्ति में जिनवल्लभसूरि ने अपने आपको जिनेश्वरसूरि का शिष्य वर्णित किया है[4]। ये घूमते-घूमते चित्तौड़ आये। यहाँ चैत्यवासियों के विरोध के कारण ये चण्डिका के मठ में ठहरे। ये कई शास्त्रों के ज्ञाता थे। अतएव शीघ्र ही इनकी बड़ी प्रसिद्धि हो गई। इनके कई उपासक भी हो गये। इनमें श्रेष्ठि बहुदेव साधारण, वीरक, रासल मानदेव आदि थे। जो कुछ धर्कटजाति के और कुछ खण्डेलवाल थे। इन्हीं श्रेष्ठियों के सहयोग से जिनवल्लभसूरि ने चित्तौड़ में विधिचैत्य[5] की स्थापना की। इस समय एक विस्तृत प्रशस्ति भी खुदाई जिसका नाम "अष्टसप्ततिका" रखा गया है। इसमें ७७ श्लोक हैं। इसकी प्रतिलिपि आदरणीय नाहटाजी की कृपा से मुझे प्राप्त हुई है। इस प्रशस्ति में चित्तौड़, नागौर आदि कई स्थानों पर सम्भवतः खुदाया गया था।

खरतरगच्छ परम्परा के अनुसार एक बार नरवर्मा के दरबार में एक समस्या पूर्ति हेतु आई। इसकी नरवर्मा के दरबारीगण पूर्ति नहीं कर सके तब चित्तौड़ में इसे जिनवल्लभसूरि के पास भेजी। इन्होंने तत्काल पूर्ति करके भिजवा दी। कालान्तर में जब ये घूमते-घूमते धारानगरी पहुँचे

---

(१) पूर्णचन्द नाहर-जैन लेख संग्रह भाग १ पृ० ९७
(२) अगरचन्द नाहटा-शोधपत्रिका वर्ष १ अंक १ में लेख
(३) लेखक द्वारा लिखित 'महाराणा कुम्भा' पृ० ११९
(४) ,, वीरभूमि चित्तौड़ पृ० ११६। (अपभ्रंश काव्यत्रयी की भूमिका ४)।
(५) ,, चित्रकूट नरवर नागपुर मरुपुरादि तत्कारितानि गुणवत्सु जिनभवनानि च विधिविहितानि..." (अपभ्रंश काव्यत्रयी में प्रकाशित चर्चरी गाथा २२ )

तो नरवर्मा ने इनका बड़ा सम्मान किया और इन्हें काफी दान देने की इच्छा प्रकट की। इन्होंने इसे अस्वीकार करते हुये केवल इतना ही कहा कि वे चित्तौड़ में निर्मित विधि-चैत्य की पूजा के निमित्त व पारुत्य मुद्राओं की व्यवस्था चित्तौड़ की मंडपिका से करवा देवें[६]। तदनुसार व्यवस्था करादी गई। इनका देहावसान चित्तौड़ में वि० स० ११६७ कार्तिक वदि १२ को हुआ था। इसके कुछ समय पूर्व ही इनका पाटोत्सव चित्तौड़ में ही सम्पन्न कराया गया था। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थों में संघपट्टक, धर्मशिक्षा, पिंडविशुद्धि, द्वादशकुलक प्रकरण आदि प्रसिद्ध हैं।

जिनदत्तसूरि जिनवल्लभसूरि के बाद आचार्य बने। इनका पाटोत्सव चित्तौड़ में वि० सं० ११६९ वैशाख सुदि ६ को हुआ। इनका प्रारम्भ का नाम सोमचन्द्र था और आचार्य बनने पर इन्हें जिनदत्त नाम दिया गया था। चैत्यवासियों का बड़ा प्रचार चित्तौड़ में चल रहा था। जब ये चित्तौड़ में प्रवेश कर रहे थे तब एक सांप और एक नकटी औरत को इनके सामने भेजा ताकि अपशुकुन हो जाये किन्तु ज्ञानादित्य जिनदत्तसूरि ने कहा कि यह अपशकुन[७] नहीं है। इसका फल वे लोग ही भोगेंगे। इस प्रकार बड़े ही समारोह पूर्वक इन्होने चित्तौड़ में प्रवेश किया था।

श्रेष्ठि राल्हा का उल्लेख खरतरगच्छ पट्टावली के अनुसार मिलता है। इसने जिनेश्वरसूरि के उपदेश से वि० सं० १२८८ में चित्तौड़ में बड़ा महोत्सव किया। इसमें अजितसेन, गुणसेन, अमृतमूर्ति, धर्ममूर्ति, राजमती, हेमावली कनकावली, रत्नावली आदि को दीक्षा दी। इसी वर्ष आषाढ़वदि २ को चित्तौड़ में नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, ऋषभदेव आदि की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भी की। इसमें ८००० रु० श्रेष्ठि लक्ष्मीधर ने और शेष राशि श्रेष्ठि राल्हा ने व्यय की। जैसलमेर भंडार में संगृहीत "कर्मविपाक" नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति से पता चलता है कि राल्हा ने वि० सं० १२८९ में शत्रुंजय आदि तीर्थों की यात्रा उक्त आचार्य के उपदेश से की थी। वि० सं० १२९५ में उक्त ग्रन्थ की प्रतिलिपि करवाई थी।[८] सम्भवतः उस समय जिनेश्वरसूरि धारा में थे और राल्हा उनके दर्शनार्थ वहां गया हुआ था।

मेवाड़ में महारावल जैतसिंह, तेजसिंह और समरसिंहका शासनकाल बड़ा महत्वपूर्ण था। इस काल में जैन धर्म की बड़ी उन्नति हुई। चित्तौड़ से बड़ी संख्या में शिलालेख और ग्रन्थ प्रशस्तियां इस काल की मिली हैं। खरतरगच्छ परम्परा के अनुसार वि० सं० १३३४ में जिनप्रबोधसूरि यहां आये थे। फाल्गुन सुदि ५ को प्रतिष्ठा मूहूर्त्त हुआ। इनमें मुनिसुव्रतस्वामी, युगादिदेव, अजितनाथ, वासुपूज्य, महावीर स्वामी, समवसरणपट्टिका आदि की प्रतिमा शांतिनाथ चैत्यालय में स्थापित की थी। इस उत्सव के समय महारावल समरसिंह, राजकुमार अरिसिंह आदि भी उपस्थित थे। इस समय श्रेष्ठि आल्हक और धांधल प्रमुख श्रावक थे। श्रेष्ठिधांधल और उसके पुत्रों का उल्लेख कई ग्रन्थ प्रशस्तियों में भी है। वि० सं० १३४३ की जैसलमेर भंडार की चन्द्रदूताभिधान की प्रशस्ति में भी इसका उल्लेख है[९]। इस परिवार ने लाखों रुपये सार्वजनिक कार्यों के लिये व्यय किये थे। फाल्गुन सुदि

(६) ,, चित्रकूट मण्डपिकातस्तत् शाश्वतदानं भविष्यतीति कृतम्" युगप्रधान गुर्वावली पृ० १३।

(७) शोधपत्रिका वर्ष १ अंक ३ में प्रकाशित श्रीनाहटाजी का लेख। वीरभूमि चित्तौड़ पृ० १५७।

(८) वरदा वर्ष ९ अंक ३ पृ० ६-७ में प्रकाशित मेरा लेख और उक्त पत्रिका के वर्ष ९ अंक ४ में प्रकाशित डा० दशरथ शर्मा की टिप्पणी। वीरभूमि चित्तौड़ पृ० १५७।

(९) युगप्रधान गुर्वावली पृ० ५६, (वीरभूमि चित्तौड़ पृ० १५९)

१४ वि० सं० १३३४ में श्रेष्ठि आल्हाक ने चित्तौड़ में पार्श्वनाथ चैत्यालय का जीर्णोद्धार कराया था, इस समय चित्तौड़ में खरतरगच्छ के अतिरिक्त चैत्रगच्छ बृहद्गच्छ और भर्तृपुरीयगच्छ के साधु भी कार्य कर रहे थे। प्रसिद्ध शृंगार चंवरी का निर्माण भी इसी काल में हुआ था।

अल्लाउद्दीनखिलजी के आक्रमण से चित्तौड़ के कई मन्दिर विध्वंस हो गये थे किन्तु महाराणा हमीर के राज्यारोहण के बाद स्थिति में बड़ा परिवर्तन हुआ। प्रसिद्ध मंत्री रामदेव नवलखा खरतरगच्छ का श्रावक था। इसने करेड़ा जैन मन्दिर में बड़ा प्रसिद्ध दीक्षा महोत्सव कराया था। यह वि० सं० १४३१ में सम्पन्न हुआ था। और इसका विज्ञप्ति लेख भी प्रकाशित हो गया है। इस परिवार ने कई खरतरगच्छके आचार्यों की मूर्तियां भी देलवाड़ा (देवकुल पाटक) में बनवाई। इसकी पत्नी मेलादेवी ने भी कई ग्रन्थ लिखवाये। उस समय देलवाड़ा में इस परिवार ने एक ग्रन्थ भंडार भी स्थापित किया था[१०]। रामदेव के २ पुत्र थे (१) सहणा और (२) सारंग। सहणा के वि० सं० १४६१ के तीन मूर्ति लेख मिले हैं[११] जिनमें खरतरगच्छ के जिनचन्द्रसूरि के शिष्य जिनसागरसूरि द्वारा प्रतिमाओं को प्रतिष्ठा का उल्लेख मिलता है। वि० सं० १४६४ के नागदा के मूर्ति लेख में और वि० सं० १५०१ के शृंगार चंवरी चित्तौड़ के शिलालेख में कई आचार्यों के नाम हैं[१२] यथा—जिनराजसूरि, जिनवर्धन, जिनचन्द्र, जिनसागर, जिनसुन्दर, जिनहर्ष आदि जिनराज का जन्म वि० सं० १४३३ और मृत्यु वि० सं० १४६१ में हुई। इनकी मूर्ति देलवाड़ा में स्थापित की गई थी। इनके समय की वि० सं० १४५० में लिखी "आचारांग चूर्णि" पुस्तिका मिली है जिसकी प्रतिलिपि मेरुनन्दन उपाध्याय ने की थी। जिनवर्द्धन के समय की लिखी वि० सं० १४७१ की प्रशस्ति वाली वाङ्मय परिशुद्धि पुस्तक मिली है। इन्होंने देलवाड़ा में समाचारी निर्मामिली है। इस समय खरतरगच्छ के जयसागर नामक एक प्रसिद्ध पंडित हुये थे। इसी प्रकार मेरुसुन्दर नामक एक उपाध्याय का भी उल्लेख मिलता है जिसने कई "बालावबोध" लिखे थे[१३]।

महाराणा कुम्भा के शासन काल में शृंगारचंवरी का वि० सं० १५०५ का भंडारी वेला का शिलालेख बड़ा प्रसिद्ध है। इसी मंदिर में वि० स० १५१२ और १५१३ के ४ शिलालेख और लग रहे हैं जिनमें जिनसुन्दरसूरि द्वारा प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है। वि० सं० १५३८ का एक और लेख "रामपोल" पर लगा रहा है। इसमें खरतरगच्छ जिनहर्षसूरि का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त जयकीर्ति महोपाध्याय, हर्षकुंजरगणि रत्नशेखरगणि ज्ञानकुंजरगणि आदि का भी उल्लेख है[१४]। वि० स० १५३८ के एक मूर्ति के लेख में भंडारी भोजा का उल्लेख है। इसकी प्रतिष्ठा जिनहर्षगणि ने की थी। खरतरगच्छ का एक बृहद् शिलालेख वि० स० १५५६ का है। यह बृहद् शिलाओं पर उत्कीर्ण था। इसमें से एक शिला श्लोक सं० ८३ से १२८ का ही अंश वाला मिला है। इसमें महाराणा रायमल के राज्य का उल्लेख है।[१५] इसमें जिनहर्षगणि जयकीर्ति उपाध्याय आदि का उल्लेख है। वि० सं० १५७३ को महाराणा सांगा के समय लिखी "षडव विभक्ति" नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति देखने को मिली। इसे खरतरगच्छ के धर्मवर्द्धनोपाध्याय ने लिखा था। यह ग्रन्थ अब पाटण भंडार में है।[१६]

महाराणा बणवीर के समय श्रेष्ठि सूरा का उल्लेख मिलता है। उस समय विभिन्न चैत्य-परिपाटियों में खरतरगच्छ के शांतिनाथ के मन्दिर का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार दीर्घ काल तक चित्तौड़ खरतरगच्छ का केन्द्र रहा है।

---

(१०) महाराणा कुम्भा पृ० ३०५ ३३०-३३२
(११) उक्त पृ० ३३०-७१
(१२) उक्त पृ० ३३१ ७२
(१३) उक्त पृ० २३५-३६
(१४) वीरभूमी चित्तौड़ पृ० २४६
(१५) उक्त पृ० २४६-४७
(१६) उक्त पृ० २२७

# खरतरगच्छ की भारतीय संस्कृति को देन

[ लेखक—रिषभदास रांका ]

भारत में जैन मन्दिरों की व्यवस्था और स्वच्छता बहुत अच्छी समझी जाती है क्योंकि जैन मन्दिर की व्यवस्था किसी ऐसे सन्त-महन्त के हाथ में नहीं होती जिसमें उनका स्वार्थ या सत्ता जुड़ी हो। जिन धर्म या सम्प्रदायों में मन्दिर या मठों की व्यवस्था सन्त-महन्तों की होती है वहाँ क्या होता है इसके किस्से अखबारों में छपते हैं और उनमें चलनेवाले दुराचार या विलासिता की कहानियाँ पढ़ने या देखने को मिलती हैं। कई इतिहासज्ञों का कहना है कि बौद्धों का इस देश से निष्काल या प्रभाव कम होने के कारणों में राजाओं की कृपा तथा विहारों की विलासिता और दुराचार भी एक कारण था। बौद्धों की तरह जैनियों में यह विकृति न आई हो ऐसी बात नहीं। ८वीं शताब्दी में वे भी पतन की ओर तेजी से बढ़ रहे थे। आचार्य हरिभद्रसूरि ने लिखा है कि "कई जैन साधु मन्दिरों में रहने लग गये थे, मन्दिरों के धन का अपने भोग-विलास में उपयोग करते, मिष्टान्न तांबूलादि से जिह्वा को तृप्त करते, नृत्य संगीत का आनन्द लूटते। केश-लुँचन का त्याग कर दिया था। स्त्री-संग को वे सर्वथा त्याज्य नहीं मानते, धनिकों का आदर करते और ऐसी बहुत सी बातें जो जैनाचार के विपरीत थीं उसे करने लग गये थे। धनिकों तथा राजाओं पर उनका अत्यन्त प्रभाव था उसका उपयोग वे अपना सम्मान बढ़ाने तथा सुखोपभोग में करते। हाथियों पर सवारी और छत्र-चामर आदि द्वारा राजाओं की तरह उनका मान-सम्मान होता था।

श्री हरिभद्राचार्य जैसे प्रतापी तथा प्रभावशाली आचार्य ने इस स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया, कुछ सफलता भी प्राप्त हुई, उनके बाद भी वह संघर्ष चलता रहा। उस काल में चैत्यवासियों का बहुत प्रभाव था। जो चावड़ा तथा चौलुक्य वंश के गुरु थे। जैन धर्म को पतन के गर्त से बचाने तथा प्राचीन श्रमण परम्परा और आचार की प्रतिष्ठापना करने का काम प्रभावशाली ढंग से जिन महापुरुष ने किया, जिन्होंने 'खरतरगच्छ' की पदवी प्राप्त कर खरतरगच्छ की परम्परा चल ई। वे थे श्रीजिनेश्वरसूरि और उनकी परम्परा के आचार्य जिनवल्लभ, जिनदत्तसूरि, जिनचन्द्रसूरि, जिनपतिसूरि आदि। इन्होंने चैत्यवास का विरोध एवं पुनः कठोर जैन श्रमण आचार की प्रतिष्ठापना की। जैन श्रमण संस्था को विशुद्ध संयमयुक्त तथा तेजस्वी बनाने का प्रयास किया। विशुद्धि से समाज में आई हुई चैत्यवास की विकृति को दूर करने के प्रबल प्रयास किये।

खरतरगच्छ ने जो जैन संस्कृति की सेवा की है उसका ठीक मूल्यांकन जैन समाज में भी नहीं हो पाया। कारण अनेक हैं उसमें से एक कारण गच्छ और सम्प्रदाय का अभिनिवेश है। जब सम्प्रदाय या गच्छों में विचारों की भिन्नता रहते हुऐ भी एक दूसरे के गुणों और विशेषताओं से लाभ उठाया जाता है तब ये गच्छ अथवा सम्प्रदाय एक दूसरे के लिये लाभदायक होते हैं पर इसके स्थान में उनमें जब प्रतिस्पर्धा या ईर्ष्या का भाव निर्माण होता है तब एक दूसरे से लाभ लेना तो दूर, वे एक दूसरे की हानि पहुँचाने में भी कसर नहीं छोड़ते। इस साम्प्रदायिक अभिनिवेश ने जैन समाज को बहुत हानि पहुँचाई है। हम न तो अपना निष्पक्ष और ठीक इतिहास ही लिख पाये हैं, न

ऐतिहासिक भूलों से शिक्षा ही ले सके हैं और न पूर्वजों की विशेषताओं से लाभ ही उठा सके हैं।

खरतरगच्छ की स्थापना के समय के भारत के इतिहास का गहराई से अध्ययन होना आवश्यक है। वह समय भारत के इतिहास में इसलिये महत्वपूर्ण है कि उस समय भारत में आपसी झगड़े और द्वेष बढ़कर छोटे-छोटे राजा अपने अहंकार के प्रदर्शन के लिये एक दूसरे का नाश करने पर तुले हुए थे। जब देश में धर्म रूढ़िगत आचार बन जाता है, और उसे साम्प्रदायिक लोग महत्व देकर चरित्र-धर्म एवं नैतिकता को भूल जाते हैं तब प्रजा अनैतिक बनती है, उसमें दुर्बलता आती है। धर्म के ऊँचे सिद्धान्तों की पूजा तो होती है लेकिन वे जीवन से लुप्त हो जाते हैं। मनुष्य स्वार्थी बनकर धर्म का उपयोग भौतिक सुख प्राप्ति में करने लगता है। उसके गुण या विशेषतायें दुर्गुण बन जाती हैं। साधु-सन्तों की विद्या, शक्ति, साधना विकृत बनती है। राजाओं का शौर्य व शक्ति भी आत्मनाश का कारण बनती है। वे समाज और राष्ट्र को दुर्बल बनाते हैं। इसलिये ऐसे समय में राष्ट्र के चरित्र निर्माण का प्रश्न महत्वपूर्ण बन गया था। यदि राष्ट्र में फिर से नैतिकता प्रतिष्ठित नहीं होती और हम उदार तथा व्यापक दृष्टिकोण नहीं अपनाते तो राष्ट्र को विदेशियों के आक्रमण से बचा नहीं पावेंगे, ऐसी दृष्टिवाले जो कुछ दीर्घ-द्रष्टा थे उनमें से खरतरगच्छ की स्थापना करने वाले आचार्य वर्द्धमानसूरि थे। जिन्होंने संयम धर्म को अपना कर उसका प्रचार करने का प्रबल प्रयत्न किया और चैत्यवासियों को संयम और विहित धर्मपालन की तरफ आकृष्ट करने लगे।

प्रारम्भ में यह काम बहुत कठिन था। क्योंकि चैत्यवासियों के पास साधन और सत्ता का बल था। और श्रमण संस्कृति को विशुद्ध और तेजस्वी बनाने वालों के पास तो आध्यात्मिक त्याग और सहन की शक्ति के सिवाय भौतिक साधन थे ही नहीं, पर आहिस्ता-आहिस्ता परिस्थिति बदली और उनके प्रबल प्रयत्नों का यह परिणाम आया कि जैन-मन्दिर चैत्यवासियों के प्रभाव से मुक्त हुए। इतना ही नहीं, मन्दिरों का द्रव्य, देव-द्रव्य समझा जाकर उसका उपयोग मन्दिरों की व्यवस्था, सुरक्षा और पुनर्निर्माण में ही होने लगा। फलस्वरूप जैन मन्दिरों की सुव्यवस्था हो सकी, वे सुरक्षित रह सके। आज हमारी प्राचीन वास्तुकला को जिस रूप में हम देखते हैं उसका कारण चैत्यवासियों के प्रभाव से जैन मन्दिरों को मुक्त कराना है और इस महान कार्य को खरतरगच्छ के आचार्यों ने कर जैनधर्म और भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी सेवा की।

मंदिरों, मठों, विहारों को चरित्रहीन व्यक्तियों के प्रभाव से बचाने का काम कितना महत्वपूर्ण था यह जब हम अन्य सम्प्रदाय के उपासना-स्थलों व मंदिरों की बातें सुनते हैं तब पता चलता है। हंसा दामोदरलालजी के विवाह जैसी अनेक घटनाएं घटती हैं। मन्दिरों का करोड़ों रुपया जब इन धर्मगुरुओं के भोग-विलास या बड़प्पन के दिखावे में खर्च होता है तब धर्मस्थान धर्म साधना के नहीं पर भ्रष्टाचार के स्थान बन जाते है।

खरतरगच्छ के इस कार्य ने जैन साधुओं को फिर से संयमधर्म की ओर मोड़ा और जैनधर्म का बौद्धधर्म की तरह भारत से लुप्त होने से बचाया। इतना ही नहीं, जैन समाज की एक और बहुत बड़ी सेवा ओसवाल जाति को प्रतिबोध देकर उन्हें जैनधर्म में दीक्षित करके की थी। उस ओसवाल जाति ने जैन समाज की ही नहीं, भारत तथा भारतीय संस्कृति के विविध क्षेत्रों में जो सेवा की उस विषय में प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुनि जिनविजयजी ने जो कहा वह यहां देने जैसा है :—

'श्वेताम्बर जैन संघ जिस स्वरूप में आज विद्यमान है, उस स्वरूप के निर्माण में खरतरगच्छ के आचार्य, यति, और श्रावक समूह का बहुत बड़ा हिस्सा है। एक तपा-

गच्छ को छोड़कर दूसरा और कोई गच्छ इस के गौरव की बराबरी नहीं कर सकता। कई बातों में तो तपागच्छ से भी इस गच्छ का प्रभाव विशेष गौरवान्वित है। भारत के प्राचीन गौरव को अक्षुण्ण रखने वाली राजपूताने की वीरभूमि का पिछले एक हजार वर्ष का इतिहास, ओसवाल जाति के शौर्य, औदार्य, बुद्धि-चातुर्य और वाणिज्य व्यव-साय-कौशल आदि महद् गुणों से प्रदीप्त है और उन गुणों का जो विकास इस जाति में इस प्रकार हुआ है वह मुख्य-तया खरतरगच्छ के प्रभावान्वित मूल पुरुषों के सदुपदेश तथा शुभाशीर्वाद का फल है। इसलिए खरतरगच्छ का उज्ज्वल इतिहास यह केवल जैनसंघ के इतिहास का ही एक महत्वपूर्ण प्रकरण नहीं है, बल्कि समग्र राजपूताने के इति-हास का एक विशिष्ट प्रकरण है।"

भारतीय संस्कृति और इतिहास में खरतरगच्छ के आचार्यों ने महत्वपूर्ण काम किया, उसका महत्व खरतर-गच्छ और ओसवाल समाज के लिए तो और भी अधिक हो जाता है। ओसवाल समाज को जैनधर्म में दीक्षित कर उच्च परम्परा की देन दी है, इसलिए ओसवाल समाज का इस परम्परा के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना स्वाभाविक है और वैसा ओसवाल समाज ने किया भी है। उनको प्रति-बोध देनेवाले दादा जिनदत्तसूरिजी की स्मृति ताजी रहे, इसलिए दादावाड़ियों का जगह-जगह निर्माण किया है। एक तरह से ये दादावाड़ियाँ समाज के मिलन का स्थान और दादा जिनदत्तसूरिजी के प्रति कृतज्ञता के सुन्दर प्रतीक हैं। जहाँ उनके चरणों की स्थापना कर पूजा की जाती है। उनके गुणों और कार्यों को याद की जाती है।

लोगों में मान्यता है कि उन्होंने केवल अपने जीवन-काल में ही कल्याण नहीं किया था पर वे आज भी उनके भक्तों के संकट दूर करते हैं। चूंकि हम किसी महापुरुष की पूजा, भक्ति कामना-भाव से करना जैन तत्वों की दृष्टि से प्रतिकूल मानते हैं इसलिए इस बात को हम उत्ते-जन देना उचित नहीं समझते किन्तु उनके गुणों से लाभ उठाकर पुरुषार्थ युक्त परिश्रम को अधिक महत्व देते हैं, वही आत्मविकास की दृष्टि से श्रेयस्कर भी है। उस दृष्टि से खरतरगच्छ के महान आचार्यों ने जो कार्य किया उसका महत्व इतना अधिक है कि जैन समाज ही नहीं पर भार-तीय संस्कृति के उपासक उनके कार्यों का ठीक मूल्यांकन करे। वैसा सम्यक् मूल्यांकन तभी हो सकेगा जब हम उनके द्वारा लिखे गये साहित्य का गहराई से अनुशीलन व अध्य-यन करेंगे। इस विषय में भी मुनिजिनविजयजी के शब्द उद्धृत किये बिना नहीं रहा जाता, मुनिजी कहते हैं :—

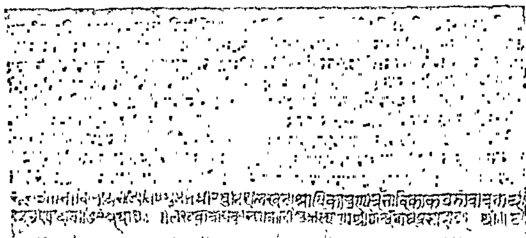
"खरतरगच्छ में अनेक बड़े-बड़े प्रभावशाली आचार्य, बड़े-बड़े विद्यानिधि उपाध्याय, बड़े-बड़े प्रतिभाशाली पंडित मुनि और बड़े-बड़े मांत्रिक, तांत्रिक, ज्योतिर्विद, वैद्यक विशारद आदि कर्मठ यति-जन हुए जिन्होंने अपने समाज की उन्नति, प्रगति और प्रतिष्ठा बढ़ाने में बड़ा योग दिया है। सामाजिक और साम्प्रदायिक उत्कर्ष के सिवा खरतर-गच्छ के अनुयायियों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं देशी भाषा के साहित्य को भी समृद्ध करने में असाधारण उद्यम किया और इसके फलस्वरूप आज हमें भाषा, साहित्य, इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक आदि विविध विषयों का निरूपण करनेवाली छोटी बड़ी सैंकड़ों हजारों ग्रन्थ-कृतियां जैन भंडारों में उपलब्ध हो रही हैं। खरतरगच्छीय विद्वानों की की हुई यह उपासना न केवल जैनधर्म की दृष्टि से ही महत्व वाली है, अपितु समुच्चय भारतीय संस्कृति के गौरव की दृष्टि से भी उतना ही महत्व रखती है।"

खरतरगच्छ द्वारा चैत्यवास का उन्मूलन संयम मार्ग की पुनः प्रतिष्ठा का ही परिणाम है। लेकिन पिछले दो सौ वर्षों में इस कार्य में कुछ शिथिलता आई है। कारण स्पष्ट है, हमने पार्थिव शरीर या रूढ़ आचारों का तो महत्त्व दिया पर उसके पीछे जो समाज कल्याण की भावना और साधना थी, वह नहीं रही। फिर उन युगपुरुषों ने

मंत्र, तंत्र, ज्योतिष, चिकित्सा आदि विद्याओं का उपयोग किया था, वह विशुद्ध समाजहित की भावना से किया था। कहीं अपने व्यक्तिगत प्रभाव बढाने या स्वार्थ के लिए नहीं किया। परन्तु वह परम्परा आगे नहीं चली। उल्टे हम उन उत्तम, महापुरुषों की भक्ति अपने व्यक्तिगत भौतिक सुखों की प्राप्ति और दुःख-विमुक्ति के लिये करने लगे। इस कामनिक भक्ति ने हमें भिखारी या दीन बनाया, हमारे पुरुषार्थ और सुप्त आत्मिक शक्ति का विकास होने में बाधा पहुँचायी। फलस्वरूप हमारा तेज नष्ट हुआ और हम उन युगप्रधान आचार्यों की परम्परा निभा नहीं सके।

आज ऐसे महान प्रभावशाली आचार्य मणिधारी जिनचन्द्रसूरि की ८ वीं शताब्दी के अवसर पर हम सब खरतरगच्छ के साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविकाएं गहराई से चिन्तन कर हमारे तेजस्वी और प्रभावशाली आचार्यों के गुण और कार्यों का अनुसरण कर, गच्छ को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कराने का प्रयत्न करें तभी हमारा जयन्ती मनाना सार्थक होगा। नहीं तो बड़े बड़े जुलुस, सभा, भाषण, साहित्य प्रकाशन, स्वामी-वत्सल आदि में लाखों का खर्च करके भी विशेष लाभ नहीं उठा पावेंगे। आशा यह करनी चाहिये कि हमारे बन्धु इस विषय में चिन्तन कर ऐसा मार्ग अपनावेंगे जिससे समाज, राष्ट्र और मानव कल्याण मे खरतरगच्छ महत्वपूर्ण योगदान दे। महा प्रभावी पुरुषों की शताब्दियो या जयन्तियों के मनाने की परम्परा और हमारा उन्हें श्रद्धांजलि अर्पण करना तभी उपयोगी हो सकेगा।

हमें आशा ही नहीं पर पूर्ण विश्वास है कि खरतर-गच्छ संघ उस दिशा में अवश्य ही सही कदम उठावेगा और युग के अनुकूल समाज व संघ के हित के कार्य करेगा।



सं० १६११ में सुमतिधीर (अकबर प्र० श्रीजिनचन्द्रसूरि, आचार्य पद से पूर्व) मुनि की हस्तलिपि

# जेसलमेर के महत्त्वपूर्ण ज्ञानभंडार

## [ आगम प्रभाकर मुनिश्रीपुण्यविजय जी ]

[ जैसलमेर के ज्ञानभण्डारों में श्रीजिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार ही प्राचीन एवं प्रमुख है। जैसलमेर को सुरक्षित व जैन समाज का केन्द्र समझकर अन्य स्थानों की प्राचीन प्रतियाँ भी मंगवा कर वहीं सुरक्षित की गई और श्रीजिनभद्रसूरिजी ने सैकड़ों नवीन प्रतियाँ भी लिखवायी इस भण्डार का समय-समय पर अनेक विद्वानों ने निरीक्षण किया। इस ज्ञानभण्डार के महत्त्व से आकृष्ट हो विदेशी विद्वान भी यहाँ कष्ट उठाकर पहुंचे। बड़ोदा सरकार ने पं० ची० डा० दलाल के भेजकर सूची बनवायी जो ला० भ० गांधी द्वारा संपादित होकर प्रकाशित की। श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी हरिसागरसूरिजी ने इस ज्ञानभण्डार का उद्धार करवाया मुनिजिनविजय ने भी अनेक ग्रन्थों की प्रेस कापियां ६ मास रह कर करवायी इसे वर्त्तमान रूप देने में मुनिपुण्यविजयजी ने सर्वाधिक उल्लेखनीय कार्य किया उन्हीं के गुजराती लेख कासार यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है— सम्पादक ]

जेसलमेर अपने प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ज्ञानभंडार के लिये विश्व-विश्रुत है। कहा जाता है कि अब से डेढ़सौ वर्ष पूर्व वहां जैनों के २७०० घर थे। जेसलमेर के किले में खरतरगच्छीय जैनों के बनवाये हुए भव्य कलाधाम रूप आठ शिखरबद्ध मन्दिर हैं। इनमें अष्टापद, चिन्तामणि पार्श्वनाथ का युगल मन्दिर और दूसरे दो मन्दिर तो भव्य शिल्प स्थापत्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। विशेषतः मन्दिर में प्रवेश करते ही तोरण में विविध भावों वाली भव्याकृतियां शालभञ्जिकाएं आदि दर्शनीय हैं।

जेसलमेर में सब मिलाकर दस ज्ञानभण्डार थे। जिनमें से तपागच्छ और लौंकागच्छ के दो ज्ञानभंडारों को छोड़कर सभी खरतरगच्छ की सत्ता और देखरेख में हैं। जेसलमेर के भंडारों में ताड़पत्र की चारसौ प्रतियां हैं। दो मन्दिरों के बीच के गर्भ में जिनभद्रसूरि ज्ञानभण्डार सुरक्षित है जिसमें प्राचीनतम ताड़पत्रीय एवं कागज की प्रतियां विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

जेसलमेर के ताड़पत्रीय ज्ञानभंडार में काष्ठ चित्र-पट्टिकाएं एवं स्वर्णाक्षरी रौप्याक्षरी एवं सचित्र प्रतियां विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ताड़पत्रीय प्रतियों में ऐसे बहुत से ग्रन्थ हैं जिनकी अन्यत्र कहीं भी प्रतियां प्राप्त नहीं हैं। प्राचीनतम और महत्त्वपूर्ण प्रतियों का संशोधन की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है।

यहां के ज्ञानभंडारों में चित्रसमृद्धि और प्राचीन काष्ठपट्टिकाएं आदि विपुल परिमाण में संगृहीत हैं। १३वीं से १५वीं शताब्दी तक की चित्रित काष्टपट्टिकाएं व सचित्र प्रतियों में तीर्थंकरों के जीवन-प्रसङ्ग, प्राकृतिक दृश्य व अनेक प्राणियों की आकृतियां देखने को मिलती है। १३वीं की चित्रित एक पट्टिका में जिराफ का चित्र है जो भारतीय प्राणी नहीं है। इन चित्र पट्टिकाओं के रङ्ग इतने जोरदार हैं कि पांच-सातसौ वर्ष बीत जाने पर भी फीके और मैले नहीं हुए। ताड़पत्रीय प्रतियों में भी तीर्थंकरों, जैनाचार्य और श्रावकों आदि के चित्र हैं वे आज भी ज्यों के त्यों देखने को मिलते हैं। ताड़-पत्रीय प्रतियोंमें काली स्याही से चक्र, कमल आदि सुशोभन रूप चित्राङ्कित हैं।

प्राचीन ताड़पत्रीय प्रतियों की संख्या की दृष्टि से पाटण के भंडार बड़े-बड़े है पर जैसलमेर के भण्डारों में कई ऐसी विशेषताएं हैं जो अन्यत्र कहीं नहीं हैं। जिनभद्रसूरि ज्ञानभंडार में जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के विशेषावश्यक महाभाष्य का प्राचीनतम ताड़पत्रीय प्रति नौवीं दसवीं शताब्दी का है। इतना प्राचीनतम और कोई भी प्रति किसी भी जैनभण्डार में नहीं है। अतः यह प्रति इस भंडार के गौरव की अभिवृद्धि करती है। प्राचीन लिपियों के अभ्यास की दृष्टि से भी प्राचीन प्रतियों का विशेष महत्व है।

ताड़पत्रीय प्राचीन प्रतियों के अतिरिक्त कागज पर लिखी हुई विक्रम सं० १२४६-१२७८ आदि की प्रतियाँ विशेष महत्वपूर्ण हैं। अब तक जैन ज्ञानभण्डारों में कागज पर लिखी हुई इतनी प्राचीन प्रतियाँ कहीं नहीं मिलीं। इस प्रकार यह ज्ञानभण्डार साहित्य संशोधन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

व्याकरण, प्राचीन काव्य, कोश, छंद, अलंकार, साहित्य, नाटक आदि विषयों की अलभ्य विशाल सामग्री यहां है। केवल जैनग्रन्थों की दृष्टि से ही नहीं वैदिक और बौद्ध साहित्य संशोधन के लिए भी यहां अपार और अपूर्व सामग्री है। बौद्ध दार्शनिक तत्व-संग्रह ग्रन्थ की बारहवीं के उत्तरार्द्ध की प्रति यहां है, उसकी टीका और धर्मोत्तर पर मल्लवादी की व्याख्या की प्राचीन और शुद्ध प्रति भी यहीं है। आगम साहित्य में दशवैकालिक की अगस्त्यसिंह स्थविर की चूर्णि भी यहीं है जो अन्य किसी भी ज्ञानभंडार में नहीं है। पादलिप्तसूरि के ज्योतिष करण्डक टीका की अन्यत्र अप्राप्त प्राचीन प्रति भी इसी भंडार में है। जयदेव के छंद शास्त्र और उस पर लिखी हुई टीका तथा वर्द्धसिद्ध सटीक छंद ग्रंथ भी यहीं है। वक्रोक्तिजीवित और प्राकृत का अलङ्कारदर्पण, रुद्रट काव्यालंकार, काव्यप्रकाश की सोमेश्वर की अभिधावृत्ति, मातृका, महामात्य अम्बादास की काव्यकल्पलता और संकेत पर की पल्लवरोध व्याख्या की सम्पूर्ण प्रति भी इसी भण्डार में सुरक्षित है। इस प्रकार यह ग्रन्थ-भण्डार साम्प्रदायिक दृष्टि से ही नहीं व्यापक दृष्टि से भी बड़े महत्व का है। यहाँ के ग्रन्थों के अन्त में लिखी पुष्पिकाएं भी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बड़े महत्व की हैं। इनमें से कई प्रशस्तियों और पुष्पिकाओं में प्राचीन ग्राम-नगरों का उल्लेख है जैसे मल्लधारी हेमचन्द्र की भव-भावनाप्रकरण की स्वोपज्ञ टीका सं० १२४० की लिखी हुई है उसमे पादरा, वासद आदि गांवों का उल्लेख है। इस तरह अनेक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सामग्री जेसलमेर के ज्ञानभण्डारों में भरी पड़ी है, इसीलिए देश-विदेश के जैन जैनेतर विद्वानों के लिए ये आकर्षण केन्द्र हैं।

❁

# खरतरगच्छ की महान् विभूतिदानवीर सेठ मोतीशाह

[ लेखक—चाँदमल सीपाणी ]

मूर्तिमान धर्मरूप संघपति स्व० सेठ मोतीशाह ने धार्मिक संस्कार के बल पर प्राप्त की हुई लक्ष्मी का उपयोग रंग-राग में या संसार के क्षण-भंगुर विलासों में नहीं करके, आत्म श्रेय के अपूर्व साधन सम, स्वपर का एकांत कल्याण करनेवाले मार्ग पर उपयोग किया। स्व० मोती शाह ने गृहस्थ जीवन में जैन शासन की प्रभावना के तथा जीवदया आदि के अनेक सुन्दर कार्य अपने अमूल्य मानव जीवन में पुरुषार्थ पूर्वक आत्मा का ऊर्ध्वीकरण कर अपने जीवन को सफल किया।

बम्बई के श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ तथा गोडीजी पार्श्वनाथ के मंदिरों को देखकर, सहसा मोतीशाह सेठ को धन्यवाद दिये बिना नहीं रहा जाता। इसके सिवा प्रति वर्ष कार्तिकी-चैत्रीपूर्णिमा पर सम्पूर्ण बम्बई की जैन जनता भायखला के श्रीआदिनाथ मंदिर पर जाती है। यह देवालय व दादावाड़ी सेठ मोतीशाह ने ही बनवाये और इसके आसपास की विशाल जगह जैन समाज को दे गये। इसी प्रकार बम्बई पांजरापोल के आद्य प्रेरक-आद्य संस्थापक और मुख्य दाता थे। उनका नाम आज भी लोग दयावीर और दानवीर के रूप में स्मरण करते हैं। पांजरापोल को तन, मन और धन से सहयोग देकर अमर आत्मा सेठ मोतीशाह आज भी जीवित हैं। उस विशाल पांजरापोल का प्रत्येक पत्थर और ईंट उनके जीते जागते नमूने हैं।

केवल बम्बई में ही नहीं सम्पूर्ण भारतवर्ष के आबाल वृद्ध नर-नारी और विदेश से आनेवाले पर्यटक जिसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं ऐसी श्री शत्रुंजय पर की ''मोतीशाह सेठ' की टूंक यहाँ याद आये बिना नहीं रहती। शाश्वतगिरि पर गहरी खाई को पूरकर, जिस मङ्गल धाम का निर्माण किया वह लाखों आत्माओं को आत्म कल्याण को-जीवन-सफल करने को-लक्ष्मी मिली हो तो ऐसे प्रशस्त मार्ग पर खर्च करने को प्रेरणा देने को मौजूद है। इसको देखकर कहे बिना नहीं रहा जाता कि सेठ मोतीशाह चाहे देह रूप में न हो, परन्तु ऐसी अद्भुत कृति के सर्जकरूप में अमर है।

सेठ मोतीशाह में दान का गुण असाधारण था। विक्रम को उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बम्बई के जैन समाज में जो जागृति व प्रभाव फैला उसमें उनके यश का बहुत बड़ा श्रेय इन्हीं को है। कर्जदार के रूप में जीवन यात्रा को शुरू करनेवाले व संवत् १८७१ में सारे कुटुम्ब में अकेले रह जानेवाले जिस व्यक्ति ने दानवीरता के जो अनेक शुभ कार्य किये हैं, उसकी राशि अट्ठाईस लाख से भी ऊपर जाती है। इसमें सबसे बड़ा काम जिनमें उन्होंने धन व्यय किया वह है पालीताना के शत्रुंजय पर्वत पर मोतीवसहि टूंक का काम। इस कार्य के निर्माण में ग्यारह लाख एवं उनकी आज्ञा-इच्छा के अनुसार प्रतिष्ठा महोत्सव में सात लाख सात हजार मिलकर कुल अठारह लाख सात हजार खर्च हुआ। दो लाख रुपया बम्बई की पांजरापोल के लिये खर्च किये। इनके सिवा नीचे का वर्णन खास ध्यान देने लायक है। यह सब उनकी धर्म भावना, अहिंसा-मय हृदय और तत्कालीन जनता को आवश्यकताओं पर उनकी तत्परता को बताते हैं।

भूलेश्वर:—कुंभार टुकड़ा के चिंतामणी पार्श्वनाथ, देहरासर की प्रतिष्ठा सं० १८६८ के दूसरे वैशाख सुद ८ बुधवार के दिन सेठ नेमचन्द भाई ने कराई और उसके लिये रु० ५००००/- दिये।

भींडी बाजार :—शान्तिनाथ महाराज के देहरासर की प्रतिष्ठा सं० १८७६ माह सुद ११ के रोज हुई, उसके लिये रु० ४००००/- दिये।

कोट घोरा बाजार :—शान्तिनाथ महाराज के देहरासर की प्रतिष्ठा सं० १८६५ माह वद ५ के दिन हुई उनकी प्रतिष्ठा के लिये और देहरासर के निर्माण हेतु उनके कुटुम्ब ने दो लाख रुपये खर्च किये। सेठ अमीचन्द जिस जगह रहते थे और जिसके पास शान्तिनाथजी का मन्दिर है वह वास्तव में उपाश्रय था जिसे उनके बड़े भाई नेमचन्द ने तीस हजार रुपये खर्च कर बनवाया था। पीछे और जगह लेकर वहाँ नेमचन्दभाई ने एक लाख और खर्च कर मन्दिर बनवाया। प्रतिष्ठा और निर्माण में कुल दो लाख खर्च हुए।

मद्रास की दादावाडी की जमीन खरीदने और निर्माण हेतु रु० ५००००/- सं० १८६४ में दिया।

पालीताना की धर्मशाला के निर्माण में रु० ८६,०००/- खर्च हुए।

भायखला की दादावाडी :- मन्दिर की जमीन, निर्माण व प्रतिष्ठा में० ( सं० १८८५ मगसर सुद ६ ) दो लाख रुपये खर्च किये।

बम्बई गोडीजी के मन्दिर की प्रतिष्ठा सं० १८६८ के वैशाख सुद १० के दिन हुई जिसमें पचास हजार रुपये दिये।

पायधुनी के आदीश्वरजी के मन्दिर की प्रतिष्ठा सं० १८८२ के ज्येष्ठ सुद १० के दिन हुई। उनको उद्यापन में पचास हजार की बोली बोली।

कर्जदारों को छूट-अंत समय नजदीक आया जान जिन कई गरीब लोगों से रुपया लेना था उनको कर्ज मुक्त करने के लिये एक लाख रुपया छोड़ दिया।

इन सब का योग २८,०८,००० अट्ठाइस लाख आठ हजार होता है।

इस मोटी रकम के अलावा छोटी-छोटी रकमें तो कई थी जिनका कोई हिसाब नहीं। बम्बई की कोई चन्दा-पानड़ी ऐसी नहीं होती थी जिसमें उनका नाम न होता हो। इस प्रकार की रकम भी कई लाख है। आप प्रायः सब दान सेठ अमीचन्द साकरचन्द के नाम से ही देते थे और इसी में अपना गौरव समझते थे।

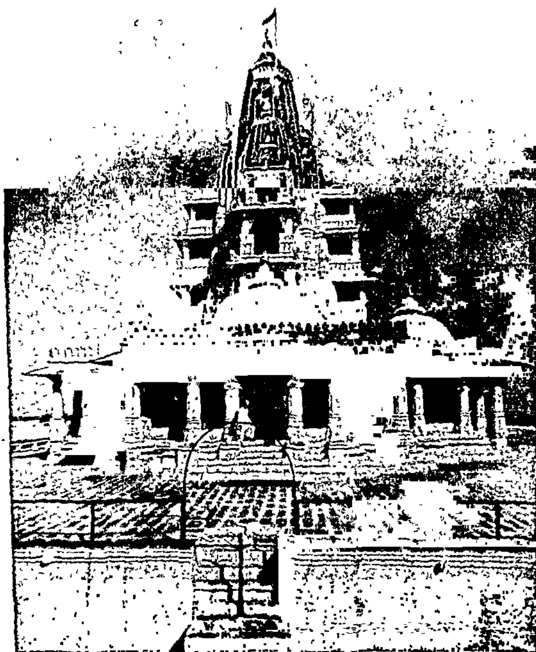
इनका रहन-सहन बिलकुल साधारण नहीं था। सिर पर सूरती पगड़ी और शरीर पर बालाबंधी केडियू लम्बी कड़पलो वाला पहनते थे।

स० १८५५ में सेठ मोतीशाह के पिता की मृत्यु के बाद उनकी उत्तरोत्तर उन्नति होती गई। इसके बाद सारे जीवन में धन सम्बन्धी दुःख तो इन्होंने देखा नहीं। उनके ग्रह सं० १८८० से तो और भी बलवान हो गये। कुंतासर के तालाब को पूरने के समय से लेकर के अंतिम तक दिनोंदिन बलवान ही होते रहे।

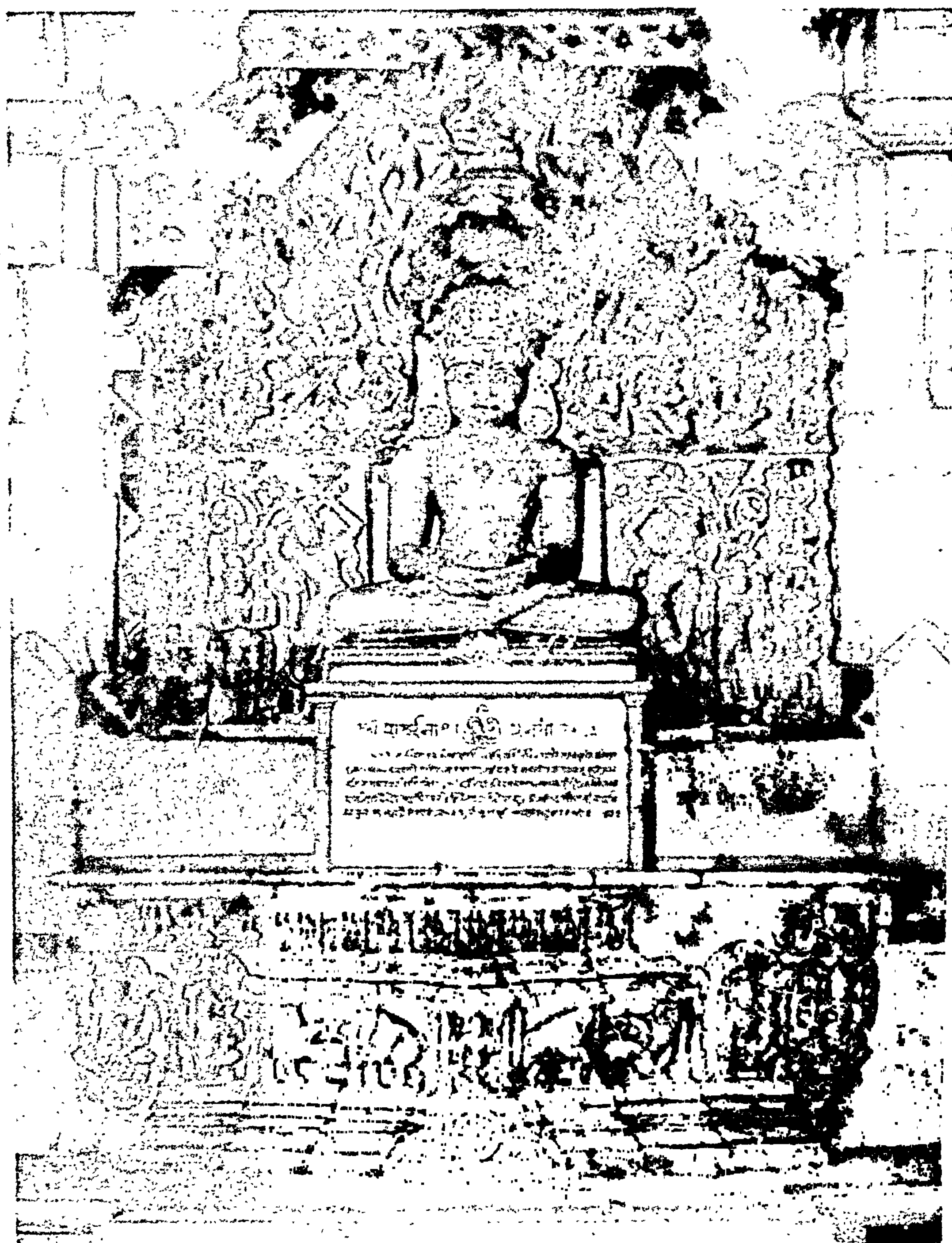
मोतीशाह सेठ का अपने मुनीमों के साथ सम्बन्ध कुटुम्बी जनों के समान था। उनकी यही इच्छा रहती थी कि उनके मुनीम भी उनके जैसे धनी बने। मुनीमों को अच्छे बुरे अवसरों पर उदारता पूर्वक मदद करते। सेठ मोतीशाह के मुनीम लक्षाधिपति हुए हैं, इसके कई उदाहरण मौजूद हैं। उनकी टूंक में उनके मुनीमों ने मन्दिर बनवाये हैं। उनके यहाँ अधिक कार्यकर्ता जैन थे। इसके अलावा हिन्दू व पारसी भी थे। सेठ मोतीशाह का जैन, हिन्दू व पारसी व्यापारियों व कुटुम्बों के साथ भी अच्छा सम्बन्ध था। इनमें सम्बन्धित जैनों ने मोतीशाह टूंक में देहरासर बनाये। हिन्दू व पारसी कुटुम्ब भी इनके प्रत्येक कार्य में हर प्रकार की सलाह एवं मदद देने को तैयार रहते थे। जिस समय उनके पुत्र खेमचन्द भाई ने पालीताणा का संघ निकाला तब सर जमशेदजी ने एक लाख रुपया खर्च किया यह उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण घटना है। इससे ज्ञात होता है कि परस्पर सहकार व सम्बन्ध किसप्रकार हृदय की भावना से निभाया जाता था। यही कारण था कि सेठ की मृत्यु के बाद पालीताणा संघ व प्रतिष्ठा के अवसर पर अनेक लोगों ने सहयोग दिया। उनके पुत्र खेमचन्द भाई तो एक राजा की तरह रहे।

महोपाध्याय कविवर समयसुन्दरजी की हस्तलिपि

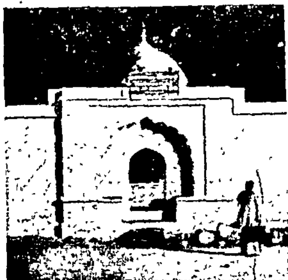
मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि लिखापित कागज की प्राचीनतम ध्वन्यालोकलोचन का अन्तिमपत्र



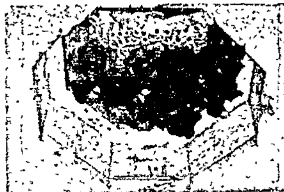
श्रीभानाजी भण्डारी कारित पार्श्वनाथ जिनालय, कापरड़ाजी



खरतर गच्छाचार्य श्रीजिनचन्द्रसूरि प्रतिष्ठित स्वयंभू पार्श्वनाथ, कापरड़ा तीर्थ



प्रवेश द्वार, दादाबाड़ी महरोली



मणिधारी पूजा स्थान, महरोली



मुनि श्री उदयसागरजी, प्रभाकरसागरजी



प्रवर्तिनीजी श्री प्रमोदश्रीजी



विदुषी आर्यारत्न सज्जनश्रीजी आदि

मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि चित्र (चन्द्रपुर जिनालय)



उ० श्रीसुखसागरजी, शि० मुनि मंगलसागरजी
व कान्तिसागरजी



श्रीजिनदत्तसूरि व जिनकुशलसूरि मूर्ति
व चरण, अजमेर दादावाड़ी

# खरतर गच्छ–साहित्य सूची

## आगम-टीकाएं

| क्रमाङ्क | ग्रन्थ नाम | कर्त्ता | रचना संवत् तथा स्थान | मुद्रित अमुद्रित प्राप्ति स्थान |
|---|---|---|---|---|
| १ | अनुत्तरोपपातिकदशा सूत्र टीका | अभयदेवसूरि | १२वीं | मु० |
| २ | ,, हिन्दी अनुवाद | जिनमणिसागरसूरि | २०वीं | मु० |
| ३ | अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र टीका | अभयदेवसूरि | १२वीं | मु० |
| ४ | ,, हिन्दी अनुवाद | जिनमणिसागरसूरि | २०वीं | मु० |
| ५ | आचारांगसूत्र टीका 'आचार-चिन्तामणि' | जिनचन्द्रसूरि, आद्यपक्षीय | १८वीं | अ० राप्राविप्र० जोधपुर मु० कुछ अंश |
| ६ | आचारांगसूत्र टीका 'दीपिका' | जिनहंससूरि | १५७२ बीकानेर | मु० |
| ७ | उत्तराध्ययन सूत्र टीका 'सर्वार्थसिद्धि' | कमलसंयमोपाध्याय | १५४४, | मु० |
| ८ | ,, ,, दीपिका | चारित्रचन्द्र P/. जयरंग | १७२३ रिणी | अ० विनय० कोटा |
| ९ | ,, ,, अवचूरि | तपोरत्न | १५५० | अ० सीकरी |
| १० | ,, ,, 'मकरन्दोद्धार' | धर्ममंदिर P/. दयाकुशल | १७५० | अ० ,, |
| ११ | ,, ,, | P/. मतिकीर्ति | १७वीं | अ० अभय० बीकानेर |
| १२ | ,, ,, | भावविजयोपाध्याय P/. | १८वीं | मु० |
| १३ | ,, ,, | वाचो हर्षनन्दन P/. समयसुन्दर | १७११ बीकानेर | अ० बड़ा भंडार बीकानेर |
| १४ | उत्तराध्ययनसूत्र 'बालावबोध' | समयसुन्दर P/. समयराजोपाध्याय | १७वीं | अ० सेठिया बीकानेर (१३ वाँ अध्ययन) |
| १६ | ,, ,, | कमललाभ P/. अभयसुन्दर | १६७४-१६९९ के मध्य | अ० विनय १११ |
| १७ | उपासकदशाङ्गसूत्र टीका | अभयदेवसूरि | १२वीं | मु० |
| १८ | ,, बालावबोध हर्षवल्लभ P | जिनचन्द्रसूरि | १६९२ राजनगर | अ० अभय बीकानेर |
| १९ | ,, हिन्दी अनुवाद | विनयश्री P/. हुलासश्री | २०वीं | मु० |
| २० | औपपातिकसूत्र टीका | अभयदेवसूरि | १२वीं | मु० |
| २१ | ,, हिन्दी अनुवाद | जिनहरिसागरसूरि | २०वीं | अ० हरि० लोहावट |
| २२ | कल्पसूत्रटीका 'कल्पसुबोधिका' | कीर्तिसुन्दर P/. धर्मवर्द्धन | १७५१ | अ० यति० चित्तौड़ |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २३ कल्पसूत्र टीका 'पर्युषणा कल्पसूत्र' | केशरमुनि | २०वीं | | मु० |
| २४ ,, संदेहविषौषधि' | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १३६४ | अयोध्या | मु० |
| २५ ,, (चतुर्दशस्वप्नानां) | राजसोम P/. जयकीर्त्ति, जिनसागरसूरिशाखायां | १७०६ | | अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर |
| २६ कल्पसूत्र टीका 'कल्पद्रुमकलिका' | लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय | १८वीं | | मु० बालचित्तौड़ ८६, १७२६ लि० |
| २७ ,, | लब्धिमुनि उपाध्याय | २०वीं | | अ० |
| २८ ,, (समाचारी) | विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक | १७वीं | | अ० धर्म आगरा |
| २९ ,, कल्पलता | समयसुन्दरोपाध्याय | १६८५ | रिणी | मु० विनय ८२८, |
| ३० ,, कल्पमंजरी | सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन | १६८५ | | अ० ख० कोटा विनय ५७३ |
| ३१ ,, कल्पचन्द्रिका | सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय | १८वीं | | अ० केशरिया जोधपुर बद्रीदास |
| ३२ कल्पसूत्र बालावबोध | गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम | १७वीं | | अ० बद्रीदास कलकत्ता |
| ३३ ,, ,, | चन्द्र P/. देवधीर | १९०८ | अजयदुर्ग | अ० ,, कलकत्ता |
| ३४ ,, ,, | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड़ | १८वीं | | अ० डूंगर जेसलमेर |
| ३५ ,, ,, | रत्नजय P/. रत्नराज | १८वीं | | अ० महिमा बीकानेर |
| ३६ ,, ,, | राजकीर्त्ति P/. रत्नविमल | १९वीं | | अ० गोपाल मथेरण बीकानेर |
| ३७ ,, ,, | रामविजय (रूपचन्द्र) P/. दयासिंह | १८१९ | बीदासर | अ० |
| ३८ ,, ,, | शिवनिधानोपाध्याय | १६८० | अमरसर | अ० अभय बीकानेर |
| ३९ ,, ,, | समयराजोपाध्याय P/. जिनचंद्रसूरि | १७वीं | | अ० अभय बीकानेर |
| ४० (चतुर्दश स्वप्नानां) | साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य | १७वीं | | राप्राजोधपुर २५४७२ |
| ४१ ,, ,, | सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय | १८वीं | | अ० जैनरत्न पुस्तकालय |
| ४२ ,, ,, | P/. अमरमाणिक्य | १७वीं | | अ० अभय बीकानेर |
| ४३ कल्पसूत्र स्तवक | विद्याविलास P/. कमलहर्ष | १७२९ | | अ० अभय बीकानेर |
| ४४ ,, ,, | कमलकीर्त्ति P/. कल्याणलाभ | १७०१ | मरोट | अ० |
| ४५ कल्पसूत्र हिन्दीपद्यानुवाद | रायचन्द्र | १८३८ | बनारस | मु० |
| ४६ कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद | वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि | २०वीं | | मु० |
| ४७ ,, ,, | जिनकृपाचन्द्रसूरि | २०वीं | | मु० |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ४८ कल्पसूत्र हिन्दी अनुवाद | जिनमणिसागरसूरि | २०वीं | मु० | |
| ४९ कल्पसूत्रगत वचनिकाम्नाय | जिनसागरसूरि, जिनसागरसूरिशाखायां | १७वीं, | उल्लेख जिनरत्नकोष, | |
| ५० कल्पान्तर्वाच्य | जिनसमुद्रसूरि, बेगड़, | १८वीं | अ० वृद्धि० जेसलमेर | |
| ५१ ,, | जिनहंससूरि P/. जिनसमुद्रसूरि | १६वीं | अ० डूंगर, जेसलमेर | |
| ५२ ,, | भक्तिलाभोपाध्याय P/. रत्नचन्द्र | १६वीं | अ० विनय, कोटा ४५३५६६ | |
| ५३ चतुःशरणप्रकीर्णक बालावबोध | मुनिमेरु | १७वीं | अ० तपाभंडार, जेसलमेर | |
| ५४ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका | पुण्यसागरोपाध्याय P/. जिनहंससूरि | १६४५ जेसलमेर | अ० हरि, लोहावट | |
| ५५ ज्ञाताधर्मकथांगसूत्र टीका | अभयदेवसूरि | १२वीं, | मु० | |
| ५६ ,, ,, | कस्तूरचन्द्र P/. भक्तिविलास, | १८६६ जयपुर | अ० सेठिया बीकानेर विनय, कोटा | |
| ५७ ज्ञाताधर्मकथाङ्गसूत्र स्तवक | रत्नजय P/. रत्नराज | १८वीं | अ० पालणपुर | |
| ५८ दशवैकालिकसूत्र टीका | समयसुन्दरोपाध्याय | १६९१ खंभात | मु० | |
| ५९ ,, पर्याय (४ अध्याय मात्र) | ,, | १७वीं | अ० अभय, बीकानेर | |
| ६० ,, बालावबोध | राजहंस P/. हर्षतिलक | १६वीं | अ० | |
| ६१ ,, स्तवक 'दीपिका' | चारित्रचन्द्र P/. जयरंग लघुखरतर | १७२३ | अ० विनय ५८५ | |
| ६२ ,, स्तवक | विमलकीर्ति P/. विमलतिलक | १६५२ | अ० हरि, लोहावट | |
| ६३ ,, ,, | सहजकीर्ति (यतीन्द्र ?) P/. हेमनन्दन | १७११ | अ० | |
| ६४ ,, हिन्दी अनुवाद | जिनमणिसागरसूरि | २०वीं | मु० | |
| ६५ दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र टीका 'सुबोध' | मतिकीर्ति P/. गुणविनयोपाध्याय | १६६७ | अ० जैन स्थान० लुधियाना | |
| ६६ निशीथसूत्र अर्थ | सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन | १७वीं | अ० जैन भवन, कलकत्ता | |
| ६७ नन्दीसूत्र मलयगिरि टीकोपरिटीका | श्रीजिनचारित्रसूरि P/ | २०वीं | श्रीपूज्यजी, बीकानेर | |
| ६८ पद्मनिर्ग्रन्थी टीका (प्रज्ञापना तृतीयपद संग्रहणी) | अभयदेवसूरि | १२वीं | मु० | |
| ६९ ,, बालावबोध | मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति | १६वीं | अ० नाहर, कलकत्ता १६४२ लि० | |
| ७० पाक्षिकसूत्र बालावबोध | विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक | १७वीं | अ० | |
| ७१ प्रतिक्रमणसूत्र स्तवक | रत्नजय P/. रत्नराज | १८वीं | अ० दान० बीकानेर | |
| ७२ ,, ,, | विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक | १७वीं | अ० आचार्य बीकानेर केशरिया जोधपुर | |
| ७३ ,, बालावबोध (वन्दित्तुसूत्र) | सहजकीर्ति | १७०४ | अ० हरि, लोहावट | |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ७४ | प्रतिक्रमण (वन्दित्तुसूत्र) स्तबक | विद्यासागर P/. सुमतिकल्लोल | १७वीं | अ० आचार्य बीकानेर |
| ७५ | प्रश्नव्याकरण सूत्र टीका | अभयदेवसूरि | १२वीं | मु० |
| ७६ | बृहत्कल्पसूत्र अर्थ | सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन | १७वीं | उल्लेख-स्वकृत निशीथसूत्र अर्थ |
| ७७ | बृहत्कल्पादि छेदग्रन्थ लघु भाष्यादि टिप्पण | साधुरंगोपाध्याय P/. सुमतिसागर | १७वीं | उल्लेख-देवचन्द्र कृत विचारसार टीका |
| ७८ | भगवती सूत्र टीका | अभयदेवसूरि | ११२८ पाटण | मु० |
| ७९ | ,, ,, (शतक ९ उद्देशक २२-२३ मात्र) | जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १७वीं | अ० चंपालाल वेद भीनासर पुण्य अहमदाबाद |
| ८० | विपाकसूत्र टीका | अभयदेवसूरि | १२वीं | मु० |
| ८१ | ,, हिन्दी अनुवाद | वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि | २०वीं | मु० |
| ८२ | व्यवहारसूत्र अर्थ | सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन | १७वीं | उल्लेख-स्वकृत निशीथसूत्र अर्थ |
| ८३ | श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र बाला० | मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति | १६वीं | अ० महर, बीकानेर |
| ८४ | षडावश्यकसूत्र प्रणिधानावचूर्णिः | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १४वीं | अ० स० जयपुर |
| ८५ | षडावश्यकसूत्र बालावबोध | जयकीर्त्ति P/. वादी हर्षनन्दन | १६९३ जेसलमेर | अ० अभय, बीकानेर |
| ८६ | ,, ,, | तरुणप्रभसूरि | १४११ पाटण | अ० हरि लोहावट विनय ८०९ |
| ८७ | ,, ,, | मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति | १५२५ माण्डवगढ | अ० भावनगर भंडार |
| ८८ | षडावश्यकसूत्र बालावबोध | विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक | १६७१ | अ० अभय, बीकानेर |
| ८९ | ,, ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १६८३ जेसलमेर | अ० अभय, बीकानेर |
| ९० | समवायाङ्ग सूत्र टीका | अभयदेवसूरि | १२वीं | मु० |
| ९१ | साधुप्रतिक्रमणसूत्र वृत्ति | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १३६४ अयोध्या | अ० अभय, बीकानेर |
| ९२ | साधु समाचारी व्याख्यान | गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम | १७वीं | अ० चारित्र, राप्राविप्र बीकानेर |
| ९३ | साधु समाचारी बालावबोध | धर्मकीर्त्ति P/. धर्मनिधान | १६९९ बीकानेर | अ० |
| ९४ | ,, ,, | समयराजोपाध्याय | १६६२ | अ० धर्म, आगरा अभय बीकानेर |
| ९५ | सूत्रकृताङ्गसूत्र टीकादीपिका | साधुरंग P/. भुवनसोम आद्यपक्षीय | १५९९ वरलू | मु० विनय ५९४ |
| ९६ | ,, बालावबोध | जिनोदयसूरि P/. जिनसुन्दरसूरि बेगड | १८वीं | अ० डूंगर-जेसलमेर |
| ९७ | स्थानाङ्गसूत्र टीका | अभयदेवसूरि | १२वीं | मु० |
| ९८ | ,, ,, | जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १७वीं | अनुपलब्ध उ० श्रीसार कृत रास में |
| ९९ | स्थानाङ्गसूत्र गाथागतवृत्ति | वादी हर्षनन्दन तथा सुमतिकल्लोल | १७०५ | अ० हंस, बड़ौदा |

# सैद्धान्तिक-प्रकरण

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | अध्यात्म अनुभव योगप्रकाश | चिदानन्द द्वि० १९५५ जावद | मु० |
| २ | अध्यात्मप्रबोध | देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १८वीं | अ० हितविजय पं० घाणेराव, नकल अभय बीकानेर |
| ३ | अध्यात्मशान्तरसवर्णन, | ,, ,, ,, | अ० |
| ४ | अनुयोग चतुष्क गाथा | जिनप्रभसूरि P/, जिनसिंहसूरि १४वीं, | ,, |
| ५ | अनेक शास्त्रसार समुच्चय | सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १७वीं, | उल्लेख-जैन साहित्यनो स० इतिहास देशाई |
| ६ | अल्पाबहुत्वगर्भितस्तव स्वोपज्ञटीकासह | समयसुन्दरोपाध्याय P/. १७वीं | मु० |
| ७ | अष्टकर्मविचार | रामचन्द्र P/. शिवचन्द्रोपाध्याय १९वीं, | अ० हरि लोहावट |
| ८ | आगम अष्टोत्तरी | अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं, | मु० |
| ९ | आगमसार (देवचन्द्रीय अनुवाद) | चिदानन्द द्वि० २०वीं, | मु० |
| १० | ,, | देवचन्द्रोपाध्यायP/, दीपचन्द्र १७७६ मरोट | मु० विनय १५५, पाल १३७' |
| ११ | आगमिकवस्तुविचारसार प्रकरण (षडशीति) | जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि १२वीं, | मु० |
| १२ | ,, टिप्पणक | रामदेवगणि P/. जिनवल्लभसूरि ,, | अ० हरि लोहावट, जेसलमेर |
| १३ | ईर्यावहो मिथ्यादुष्कृत—बालावबोध | राजसोम P/. जयकीर्त्ति १८वीं, (जिनसागरसूरिशाखा) | आचार्यशाखा बीकानेर |
| १४ | उदयस्वामित्व पंचाशिका | देवचंद्रोपाध्याय P/. दीपचद्र १८वीं, | अ० स० जयपुर विनय कोटा |
| १५ | उदययन्त्र | सुमतिवर्द्धन P/. विनीतसुन्दर १९वी | विनय ३०६ |
| १६ | एकविंशतिस्थानकप्रकरण | अवचूरि धर्ममेरु P/. चरणधर्म १६७६ पूर्व | अ० जैनरत्न पुस्तकालय |
| १७ | ,, स्तवन | विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक १७वीं, | अ० महरचद भं, बीकानेर |
| १८ | कर्मग्रन्थ (तृतीय) विवरण | जिनकीर्त्तिसूरि १९वीं, (जिनसागरसूरिशाखा) | अ० आचार्यशाखा, बीकानेर |
| १९ | कर्मग्रन्थ पञ्चक स्तबक | देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचंद्र १८वीं, | मु० |
| २० | कर्मग्रन्थ स्तबक | साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य १७वीं, | अ० नाहर कलकत्ता, आचार्य शाखा बीकानेर, |
| २१ | कर्मग्रन्थ चतुष्टय-स्तबक | साधुकीर्त्ति P/. ,, | अ० विनय ६८८ |

२२ कर्मग्रन्थादि यन्त्र सुमतिवर्द्धन P/. विनीतसुन्दर १९वीं, अ० ख जयपुर, हरि लोहावट,

२३ कर्मबन्धविचार (पन्नवणानुसार) रामचन्द्र P/, शिवचन्द्रोपाध्याय १९०७ ग्वालियर अ०

२४ कर्मविचारसार प्रकरण साधुरंग P/. भुवनसोम आद्यपक्षीय १६वीं अ० राप्राविप्र जोधपुर २८४३ गुटका

२५ कर्मविपाक, कर्मस्तव स्तवक सुमति P/. जयकीर्त्तिपिप्पलक १७वीं अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर

२६ कर्मसम्वेध देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १८वीं मु० ख० जयपुर

२७ कर्मस्तव स्वोपज्ञ टीकासह, जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि १२वीं उल्लेख, पाइअभाषा अने साहित्य पृ० १६०, मूल मुद्रित

२८ ,, भाष्य रामदेव गणि P/. जिनवल्लभसूरि १२वीं अ० अभय बीकानेर,

२९ ,, विवरण कमलसंयमोपाध्याय १५४६ अ० पुण्य अहमदाबाद, भांडारकर पूना

३० कल्पप्रकरण बालावबोध मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १६वीं अ०

३१ कायस्थिति प्रकरण बालावबोध साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य १६२३ महिमनगर अ० धरणेन्द्र, जयपुर

३२ कालचक्रकुलक जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वीं अ० अभय बीकानेर

३३ कालस्वरूपकुलक जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२वीं मु०

३४ ,, टीका जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि १३वीं मु०

३५ क्षुल्लकभवावलिका स्तोत्र जिनचन्द्रसूरि P/. जिनहर्षसूरि, पिप्पलक, १७वीं डूँगर जेसलमेर,

३६ क्षेत्रसमास प्रकरण बालावबोध उदयसागर P/. सहजरत्नपिप्पलक १६५६ उदयपुर मु०

३७ ,, ,, क्षमामाणिक्य P/. १९वीं अ० वर्द्धमान भं, बीकानेर

३८ क्षेत्रसमास प्रकरण बालावबोध क्षेम P/. रत्नसमुद्र १७वीं अ० महिमा बीकानेर वृद्धि जेसलमेर उदयचन्द जोधपुर, बाल २७२

३९ ,, ,, श्रीदेव P/ ज्ञानचन्द्र १८वीं अ० नाहर कलकत्ता, विनय कोटा

४० ,, यन्त्र सुमतिवर्द्धन P/, विनीतसुन्दर १९वीं अ० उदयचन्द जोधपुर, खजान्ची बीकानेर

४१ गणधरवाद बालावबोध क्षमामाणिक्य P/. १८३८ अ० वर्द्धमान भं० बीकानेर,

४२ गत्यादिमार्गणा स्वोपज्ञ टीका देवचन्द्रोपाध्याय P/, दीपचंद्र नूतनपुर१७८२ मु०

४३ गाथासहस्री समयसुन्दरोपाध्याय १६६८ मु० विनय ६२५, बाल ३५८

४४ गुणस्थानक अधिकार देवचन्द्रोपाध्याय P/, दीपचन्द्र १८वीं मु०

४५ गुणस्थानक्रमारोह बालावबोध श्रीसारोपाध्याय P/, रत्नहर्ष १६९८ महिमावती अ० फतहपुर भंडार

४६ गुणस्थान प्रकरण बालावबोध शिवनिधानोपाध्याय १६९२ सांगानेर अ० केशरिया, जोधपुर,

४७ गुणस्थान शतक स्वोपज्ञटीका देवचंद्रोपाध्याय P/, दीपचंद्र १८वीं मु०

४८ गुरुगुणषट्त्रिंशिका स्तवक ,, ,, मु०

४९ चतुरशीतिराशातनास्थान वि० जिनप्रभसूरि P/, जिनसिंहसूरि १४वीं अ० संघ भंडार पाटण

५० 'चत्तारि परमंगाणि' टीका समयसुन्दरोपाध्याय १६८७ पत्तन अ०

५१ चरणसत्तरी करणसत्तरी भेद गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७वीं अ०

५२ चैत्यवन्दनक जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि १०८० जालोर अ० याहरू जेसलमेर, जिनविजय सं०

५३ चैत्यवन्दन कुलक जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२वीं मु०

५४ चैत्यवन्दन कुलक वृत्ति जिनकुशलसूरि P/. जिनचंद्रसूरि १३८३ बाड़मेर मु०

५४A „ „ टिप्पणक लब्धिनिधानोपाध्याय P/. जिनकुशलसूरि १४वीं मु०

५५ चैत्यवन्दनभाष्य वृत्ति 'तत्त्वार्थ दीपिका' धर्मप्रमोद P/. कल्याणधीर, १६६४ अ० बड़ा भंडार बीकानेर

५६ चैत्यवन्दन भाष्य यन्त्र सुमतिवर्द्धन P/. विनीतसुंदर १९वीं अ० सं० जयपुर, हरि लोहावट

५७ चैत्यवन्दनध्यान विवरण जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वीं अ० संघ भंडार पाटण

५८ बावीस दण्डक विचारकुलक लक्ष्मीवल्लभोपा० P/. लक्ष्मीकीर्ति १८वीं अ० दिगंबर भंडार, जयपुर

५९ जिनसत्तरीप्रकरण जिनभद्रसूरि P/, जिनराजसूरि १५वीं अ० नाहर कलकत्ता, अभय बीकानेर

६० जीवविचारप्रकरण टीका क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८५० बीकानेर मु० अभय क्षमा बीकानेर पाल ४२४

६१ „ „ रत्नाकरोपाध्याय P/. मेघनन्दन १६१० अ०वि० कोटा ६११, ६१२ अ० बी०

६२ „ बालावबोध विमलकीर्ति P/. विमलतिलक १७वीं अ० „ ६०६

६३ „ स्तवक महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान १७वीं अ० फतहपुरभण्डार, कान्तिसागरजी

„ „ साधुकीर्ति P/. १७वीं विनय ८९२

६४ „ यन्त्र सुमतिवर्द्धन P/. विनीतसुन्दर १९वीं अ० स०ं जयपुर

६५ जीवविचारादि प्रकरण स्तवक जिनकृपाचन्द्रसूरि २०वीं मु०

६६ जीवविभक्ति जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं अ० पाटण भंडार

६७ जैनतत्त्वसार स्वोपज्ञ टीका सूरचन्द्रोपाध्याय १६७९ अमरसर मु०

६८ ज्ञानसारकी ज्ञानमञ्जरी टीका देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचंद्र १७९६ नवानगर मु०

६९ ज्ञानार्णव भाषा लब्धिविमल P/. लब्धिरंग १७२८ अ० फतहपुर भंडार

६९A „ „ ध्यानदीपिका देवचन्द्र P/. दीपचन्द्र १८वीं मु०

७० तत्त्वावबोध देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १८वीं उल्लेख-स्वकृत विचारसारस्तवक

७१ तिथि पयन्नादि अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं अ० अभय बीकानेर

७२ दर्शनकुलक जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२वीं मु०

७३ द्रव्यप्रकाश देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १७६७ बीकानेर मु०

७४ द्रव्यसंग्रह बालावबोध हंसराज P/. पिप्पलक १७वीं अ० स्टेट लायब्रेरी

७५ द्रव्यानुभव रत्नाकर चिदानन्द द्वि० १९५२ फलोदी मु० विनय १००३

७६ द्वादशाङ्गीप्रमाणकुलक जिनभद्रसूरि P/. जिनराजसूरि १५वीं अ० अभय बीकानेर

७७ नयचक्रसार देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १८वीं मु० विनय २५१

७८ नवकार यन्त्र सुमतिवर्द्धन P/. विनीतसुन्दर १९वीं अ० उदयचन्द जोधपुर

७९ नवतत्वप्रकरणशब्दार्थवृत्ति समयसुन्दरोपाध्याय १६८८ अमदावाद अ०
८० ,, बालावबोध जिनोदयसूरि (जिनसागरसूरि शा०) १८वीं अ० आचार्य शाखा बीकानेर
८१ ,, ,, रत्नलाभ P/. विवेकरत्नसूरि पिप्पलक १६वीं अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
८२ ,, ,, विमलकीर्ति P/. विमलतिलक १७वीं अ० ,, विनय ६०९
८३ ,, ,, हर्षवर्द्धन १७८५ अ० अभय बीकानेर
८४ ,, स्तवक जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि १७वीं अ० विनय कोटा हरि लोहावट
८५ ,, ,, रामविजयोपाध्यायP/. दयासिंह १८३९ अजीमगंज अ० हीराचन्द्रसूरि बनारस
८६ ,, भाषाबन्ध लक्ष्मीवल्लभोपा० P/. लक्ष्मीकीर्ति १७४७ हिसार अ०
८७ ,, स्वरूपयन्त्र सुमतिवर्द्धन P/ विनीतसुन्दर १९वीं अ०ख० जय० बद्रीदासकल० खजांची बीका०
८८ नवपदप्रकरण भाष्य अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं अ० जेसलमेर भण्डार
८९ नवपदप्रकरण अभिनववृत्ति देवेन्द्रसूरि P/. संघतिलकसूरि रुद्रप० १४५२ उल्लेख जिनरत्नकोष
९० निगोदपट्त्रिंशिका अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं अ०
९१ निर्युक्ति स्थापन मतिकीर्ति P/. गुणविनयोपाध्याय १६७६ अ० बड़ा भं० बीकानेर डूंगर जेसलमेर
९२ पांचचारित्रके ३६ द्वार भाषा रामचन्द्र P/. शिवचन्द्रोपाध्याय २०वीं अ० वृद्धि जेसलमेर
९३ पंचलिङ्गी प्रकरण जिनेश्वरसूरि P/. वर्धमानसूरि ११वीं मु०
९४ ,, टीका जिनपतिसूरि P/. मणि० जिनचन्द्रसूरि १३वीं मु०
९५ ,, लघुटीका सर्वराजगणि अ० तपा भं० जेसलमेर
९६ ,, टिप्पणक जिनपालोपा० P/. जिनपतिसूरि १२९४ मु०
९७ पंच समवाय विचार ज्ञानसारP/. रत्नराज १९वीं अ० अभय बीकानेर
९८ पंचाशक टीका अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं मु०
९९ पन्नावणा २ गाथा के २० द्वार यंत्र ज्ञानसार १९वीं अ० डूंगर जेसलमेर
१०० परमात्माप्रकाश हिन्दीटीका धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १७६२ अ० दिगंबरभं० अजमेर
१०१ परसमयसारविचारसंग्रह क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १९वीं अ०
१०२ पिण्डविशुद्धिप्रकरण जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि १२वीं० मु०
१०३ पुद्गलपट्त्रिंशिका अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं० अ०
१०४ परमसुखद्वात्रिंशिका (तत्त्वावबोध) जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वीं० अ० अभय बीकानेर
१०५ प्रतिक्रमणहेतव: क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १९ वीं० बीकानेर अ० खजय० अभय क्षमा बीका०
१०६ प्रतिलेखनाकुलक जिनवर्द्धनसूरि P/. जिनराजसूरि १५ वीं० अ०
१०७ प्रत्याख्यानप्रमुखविचार समयसुन्दरोपाध्याय १७ वीं० उल्लेख जिनरत्नकोश
१०८ प्रत्याख्यानस्थानविवरण जिनप्रभसूरि P. जिनसिंहसूरि १४ वीं० अ० संघभंडार पाटण
१०९ प्रवचनविचारसार नयकुञ्जर P/. जिनराजसूरि १६ वीं० अ०
११० प्रवचनसारोद्धार बालावबोध पद्ममन्दिर P/. विजयराज १६५१ अ० चारित्रराप्राविप्रबीकानेर

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १११ प्रवचनसारोद्धार बाला० | सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन | १६६१ | | अ० तेरापंथीसभा सरदारशहर |
| ११२ प्रव्रज्याविधानकुलकबाला० | जिनेश्वरसूरि बेगड | १७ वीं० | | अ० जेसलमेर भंडार |
| ११३ बृहद्वन्दनकभाष्य | अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि | १२ वीं० | | मु० |
| ११४ बृहत्संग्रहणी बालावबोध | गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम | १७ वीं० | | अ० अनंतनाथ ज्ञान भं० बंबई |
| ११५ भाषाविचार प्र० स्वोपज्ञअव० | चारुचन्द्र P/. भक्तिलाभ | १६ वीं० | | अ० आचार्यशाखा बीकानेर |
| ११६ भाष्यत्रय स्तबक | मतिकीर्ति P/. गुणविनयोपाध्याय | १७ वीं० | | अ० महियालागुह भंडार |
| ११७ महादण्डक | अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि | १२ वीं० | | अ० अभय बीकानेर |
| ११८ लोकतत्त्वबालावबोध | नयविलास P/. जिनचन्द्रसूरि | १७ वीं० | | अ० अभय बीकानेर चारित्र-राग्राविग्र बीकानेर विनय ८९२ |
| ११९ लोकनालवार्तिक | उदयसागर P/. सहजरत्न पिप्पलक | १७ वीं० | | अ० अभय बीकानेर |
| १२० वन्दनकस्थानविवरण | जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि | १४ वीं० | | अ० संघभंडार पाटण |
| १२१ विचारषट्त्रिंशिका स्वोपज्ञ टीका० | गजसारगणि P/. धवलचन्द्र | १५९१ | पाटण | मु० विनय ८८५ |
| १२२ ,, टीका | समयसुन्दरोपाध्याय | १६९६ | अमदाबाद | अ० |
| १२३ ,, बालावबोध | आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र | १८८० | अजीमगंज | अ० दान भं० बीकानेर |
| १२४ ,, ,, | देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र | १८०३ | नवानगर | अ० अभय बीकानेर |
| १२५ ,, ,, | विमलकीर्ति P/. विमलतिलक | १७ वीं० | | अ० चारित्र राग्राविग्र बीकानेर |
| १२६ ,, अर्थ (पद्यानुवाद) | ज्ञानसार | १९ वीं० | | मु० स जयपुर |
| १२७ ,, प्रश्नोत्तर | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड | १७२४ | | अ० विनयचन्द्रज्ञान भ० जयपुर |
| १२८ ,, यन्त्र | सुमतिवर्द्धन P/ विनीतसुन्दर | १९ वीं० | | अ० स० जयपुर |
| १२९ विचारषट्त्रिंशिका स्वोपज्ञ | हीरकलश P/. हर्षप्रभ | १७ वीं० | | अ० नाहर कलकत्ता |

धर्मसंग्रह ( १ से ३६ तक की वस्तुओं )

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १३० विचारसारस्तबक | देवचन्द्रोपाध्याय P/· दीपचन्द्र | १७९६ | नवानगर | मु० |
| १३१ विंशिका | जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि | १२ वीं० | | मु० |
| १३२ शुद्धदेवअनुभवविचार | चिदानन्द द्वि० | १९५२ | | मु० |
| १३३ श्रावकधर्मविधि | जिनेश्वरसूरि P/. जिनपतिसूरि | १३१३ | पालनपुर | मु० |
| १३४ ,, बृहद्वृत्ति | लक्ष्मीतिलकोपाध्याय P/. | १३१७ | जालोर | अ० जेसलमेर भंडार हंसवड़ोदा |
| १३५ श्रावकमुखवस्त्रिकाकुलक (मुखवस्त्रिका स्थापनप्रकरण) | वर्द्धमानसूरि | ११ वीं० | | अ० हंसवड़ोदा, अभय बीकानेर |
| १३६ श्रावकविधिदिनचर्या | जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि | १२ वीं० | | अ० |
| १३७ षट्स्थान प्रकरण | जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि | ११ वीं० | | अ० |
| १३८ ,, भाष्य | अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि | १२ वीं० | | मु० |

१३९ षट्स्थान प्रकरण टीका जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि १२९२ श्रीमालपुर मु०

१४० षष्टिशतकप्रकरण नेमिचन्द्रभण्डारी पिता जिनेश्वरसूरिद्वि० १३वीं० मु०

१४१ „ टीका गजसार P/. धवलचन्द्र १६वीं० अ० दानवी०राप्राविप्र जोध०

१४२ „ „ तपोरत्न P/. १५०१ मु० विनयकोटा ६३३

१४३ „ „ राजहंस P/. हर्षतिलक लघुखरतर १५७९ सिकंदरपुर दि० भण्डारसूचीभाग ४

१४४ „ टिप्पणक मतितलाभ P/. जिनचन्द्र १५७२ अ० दि०भण्डार सूचीपत्र भाग ४

१४५ „ बालावबोध जिनसागरसू० P/. जिनेश्वरसूरि पिप्पलक १४९१ अ०

१४६ „ „ धर्मदेव P/. क्षान्तिरत्न १५१५ अ० विजयेन्द्रसूरि सं० आ० क० पेढी

१४७ „ „ मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १६वीं मु०

१४८ „ „ विमलकीर्ति P/. विमलतिलक १७वीं० अ० सेठिया बीकानेर

१४९ षोडशकप्रकरण टीका (हारि०) अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं० अ० केसरिया जोधपुर

१५० संग्रहणी अवचूरि साधुसोम P/. सिद्धान्तरुचि १५१० मांडवगढ़ अ० जेसलमेर भण्डार

१५१ „ टीका गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७वीं० अ० अनंतनाथ ज्ञानभं० बंबई

१५२ „ बालावबोध आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र १८८० अजीमगंज अ० ज्ञानभण्डार बीकानेर

१५३ „ „ शिवनिधानोपाध्याय १६८० अमरसर अ० ख० जयपुर राप्राविप्र जोधपुर

१५४ „ यन्त्र सुमतिवर्द्धन P/. विनीतसुन्दर १९वीं० अ० ख० जयपुर, विनय ४२४

१५५ संदेह दोलावली प्रकरण जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२वीं० मु०

१५६ „ बृहद्वृत्ति प्रबोधचन्द्रगणि P/. जिनेश्वरसूरि १३२० प्रल्हादनपुर मु०

१५७ „ लघुटीका जयसागरोपाध्याय १४९५ अ० अभय बीकानेर, विनय ६०२

१५८ „ पर्याय समयसुन्दरोपाध्याय १६९३ अ०

१५९ सप्ततिका भाष्य अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं० अ०

१६० „ टिप्पणक रामदेवगणि P/. जिनवल्लभसूरि १२वीं० अ० हरिलोहावट

१६१ सप्तविंशतप्रकरण बालावबोध धर्मकीर्ति P/. धर्मनिधान १७वीं० अ० क्षमा बीकानेर

१६२ सम्बोध अष्टोत्तरी ज्ञानसार १८५८ अ० क्षमाबीकानेर, अभयबीकानेर

१६३ सम्बोधसप्तति टीका गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६५१ मु० विनय ६३२

१६४ „ बालावबोध मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १६वीं० अ० डूंगरजेसलमेर, ख० जयपुर

१६५ सम्यकत्वकुलक बालावबोध मतिकीर्ति P/. गुणविनयोपाध्याय १७वीं० अ० महरचंद भं० बीकानेर

१६६ सम्यक्त्वभेद क्षमामाणिक्य P/. १८३४ राजपुर अ० वर्द्धमान भं० बीकानेर

१६७ सम्यक्त्वविचारस्तवबालावबोध चारित्रसिंह १६३३ झर्झरपुर अ० डूंगरजेसलमेर, अभय बीकानेर विनय ७४२

१६८ सम्यक्त्वसप्तति टीका संघतिलकसूरि रुद्रपल्लीय १४२२ सारस्वत मु० पत्तन

१६९ सम्यकत्वस्तवावचूरि गजसार P/. धवलचन्द्र १६वीं० अ० ख जयपुर

| | | | |
|---|---|---|---|
| १७० सर्वजीवशरीरावगाहनास्तव | जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि | १२वीं० | अ० विनयवल्लभभारती |
| १७१ सामायिककुलक | जिनकीर्त्तिसूरि जिनसागरसूरिशाखा | १६वीं० | अ० अभय बीकानेर |
| १७२ सिद्धिसप्तशतिका | शिवचन्द्रोपाध्याय P/. पुण्यशील | १६वीं | अ० बालरामविप्रचित्तोड़ |
| १७३ सिद्धान्तबोल | ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर | १७वीं० | अ० |
| १७४ सिद्धान्तसारोद्धार | कमलसंयमोपाध्याय | १६वीं० | अ० हरिसोहावट, अनूपबीकानेर |
| १७५ सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धार प्र० | जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि | १२वीं० | मु० |
| १७६ ,, टिप्पणक | रामदेवगणि P/ जिनवल्लभसूरि | १२वीं० | उ०-गणधरसार्द्ध० बृहद्वृत्ति |
| १७७ स्थण्डिलके १०२४ भांगे | पद्मराज P/. पुण्यसागरोपाध्याय | १७वीं० | अ० स० जयपुर |
| १७८ स्याद्वादानुभवरत्नाकर | चिदानन्द द्वि० | १६५० अजमेर मु० | |

## औपदेशिक प्रकरण

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | अष्टकप्रकरण टीका ( हारिभ० ) | जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि | १०८० जालोर मु० | |
| २ | आत्मप्रबोध | जिनलाभसूरि | १८३३ मिनरावंदर मु० | |
| ३ | ,, हिन्दी अनुवाद | पद्मोदय ( पन्नालाल ) | २० वीं० | मु० |
| ४ | आत्मभावना | लब्धिमुनि उ० | २० वीं० | मु० विनय १००४ |
| ५ | आत्मानुशासनम् | जिनेश्वरसूरि P/. जिनपतिसूरि | १३ वीं० | अ० जेस० भ० हरिसोहावट |
| ६ | इन्द्रियपराजयशतक टीका | गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम | १६६४ | अ० |
| ७ | ईसरशिक्षा | जिनप्रमुसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड़ | १८ वीं० | अ० अभयबीकानेर |
| ८ | उत्तमपुरुषकुलक | जिनरत्नसूरि | १४ वीं० | अ० जेसलमेरभंडार |
| ९ | उपदेशकुलक | जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि | १२ वीं० | मु० |
| १० | ,, | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १४ वीं | अ० जेसलमेरभंडार |
| ११ | उपदेशकोष | जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि | ११ वीं | अ० हरिसोहावट, अ० बी० |
| १२ | उपदेशपद टीका | वर्द्धमानसूरि | १०५५ | अ० हरिसोहावट |
| १३ | उपदेशमणिमाला | जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि | ११ वीं० | अ० अभयबीकानेर |
| १४ | उपदेशमालाबृहद्वृत्ति (धर्मदासीय) वर्द्धमानसूरि | | ११ वीं० | अ० जेसलमेरभंडार |
| १५ | उपदेशमाला-संस्कृतप० तथा स्तबक | शिवनिधानोपाध्याय | १६६० जोधपुर | अ० वृद्धि जेसलमेर |
| १६ | उपदेशमाला बालावबोध | मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्ति | १६ वीं० | अ० |
| १७ | उपदेशमालास्तबक | विमलकीर्ति P/. विमलतिलक | १६६६ | अ० जेसलमेरभंडार |
| १८ | उपदेशरसायन | जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२ वीं० | | मु० |
| १९ | ,, टीका | जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि १२९२ | | मु० |

७४ भावनाप्रकाश — शिवचन्द्रोपाध्याय P/. रामविजय १९वीं — अ० बाल राप्राविप्र चित्तौड़

७५ भावनाविलास — लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७२७ — अ० अभय बीकानेर, हरिलोहावट

७६ भावपदविवेचन — गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७वीं — अ०

७७ मध्याह्नव्याख्यानपद्धति — वादी हर्षनन्दन, P/. समयसुन्दर १६७४ पाटण — अ० बड़ाभंडार बी० हरिलोहावट

७८ मातृकाक्षर धर्मोपदेश स्वोपज्ञ टीका लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७४५ अ० हरिलोहावट

७९ रत्नकरण्ड — अभयचन्द्र P/. आणंदराज, लघुखरतर १९वीं — अ० अभय बीकानेर

८० रूपकमाला — पुण्यनन्दी P/. समयभक्ति १६वीं — अभय बीकानेर विनय ६७५

८१ ,, अवचूरि — समयसुन्दरोपाध्याय P/. सकलचन्द्र १६६३ बी० — अ० थाहरु जैसलमेर

८२ ,, टीका — चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १६४३ अ० अंबाला भं० गधैया भं० सरदारशहर

८३ ,, बालावबोध — रत्नरंगोपाध्याय १५८२ — अ० आचार्यशाखा बीकानेर

८४ वादीकुलक — जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२वीं — अ० पाटण भंडार

८५ विंशतिपदप्रकाश — शिवचन्द्रोपाध्याय P/. पुण्यशील १९वीं — अ० बाल राप्राविप्र, चित्तौड़

८६ शिक्षाकुलक — जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२वीं — अ० पाटण भंडार

८७ शीलकल्पद्रुममञ्जरी — चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १७वीं — अ० पंजाब भंडार अंबाला

८८ शीलोपदेशमाला टीका — गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७वीं — अ० आत्मानंद सभा भावनगर

८९ ,, ,, — ललितकीर्त्ति १६७८ लाटद्रह अ० विनय ६०० कोटा म० जयपुर, चारित्र, बीका०

९० ,, ,, (शीलतरंगिणी) सोमतिलकसूरि P/. संघतिलकसूरि रुद्रपल्लीय १३९२ मु०

९१ ,, बालावबोध — क्षमामूर्त्ति P/. मतिवर्द्धन पिप्पलक १७वीं — अ० कृपा भंडार बिकानेर

९२ ,, ,, — मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १५२५ मांडवगढ़ अ० ख० ज० रा० जोधपुर विनय २२,

९३ श्राद्धदिनकृत्य बालावबोध — आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र १८८२ अजीमगंज मु०

९४ सज्ज्ञानचिन्तामणि — ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान २०वीं — मु०

९५ समयसार बालावबोध — रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १७९२ जालोर अ०

९६ संवेगकुलक — धनेश्वरसूरि (जिनभद्रसूरि) — १२वीं — अ० प्रतिलिपि विनय कोटा

९७ संवेगमञ्जरी — देवभद्रसूरि P/. सुमतिवाचक — १२वीं — अ० पाटण भंडार

९८ संवेगरंगशाला — जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि — १२वीं — मु०

९९ सर्वतीर्थमहर्षिकुलक — जिनेश्वरसूरि P/. जिनपतिसूरि — १३वीं — मु०

१०० सिन्दूरप्रकरण टीका — चारित्रवर्द्धन P/. कल्याणराजलघुखरतर १५०५ अ०

१०१ ,, ,, — धर्मचन्द्र P/. जिनसागरसूरि पिप्पलक १५१३ अ०

१०२ ,, बालावबोध — राजशील P/. साधुहर्षोपाध्याय १६वीं अ० जैनरत्नपुस्तकालय, संस्कृत लाइब्रेरी

१०३ स्वधर्मीवात्सल्यकुलक — अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि १२वीं मु०

१०४ ,, स्तवक — समयप्रमोद P/. ज्ञानविलास १६६१ वीरमपुर अ० अभय बीकानेर

| | | | |
|---|---|---|---|
| १०५ स्वप्नप्रदीप | वर्द्धमानसूरि P/. रुद्रपल्लीय | १५वीं मु० | |
| १०६ स्वप्नफलविवरण | जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि | १३वीं अ० प्रेसकापी विनय कोटा | |
| १०७ स्वप्नविचारभाष्यवृत्ति | ,, ,, ,, | ,, अ० ,, ,, | |
| १०८ स्वप्नसप्ततिका | जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि | १२वीं अ० विनय 'वल्लभभारती' | |
| १०९ स्वप्नसप्ततिका टीका | सर्वदेवसूरि | १२८७ अ० कान्ति छाणी | |
| ११० स्वात्मसम्बोध (ज्ञानसारप्रकाश) | धर्मचन्द्र P/. जिनसागरसूरि पिप्पलक | १६वीं अ० देसाई संग्रह | |
| १११ हितशिक्षा भाषा | भद्रसेन | १७वीं अ० | |
| ११२ हितोपदेशप्रकरण | प्रभानन्दसूरि P/. देवभद्रसूरि | १२वीं अ० जेसलमेर भंडार | |

## वैधानिक, सैद्धान्तिक प्रश्नोत्तर एवं चार्चिक ग्रंथ

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ अविधिकुलक | जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि | ११वीं | अ० कान्ति छाणी |
| २ अष्टोत्तरीस्नात्रविधि | जयसोमोपाध्याय | १७वीं लाहोर | अ० ह० लोहावट |
| ३ आगमानुसार मुंहपत्ति निर्णय | जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी | २०वीं | मु० |
| ४ आचारदिनकर | वर्द्धमानसूरि P/. रुद्रपल्लीय | १४६८ जालंधर नंदनवनपुर | मु० विनय कोटा ७०३ |
| ५ आत्मभ्रमोच्छेदनभानु | चिदानन्द | १९५२ नागोर | मु० |
| ६ आरात्रिकवृत्तानि | जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि | १२वीं | मु० |
| ७ आराधना | जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि | १२वीं | अ० प्रतिलिपि रमणीकवि अहमदाबाद |
| ८ आराधनाप्रकरण | अभयदेवसूरि P/. जिनेश्वरसूरि | १२वीं | अ० जेसलमेर भंडार १२६५ लि० |
| ९ आलोचनाविधिप्रकरण | ,, ,, | ,, | अ० प्रतिलिपि विनय कोटा |
| १० इच्छापरिमाण टिप्पणक | समयराजोपाध्याय P/. जिनचन्द्रसूरि | १६६० | अ० महतावसिंह संग्रह बीकानेर |
| ११ ईर्यापथिकी षट्त्रिंशिका स्वोपज्ञ टीका | जयसोमोपाध्याय | १६४० टी० १६४१ | मु० |
| १२ उपधानविधिपंचाशक प्रकरण | अभयदेवसूरि | | संभात भंडार ताड़पत्रीय प्रति |
| १३ उत्सूत्रोद्घाटनकुलक | जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि | १२वीं | मु० |
| १४ ,, (कुमतिमतखंडन) | गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम | १६६५ नवानगर | मु० |
| १४A एक सौ अडतीस वक्तव्य | ,, ,, ,, | १७वीं | अ० विनय ७८० |
| १५ कल्याणकपरामर्श | बुद्धिमुनि P/. केशरमुनि | २०वीं | मु० |
| १६ कुमतकुलिंगोच्छेदनभास्कर (जैनलिंगनि०) | चिदानन्द द्वि० | १९५५ जीरण | मु० कोटा भंडार |
| १७ कुम्भस्थापना भाषा | देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द | १८वीं | अ० रा० जयपुर |
| १८ क्या पृथ्वी स्थिर है? | जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी | २०वीं | मु० |
| १९ चर्चाप्रश्नोत्तर | तिलोकचन्द लूणिया प्रश्नकर्ता | १९वीं अजमेर | अ० हंस बड़ोदा |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २० | चैत्रीपूर्णिमा देववन्दनविधि | क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म | १९वीं | अ० ह० लोहावट |
| २१ | जिनपूजाविधि | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १४वीं | मु० |
| २२ | जिनप्रतिमास्थापितग्रन्थ प्रश्नोत्तर | ज्ञानसार | १८७४ | अ० क्षमा बीका, ला० द० अह० |
| २३ | जिनाज्ञाविधिप्रकाश | चिदानन्द द्वि० | १९५१ अजमेर | मु० |
| २४ | तपागच्छचर्चा | गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम | १७वीं | अ० आत्मानन्द सभा भावनगर |
| २५ | तपोटमतकुट्टनकम् | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १४वीं | अ० अभय बीकानेर जेसलमेर भं० |
| २६ | तेरापंथी नाटक | प्रेमचन्द यति | १९६५ रतनगढ़ | मु० |
| २७ | दयानन्दमतनिर्णय (आर्यसमाजभ्रमोच्छेदनकुठार) | चिदानन्द द्वि० | १९४७ | अ० विनय कोटा ९०४ |
| २८ | दिगम्बर ८४ बोलविसंवाद | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड़ | १८वीं | अ० |
| २९ | देवद्रव्यनिर्णय | जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी | २०वीं | मु० |
| ३० | देवार्चन एक दृष्टि | जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी | २०वीं | मु० |
| ३१ | द्वादशव्रतटिप्पणिका | क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म | १९वीं | अ० ख० जयपुर |
| ३२ | नवकार अनुपूर्वी | क्षेमराज P/. सोमध्वज | १६वीं | अ० ख० जयपुर |
| ३३ | निर्णयप्रभाकर | बालचन्द्रसूरि | १९२० | अ० विनय कोटा ५८७ |
| ३४ | पदव्यवस्था | जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि | १२वीं | मु० |
| ३५ | पर्युषणापरामर्श | बुद्धिमुनि P/. केशरमुनि | २०वीं | मु० |
| ३६ | पिण्डकद्वात्रिंशिका | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १४वीं | अ० पालणपुर भंडार |
| ३७ | पिण्डालोचनविधानप्रकरण | ,, ,, | ,, | ,, ,, |
| ३८ | पूजाष्टकवार्त्तिक | कमललाभ P/ अभयसुन्दर | १७वीं | अ० चंपालाल वैद भीनासर |
| ३९ | पौषधविधिप्रकरण | जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि | १२वीं | मु० |
| ४० | ,, टीका | जिनचन्द्रसूरि P/. जिनमाणिक्यसूरि | १६१७ पाटण | अ० बड़ा भंडार बीकानेर |
| ४१ | पौषधषट्त्रिंशिका स्वोपज्ञ टीका | जयसोमोपाध्याय | १६४३ टी० १६४५ | मु० विनय ६६० |
| ४२ | प्रतिक्रमण समाचारी | जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि | १२वीं | मु० |
| ४३ | ,, स्तवक | विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक | १७वीं | अ० आचार्यशाखा बीकानेर |
| ४४ | प्रतिमापुष्पपूजासिद्धि | देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र | १८वीं | मु० |
| ४५ | प्रबोधोदयवादस्थल | जिनपतिसूरि P/. मणिधारीजिनचन्द्रसूरि | १३वीं | अ० जे० भं० वि० को० ४९७ क्षमा बी० |
| ४६ | प्रश्नपद्धति | हरिश्चन्द्रगणि P/. अभयदेवसूरि | १२११ (?) पाटण | मु० पाटण भंडार |
| ४७ | प्रश्नोत्तर | जयसोमोपाध्याय | १७वीं | अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर |
| ४८ | ,, २६ | ,, | ,, लाहोर | अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर |
| ४९ | ,, १४१ | ,, | ,, | मु० |
| ५० | ,, | जिनसुखसूरि | १७६७ पाटण | अ० जयचन्द्र राप्राविप्र बीकानेर |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ५१ प्रश्नोत्तरग्रन्थ | मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति | १५३५ | | अ० महिमा बीकानेर |
| ५१A ,, ,, | ज्ञानसार P/. रत्नराज | १९वीं | | |
| ५२ प्रश्नोत्तरमाला | चिदानन्द (कपूरचन्द्र) | १९०६ भावनगर मु० | | |
| ५३ प्रश्नोत्तरशतक | उम्मेदचन्द्र P/. रामचन्द्र | १८८४ जयपुर | | अ० वर्द्धमान भं० बीकानेर |
| ५४ प्रश्नोत्तरसारसंग्रह | समयसुन्दरोपाध्याय | १७वीं | | अ० कान्ति बड़ोदा |
| ५५ प्रश्नोत्तरसार्द्धशतक | क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म | १८५१ जेसलमेर मु० हरि लोहावट, अभय बीकानेर | | |
| ५६ प्रश्नोत्तरसार्द्धशतक भाषा | ,, ,, | १८५३ बीकानेर अ० हरि लोहावट, विनय २५२, ३६७ | | |
| ५७ बारहव्रत की टीप | हर्षकल्याण | १६२० | | अ० ख० जयपुर, स्वयं लि० |
| ५८ बारहव्रत टिप्पण | मेघ P/. जिनमाणिक्यसूरि | १६०६ | | अ० |
| ५९ ,, ,, | सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन | १६८८ | | अ० अभय बीकानेर |
| ६० बृहत्पर्युषणानिर्णय | जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी | २०वीं | | मु० |
| ६१ मूर्त्तिमण्डनप्रकाश (कु०) | सुमतिमंडन (सुगनजी) P/. धर्मानन्द | २०वीं | | अ० हरि लोहावट |
| ६२ यतिश्राद्धालोचन | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १४वीं | | अ० सुराणा लायब्रेरी चूरू |
| ६३ यत्याराधना | समयसुन्दरोपाध्याय | १६६५ रिणी | | अ० ख० जयपुर |
| ६४ लखमसीकृत २१ प्रश्नोत्तर | मतिकीर्त्ति P/. उ०गुणविनय | १७वीं | | अ० बड़ा भंडार बीकानेर हु० लोहावट |
| ६५ लघुतपोटविचारसार | उ०गुणविनय P/. जयसोम | १७वीं | | अ० चारित्र रामाविम्र कोटा |
| ६६ लघुविधिप्रपा | शिवनिधानोपाध्याय | १७वीं | | अ० |
| ६७ वादस्थल | उ०अभयतिलक P/. जिनेश्वरसूरि | १४वीं | | अ० अभय बीकानेर |
| ६८ विचार आलावा | गुणरत्नसूरि P/. कीर्तिरत्नसूरि | १६वीं | | अ० जेसलमेर भंडार |
| ६९ विचाररत्नसंग्रह (हुंडिका) | उ०गुणविनय P/. जयसोम | १६५७ सेरूणा | | अ० बड़ा भंडार बीकानेर |
| ७० विचाररत्नसार | देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र | १८वीं | | मु० ख० जयपुर अभय बीकानेर |
| ७१ विचारशतक | समयसुन्दरोपाध्याय | १६७४ मेड़ता | | अ० विनय ६८८ |
| ७२ ,, बीजक | क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म | १९वीं | | अ० ख० जयपुर |
| ७३ विचारादि | रामचन्द्र P/. शिवचन्द्रोपाध्याय | १९वीं | | |
| ७४ विधिकन्दली स्वोपज्ञ टीका | नयरंग | १६२५ वीरमपुर अ० हरि लोहावट, चारित्ररामाविम्र बी० | | |
| ७५ विधिमार्गप्रपा | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १३६३ कोशलानगर मु० वाल ३६१ | | |
| ७६ विविधप्रश्नोत्तर, नं० १, २ | ज्ञानसार P/. रत्नराज | १९वीं | | |
| ७७ विशेषशतक | समयसुन्दरोपाध्याय | १६७२ मेड़त | | मु० |
| ७८ ,, भाषा | आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र | १८८१ बालूचर | | अ० अभय बीकानेर |
| ७९ विशेषसंग्रह | समयसुन्दरोपाध्याय | १६८५ | | अ० ख० जयपुर विनय ६८३ |
| ८० विसंवादशतक | ,, | १७वीं | | अ० अभय बीकानेर हरि लोहावट |

८१ वीरायु ७२ वर्ष स्पष्टीकरण रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १८३७ मेड़ता अ०
८२ व्यवस्थाकुलक मणिधारी जिनचन्द्रसूरि P/. जिनदत्तसूरि १३वीं मु०
८३ शान्तिपर्वविधि जिनदत्तसूरि P/. जिनवल्लभसूरि १२वीं अ० थाहरू जेसलमेर
८३A शास्त्रीयप्रश्नोत्तर वालचन्द्राचार्य १६२५ अ० विनय ४४१
८४ शुद्धसमाचारीमण्डन चिदानन्द द्वि० २०वीं अ० हरि लोहावट
८५ श्रावकव्रतकुलक जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि १२वीं अ० विनय 'वल्लभभारती'
८६ ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६८३ बीकानेर मु०
८७ श्रावकविधिप्रकाश क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८३८ जेसलमेर मु० विनय ३७०, ३६६, वालचित्तोड़ ४१
८८ श्रावकाराधना समयसुन्दरोपाध्याय १६६७ उच्चानगर अ० अभय बीकानेर ख० जयपुर
८९ ,, भाषा राजसोम P/. जयकीर्त्ति जिनसागरसूरिशाखा १७१५ नोखा अ० वालचित्तोड़ ५५४
९० पट्कल्याणकनिर्णय जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी २०वीं मु०
९१ संक्षिप्तपौषधविधि जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि १३वीं अ० प्रतिलिपि अभय बीकानेर
९२ सङ्घपट्टक जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि १२वीं मु०
९३ ,, बृहद्वृत्ति जिनपतिसूरि P/. मणिधारीजिनचन्द्रसूरि १३वीं मु० विनय ७९३
९४ ,, टीका लक्ष्मीसेन S/. हम्मीर १५१३ मु० विनय कोटा ७९२
९५ ,, ,, साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य १६१९ मु०
९६ ,, ,, हर्षराज P/. अभयसोम १६वीं मु० विनय ७९१
९७ ,, पंजिका P/. ज्ञानचन्द्र १८वीं अ० आचार्यशाखा बीकानेर
९८ ,; बालावबोध ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान १९६७ अ०
९९ ,, ,, लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं अ० अबीर बीकानेर
१०० सद्गलसार्द्धशतक चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १९०९ इन्दोर अ० आचार्यशा० बी० मुनि कांतिसागरजी
१०१ समाचारी जिनपतिसूरि P/. मणिधारीजिनचन्द्रसूरि १३वीं मु० अभय बीकानेर
१०२ समाचारीशतक समयसुन्दरोपाध्याय १६७२ मेडता मु०
१०३ सम्वेगी मुखपटाचर्चा जयचन्द्र P/. कपूरचन्द्र १९वीं अ० महरचंद भंडार बीकानेर
१०४ साधुप्रायश्चित्तविधि क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १९वीं बालूचर अ० ह० लो० ख० ज० वि० को० बाल ५७४
१०५ साधुविधिप्रकाश ,, ,, १८३८ मु०
१०६ ,, भाषा चारित्रसागर P/. सुमतिवर्द्धन १८८६ नागोर अ० केशरिया जोधपुर
१०७ साध्वाचारपट्त्रिंशिका रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १९वीं अ० ख० जयपुर
१०८ साध्वीव्याख्याननिर्णय जिनमणिसागरसूरि P/. सुमतिसागरजी २०वीं मु०
१०९ सिद्धमूर्त्तिविवेकविलास ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान २० वीं मु०
११० सिद्धान्तबोल ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर १७वीं अ०

१११ स्थापनापदृत्रिंशिका जयसोमोपाध्याय १९वीं अ०
११२ स्नात्रपूजा पंच०(नुमसीलीय) बालावबोध जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७६३ अ० पाटण भंडार, खजांची बीकानेर
११३ स्नात्रविधि कुमारगणि P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १४वीं अ० विनय कोटा, अभय बीकानेर
११४ स्फुट प्रश्नोत्तर समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ०
११५ ,, देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १८वीं अ०
११६ हुण्डिकाचौरासी बोल (लुंकराणामुपरि) नयरंग १६२४ वीरमपुर अ० अभय बीकानेर
११७ हुण्डिका १२५ बोल (लुंकोपरि) ,, ,, ,, अ० उदयचंद जोधपुर

# काव्य-साहित्य तथा टीकादि ग्रंथ

१ अप्रगल्भेति पद्यस्यषोडशार्था मुनिमेरु १७वीं अ० बड़ा भं० बी० ख० बी०
२ अभयकुमारचरित महाकाव्य चन्द्रतिलकोपाध्याय P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १३१२ खंभात मु० विनय ५४७
३ अभयकुमारचरित्रप्रशस्तिः कुमारगणि P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १३१२ बीजापुर मु०
४ अमरुशतक बालावबोध रामविजय (रूपचन्द्र) P/. दयासिंह १७९१ अ० बालचित्तोड़ १६०
५ अरजिनस्तवः (चित्रकाव्य) स्वोपज्ञ टीकासह श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमलो० १७वीं मु० विनयसागर
६ अविदादशवार्थी विनयसागर P/. सुमतिकलश पिप्पलक १७वीं अ०
७ अष्टलक्षी (अनेकार्थरत्नमंजूषा) समयसुन्दरोपाध्याय १६४६ लाहोर मु०
८ अष्टसप्ततिका (चित्रकूटीयवीरचैत्यप्रशस्तिः) जिनवल्लभसूरि ११६३ चित्तोड़ अ० विनय वल्लभभारती
९ अष्टार्थीश्लोकवृत्ति सूरचन्द्रोपाध्याय १७वीं अ० मतिऋद्धिकरण चूरू
१० आर्द्रव कलविर्ते श्लोकव्याख्या सूरचन्द्रोपाध्याय १७वीं अ० पुण्य० अहमदाबाद
११ आचारदिनकर-लेखनप्रशस्तिः वादीहर्षनन्दन P/. समयसुन्दर १७वीं अ०
१२ उद्गच्छत्सूर्यबिम्बाष्टक समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं मु०
१३ उपदेश शतकस्युत्पत्ति. श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १६५५ बीकानेर अ० बड़ा भंडार बीकानेर
१४ कर्पूरमञ्जरी-नाटक टीका (राजशेखरीय) धर्मचन्द्र P/. जिनसागरसूरि पिप्पलक १६वीं अ० रॉयल एशि० सो० ब०
१५ कर्मचन्द्रवंशप्रबन्ध जयसोमोपाध्याय १६५० लाहोर मु०
१६ ,, टीका गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६५६ तोसामपुर मु०
१७ कल्पसूत्र-लेखनप्रशस्तिः साधुसोम P/. सिद्धान्तरुचि १५१७ पाटण अ० भावनगर भंडार
१८ कादम्बरीमण्डन मन्त्रि-मण्डन P/. बाग्भट (बाहड़) १५वीं मंडवगढ़ मु०
१९ कामोद्दीपन (जयपुरप्रतापसिंहवर्णन) ज्ञानसार १८५६ जयपुर अ० अभय बीकानेर
२० काव्यमण्डन मन्त्रि-मण्डन S/. बाग्भट (बाहड़) १५वीं मु०
२१ कुमारसम्भव महाकाव्य (कालिदासीय) टीका क्षेमहंस १६वीं उल्लेख-हर्षकुल रघुवंश टीका

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| २२ | कुमार संभव | चारित्रवर्द्धन P/. कल्याणराज लघुखरतर | १६वीं | मु० हेमचन्द्र भंडार बीकानेर | |
| २३ | ,, ,, | जिनभद्रसूरि ? | १५वीं | अ० | |
| २४ | ,, ,, | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि लघुखरतर | १६वीं | अ० डेक्कन कॉलेज | |
| २५ | ,, ,, | लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति | १७२१ सूरत | अ० महिमा बी० ह० लो० वि० ६०१ | |
| २६ | ,, ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १७वीं | अ० | |
| २७ | कृष्णरुक्मिणीवेली टीका | श्रीसार P/. रत्नहर्ष | १७०३ | अ० गोविन्द पुस्तकालय बीकानेर | |
| २८ | ,, बालावबोध | कुशलधीर P/. कल्याणलाभ | १६६६ | अ० बड़ा भंडार बीकानेर | |
| २९ | ,, ,, | जयकीर्ति P/. हर्षनन्दन | १६८६ बीकानेर | अ० अभय बीकानेर | |
| ३० | ,, ,, | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति | १८वीं | अ० पुण्य अहमदाबाद, १७५० लि० | |
| ३१ | ,, स्तवक | दानधर्म P/. कमलरत्न | १७२७ | अ० महिमा बीकानेर | |
| ३२ | ,, ,, | शिवनिधानोपाध्याय | १६८६ | अ० सेठिया बीकानेर | |

३३ 'खचराननपश्य सखे खचर' काव्यअर्थत्रयी श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं उल्लेख निघंटुशेष टीका भूमिका

३४ खण्डप्रशस्ति (हनुमत्कृता) टीका गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६४१ फलवर्द्धि मु० संपादक विनयसागर

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ३५ | गायत्रीविवरण | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १४वीं | मु० | |
| ३६ | गीतासार टीका | गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम | १७वीं | उल्लेख-'नलचम्पू' प्रस्तावना-नन्दकिशोर | |
| ३७ | गौतमीयमहाकाव्य | रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह | १८०७ जोधपुर | मु० विनय ५५१, बाल ३३८ | |
| ३८ | ,, टीका | उ० क्षमाकल्याण P/. अमृतधर्म | १८५२ जेसलमेर | मु० विनय ५५१, बाल ३३८ | |

३९ चंद चौपाई समालोचना (मोहनविजयकृता) ज्ञानसार P/. रत्नराज १८७७ बीकानेर अ०

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ४० | चन्द्रदूतम् | विमलकीर्ति P/. विमलतिलक | १६८१ | मु० अभय बीकानेर विनय ८ |
| ४१ | चन्द्रविजय | मंत्रि-मण्डन P/. बाहड | १५वीं | मु० |
| ४२ | चम्पूमण्डन | ,, | ,, | मु० |
| ४३ | चाणिक्यनीति-स्तवक | लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष | १८वीं | अ० बालापुर भंडार |
| ४४ | जयन्तविजयमहाकाव्य | अभयदेवसूरि रुद्रपल्लीयः | १२७८ | मु० |
| ४५ | जिनसिंहसूरिपदोत्सवकाव्य ( रघुवंशद्वितीयसर्गपादपूर्त्तिः ) | समयसुन्दरोपाध्याय | १७वीं | अ० प्रतिलिपि अभय बीकानेर |
| ४६ | तत्वप्रबोधनाटक | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरिबेगड | १७३० | अ० |
| ४७ | तृणाष्टकम् | समयसुन्दरोपाध्याय | १७वीं | मु० |

४८ दमयन्तीकथाचम्पू टीका गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६४६ सेरुणा अ० राप्राविप्र जोधपुर प्रेसकॉपी विनय

४९ द्वयाश्रय महाकाव्य स्वोपज्ञ टीकासह जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १३५६ अ० जेसलमेर, हरि लोहावट

५० द्वयाश्रयमहाकाव्य टीका हेमचन्द्रीय (संस्कृत) अभयतिलकोपाध्याय P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १३१२ पालनपुर मु०

५१ द्वयाश्रयमहाकाव्य टीका हेमचन्द्रीय (प्राकृत) पूर्णकलश P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १३०७ मु०

५२ नलवर्णनमहाकाव्य विनयसागर P/. सुमतिकलश पिप्पलक १९वीं उल्लेख स्वकृत अविदपदशतार्थी

५३ नीतिशतकम् धनराज S/. देहड १४६० मंडपदुर्ग मु०

५४ नीतिशतक भाषा (भर्तृहरि) नैनसिंह P/. जयशील १७८६ बीकानेर अ०

५५ नेमिनाथ महाकाव्य कीर्तिरत्नसूरि १४९५ मु०

५६ नेमिदूतम् विक्रम P/. सांगण १४वीं मु० विनय ७५६, ७६६,

५७ ,, टीका गुणविनय P/. जयसोम १६४४ मु० खजांची बी० स्वयं लि० वि० ५३२

५८ नेमिसन्देशकाव्य हंसप्रमोद P/. हर्षचन्द १७वीं अ० दिगंबर भंडार अजमेर

५९ नैषधचरितमहाकाव्य टीका चारित्रवर्द्धन P/. कल्याणराज १५११ अ०

६० ,, ,, जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि १७वीं अ० भांडारकर पूना विनय ३६० कोटा

६१ पदैकविंशति सूरचन्द्र १७वीं अ०

६२ पासदत्त प्रति प्रेषितपत्र रघुपति १९वीं अ० अभय बीकानेर

६३ 'प्रणम्य' पदन्यार्थः सूरचन्द्र १७वीं अ० अभय बीकानेर

६४ प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्यवचनिका ज्ञानसार P/ रत्नराज १९वीं ,,

६५ प्रद्युम्नलीलाप्रकाश शिवचन्द्रोपाध्याय P/. पुण्यशील १८७१ जयपुर अ० बाल रामाविप्र चित्तोड़ ३७०

६६ प्रत्येकबुद्धचरितमहाकाव्य लक्ष्मीतिलकोपाध्या P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १३११ पालनपुर अ० हरिलोहावट हंस बड़ोदा

६७ प्रशस्तिः लब्धिनिधानोपाध्याय P/. जिनकुशलसूरि १४वीं अ० जेसलमेर

६८ प्रश्नप्रबोधकाव्यालङ्कार स्वोपज्ञ टीकासह विनयसागर P/. सुमतिकलश १६६७ दिल्ली अ० कांति बड़ोदा-स्वयं लिखित

६९ प्रशमय काव्य धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १८वीं मु०

७० प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतककाव्यम् जिनवल्लभसूरि १२वीं मु०

७१ ,, अवचूरि कमलमन्दिर P/. जिनगुणप्रभसूरि १६२७ अ० अभय बीकानेर

७२ ,, टीका पुण्यसागरोपाध्याय १६४० बीकानेर अ० विनय कोटा ७९०

७३ फलवर्द्धिपार्श्वनाथ माहात्म्यमहाकाव्य सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १७वीं मु०

७४ मातृकाप्रथमाक्षरदोधक पृथ्वीचन्द्र P/. अभयदेवसूरिरुद्रपल्लीय १३वीं मु०

७५ मातृकाश्लोकमाला श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १६५५ बीकानेर अ० पुण्य अहमदाबाद

७६ मानमनोहर कल्याणचन्द्र P/. कीर्तिरत्नसूरि १५१२ अ०

७७ मूलराजगुणवर्णनसमुद्रबद्धकाव्य शिवचन्द्रोपाध्याय पुण्यशील १८६१ जेसलमेर अ० बाल चित्तोड़ ३९२

७८ मेघदूत (कालिदासीय) अवचूरि कनककीर्त्ति P/. जयमन्दिर १७वीं अ० विनय कोटा चारित्र रा० बीकानेर

७९ ,, ,, विनयचन्द्र P/. सागरचंद्र शाखा १६६४ राडद्रह अ०

८० ,, टीका क्षेमहंस अ० विनय कोटा ८००

८१ ,, ,, 'पंजिका' गुणरत्न P/. विनयसमुद्र १७वीं अ० मोहनलाल भंडार सूरत

८२ ,, ,, चारित्रवर्द्धन P/. कल्याणराज १६वीं मु० विनय १६०

८३ मेघदूत ,, महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधानोपाध्याय १६९३ अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर

८४ ,, ,, सुमतिविजय P/. विनयमेरु १८वीं अ० भांडारकरपूना दि० भं० आमेर

८५ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ० विश्वेश्वरानंद शो० सं० होशियारपुर

८६ मेघदूत प्रथमपद्यस्य त्रयोऽर्थ: समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ० डूंग० जेसलमेर अभय बीकानेर

८७ रघुवंश महाकाव्य (कालीदासीय) टीका क्षेमहंस १६वीं अ० राप्राविप्र जोधपुर

८८ ,, ,, सुबोधिनी गुणरत्न P/ जिनसमुद्र १६६७ जोधपुर अ० जेसलमेर भंडार

८९ ,, ,, गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६४६ बीकानेर अ० रा० जो० व० भं० बी० विन ६७३

९० ,, ,, शिष्यहितैषिणी चारित्रवर्द्धन P/. कल्याणराज १५०७ मु० विनय ५११

९१ ,, ,, जिनसमुद्रसूरि P/, जिनचन्द्रसूरिलघुखरतर १६वीं अ० अभय बीकानेर

९२ ,, ,, धर्ममेरु P/. चरणधर्म १७वीं अ० रा० जो० दि० भं० वां० ओ० कॉ ला०

९३ ,, ,, पुण्यहर्ष P/. ललितकीर्त्ति (?) १८वीं दिगम्बर जयपुर सूची भाग ४

९४ ,, ,, अर्थलापनिका समयसुन्दरोपाध्याय १६९२ खंभात अ० डूंगर जे०-स्व० लि० रा० जो० वि० ५१२

९५ ,, ,, सुमतिविजय P/. विनयमेरु १६९८ बी० अ० जयकरणफतेपुर अभय बीकानेर

९६ रघुवंशसर्गाधिकार: जयसागरोपाध्याय १५वीं अ० तपा भंडार जेसलमेर

९७ रजोष्टकम् समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं मु०

९८ राक्षसकाव्य टीका विनयसागर P/. सुमतिकलशपिप्पलक १७वीं उल्लेख-स्वकृत अविदपदशतार्थी

९९ राघवपाण्डवीयकाव्य टीका चारित्रवर्द्धन P/ कल्याणराज १६वीं अ०

१०० ,, ,, विनयसागर P/, सुमतिकलशपिप्पलक १७वीं उल्लेख-स्वकृत अविदपदशतार्थी

१०१ राजगृहप्रशस्ति: भुवनहिताचार्य १४१२ मु०

१०२ रामेऽष्टादशार्था: धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १८वीं मु०

१०३ विचित्रमालिका (ब्रजविलासकासार) रायचन्द्र १६वीं अ० पं० रघुनाथराय बनारस १८३४ लि०

१०४ विजयदेवमहात्म्यमहाकाव्य श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं मु०

१०५ विज्ञप्तिपत्रम् (महादण्डकस्तुतिगर्भ) समयसुन्दरोपाध्याय १८वीं मु०

१०६ विज्ञप्तित्रिवेणी जयसागरोपाध्याय १४८४ मलिकवा० मु०

१०७ विज्ञप्तिपत्र ज्ञानतिलक P/. विजयवर्द्धन १८वीं मु० अभय बीकानेर

१०८ ,, ,, ,, मु०

१०९ विज्ञप्तिमहालेख-लोकहिताचार्यप्रति मेरुनन्दन P/. जिनोदयसूरि १४३१ पत्तन मु०

११० विज्ञानचन्द्रिका क्षमाकल्याणोपाध्याय १८५६ जेस० अ० ख० जयपुर चारित्र राप्राविप्र जोधपुर

१११ विद्वत्प्रबोधकाव्यम् श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं मु० अभय बीकानेर विनय ७

११२ विषमकाव्य-अवचूरि जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वीं अ० धर्म आगरा

२१ पदानां (सं प्रा० अपभ्रंशभाषायां षट्पदीनां टीका)

११३ वैराग्यशतकम् धनराज S/. देहड १४९० मंडपदुर्ग मु०
११४ ,, पद्मानन्द S/. धनदेव १२वीं मु०
११५ ,, सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन १७वीं अ० अभय बीकानेर
११६ वैराग्यशतक टीका (प्राकृत) गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६४७ मु०
११७ ,, ,, ज्ञानसागर P/. क्षमालाभ १८वीं अ० केशरिया भंडार जोधपुर
११८ ,, ,, सर्वार्थसिद्धि मणिमाला जिनसमुद्रसूरि P/. वेगड जिनचन्द्रसूरि १७४० अ० अभय बीकानेर
११९ शतकत्रयभर्तृहरि बालावबोध अभयकुशल १७५५ सिणली अ० यति प्रेमसुन्दर फलोदी
१२० ,, ,, रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १७८८ सोजत अ० रा० जो० वि० ७६ बा० चि० १९३-१९९
१२१ शतकत्रयस्तबक (भर्तृ०) लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्ति १८वीं अ० सराँची बीका० पंजाब भं० मूची
१२२ शतकत्रय हिन्दी पद्यानुवाद भाषाभूषण विनयलाभ P/. विनयप्रमोद १८वीं १७२७ अ० अभय बीकानेर
१२३ शत्रुञ्जयतीर्थोद्धाररास महिमसुन्दर P/. साधुकीर्ति १६९९ जे० अ० अभय बी०
१२३A शत्रुञ्जयोद्धारलहरी स्वरूपचन्द्र P/. हितप्रमोद २०वीं अ० सुमेरमल भीनासर
१२३B शत्रुञ्जयोत्पत्ति सुमतिकल्लोल P/. १७वीं अ० विनय २०८
१२४ शान्तिलहरी सूरचन्द्र P/. वीरकलश १७वीं अ० प्रेमरासी-विनय को० आमेट भं०
१२५ शिशुपालवधमहाकाव्य टीका चारित्रवर्द्धन P/. कल्याणराज १६वीं अ० स्टेट लायब्रेरी
१२६ ,, ,, धर्मरुचि P/. मुनिप्रभ १७वीं अ० विनय कोटा
१२७ ,, ,, 'संदेहध्वान्तदीपिका' ललितकीर्ति १७वीं अ० विनयकोटा राप्राविप्र जोधपुर ६८१
१२८ ,, ,, (तृतीयसर्ग) समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ० सुराणा चूरू-स्वयंलिखित
१२९ शृङ्गारमण्डन मन्त्रि-मण्डन १५वीं मु०
१३० शृङ्गाररसमाला सूरचन्द्र P/. वीरकलश १६५९ नागोर अ० बदनरण
१३१ शृङ्गारवैराग्यतरंगिणी टीका नन्दलाल १८वीं मु० विनय ६८६
१३२ शृङ्गारशतकम् जिनवल्लभसूरि १२वीं अ० विनय 'वल्लभभारती'
१३३ ,, धनराज P/. देहड १४९० मंडपदुर्ग मु०
१३४ शृङ्गारादिसंग्रह षोडशहस्त श्लोक सूरचन्द्र P/. वीरकलश १७वीं अ० बड़ोदा इंस्टीट्यूट
१३५ संघपतिरूपजीवंशप्रशस्तिः श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं मु० संपादक-विनयसागर
१३६ सनत्कुमारचक्रिचरित महाकाव्य जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि १३वीं मु० ,,
१३७ ,, स्वोपज्ञटीका ,, ,, उल्लेख-गणधरसार्द्धशतक बृहद्वृत्ति
१३८ सर्वेश्वराष्टक टीका लक्ष्मीचन्द्र P/. देवेन्द्रसूरि रत्नद्वीप १४९१ मु०
१३९ समुद्रबद्धचित्रकाव्य दुर्गादास P/. विनयानंद १७८० कर्णगिरि अ० बाल विजोड
१४० संयोगद्वात्रिंशिका मान P/. सुमतिमेरु १७३१ अ० अभय बीकानेर
१४१ सम्यक्त्वस्तवार्थसमुच्चय गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७वीं मु०

१४२ सारङ्गसार टीका हंसप्रमोद P/. हर्षचन्द्र १६६२ अ० हरि लोहावट
१४३ सूक्तिमुक्तावली जिनवर्द्धमानसूरि पिप्पलक १७३६ उदयपुर अ० सरस्वती भंडार उदयपुर
१४४ सूक्तिरत्नावली स्वोपज्ञ टीका क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८४७ मकसूदाबाद अ० जयपुर
१४५ स्थूलिभद्रगुणमाला महाकाव्य सूरचन्द्र P/. वीरकलश १६८० संग्रामनगर सांगानेर अ० वेग० जोध० घाणेराव
१४६ स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्रलेखनप्रशस्तिः शिवसुन्दर P/. क्षेमराज १६वीं मु० नाहर कलकत्ता
१४७ ,, ,, साधुसोम P/. सिद्धान्तरुचि १५२४ पाटण अ० तपा भंडार जैसलमेर
१४८ सभाकुतूहल कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १८वीं अ० आचार्यशाखा भंडार बीकानेर
१४९ समस्यापूर्तिश्लोकादिपद्य १८ समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं मु०
१५० समस्यापूर्तिस्फुटपद्याः धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १८वीं मु०
(संस्कृत ३८, भाषा ३५ पद्य)
१५१ समस्याष्टकम् समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं मु०

## काव्य-कथा-चरित्र

१ अञ्जनासुन्दरी कथा मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १६वीं अ० सिद्धक्षेत्र सा०मं० पालीताणा २०४९
२ ,, चरित्र गुणसमृद्धिमहत्तरा १४०६ जैस० अ० जैसलमेर भंडार
३ अतिमुक्तक चरित्र पूर्णभद्रगणि P/. जिनपतिसूरि १२८२ मु०
४ अम्बडचरित्र क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८५४ पाली० मु० विनय कोटा ३९४
५ आदिनाथचरित्र वर्द्धमानसूरि P/. अभयदेवसूरि ११६० खंभात अ० हरि लोहावट
६ ,, (कल्पसूत्रान्तर्गत) ज्ञाननिधान P/. मेघकलश १८वीं अ० अभय बीकानेर
७ ,, जिनसागरसूरि पिप्पलक १५वीं अ० विनय ९७५
७A आदिनाथ व्याख्यान वादीहर्षनन्दन P/. समयसुन्दर १७वीं अ० ,, ,,
८ आरामशोभा कथा जिनहर्षसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि पिप्पलक १५३७ ,, लींबडी भंडार
९ ,, मलयहंस P/. जिनचन्द्रसूरि पिप्पलक १६वीं अ० कान्ति छाणी
१० उत्तमकुमार चरित्र चारुचन्द्र P/. भक्तिलाभ १६वीं अ० अ० बी० सं० १५७१ स्वलि० विनय २०१
११ ,, सुमतिवर्द्धन P/. विनीतसुन्दर १६वीं अ० हरि लोहावट
१२ उपमितिभवप्रपञ्चकथासमुच्चय वर्द्धमानसूरि ११वीं मु०
१३ कथाकोष समयसुन्दरोपाध्याय १६६७ मरोट अ० विनय कोटा अपूर्ण
१३A ,, ,, अ०
१४ कथाकोषप्रकरण स्वोपज्ञ टीका जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि ११०८ डीडवाणा मु०
१५ कथारत्नकोष देवभद्रसूरि P/. सुमतिवाचक ११५८ भरुच मु०

१६ कन्यानयन (कन्नाणा) तीर्थकल्प सोमतिलकसूरि P/. संघतिलकसूरि रुद्रपल्लीय १४वीं मु०

१७ कालिकाचार्य कथा कनकनिधान P/. चारुदत्त १८वीं अ० चारित्र राप्राविप्र बीकानेर

१८ ,, कनकसोम P/. १६३२ जेस० । अ०

१९ ,, कमलसंयमोपाध्याय १६वीं अ० ख० जयपुर

२० ,, कल्याणतिलक P/. जिनसमुद्रसूरि १६वीं अ० अभय बीकानेर

२१ ,, जयकीर्त्ति P/. वादीहर्षनन्दन १७वीं अ० बाल राप्राविप्र चित्तौड ७६४

२२ ,, जिनदेवसूरि P/. जिनप्रभसूरि १४वीं मु०

२३ ,, ज्ञानमेरु P/. महिमसुन्दर १७वीं अ० बाल राप्राविप्र चित्तौड़ जोध० २१९२०

२४ ,, लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १८वीं अ० ख० जयपुर

२५ ,, शिवनिधानोपाध्याय १७वीं अ० वृद्धि जेसलमेर

२६ ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६६६ वीरमपुर मु० बाल चित्तौड़ ६६

२७ ,, सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १७१२ अ० यति सूर्यमल संग्रह

२८ कुन्थुनाथ चरित्र विबुधप्रभसूरि १३वीं उल्लेख-बृहट्टिप्पनिका

२९ कुमारपालप्रबन्ध सोमतिलकसूरि P/. संघतिलकसूरि रुद्रपल्लीय १४२४ मु० केशरिया जोधपुर कांतिश्वाणी

३० कृतपुण्यचरित्र पूर्णभद्रगणि P/. जिनपतिसूरि १३०५ अ० जेसलमेर भंडार, बड़ाभावरूप भंडार

३१ गुणदत्तकथा अभयचन्द्र P/. आणंदराजलघुखरतर १६वीं अ०

३२ गुणसागरप्रबोधचन्द्रयुद्धप्रकाश जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड़ १८वीं अ० जेसलमेर भंडार

३३ चन्द्रप्रभचरित्र जिनेश्वरसूरि P/. जिनपतिसूरि १३वीं मु०

३४ ,, टीका ,, साधुसोम P/. सिद्धान्तरुचि १६वीं अ० आचार्यशाखा भंडार बीकानेर

३५ ,, जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वीं अ० प्रेसकॉपी विनय कोटा

३६ जयसेनचरित्र रत्नलाभ P/. विवेकरत्नसूरि पिप्पलक १८वीं अ० पालणपुर भंडार

३७ जिनकुशलसूरि चरित्र लब्धिमुनि उ० २०वीं अ०

३८ जिनकृपाचन्द्रसूरिचरित्र जयसागरसूरि ,, मु०

३९ जिनचन्द्रसूरिचरित (मणिधारी) लब्धिमुनि उ० ,, मु०

४० ,, ,, (युगप्रधान) ,, ,, मु०

४१ जिनदत्तसूरिचरित लब्धिमुनि उ० २०वीं अ०

४२ जिनयश सूरिचरित ,, ,, अ०

४३ जिनरत्नसूरिचरित ,, ,, अ०

४४ जिनवल्लभीय (आदि-शांतिनेमि-पार्श्व-महावीरचरित्र पं० टीका कनकसोम १९वीं अ० ख० बी० १६१५ स्वलिखित

४५ ,, ,, टीका साधुसोम P/. सिद्धान्तरुचि १५१९ अ० आ० शा० भ० बी० म० प० वि० ८०१

४६ ,, ,, बालावबोध कनककीर्ति १६९८ जेस० अ०

४७ जिनवल्लभीय आदिनाथचरित जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि १२वीं मु०
४८ ,, शान्तिनाथचरित ,, ,, ,, ,,
४९ ,, नेमिनाथ ,, ,, ,, ,, ,,
५० ,, पार्श्वनाथ ,, ,, ,, ,, ,,
५१ ,, महावीर ,, ,, ,, ,, ,,
५२ ,, ,, ,, टीका समयसुन्दरोपा० १६८४ लूण० अ० क्षमा बीकानेर ख० जयपुर
५२A ,, ,, ,, बालावबोध ,, १६६९ अ० स्वलिखित वि० २५९०९
५३ ,, ,, ,, ,, रघुपति P/. विद्यानिधान १८१३ अ०
५४ ,, ,, ,, ,, विमलरत्न P/. विजयकीर्ति १७०२ सा० अ० व० भं० बी० स० बी० जैनर
५५ ,, ,, ,, स्तवक रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १८१३ बी० अ० वा० राप्राविप्र चित्तौड़ हूं० जैन०
५६ ,, ,, ,, सुमति P/. जयकीर्त्ति पिप्पलक १५वीं अ० महिमा बीकानेर
५७ जैनरामायण (भाषा) जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि १७वीं अ० ख० कोटा
५८ थावच्चा सुकोशलचरित्र कनकसोम १६५५ नागोर अ० आचार्यशाखा भंडार बीकानेर
५९ दश आश्चर्यकाणि पद्मलाभ १८वीं अ० अभय बीकानेर
६० जिनवल्लभीय महावीरचरित बालावबोध नयमेरु P/. १६७८ अ० विनय ७१५ स्वयंलिखित
६१ दशदृष्टान्तकथानक बालावबोध अभयधर्म १५७९ अ० संस्कृतालय कलकत्ता १२३
६२ दश श्रावकचरित्र पूर्णभद्रगणि P/. जिनपतिसूरि १२७५ अ० जेसलमेर भंडार
६३ देवदिन्न चरित्र जयनिधान P/. राजचन्द्र १७वीं अ०
६४ देवदूष्यवस्त्रार्पण कथानक समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं अ०
६५ द्रौपदीसंहरण ,, ,, अ० खजांची बीकानेर
६६ धन्यशालिभद्रचरित्र पूर्णभद्रगणि P/. जिनपतिसूरि १२८५ जैस० मु०
६७ धूर्त्ताख्यान संघतिलकसूरि रुद्रपल्लीय १५वीं मु०
६८ नरवर्मचरित्र विद्याकीर्त्ति P/. पुण्यतिलक १६६९ अ० हिम्मत राप्राविप्र बीकानेर
६९ ,, विनयप्रभोपाध्याय P/. जिनकुशलसूरि १४१२ खंभात मु० विनय ६७३
७० ,, विवेकसमुद्रोपाध्याय १३२० खंभात अ० धर्म आगरा
७१ निर्वाणलीलावतीकथा जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि १०९२ आशापल्ली अनुपलब्ध
७२ निर्वाणलीलावतीकथासार जिनरत्नसूरि १३४० अ० जेसलमेर भंडार
७३ पञ्चकुमारकथा लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७४६ रिणी अ० केशरिया जोध० चा० राप्राविप्र० बीकानेर
७४ परमहंससम्बोधचरित्र नयरंग १६२६ बाल० मु० विनय कोटा ९०३
७५ पर्वरत्नावली जयसागरोपाध्याय १४७८ पाटण अ० ख० जयपुर विनय ९०७
७६ पार्श्वनाथ चरित्र देवभद्रसूरि P/. सुमतिवाचक ११६८ भरुच मु० जेसलमेर भंडार
७७ पार्श्वनाथदशभव बालावबोध पद्मनन्दिर P/. विजयराज १९वीं अ० जेसलमेर भंडार

७८ पार्श्वनेमिचरित भाषा वादीहर्षनन्दन P/. समयसुन्दर १७वीं अ० आत्मानन्द सभा भावनगर

७९ पुण्यसारकथानक विवेकसमुद्रोपाध्याय १३३४ जेस० मु०

८० पृथ्वीचन्द्र चरित्र जयसागरोपाध्याय १५०१ पालणपुर अ० हा० जयपुर

८१ प्रत्येकबुद्ध चरित्र जिनवर्द्धनसूरि १५वीं अ० हीराचन्द्रसूरि बनारस

८२ प्रदेशी चरित्र चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १९१३ खंभात अ० पुण्य अहमदाबाद

८३ बकनालिकेर कथानक पंचाख्याने हीरकलश १६४६ अ० अभय

८४ भुवनभानुकेवली चरित्र प्राकृतगद्य लक्ष्मीलाभ लघुखरतर १७वीं अ० जिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार सूरत

८५ ,, (लक्ष्मीलाभीय का संस्कृतानुवाद) तत्वहंस १८०१ अ० जैनानन्दपुस्तकालय सूरत

८६ मदननरिंदचरित्र दयासागर P/. उदयसमुद्र शिष्य १६१९ जालोर अ० वर्द्धमान भंडार उदयपुर

८७ मनोरमाचरित्र वर्द्धमानसूरि P/. अभयदेवसूरि ११४० अ० तै० सभा सरदार० भावहर्ष बालोतरा

८८ महावीरचरित देवभद्रसूरि P/ सुमतिवाचक ११३९ मु०

८८A महावीर चरित्र अभयदेवसूरि अ० खंभात ताडपत्रीय

८९ महावीर २७ भव कथानक रंगकुशल P/. कनकसोम १६७० अ० आचार्य उपासरा, बीकानेर

९० ,, समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं० अ०

९१ ,, बालावबोध रत्ननिधानोपाध्याय P/. जिनचंद्रसूरि १७वीं० अ० आचार्य शाखा बीकानेर

९२ मुनिसुव्रतचरित्र पद्मप्रभसूरि P/. विबुधप्रभसूरि १२९४ अ०

९३ मूँछ माखण कथा अमरविजय P/. उदयतिलक १७७५ राहसर अ० अभय बीकानेर

९४ मोहजीतचरित्र क्षेमसागर १६३६ कोटा मु०

९५ यशोधरचरित्र क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८३९ जै०, अ० विनय कोटा ४२८ या० वि० १३८

९६ यशोधरसम्बन्ध सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन १७वीं० अ० धरणेन्द्र जयपुर, अभय बी०

९७ रत्नसिंहनरेन्द्रकथा मुनिसोम P/. सिद्धान्तरुचि १५४० शिवपत्र मु० अभय बी०, विनय १०१२

९८ रत्नसेनपद्मावती कथा जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड १८वीं० अ० अभय बीकानेर

९९ रुक्मिणी चरित्र ,, ,, ,, ,, ,,

१०० वर्द्धमानदेसना राजकीर्ति P/. रत्नलाभ १७वीं० मु०

१०१ वाग्विलासकथा संग्रह कीर्तिसुन्दर P/. धर्मवर्द्धन १८वीं० अ० जेसलमेर भं०, वृद्धि जेसलमेर

१०२ विविधतीर्थकल्प जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १३८९ दिल्ली मु०

१०३ वीरचरितम् जिनवल्लभसूरि P/. अभयदेवसूरि १२वीं० अ० विनय 'वल्लभभारती'

१०४ वैतालपच्चीसी हेमाणंद P/. हीरकलश १६४६ अ०

१०५ शीतवसन्तराजकथा लक्ष्मीचन्द्र P/. बालचन्द्रसूरि १६६० काशी अ० हीराचन्द्रसूरि बनारस

१०६ शीलवतीकथा आज्ञासुन्दर P/. आणंदसुन्दर हराडीय १५६२ काडिउपुर अ० सेठा भंडार जेसलमेर

१०७ श्रीपालचरित्र (टबार्थसहित) टीका क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८६९ बीकानेर मु० विनय ७०२

१०८ श्रीपालचरित्र बालावबोध मनसोम १७२५ ?

१०९ श्रीपालचरित्र चारित्रनन्दी P/. नयनिधि १९०८ अ० कान्ति वड़ोदा १९१० स्वयं लि०

११० ,, जयकीर्त्ति १८६८ जेसलमेर मु० विनय ७१२

१११ ,, (प्राकृत का स्तवक) जिनकृपाचन्द्रसूरि २०वीं० मु०

११२ ,, लब्धिमुनि उ० २०वीं० मु०

११३ ,, भाषा देवमुनि १९०७ अ० अभय बी०, क्षमा बी० हरि लोहावट, विनय १८

११४ ,, ,, ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान १९५७ अ० विनय कोटा ९८

११५ ,, हिन्दीअनुवाद वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि १२वीं० मु०

११६ समरादित्यकेवलीचरित्र पूर्वार्द्ध क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १९वीं० अ०

११७ ,, उत्तरार्द्ध सुमतिवर्द्धन १८७४ अजमेर अ० वर्द्ध० बी०, पुण्यश्री जयपुर, हंस वड़ोदा

११८ शत्रुञ्जय लघुमाहात्म्य जिनभद्रसूरि P/. जिनराजसूरि १५वीं० अ० जेसलमेर भंडार

११९ शिवरात्रिकथा मुनिराज P/. गुणसागर पिप्पलक १६८४ मांडवगढ़ अ० हरि लोहावट

१२० सिंहासनबत्तीसी हीरकलश १६३६ अ० अभय बीकानेर अ० जयपुर

१२१ सुमित्रचरित्र हर्षकुंजरोपाध्याय P/. जयकीर्त्ति पिप्पलक १५३५ ज्यायहपुरी अ० तपा भं० जे०, वि० ३१६

१२२ सुरसुन्दरीचरित्र धनेश्वरसूरि (जिनभद्रसूरि) १०९५ चन्द्रावती मु०

१२३ सुसढ़चरित्र लब्धिमुनि उ० २०वीं० अ०

१२४ स्वप्नाधिकार राजलाभ P/. राजहर्ष १७६५ केला अ०

## पर्व-व्याख्यान

१ द्वादशपर्वकथा लब्धिमुनि उ० २०वीं० अ०

२ द्वादश पर्वव्याख्यान हिन्दी अनुवाद, वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि २०वीं० मु०

३ अष्टाह्निकाव्याख्यान क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८६० जेसलमेर मु०

४ ,, नन्दलाल १७९६ अ० दान बी० अभय बी० हीराचंदसूरि वनारस

५ ,, भाषा आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र १८७३ अ० जैनभवन कलकत्ता

६ ,, ,, मतिमन्दिर १८८२ अ० खजांची बी०, यतिजयकरण बी० आचार्य शाखा भं० बी०

७ ,, ,, ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान १९४९ अ० खजांची बीकानेर

८ अक्षयतृतीयाव्याख्यान क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १९वीं० मु०

९ ,, भाषा चारित्रसागर P/. सुमतिवर्द्धन १९०९ अ० वद्रीदास सं० कलकत्ता

१० कार्तिकपूर्णिमाव्याख्यान जयसार १८७३ जेसलमेर मु० खजांची बीकानेर

११ चातुर्मासिक व्याख्यान   क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८३५ पाटोदी मु०

१२ „   शिवनिधानोपाध्याय १७वीं० अ० चारित्र राग्राविप्र, खजांची, आचार्य शाखा बी०

१३ „   समयसुन्दरोपाध्याय   १६६५ अमरसर मु० विनय कोटा

१४ „   सुरचन्द्र   १७वीं० अ० क्षमा बी०, चारित्र राग्राविप्र बी०

१५ „ भाषा   आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र   १८७३   अ० जैनभवन कलकत्ता

१६ चैत्रीपूर्णिमाव्याख्यान   जीवराज P/. भवानीराम जिनसागरसूरि शाखा १६वीं० मु०

१७ ज्ञानपञ्चमीव्याख्यान (सौभाग्यपंचमी) बालचन्द्रसूरि   २०वीं०   अ० हीराचन्दसूरि बनारस

१८ „ बालावबोध   जिनहर्ष

१९ „ भाषा   आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र   १८७३   अ०

२० दीपमालिका व्याख्यान   उम्मेदचन्द P/. रामचन्द   १८८६ अजीमगंज मु०

२१ दीपमालिकाकल्प (जिनसुन्दरीय) बाला० जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५१ पाटण   अ०

२२ „   „ जिनहर्षसूरि P/. रिपलक १८२८   अ० विनय ४८१

२३ „   „   समयसुन्दरोपाध्याय   १६८२   अ० आचार्यशाखा बी० खजांची बी०

२४ पौषदशमी व्याख्यान   जीवराज P/. भवानीराम जिनसा०शाखा १६वीं मु० चा० राग्राविप्र आचार्यशाखा बी०

२५ मेरुत्रयोदशी व्याख्यान   क्षमाकल्याणोपाध्याय   १८६० बीकानेर   मु०

२६ „   भाषा   चारित्रसागर P/. सुमतिवर्द्धन   १६०६   अ० बद्रीदास सं० कलकत्ता

२७ मौनैकादशी व्याख्यान जीवराज P/. भवानीराम (जिनसागर शा०) १८४७ बीकानेर   अ० डूगर जेसलमेर

२८ „   शिवचन्द्रोपाध्याय P/. पुण्यशील   १८८४ जेसलमेर   अ० बालराग्राविप्र जोधपुर

२९ „ बालावबोध जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष   १८वीं   अ० राग्राविप्र० जोधपुर

३० „ भाषा   आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र   १६वीं   अ०

३१ „ „   चारित्रसागर P/. सुमतिवर्द्धन   १६०६   अ० बद्रीदास सं० कलकत्ता

३२ रोहिणी व्याख्यान भाषा आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र   १८७३   अ०

३३ होलिका व्याख्यान   क्षमाकल्याणोपाध्याय   १६वीं   मु०

३४ „   „ भाषा   आनन्दवल्लभ P/. रामचन्द्र   १८७३   अ०

## पट्टावली एवं गीत

१ खरतरगच्छ पट्टावली   क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म १८३० जीर्णगढ़   मु०

२ „   „   उ० लब्धिमुनि   १६७०   अ० अभय बीकानेर

३ „   „   समयसुन्दरोपाध्याय P/. सकलचन्द्र १६६० खंभात अ० प्रेमकापी अभय बीकानेर

४ खरतरगच्छालङ्कारयुगप्रधानाचार्यगुर्वावली जिनपालोपाध्याय P/. जिनपतिसूरि १३०५ मु०

५ गुरुपट्टावली गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७वीं अ०

६ गुरुपर्वक्रम जयसोमोपाध्याय १७वीं अ० सेठिया जोधपुर, पूना

७ पट्टावली राजलाभ P/. राजहंस १८वीं अ०

८ बच्छावत वंशावली समयसुन्दरोपाध्याय लि० १७वीं अ० विनय २५६

९ महाजनवंश मुक्तावली ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान १९६० मु०

१० वर्द्धमानसूरि आदि प्राकृत प्रबन्ध राजहंस P/. हर्षतिलक, लघु खरतर १६वीं मु०

## गुर्वावली गीतादि

११ खरतरगच्छगुर्वावली(गुरुपरम्परा गीत) गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६वीं अ० पद्य ११'प्रणमुं पहिली श्रीवर्द्धमान'

१२ खरतरगच्छ पट्टावली (खरतर गुर्वावली) सोमकुंजर १५वीं मु० 'धन धन जिनशासन' प० ३०

१३ खरतर गुरु गुणवर्णन छप्पय अभयतिलकोपाध्याय, आदि १४वीं १५वीं मु०'सो गुरु सुगुरु जु छविह जीव'

१४ खरतर गुरुपट्टावली समयसुन्दरोपाध्याय P/. सकलचन्द्र १७वीं मु० प्रणमी वीर जिनेस्वर' ८

१५ गुर्वावली चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १७वीं मु० 'त्रिभुवनकर रे पास जिनेसर'प०२१

१६ गुर्वावली नयरंग १७वीं मु०'भारति भगवति रे तुं मति मुझकजे' प० ४

१७ गुर्वावली गीत समयसुन्दरोपाध्याय P/. सकलचन्द्र १७वीं मु० उद्योतन वर्द्धमान जिनेसर'३

१८ गुर्वावली फाग सेनहंस १६वीं मु० पणमवि केवललच्छिवर' १६

१९ गुर्वावली रेलुआ सोममूर्ति P/. जिनेश्वरसूरि १४वीं अ० अभय

२० जिनप्रभसूरि परम्परा गुर्वावली १५वीं मु० 'वंदे सुहम्म सामि' १४

२१ पिप्पलक खरतर पट्टावली चोपई राजसुन्दर P/. जिनचन्द्रसूरि पिप्पलक १६६६ मु० 'समरं सरसति गोतम पाय' १६

२२ वेगड खरतरगच्छ गुर्वावली मु० 'पणमिय वीर जिनंदचन्द'७

२३ सुगुरु वंशावली कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १७वीं मु० 'भट्टारक जिनभद्र सरउ' २

## योग

१ ध्यानशतक बालावबोध सुगनचन्द्र P/. जयरंग १७३६ जेसलमेर अ० सूर्जमल यति संग्रह, जैनरत्नपुस्तकालय

२ योगप्रकाश बालावबोध मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्ति १६वीं अ० उ० जैन मू० क०

३ योगशास्त्र बालावबोध (हेमचन्द्रीय) ,, ,, १६वीं अ० महिमा बीकानेर

४ ,, स्तवक शिवनिधानोपाध्याय १७वीं अ० तपा भण्डार जेसलमेर

## दर्शन

१ प्रमाण प्रकाश देवभद्रसूरि P/. प्रसन्नचन्द्राचार्य सुमतिवाचक १२वीं मु०

२ प्रमालक्ष्म स्वोपज्ञ टीकासह जिनेश्वरसूरि P/. वर्द्धमानसूरि ११वीं मु०

३ षड्दर्शन स० टीका(हरि०) सोमतिलकसूरि P/.संघतिलकसूरिरुद्रपल्लीय १३९२ आदित्यवर्द्धनपुर मु० राप्राविप्र० जोधपुर

४ षड्दर्शनसमुच्चय (हरि०) बालावबोध करतूरचन्द्र १८९४ बीकानेर अ० सुखजी बीकानेर

५ स्याद्वादपुष्पकलिका प्रकाश स्वोपज्ञटीकासह चारित्रनन्दी १९१४ अ० सिद्धक्षेत्र साहित्यमंदिर पालीताणा

## न्याय

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | तत्त्वचिन्तामणि टिप्पणक | सुमतिसागर P/. पुण्यप्रधान | १७वीं | उल्लेख-देवचन्द्रकृत विचारसार टीका |
| २ | तर्कभाषा 'प्रकाश' व्याख्या तर्कतरङ्गिणी (गोवर्द्धनीय) | गुणरत्न P/. विनयसमुद्र | १९वीं | अ० बड़ौदा इस्टीट्यूट, ब्रि०म्यु० |
| ३ | तर्कसंग्रह फक्किका | क्षमाकल्याणोपाध्याय P/. अमृतधर्म | १८५४ | मु० |
| ४ | ,, पदार्थबोधिनी टीका | कर्मचंद P/. दीपचंद | १८२२ नागपुर | उ० जैन सं० सा०इ० |
| ५ | न्यायसार चूर्णि | भक्तिलाभ P/. रत्नचन्द्र | १६वीं | अ० जैन भवन कलकत्ता |
| ६ | न्यायरत्नावली | दयारत्न P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय | १६२६ | अ० म० पूना तेरापंथी सरदारशहर |
| ७ | न्यायसिद्धान्तदीप शश० टिप्प० (मंगलवाद) | गुणरत्न P/. विनयसमुद्र | १७वीं | अ० स्टेट लाइब्रेरी बीकानेर |
| ८ | न्यायालङ्कार टिप्पणक | उ० अभयतिलक P/. जिने०द्वितीय | १४वीं | अ० जेसलमेर भण्डार |
| ९ | पञ्जिकाप्रबोध | जिनप्रबोधसूरि P/. जिने० द्वितीय | १४वीं | उल्लेख ख० यु० गुर्वावली पृ० ५७ |
| १० | बौद्धाधिकार विवरण | ,, ,, | ,, | ,, ,, |
| ११ | मङ्गलवाद | समयसुन्दरोपाध्याय | १६५३ इलादुर्ग | अ० जेसलमेर भण्डार |
| १२ | सप्तपदार्थी टीका | जिनवर्द्धनसूरि P/. जिनराज | १४७४ | मु० अभय बी० हरिलाहावट वि० कोटा |
| १३ | ,, ,, | भावप्रमोद P/. भावविनय | १७३० बेनातट | अ० |

## व्याकरण

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | अनिट्कारिका | समयसुन्दरोपाध्याय | १७वीं | अ० अभय बीकानेर |
| २ | अनिट्कारिका अवचूरि | क्षमामाणिक्य | १९वीं० जालंधर | अ० चारित्रराप्राविप्र बीकानेर |
| ३ | उक्तिरत्नाकर | साधुसुन्दर P/. साधुकीर्ति | | मु० चारित्र राप्राविप्र बी० विनय ७१८ |
| ४ | उक्तिसमुच्चय | जयसागरोपाध्याय | १५वीं० | अ० अभय बीकानेर |
| ५ | उपसर्गमण्डन | मन्त्रि-मण्डन S/. बाहड | १५वीं० मंडपदुर्ग | मु० |
| ६ | ऋजुप्राज्ञव्याकरण | सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन | १७वीं | अ० जेसलमेर भं० क्षमा बीकानेर |
| ७ | एकादिशतपर्यन्तशब्दसाधनिका | ,, | ,, १९वीं० | अ० यतिरामलाल मीनासर यति विष्णुदयाल फतहपुर |
| ८ | कातन्त्रदुर्गपदप्रबोधटीका | जिनप्रबोधसूरि P/. जिनेश्वरसूरि द्वितीय | १३२८ | अ० |
| ९ | कातन्त्रविभ्रमवृत्ति | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १३५५ दिल्ली | अ० विनय कोटा ८०२ |
| १० | कातन्त्रविभ्रमावचूरि | चारित्रसिंह P/. मतिभद्र | १६३५ धवलकपुर | अ० विनय कोटा राप्राविप्र जोध०बाल ४०८ |
| ११ | गुणकित्वषोडशिका | मतिकीर्ति P/. गुणविनय | १७वीं० | अ० ख० जयपुर, प्रेसकॉपी विनयकोटा |
| १२ | चतुर्दशस्वरवादस्थल | श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल | १७वीं० | अ० अभय बीकानेर |
| १३ | धातुरत्नाकर 'क्रियाकल्पलता' स्वोपज्ञटीका | साधुसुंदर P/. साधुकीर्ति | १६८० | अ० बड़ा भं० चा० बी० कान्ति छाणी |
| १४ | पञ्चग्रन्थीव्याकरण (शब्दलक्ष्मलक्षण) | बुद्धिसागरसूरि | १०८० जालोर | अ० जेसलमेर भंडार |

१५ पदव्यवस्था विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक १७वीं० अ० अनूप बीकानेर भं० पूना

१६ „ टीका उदयकीर्त्ति P/. साधुसुन्दर १६८१ „ „

१७ प्रक्रियाकौमुदी टीका विशालकीर्त्ति P/. ज्ञानप्रमोद १८वीं० अ० चारित्रराप्राविम बी० अ० बी०

१८ प्राकृतशब्दसमुच्चय तिलकगणि १५६६ अ०

१९ बालशिक्षाव्याकरण (जयानन्दसूरिकृत शब्दानुशासनतः) भक्तिलाभ अ० जेसलमेर भंडार

२० भूधातुवृत्तिः उ० क्षमाकल्याण P/. अमृतधर्म १८२९ राजनगर अ० छ० जयपुर प्रेसकॉपी विनयकोटा

२१ रुचादिगणवृत्तिः जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १३७६ अ० लींबड़ी भं०, अभय बी० राप्रा० जो

२२ वेट्टपदविवेचन समयसुन्दरोपाध्याय १६८४ बीकानेर अ०

२३ व्याकरणकटिनशब्दवृत्तिः श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं० अ० बड़ा भंडार बीकानेर

२४ शब्दार्णवव्याकरण धातुपाठ) सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १७वीं० अ० धर्म आगरा

२५ षट्कारक जयसागर P/. जिनसागरसूरि १८वीं० अ० धरणेन्द्र, जयपुर

२६ सारस्वतधातुपाठ (धातुमुक्तावली) जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड़ १८वीं० अ०

२७ सारस्वतप्रयोगनिर्णय श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं० अ० अभय बीकानेर

२८ सारस्वतमण्डन मन्त्रि-मण्डन S/. बाहड़ १५वीं मंडपदुर्ग अ० विनयकोटा ५२९ स्टेटलायब्रेरी

२९ सारस्वतरहस्य समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं० अ० बड़ा भं० बी० प्रेसकॉपी वि०कोटा ४९६

३० सारस्वतव्याकरण टीका 'क्रियाचन्द्रिका' गुणरत्न १६४१ अ०

३१ सारस्वत टीका विशालकीर्त्ति P/. ज्ञानप्रमोद १७वीं० अ० गधैया सं० सरदारशहर

३२ „ „ समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं० अ०

३३ „ „ सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६८१ अ० चारित्ररापाविम बीकानेर

३४ „ बालावबोध (पंचसन्धिपर्यन्त) राजसोम १८वीं० अ० आचार्यशाखा बीकानेर

३५ „ „ श्रीसारोपा० P/. रत्नहर्ष १७वीं० अ० जेसलमेर भंडार

३६ „ भाषाटीका आनन्दनिधान P/. मतिवर्द्धन आद्यपक्षीय १८वीं० अ० बहादुरमलबांठिया भीनासर

३७ सारस्वतानुवृत्त्यवबोधक ज्ञानमेरु (नारायण) P/. महिमसुन्दर १६६७ डीडवाणा अ० अनूपसंस्कृत ला० बी०

३८ सारस्वतीय शब्दरूपावली समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं० अ० पूनमचन्ददूधेरिया छापर स्वयंलिखित

३९ सिद्धहेमशब्दानुशासनलघुवृत्ति जिनसागरसूरि पिप्पलक १९वीं० अ० हीराचन्द्रसूरि बनारस

४० सिद्धहेमशब्दानुशासन टीका श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं० अ० धर्म आगरा

४१ सिद्धान्तचन्द्रिका टीका ज्ञानतिलक P/. विजयवर्द्धन १८वीं० अ० महिमा-भक्ति बी० ख० जयपुर

४२ „ „ पूर्वार्द्ध रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १८वीं० अ० दान बी०, बाल चि० २५८ वि० ७३७

४३ „ „ सदानन्द P/. भक्तिविनय १७९९ मु० ख० जयपुर, बाऊ २६०-२६१

४४ सिद्धान्तरत्नावली P/. जिनहेमसूरि जिनसागरसूरिशाखा १८९७ जयपुर अ०

४५ „ टीका नन्दलाल १८वीं अ० दान बीकानेर

४६ हैमलिङ्गानुशासन अवचूरि समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं० अ० आचार्य भं० बीकानेर
४७ हैमलिङ्गानुशासन दुर्गपदप्रबोधटीका श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १६६१ जोधपुर मु० ख० जयपुर
४८ सिद्धान्तरत्निका व्याकरण जिनचन्द्रसूरि मु० विनय १२

## कोष

१ अनेकार्थसंग्रह (हेमचन्द्रीय) टीका जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वीं० अ० पाटण भंडार
२ अभिधानचिन्तामणि नाममाला चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १७वीं० अ० मोहन भं० सूरत
(हेमचन्द्रीय) टीका 'दीपिका'
३ ,, ,, सारोद्धार श्रीवल्लभोपाध्याय P/ ज्ञानविमल १६६७ जोधपुर अ० राज्यविद्य० जोधपुर
४ ,, ,, सारोद्धारस्य सं० (श्रीवल्लभीय) रत्नविशाल P/. गुणरत्न १७वीं० राज्यविद्य० जोधपुर ४३०५
५ ,, भाषाटीका रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १८२२ कालाऊना अ० डूंगर जै० बाल चित्तौड़ ११७,१२०
६ ? अमरकोष टीका धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १८वीं० अ० हरिसोहावट
७ पञ्चवर्गपरिहारनाममाला (अपवर्गनाममाला) जिनभद्रसूरि P/. जिनप्रियोपाध्याय १३वीं० अ० प्रेमकरण वि०कोटा
८ विशेषनाममाला साधुकीर्त्युपाध्याय P/. अमरमाणिक्य १७वीं० अ० चारित्र राज्यविद्य बीकानेर
९ शब्दप्रभेद टीका ज्ञानविमलोपाध्याय P/. भानुमेरु १६५४ बीकानेर अ० बड़ाभंडार बीकानेर रा० जयपुर
१० शब्दरत्नाकर (शब्दप्रभेदनाममाला) साधुसुन्दर P/. साधुकीर्ति १७वीं० मु०
११ शिलोञ्छनाममाला जिनदेवसूरि P/. जिनप्रभसूरि १४वीं० मु०
१२ ,, टीका श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १६४५ नागौर अ० चारि० सेठी बाईबो० प्रेमक० वि०
१३ शेषसंग्रह (हेमचन्द्रीय) टीका ,, ,, १६५४ बी० अ० जिनरत्नकोश ७७७
१४ ,, ,, जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि १४वीं० अ० सजांची बीकानेर
१५ सिद्धशब्दार्णव नामकोष सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन १७वीं० मु० देवचन्द लालभाई पुस्त० हरि० लो०
१६ हैमनिघण्टुकोष टीका श्रीवल्लभोपाध्याय P/ ज्ञानविमल १७वीं० मु०

## छन्दःशास्त्र

१ छन्दोनुशासन जिनेश्वरसूरि प्रथम ११वीं जैस० ज्ञानभं० प्रेमकरण विनय कोटा
२ छन्दोऽलंकृत्य धनसागर P/. मुखवल्लभोपाध्याय १९वीं अ० राज्यविद्य जोधपुर २१४१२
३ छन्दोऽवतंस लालचन्द्र P/. शान्तिहर्ष १८वीं अ० राज्य० वि० मा०सा०बीका० बाल ४१५
४ छन्दस्सरस्वपुष्पम् धर्मनन्दन वाचक १९वीं अ० राज्यविद्य जोधपुर १७१०२
५ छन्द शास्त्र बुद्धिसागरसूरि ११वीं उल्लेख-देवभद्रीय महावीरचरित्रप्रशस्ति
६ पिङ्गलशिरोमणि कुशललाभ १५७५ जैस० मु० विनय कोटा ५०५
७ मालापिङ्गल ज्ञानसार १८७६ बीका० मु० अभय बीकानेर

८ वृत्तप्रबोध जिनप्रबोधसूरि P/. जिनेश्वरसूरि द्वितीय १४वीं उल्लेख-खरतर गुर्वावली पृ० ५७
९ वृत्तरत्नाकर टिप्पन क्षेमहंस १६वीं अ० राप्रा विप्र जोधपुर हेमचन्द्रसूरि पु० बी०
१० ,, टीका समयसुन्दरोपाध्याय १६९४ जालोर अ० विनय कोटा ७३२, ७३३ अभय बीका०
११ ,, बालावबोध मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १६वीं अ० राप्रा० जोध० गधैया सं० सरदारशहर

## लक्षण-ग्रंथ

१ अनूपशृङ्गार उदयचन्द्र १७२८ अ० स्टेट लायब्रेरी
२ अलङ्कारमण्डन मन्त्रि-मण्डन S/. बाहड १५वीं मंडपदुर्ग मु०
३ कविमुखमण्डन ज्ञानमेरु (नारायण) P/. महिमसुन्दर १६७२ फरह० अ० दिगंबर भंडार जयपुर
४ काव्यप्रकाश टीका (मम्मटीय) गुणरत्न P/. विनयसमुद्र १६१० अ० दान बीकानेर
५ ,, ,, नवमोल्लासस्य क्षमामाणिक्य १८८४ राजपुर अ० बड़ा भंडार बीकानेर
६ चतुरप्रिया कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्नआद्यपक्षीय १७०४ अ० राज० शोधसंस्थान चौपासनी
७ पाण्डित्यदर्पण उदयचन्द्र १७३४ अ० हरि लोहावट
८ भावशतक समयसुन्दरोपाध्याय १६४१ अ० प्रेसकॉपी अभय बीकानेर
९ रसमञ्जरी महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान १७वीं अ० अभय बीकानेर
१० रसिकप्रिया टीका (संस्कृत) समयमाणिक्य (समरथ) १७५५ जालिपुर० अ० दान, चारित्र बीकानेर
११ रसिकप्रिया भाषा टीका कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १७२४ जो० अ० अभय बीकानेर
१२ वाग्भटालङ्कार टीका उदयसागर P/. सहजरत्न पिप्पलक १७वीं अ० सरस्वती भंडार उदयपुर
१३ ,, ,, क्षेमहंस १६वीं उल्लेख-स्वकृत वृत्तरत्नाकर विनय ५२४ टीका
१४ ,, ,, जिनवर्द्धनसूरि P/. जिनराजसूरि १५वीं अ० विनय कोटा ६९५, ७२६ राप्राविप्र जो०
१५ ,, ,, ज्ञानप्रमोद १६८१ अ० बड़ाभंडार बी० अ० बीका० रा० जोधपुर
१६ ,, ,, राजहंस P/. जिनतिलकसूरि लघुखरतर १४८६ तेजपुर अ० भंडारकर पूना
१७ वाग्भटालंकार टीका समयसुन्दरोपाध्याय १६९२ अ० बीका०
१८ ,, ,, साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य १७वीं अ०
१९ ,, बालावबोध मेरुसुन्दरोपाध्याय १५३५ अ० स्टेट लायब्रेरी जोधपुर
२० विदग्धमुखमण्डन अवचूरि जिनप्रभसूरि P/. (जिनसिंहसूरि) १४वीं अ० विनय कोटा ५४४, ५५५
२१ ,, टीका विनयसागर P/. सुमतिकलश पिप्पलक १६९९ तेज० अ० वृद्धि जेस० ज० राप्राविप्र बी० वि० को०
२२ ,, ,, 'सुबोधिका' शिवचन्द्र P/. लब्धिवर्द्धन पिप्पलक १६९९ अल० अ० डूं० जे० चा० ख० रा० बी० तथा जो०
२३ ,, ,, 'दर्पण' श्रीवल्लभोपाध्याय P/. ज्ञानविमल १७वीं अ० अभय बीकानेर
२४ ,, बालावबोध मेरुसुन्दरोपाध्याय P/. रत्नमूर्त्ति १६वीं अ० कोटडी भंडार जोधपुर

## संगीत

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ संगीतमण्डन | मंत्रि-मण्डन S/. बाहड़ | १५वीं मंडपदुर्ग | अ० पाटण भंडार |

## वास्तुशास्त्र

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ वास्तुसार प्रकरण | ठक्कुर फेरु S/. चन्द्र | १३७२ कन्नाणा | मु० |

## मुद्रा-रत्न-धातु

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ द्रव्यपरीक्षा (मुद्राशास्त्र) | ठक्कुरफेरु S/. चन्द्र | १३७५ | मु० |
| २ धातूत्पत्तिः | ,, ,, | १४वीं | ,, |
| ३ भूगर्भप्रकाश | ,, ,, | १४वीं | अ० |
| ४ रत्नपरीक्षा | ,, ,, | १३७२ | मु० |
| ५ रत्नपरीक्षा हिन्दी | तत्त्वकुमार P/. दर्शनलाभ | १८४५ राजगंज | मु० अभय बीकानेर कांतिसागरजी |

## मन्त्र

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ महाविद्या | पूर्णकलश P/. जिनेश्वरसूरि | १४वीं | ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन ब्यावर |
| २ बृहत्सूरिमन्त्रकल्प विवरण | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १४वीं | मु० |
| ३ बृहद्ह्रींकारकल्प विवरण | ,, ,, | ,, | मु० |
| ४ वर्द्धमानविद्यापट्ट | भक्तिलाभ P/. रत्नचन्द्र | १६वीं | मु० |
| ५ ,, कल्प | संघतिलकसूरि, रुद्रपल्लीय | १५वीं | अ० |
| ६ सूरिमन्त्रकल्प | जिनभद्रसूरि | १५वीं | अ० धरणेन्द्र जयपुर |
| ७ सूरिमन्त्रचूलिका | जिनप्रभसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १४वीं | मु० |

## आयुर्वेद

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ कविप्रमोद | मान P/. सुमतिमेरु | १७४६ | राप्रा० जोधपुर मा० राप्राविप्र बीकानेर |
| २ कविविनोद | मान P/. ,, | १७४५ लाहौर | ,, |
| ३ गुणरत्नप्रकाशिका | गुणविलास P/. सिद्धिवर्द्धन | १७७२ | आचार्यशाखा भंडार बीकानेर |
| ४ तिब्बसहावी भाषा-वैद्यहुलास | मलूकचन्द | १८वीं | अभय बीकानेर |
| ५ पथ्यापथ्यनिर्णय | दीपचन्द P/. दयातिलक | १७९२ जय० | राप्राविप्र जोधपुर अभय बीकानेर |
| ६ पथ्यापथ्य स्तबक | चैनरूप | १८३५ | दान बीकानेर |
| ७ बालतन्त्र-बालावबोध | दीपचन्द P/. दयातिलक | १७९२ जयपुर | अभय बीकानेर |
| ८ भोजनविधि | रघुपति P/. विद्यानिधान | १८वीं | अभय बीकानेर |
| ९ माधवनिदान-ज्वराधिकार टीका | कर्मचन्द P/. चोपजी | १८वीं | हीराचन्दसूरि बनारस |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १० | माधवनिदान-स्तवक | ज्ञानमेरु P/. महिमसुन्दर | १७वीं | दान बीकानेर |
| ११ | मूत्रलक्षण | हंसराज पिल्लक | १८वीं | खं० जयपुर |
| १२ | योगचिन्तामणि बालावबोध | रत्नजय P/. रत्नराज | १८वीं | महिमा बीकानेर भांडारकर पूना |
| १३ | रामविनोद वैद्यक | रामचन्द्र P/. पद्मरंग | १७२० मु०चक्कीनगर | हरि लोहावट |
| १४ | वातनिदानम् | चारुचन्द्रसूरि रुद्रपल्लीय | १५वीं | उल्लेख-पुरातत्त्ववर्ष २ पृ० ४१८ |
| १५ | वैद्यक ग्रन्थ | दीपचन्द्र P/. दयातिलक | १८वीं | आचार्यशाखा भंडार बीकानेर |
| १६ | वैद्यजीवन स्तवक | चैनसुख P/. लाभनिधान | १९वीं | फतहपुर भंडार |
| १७ | ,, ,, | सुमतिधीर | १९वीं | चूरू भंडार १८४१ लिखित |
| १८ | वैद्यदीपक | ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान | २०वीं | मुद्रित |
| १९ | शतश्लोकी स्तवक | चैनसुख P/. लाभनिधान | १८२० | फतहपुर भंडार |
| २० | ,, ,, | रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह | १८३१ पाली | बाल राप्राविप्र चित्तोड़ १९ |
| २१ | सन्निपातकलिका स्तवक | ,, ,, | १८३१ पाली | |
| २२ | ,, ,, | हेमनिधान | १७३३ | चारित्र राप्राविप्र बीकानेर |
| २३ | सारंगधर चापाई-वैद्यविनोद | रामचन्द्र P/. पद्मरंग | १७२६ मरोट | ख० |
| २४ | समुद्रप्रकाश जिनसमुद्रसूरि P/. | जिनचन्द्रसूरि बेगड | १८वीं | जेसलमेर भंडार |

## ज्योतिष-गणित

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | अङ्कप्रस्तार | लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष | १७६१ गूढा | मु० |
| २ | अवयदी शकुनावली | रायचन्द्र P/. | १८१७ नागपुर | अभय बीकानेर |
| ३ | अनलसागर | मुनिचन्द्र लघुखरतर | | राप्राविप्र जो० २५८०७ |
| ४ | उदयविलास | जिनोदयसूरि P/. जिनसुन्दरसूरि बेगड़ | १८वीं० | डूंगर जेसलमेर |
| ५ | करणराजगणित | मुनिसुन्दर P/. जिनसुन्दरसूरि रुद्रपल्लीय | १६५५ | स्याणवीस्वरपुर स्टेट लायब्रेरी बी० |
| ६ | कालज्ञानभाषा | लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति | १७४१ | अभय बी० वि० १६२ बाल २८७ |
| ७ | खेटसिद्धि | महिमोदय P/. मतिहंस | १८वीं० | राप्राविप्र जोधपुर |
| ८ | गणित साठिसौ | ,, | १७३३ | अभय बीकानेर |
| ९ | गणितसार | ठ० फेरु S/. चन्द्र | १४वीं० | मुद्रित |
| १० | ग्रहलाघवसारिणी टिप्पण | राजसोम P/. | १८वीं० | धरणेन्द्र जयपुर |
| ११ | ग्रहायु: | पुण्यतिलक P/. हर्षनिधान | १८वीं० | अभय बीकानेर |
| १२ | चमत्कारचिन्तामणि टीका | अभयकुशल P/. पुण्यहर्ष | १८वीं० | चारित्र राप्राविप्र बीकानेर |
| १३ | ,, स्तवक | मतिसार P/. | १८वीं | फरीदकोट दान बीकानेर |
| १४ | जन्मपत्रीपद्धति | महिमोदय P/. मतिहंस | १८वीं० | अभय बीकानेर |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १५ जन्मपत्री पद्धति | रत्नचन्द P/. गलराज | १८वीं० | मानमल कोठारी बीकानेर |
| १६ ,, | लब्धिचन्द्र P/. कल्याणनिधान | १७५१ | महिमा बीकानेर |
| १७ जन्मपत्री विचार | श्रीसारोपाध्याय P/. | १७वीं० | आचार्यशाखा भं० बीकानेर |
| १८ जन्मप्रकाशिका ज्योतिष | कीर्तिवर्द्धन (केसव) P/. दयारत्न आद्यपक्षीय | १७वीं० | मेहता बुद्धि जेसलमेर |
| १९ जोइसहीर (ज्योतिषसार) | हीरकलश P/. हर्षप्रभ | १६२१ | पं० भगवानदास जयपुर, नाहर क० |
| २० ज्योतिषचतुर्विंशिका अवचूरि | साधुराज P/. | १६वीं० | अभय बीकानेर |
| २१ ज्योतिषरत्नाकर | महिमोदय P/. मतिहंस | १७२२ अ० | |
| २२ ज्योतिषसार | ठ० फेरु S/. चन्द्र | १३७२ | मुद्रित |
| २३ दीक्षाप्रतिष्ठाशुद्धि | समयसुन्दरोपाध्याय | १६८५ लूणकरणसर | |
| २४ नरपतिजयचर्या टीका | पुण्यतिलक P/. हर्षनिधान | १८वीं० | हरिलोहावट |
| २५ पञ्चाङ्गानयनविधि | महिमोदय P/. मतिहंस | १७२३ | महरचन्द भं० बीकानेर |
| २६ प्रेमज्योतिष | ,, ,, | १८वीं० | राप्राविप्र जोधपुर |
| २७ भुवनदीपक बालावबोध | रत्नधीर P/. ज्ञानसागर | १८०६ | पं० भगवानदास जयपुर |
| २८ ,, ,, | लक्ष्मीविनय P/. अभयमाणिक्य | १७६७ अ० | |
| २९ मुहूर्तमणिमाला | रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह | १८०१ | बालोतरा भंडार |
| ३० मोयरी ग्रहसारणी | भूधरदास P/. रंगवल्लभ जिनसागरसूरि शाखा | १८२७ | अभय बीकानेर |
| ३१ लघुजातक टीका | भक्तिलाभ P/. रत्नचन्द्र | १५७१ बीकानेर | महिमा बीकानेर |
| ३२ विवाहपटल अर्थ | विद्याहेम | १८३० | वर्द्धमान भं० बीकानेर |
| ३३ ,, बालावबोध | अमर P/. सोमसुन्दर | १८वीं | अभय बीकानेर |
| ३४ ,, भाषा | अभयकुशल P/. पुण्यहर्ष | १८वीं० | अभय बीकानेर हरिलोहावट |
| ३५ ,, ,, | रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह | १७वीं० | अभय बीकानेर |
| ३६ जातकपद्धति व्याख्या | जिनेश्वरसूरि P. | | बड़ौदा इन्स्टीट्यूट २८०५ |
| ३७ शकुनरत्नावली-वर्द्धमानसूरि P/. अभयदेवसूरि | | १२वीं | ज०-जै० सा० पू० इ० भाग ५ पृ० ११८ |
| ३७A शकुनविचार दोहा | P/. लक्ष्मीचन्द्र | १८वीं | डूंगर जेसलमेर |
| ३८ षट्पञ्चाशिका वृत्ति बालावबोध | महिमोदय P/. मतिहंस | १८वीं | चारित्र राप्राविप्र बीकानेर |
| ३९ सामुद्रिक भाषा | रामचन्द्र P/. | १७२२ अ० | |
| ४० स्वरोदय | चिदानंद (कपूरचन्द) P/. पुण्यशी | १९०७ | पु० सेठिया बीकानेर |
| ४१ स्वरोदय भाषा | लाभवर्द्धन (लालचन्द) शान्तिहर्ष | १७५१ | महिमा-रामलालजी बीकानेर |
| ४२ होरकलश (जोइसहीर) | हीरकलश P/. हर्षप्रभ | १६५७ | पु० भावहर्ष भंडार |
| ४३ होराबबोध | लाभोदय P/. ज्ञानराज | १८वीं | अभय बीकानेर |
| ४४ ढर्की | मानचन्द P/. जिनरंग | १७३१ | मुद्रित कांतिसागरजी |

# कक्क-फागु-वेलि-विवाहलो-संधि-चौपई-रासादि

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | अंग फुरकण चौपई | हेमाणंद P/. हरिकलश | १६३६ | अभय बीकानेर |
| २ | अंचलमत स्वरूपवर्णन चौपई | गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम | १६७४ | माल्पुरा याहल जेसलमेर |
| ३ | अंजनासुन्दरी चौपई | कमलहर्ष P/. मानविजय | १७३३ | आचार्यशाखा भंडार बीकानेर |
| ४ | ,, ,, | जिनोदयसूरि P/. जिनसुंदरसूरि वेगड | १७७३ | डूँगर, जेसलमेर |
| ५ | ,, प्रबन्ध | गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम | १६६२ | खंभात अभय बीका० पा०राप्राविं बी०स्व०लि० |
| ६ | ,, रास | पुण्यभुवन (जिनरंगीय) | १६८४ (?) | उदयपुर राणा जगतसिंह राजकोट |
| ७ | ,, ,, | भुवनकीर्त्ति P/. ज्ञानमन्दिर | १७०६ | उद० अभय बीकानेर |
| ८ | अंतरंग फाग | रंगकुशल P/. कनकसोम | १७वीं | केशरिया जोधपुर |
| ९ | अगड़दत्त चौपई | पुण्यनिधान P/. विमलोदय भावहर्षीय | १७०३ | वैरागर पाटण वाड़ी० |
| १० | ,, प्रबन्ध | श्रीसुन्दर P/. हर्षविमल | १६६६ | भाणवड़० अभय बी० जंडियाला गुरु भंडार |
| ११ | ,, रास | कुशललाभ | १६२१ | वीरमपुर |
| १२ | ,, ,, | गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम | १७वीं | अभय बीकानेर |
| १३ | ,, ,, | ललितकीर्त्ति | १६७६ | भुजनगर उ० जैं० गु० क० |
| १४ | अघटकुमार चौपई | मतिकीर्त्ति P/. गुणविनयोपाध्याय | १६७४ | आगरा ,, |
| १५ | अघटित राजर्षि चौपई | भुवनकीर्त्ति P/. ज्ञानमन्दिर | १६६७ | लवेरा ख० जयपुर |
| १६ | अजापुत्र चौपई | पद्मरत्न P/. विजयसिंह आद्यपक्षीय | १६६५ | मेडता झूँझणू |
| १७ | ,, ,, | भावप्रमोद P/. भावविनय | १७२६ | बीकानेर सेठिया बीकानेर |
| १८ | ,, ,, | रूपभद्र P/. उदयहर्ष | १७६८ | देवीकोट केशरिया जोधपुर |
| १९ | अजितसेन कनकावती रास | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७५१ | पाटण क्षमा बीकानेर सेठिया बीकानेर |
| २० | अध्यात्म रास | रंगविलास P/. (जिनचन्द्रसूरि जिनसागरसूरिशाखा) | १७७७ | मु० |
| २१ | अनाथी सन्धि | विमलविनय P/. नयरंग | १६४७ | कसूरपुर अभय बीकानेर ख० जयपुर |
| २२ | अभयंकर श्रीमती चौपई | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति | १७२५ | बद्रीदास कलकत्ता जिनविजयजी |
| २३ | अभयकुमार चौपई | पद्मराज P/. पुण्यसागरोपाध्याय | १६५० | जे० ख० जयपुर अभय बीकानेर |
| २४ | ,, रास | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७५८ | पाटण |
| २५ | ,, ,, | लक्ष्मीविनय P/. अभयमाणिक्य | १७६० | मरोट |
| २६ | अभयकुमार जयसाधु रास | कीर्त्तिसुन्दर P/. धर्मवर्द्धन | १७५६ | जयतारण० अभय बीकानेर |
| २७ | अमरकुमार रास | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति | १८वीं | क्षमा बीकानेर |
| २८ | अमरतेज धर्मबुद्धि रास | रत्नविमल P/. कनकसागर | १९वीं | राप्राविप्र जोधपुर |
| २९ | अमरदत्त मित्रानन्द रास | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७४९ | पाटण |

३० अमरदत्त मित्रानन्द रास यशोलाभ १८वीं अभय बीकानेर

३१ ,, ,, ,, लक्ष्मीप्रभ P/. कनकसोम १६७६

३२ अमरसेन जयसेन रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५९ पाटण मुद्रित

३३ अमरसेन जयसेन चौपई धर्मसमुद्र P/. विवेकसिंह निम्लक १६वीं अभय बीकानेर हरि लोहावट

३४ अमरसेन वयरसेन चौपई जयरंग (जैतसी) P/. पुण्यकलश १७१७ जैसल० अभय बीकानेर

३५ ,, ,, ,, दयासार P/. धर्मकीर्त्ति १७०६ चीतपुर दामा बीकानेर

३६ ,, ,, ,, धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १७२४ सरसा ,,

३७ ,, ,, ,, पुण्यकीर्ति P/. हंसप्रमोद १६६६ सांगानेर फूलचंदजी झाबक फलोदी

३८ ,, ,, ,, राजशील P/. साधुहर्ष १५६४

३९ ,, ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४४ पाटण

४० ,, ,, संधि रंगकुशल P/. कनकसोम १६४४ सांगानेर अभय बीकानेर

४१ अयवंतीसुकुमाल चौढालिया कीर्तिसुन्दर P/. धर्मवर्द्धन १७५७ मेड़ता

४२ ,, ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४१ राजनगर अभय बीका० दामा बीकानेर बाल ४५८

४३ अरहदास चौपई सुरयालचंद P/. जयराम १६वीं सेठिया बीकानेर, पार्श्वनाथ जैनपुस्तकालय सूरतगढ

४४ अरहन्नक चौपई राजहर्ष P/. ललितकीर्ति १७३२ दंतवासपुर दामा बीकानेर

४५ ,, ,, गुमनिहंम P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १७१२ बुरहानपुर दि० भट्टारक भंडार नागोर

४६ ,, प्रबन्ध नयप्रमोद P/. हीरोदय १७१३

४७ ,, रास आनन्दवर्द्धन P/. महिमसागर १७०२ अभय बीकानेर

४८ ,, ,, विमलविनय P/. नयरंग १७वीं अभय-मुकनजी-बीकानेर चारित्र राम्रा० बी०

४९ ,, ,, समयप्रमोद P/. ज्ञानविलास १६५७ धरणेन्द्रसूरि जयपुर

५० अर्जुनमाली चौपई विद्याविलास P/. कमलहर्ष १७३८ हरिलोहावट

५१ ,, संधि नयरंग P/. १६२१ वीरमपुर बद्रीदास कलकत्ता

५२ अर्हद्दास चौपई हीरकलश P/. १६२४ विनय ५८२

५३ अर्हद्दास संबंध महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान १६७८ सूटापुर बद्रीदास कलकत्ता

५४ असनादिविचार चौपई राजसोम P/. जयकीर्ति जिनसागरसूरिशाखा १७२९ आचार्यशाखा भंडार बीकानेर

५५ अष्टमद चौपई मु० जिनचन्द्रसूरि P/. जिनमाणिक्यसूरि १७वीं प्र०

५६ आणंद संधि श्रीसारोपाध्याय P/. रत्नहर्ष १६८४ मु० पुष्करणी अभय बीकानेर विनय कोटा

५७ आतमकरणी संवाद (रसरचना धनुष्यदिशा) जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड १७११ मुलतान डूंगर जेसलमेर

५८ आत्ममतप्रकाश चौपई धर्ममन्दिर P/. दयाकुशल १८वीं

५९ आराधना चौपई हीरकलश P/. हर्षप्रभ १६२३ नागोर

६० आरामनन्दन पद्मावती चौपई दयासार P/. धर्मकीर्त्ति १७०४ मुलतान कांतिसागरजी

| | | | |
|---|---|---|---|
| ६१ | आरामशोभा चौपई | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७६१ पाटण |
| ६२ | ,, ,, | दयासार P/. धर्मकीर्त्ति | १७०४ मुलतान राप्राविप्र जोधपुर |
| ६३ | ,, ,, | राजसिंह P/. विमलविनय | १६८७ वाडमेर |
| ६४ | ,, ,, | समयप्रमोद P/. ज्ञानविलास | १६५१ बीकानेर अभय बीकानेर |
| ६५ | आर्द्रकुमार धमाल | कनकसोम | १६४४ अमरसर अभय बीकानेर |
| ६६ | आषाढ़भूति धमाल | कनकसोम | १६३२ खंभात अभय बीकानेर विनय ४११ |
| ६७ | ,, प्रबंध | साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य | १६२४ दिल्ली क्षमा बीकानेर |
| ६८ | इक्षुकार सिद्ध ? चौपई | अमर P/. सोमसुन्दर | १८वीं सेठिया बीकानेर |
| ६९ | इक्षुकारी चौपई | क्षेमराज P/. सोमध्वज | १६वीं अभय-क्षमा बीकानेर विनय ६४ |
| ७० | इलापुत्र ,, | दयासार P/. धर्मकीर्त्ति | १७१० सुहावानगर ,, ,, ,, |
| ७१ | ,, रास | गुणनन्दन P/. ज्ञानप्रमोद | १६७५ विहारपुर अभय बीकानेर धरणेन्द्र जयपुर |
| ७२ | ,, ,, | दयाविमल P/. कनकसागर | १८३६ राजनगर |
| ७३ | इलायचीकुमार चौपई | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड | १७५१ जीवातरोग्राम डूंगर जेसलमेर |
| ७४ | उंदर रासो | राजसोम | १८वीं महिमा बीकानेर |
| ७५ | उत्तमकुमार चौपई | जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि वेगड | १७०८ जेसलमेर डूंगर जेसलमेर |
| ७६ | ,, ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७४५ पाटण मुद्रित |
| ७७ | ,, ,, | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड | १७३२ जेसलमेर भंडार |
| ७८ | ,, ,, | महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान | १६७२ महिम भट्टारक भंडार नागोर |
| ७९ | ,, ,, | महीचन्द्र P/. कमलचन्द्र लघुखरतर | १५६१ जवणपुर दान-जयचंद भंडार बीकानेर |
| ८० | ,, ,, | तत्वहंस | १७३१ मडाहडा नगर विनयचन्द भंडार जयपुर विनय ६८४ |
| ८१ | ,, ,, | विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक (जिनसागरसूरिशाखा) | १७५२ पाटण मुद्रित्र |
| ८२ | उद्यम-कर्म संवाद | कुशलधीर P/. कल्याणलाभ | १६६६ किसनगढ़ अभय बीकानेर |
| ८३ | ,, ,, | वादी हर्षनन्दन P/. समयसुन्दर | १७वीं तेरापंथी सभा सरदारशहर |
| ८४ | उपमितिभवप्रपंच कथारास | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७४५ पाटण |
| ८५ | ऋषभदत्त चौपई | रत्नवर्द्धन P/. रत्नजय | १७३३ शंखावती |
| ८६ | ऋषभदत्त रूपवती चौपई | अभयकुशल P/. पुण्यहर्ष | १७३७ महाजन खजांची बीकानेर |
| ८७ | ऋषिदत्ता चौपई | क्षमासमुद्र P/. जिनसुन्दरसूरि वेगड | १८वीं जेसलमेर भंडार |
| ८८ | ,, ,, | गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम | १६६३ खंभात अभय बीकानेर स्वयं लिखित |
| ८९ | ,, ,, | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड | १६९८ जेसलमेर भंडार, अभय बीकानेर |
| ९० | ,, ,, | ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर | १७वीं मुलतान जैनभवन कलकत्ता, अभय बीकानेर |
| ९१ | ,, ,, | प्रीतिसागर P/. प्रीतिलाभ जिनरंगीय | १७५२ राजनगर नाहर कलकत्ता |

९२ ऋषिदत्ता चौपई जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड १६६८ जेसलमेर भंडार, अभय बीकानेर

९३ ,, ,, रंगसागर P/. भावहर्षसूरि भावहर्षी १६२६ जोधपुर अभय बीकानेर हरिलोहावट

९४ ,, रास जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १७४६ पाटण

९५ एकादशी प्रबन्ध अमर P/. सोमसुन्दर १७११ वर्द्धमान भंडार बीकानेर

९६ ओसवाल (गोत्र) रास रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह १९वीं मु० अभय बीकानेर

९७ कनकरथ चौपई कनकनिधान P/. चारुदत्त १८वीं कांतिसागरजी

९८ कयवन्ना चौढालिया जिनोदयसूरि P/. जिनतिलकसूरि भावहर्षीय १६६२ डुंगर मं० भंडार मण्डन उदयपुर

९९ ,, चौपई ज्ञानसागर P/. क्षमालाभ १७६४ सेठिया बीकानेर

१०० कयवन्ना चौपई विनयमेरु P/. हेमधर्म १६८९ बुरहानपुर राप्राविप्र जोधपुर

१०१ ,, ,, समयप्रमोदP/. ज्ञानविलास १६६३ सेत्रावा अभय बीकानेर

१०२ ,, रास जयरंग(जैतसी)P/. पुण्यकलश १७२१ बीकानेर अभय-सेठिया बीकानेर हरिलो०, विनय ६३, बाल २५३

१०३ ,, ,, जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि १६८८ बुरहानपुर राप्राविप्र जोधपुर

१०४ ,, ,, लाभोदय P/. भुवनकीर्ति १७वीं ख० जयपुर, जैनभवन कलकत्ता

१०५ ,, संधि गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६५४ महिम

१०६ करसंवाद ,, अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७४७ अभय बीकानेर

१०७ करमचन्द वंशावली रास गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६५५ सोसायनगर मुद्रित

१०८ कलावती चौपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६७३ सांगानेर पादरा ज्ञानभंडार

१०९ ,, ,, रंगविनय P/. जिनरंगसूरि जिनरंगीय १७०६ खंभात अभय बीकानेर

११० ,, ,, विद्यासागर P/. सुमतिकल्लोल १६७३ नागोर

१११ ,, ,, सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन १६६७ पारिख राप्राविप्र बीकानेर

११२ ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५९ पाटण बाल राप्राविप्र चित्तौड़

११३ कामलक्ष्मीकथा चौपई प्रबन्ध जयनिधान P/. राजचन्द्र १६७९ (?४९) जेसलमेर भंडार

११४ कालासवेसि चौपई अमरविजय P/. उदयतिलक १७९७ राजपुर जयचन्द मं० बीकानेर

११५ कीर्तिधर सुकोशल चौढालिया आनन्दनिधान P/. मतिवर्द्धन आंचलीय १७२६ बगडी केशरिया जोधपुर

११६ ,, ,, प्रबन्ध महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान १६७० पुष्कर

११७ कुबेरदत्ता चौपई नयरंग १६२१ धाहरू जेसलमेर

११८ कुमतिकन्दली कुद्दालिका चौपई कमलसंयमोपाध्याय १६ वीं हंस बड़ोदा

११९ कुमति-विध्वंसन चौपई हीरकलश P/. हर्षप्रभ १६१७ कर्णपुरी, नाहर कलकत्ता

१२० कुमारपाल रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४२ पाटण मुद्रित, विनय ४३७, बाल चित्तौड़ २२२

१२१ कुमारमुनि रास पुण्यकीर्ति P/. हंसप्रमोद १७ वीं

१२२ कुलध्वजकुमार चौपई आनन्दनिधान P/. मतिवर्द्धन आंचलीय १७३४ सोजत कांतिसागरजी

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १२३ | कुलध्वजकुमार चौपई | कमलहर्ष P/. मानविजय | १८वीं | आचार्य शाखा भं० बीकानेर |
| १२४ | ,, ,, | विद्याविलास P/. कमलहर्ष | १७४२ लूणकरणसर | सुमेरमल भीनासर |
| १२५ | ,, रास | उदयसमुद्र P/. कमलहर्ष लिपिलक | १८वीं | अहमदावाद |
| १२६ | ,, ,, | धर्मसमुद्र P/. विवेकसिंह लिपिलक | १५८४ | सेठिया बीकानेर |
| १२७ | ,, ,, | राजसारP/. धर्मसोम | १७०४ | हाजीखानडेरा |
| १२८ | कुलध्वज रास-रसलहरी | उदयसमुद्र P/. कमलहर्ष | १७२८ अहमदाबाद | डूंगर जेसलमेर |
| १२९ | कुसुमश्री महासती चौपई | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७०७ | अभय बीकानेर |
| १३० | कुर्मापुत्र चौपई | जयनिधान P/. राजचन्द्र | १६७२ देरावर | जयचन्द भं० बीकानेर |
| १३१ | कृतकर्म रास | लब्धिकल्लोल P/. विमलरंग | १६५२ बाबेरापुर | जयकरण बीकानेर हरिलोहावट |
| १३२ | केशी गौतम चौढालिया | गुमानचंद P/. खुस्यालचन्द | १८६७ दशपुर | आचार्य शाखा भं० बीकानेर |
| १३३ | केशी चौपाई | अमरविजय P/. उदयतिलक | १८०६ गारबदेसर | |
| १३४ | केशी प्रदेशी संधि | नयरंग | १७वीं | अभय बीकानेर |
| १३५ | ,, ,, प्रबंध | समयसुन्दरोपाध्याय | १६९९ अहमदाबाद | मुद्रित |
| १३६ | क्षुल्लककुमार चौपई | महिमसिंह (मानकवि)P/. शिवनिधान | १७वीं | अभय बीकानेर |
| १३७ | ,, ,, | मेघनिधान P/. रत्नसुन्दर भावहर्षीय | १६८८ तिमरी | बालोतरा भंडार जंडियालागुरु भंडार |
| १३८ | ,, प्रबंध | पद्मराजP/. पुण्यसागरोपाध्याय | १६६७ मुलतान | अभय बीकानेर |
| १३९ | ,, मुनि प्रबंध | जिनसिंहसूरि P/. यु० जिनचन्द्रसूरि | १७वीं० | हरि लोहावट |
| १४० | ,, रास | श्रीसुन्दर P/. हर्षविमल | १७वीं | भट्टारकभंडार नागोर |
| १४१ | ,, ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १६९४ जालोर | मुद्रित |
| १४२ | खन्धकमुनि चौढालिया | उदयरत्न P/. विद्याहेम | १८८३ देशणोक | महिमाभक्ति खजांची बीकानेर |
| १४३ | खापरा चोर चौपई | अभयसोम P/. सोमसुन्दर | १७२३ सिरोही | विनय २८, २०५ |
| १४४ | गजभंजन कुमार चौपई | मुनिप्रभ P/. जिनचन्द्रसूरि | १६४३ बीकानेर | ,, |
| १४५ | गजसिंह चरित्र चौपई | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७०८ | खजांची बीकानेर |
| १४६ | ,, नरिंद ,, | नन्दलाल | १८वीं | ,, |
| १४७ | गजसुकुमाल चौपई | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७१४ | डूंगर जेसलमेर |
| १४८ | ,, ,, | पूर्णप्रभ P/. शान्तिकुशल | १७८६ | अनंतनाथज्ञान भं० बम्बई |
| १४९ | ,, ,, | भुवनकीर्ति P/. ज्ञानमन्दिर | १७०३ खम्भात | आचार्य शाखा भं० बीकानेर |
| १५० | ,, ,, | लावण्यकीर्ति P/. ज्ञानविलास | १७वीं | के० जोधपुर, नाहर कलकत्ता |
| १५१ | ,, रास | जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १६९९ अहमदाबाद | मुद्रित से० बीकानेर हरिलो० |
| १५२ | गुणकरंड गुणावली चौपई | ज्ञानमेरु (नारायण)P/. महिमसुंदर | १६७६ विधपुर | अभय बीकानेर विनय २९ |
| १५३ | ,, ,, रास | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७५१ पाटण | ,, |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १५४ | गुणधर्म कुमार चौपई | ज्ञानविमल P/. लब्धिरंग | १७१६ झुंझनू | हरि लोहावट |
| १५५ | गुणसुन्दर ,, | जिनसुन्दरसूरि बेगड | १८वीं | |
| १५६ | ,, | गुणविनय P/. जयसोम | १६६५ | चारित्ररत्नाप्राविन्न बीकानेर |
| १५७ | गुणसुन्दरी ,, | कुशललाभ P/. कुशलधीर | १७४८ | दिगम्बर शा० भं० कोटा |
| १५८ | ,, ,, | जिनोदयसूरि P/. जिनसुंदर० बेगड | १७५३ सरसोपुर | जैसलमेर भण्डार |
| १५९ | ,, ,, | विनयमेरु P/. हेमधर्म | १६६७ फतेपुर | ह० जयपुर |
| १६० | गुणस्थानकविचार चौपई | साधुकीर्ति P/. अमरमाणिक्य | १७वीं | |
| १६१ | गुणस्थानविवरण चौपई | कनकसोम | १६३१ | धर्मआगरा खजांची बी० |
| १६२ | गुणावली चौपई | अभयसोम P/. सोमसुन्दर | १७४२ सोजत | उदयचन्द जोधपुर |
| १६३ | ,, ,, | जिनोदयसूरि P/. जिनसुंदरसूरि बेगड | १७७३ | जैसलमेर भंडार |
| १६४ | ,, ,, | लब्धोदय P/. ज्ञानराज | १७४५ उदयपुर | |
| १६५ | गौडी पार्श्वनाथ चौपई | सुमतिरंग P/. चन्द्रकीर्ति | १८वीं | बड़ोदा इंस्टीच्यूट |
| १६६ | गौतमपृच्छा चौपई | समयसुन्दरोपाध्याय P/. सकलचन्द्र | १६६५ चांदेड | अभय बीकानेर |
| १६७ | गौतम स्वामी ,, | लक्ष्मीकीर्ति | १८वीं | ह० जयपुर |
| १६८ | ,, छन्द | मेरुनन्दन P/. जिनोदयसूरि | १५वीं | अभय |
| १६९ | ,, रास | जयसागरोपाध्याय | १५वीं | ,, |
| १७० | ,, ,, | विनयप्रभोपाध्याय | १४१२ खम्भात | मुद्रित |
| १७१ | ,, ,, | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्ति | १८वीं | कान्ति० लावण्यकीर्ति गुटका |
| १७२ | चन्दन रास | करमचन्द P/. गुणराज | १६८७ कालधरी | मुद्रित |
| १७३ | चन्दनबाला रास | आसिगु | १३वीं | प्र० |
| १७४ | चन्दन मलयगिरि चौपई | कल्याणकलश | १६९३ मरोट | केशरिया जोधपुर |
| १७५ | ,, ,, | क्षेमहर्ष P/. विशालकीर्ति | १७०४ मरोट | महिमा बीकानेर |
| १७६ | ,, ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७०४ | अभय सेठिया बीकानेर |
| १७७ | ,, ,, | ,, ,, | १७४४ पाटण | |
| १७८ | ,, ,, | भद्रसेन | १७वीं | अभय बीकानेर |
| १७९ | ,, ,, | सुमतिहंस P/. जिनहर्ष० आद्य० | १७११ | खजांची बीकानेर प्र० |
| १८० | ,, रास | यशोवर्द्धन P/. रत्नवल्लभ | १७४७ रतलाम | अ० बी० विनय ४८३,७५६ |
| १८१ | चन्द्रप्रभ जन्माभिषेक | वीरप्रभ | १४वीं | अभय बीकानेर |
| १८२ | चन्द्रलेखा चौपई | मतिकुशल P/. मतिवल्लभ | १७२८ पडिपाग | अ०-रा० बी० स० जयपुर विनय ८०, ४८३ |
| १८३ | चन्द्रोदयकथा ,, | अभयसोम P/. सोमसुन्दर | १७२० नवनर | अभय बीकानेर |
| १८४ | चंपक ,, | रंगप्रमोद P/. ज्ञानचन्द्र | १७१५ मुलतान | |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १८५ | चंपकमाला चौपई | जगनाथ P/. इलासिंघुर | १८२२ साचोर | घेवर पुस्तकालय |
| १८६ | चंपक श्रेष्ठि ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १६६५ जालोर | अ० क्षमा वी० हरिलो वि० ६६ |
| १८७ | चंपकसेन ,, | जिनोदयसूरि P/. जिनतिलकसूरि भावहर्षीय | १६६६ वीरमपुर | से० वी० जैनरत्न पु० जोधपुर |
| १८८ | चतुःशरणप्रकीर्णक संधि | चारित्रसिंह P/. मतिभद्र | १६३१ जेसलमेर | दान बीकानेर |
| १८९ | चारकषाय संधि | विद्याकीर्ति P/. पुण्यतिलक | १७वीं | अभय बीकानेर |
| १९० | चार प्रत्येकबुद्ध रास | समयसुन्दरोपाध्याय | १६६५ आगरा | राप्राविप्र जोधपुर अ० वी० विनय २८१ |
| १९१ | चारित्र मनोरथ माला | क्षेमराज P/. सोमध्वज | १६वीं | अभय |
| १९२ | चित्तोड़ आदिनाथ फाग | शिवसुन्दर P/. क्षेमराज | ,, | अभय बीकानेर |
| १९३ | चित्रलेखा चौपई | दयासागर P/. जीवराज पिप्पलक | १६६६ दिल्ली | स्थानक० पुस्तकालय जोधपुर |
| १९४ | चित्रसंभूति रास | ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर | १७वीं | क्षमा बीकानेर |
| १९५ | ,, संधि | जिनगुणप्रभसूरि-बेगड | १७वीं जेसलमेर | जेसलमेर भंडार |
| १९६ | ,, ,, | नयप्रमोद P/. हीरोदय | १७१९ जेसलमेर | खजांची बीकानेर |
| १९७ | चित्रसेन पद्मावती चौपई | उदयरत्न P/. जिनसागरसूरि (शा०) | १६९७ | हरिलोहावट, स्टेट लाइब्रेरी |
| १९८ | ,, ,, ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १८वीं | हरि लोहावट |
| १९९ | ,, ,, ,, | भावसागर | १८वीं | अभय बीकानेर |
| २०० | ,, ,, ,, | यशोलाभ | ,, | ,, |
| २०१ | चित्रसेन पद्मावती चौपई | रामविजयोपाध्याय P/. दयासिंह | १८१४ बीकानेर | अभय बीकानेर |
| २०२ | ,, ,, रास | विनयसागर P/. सुमतिकलश पिप्पलक | १७ वीं | |
| २०३ | चौदह स्वप्न चौपई | कवीरजी | २० वीं | जैनभवन कलकत्ता |
| २०४ | चौदह स्वप्न भाषा धवल | विनयलाभ P/. विनयप्रमोद | १८ वीं | चतुर्भुज बीकानेर |
| २०५ | चौपर्वी चौपई | समयप्रमोद P/. ज्ञानविलास | १६७३ जूठाग्राम | दान-चतुर्भुज बीकानेर |
| २०६ | चौबोली चौपई | अभयसोम P/. सोमसुन्दर | १७२४ | विनय १९७ |
| २०७ | चौबोली ,, | कीर्तिसुन्दर P/. धर्मवर्द्धन | १७६२ | धाणलेनगर भं० बीकानेर |
| २०८ | ,, वार्ता ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १८वीं | मु० जेसलमेर भंडार |
| २०९ | जंबु स्वामी चौढालिया | जगरूप P/. दुर्गादास | १७९३ | बद्रीदास कलकत्ता |
| २१० | ,, ,, | दुर्गादास P/. विनयाणंद | १८९३ वाकरोद | अभयबीकानेर |
| २११ | ,, चौपई | उदयरत्न P/. जिनसागरसूरि जिनसागरसूरि शाखा | १७२० | आचार्य शाखाभं० बीकानेर |
| २१२ | ,, ,, | P/. जिनेश्वरसूरि बेगड़ | १८वीं | जेसलमेर भंडार |
| २१३ | ,, ,, | भुवनकीर्ति P/. ज्ञानमंदिर | १६९१ खंभात | दान बीकानेर |
| २१४ | ,, ,, | रामचन्द्र P/. पद्मरंग | १८वीं | उल्लेख-मिश्रबन्धुविनोद |
| २१५ | ,, ,, | सुमतिरंग P/. चन्द्रकीर्ति | १७२९ मुल० | चारित्र राप्राविप्र जोधपुर |

२१६ जंबूस्वामी चौपई हीरकलश P/. हर्षप्रभ १६३२ महिमा बीकानेर
२१७ „ फाग विजयतिलक P/. विनयप्रभ १४३० प्र०
२१८ „ रास गुणविनयोपाध्याय P/ जयसोम १६७० बाडमेर अभय बीकानेर
२१९ „ „ जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७६० पाटण
२२० „ „ पद्मचन्द्र P/. पद्मरंग १७१४ सरसा खजांची बीकानेर
२२१ „ „ यशोवर्द्धन P/. रत्नवल्लभ १७५१ अभय बीकानेर
२२२ „ „ समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं
२२३ जयंती संधि अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७२१ विनय कोटा २८८
२२४ जयविजय चौपई धर्मरत्न P/. कल्याणधीर १६४१ आगरा
२२५ „ „ श्रीसारोपाध्याय P/ रत्नहर्ष १६८३ अभय बीकानेर
२२६ जयसेन „ धर्मसमुद्र P/. लेखन १६१० विनय ३१५
२२७ जयसेन , सुखलाभ P/. सुमतिरंग १७४८ जेसलमेर रामचन्द्र भंडार बीकानेर
२२८ „ प्रबंधरास पूर्णप्रभ P/. शान्तिकुशल १७६२ बाली अनन्तनाथ ज्ञान भंडार बम्बई
२२९ „ लीलावती रास सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १६९१ जोधपुर अभय बीकानेर
२३० (२४) जिनकुसुमदिका मोदमन्दिर १४वीं अभय
२३१ जिनगुणरास वेणीदास (विनयकीर्त्ति) P/. दयाराम आद्यपक्षीय १७६६ पीपाड
२३२ जिनपाल जिनरक्षित चौढालिया रंगसार P/ भावहर्षसूरि भावहर्षीय १६२१ मानमल कोठारी बीकानेर
२३३ जिनपालित जिनरक्षित चौपई क्षेमराज P/. सोमध्वज १६वीं कांतिसागरजी
२३४ „ „ रास उदयरत्न P/. विद्याहेम १८६७ बीकानेर खजांची चतुर-वृद्धमान भंडार बीकानेर
२३५ जिनपालित जिनरक्षित रास कनकसोम १६३२ नागोर अभय बीकानेर
२३६ „ „ „ ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर १७वीं क्षमा बीकानेर
२३७ „ „ „ पुण्यहर्ष P/. ललितकीर्त्ति १७०६
२३८ „ , संधि कुशललाभ १६२१ महिमा बीकानेर
२३९ जिनप्रतिमा वृहद रास P/. नयसमुद्र १७वीं तपा भंडार जेसलमेर १६३२ लि० प्रति
२४० जिनप्रतिमा मंडन रास कमलसोम P/. धर्मसुन्दर १७वीं खजांची बीकानेर
२४१ जिनप्रतिमा हुंडी रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७२५ अभय बीकानेर हरिलोहावट ला० जयपुर
२४२ जिनमालिका सुमतिरंग P/. चन्द्रकीर्त्ति १८वीं भुवनभक्ति बीकानेर
२४३ जीभदांत संवाद हीरकलश P/ हर्षप्रभ १६४३ बी० अभय बीकानेर
२४४ जीवदया रास आसिगु १२५७ प्र०
२४५ जीवस्वरूप चौपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६६४ राजनगर भंडारकर पूना अभय बीकानेर
२४६ ज्ञानकला चौपई सुमतिरंग P/. १७२२ मुलतान विनय ६६१ बाल २११

२४७ ज्ञानदीप कुशललाभ १७वीं पुण्य अहमदावाद
२४८ ज्ञानपंचमी चौपई विद्धणु S/. ठ० माहेल १४२३ संघ भंडार पाटण
२४६ ज्ञानसुखड़ी धर्मचन्द्र P/. पद्मचन्द्र वेगड १७६७ थट्टा भुवनभक्ति-सेठिया वीकानेर
२५० ढंढणकुमार चौपई रत्नलाभ P/. क्षमारंग १६५६ जयतारण
२५१ ढुंढकरास हेमविलास P/ ज्ञानकीर्त्ति १८७६ कुचेरा अभय
२५२ ढोला मारवण चौपई कुशललाभ १६१७ मुद्रित वाल २३४, ४६६
२५३ तपा ५१ बोल चौपई सटीक गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६७६ राडद्रह देशाई अभय चा० रा० वि० वी०
२५४ तपोट चतुष्पदिका ,, ,, १७वीं हरि लोहावट
२५५ तिलकसुन्दरी प्रवन्ध लब्धोदय P/. ज्ञानराज १८वीं वाल राप्राविप्र चित्तोड़
२५६ तेजसार चौपई रत्नविमल P/. कनकसागर १८३६ वावडीपुर
२५७ ,, रास कुशललाभ १६२४ वीरम० अभय वीकानेर हरि लोहावट
२५८ तेतलीपुत्र चौपई क्षेमराज P/. सोमध्वज १६वीं कांतिसागरजी
२५६ त्रिविक्रम रास जिनोदयसूरि P/. जिनलब्धिसूरि १४१५
२६० थावच्चा चौपई क्षमाकल्याण P/. अमृतधर्म १८४७ महिमपुर अभय-क्षमा-वीकानेर
२६१ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६६१ खंभात अभय-सेठिया-वीकानेर वाल २३५
२६२ ,, मुनि संधि श्रीदेव P/. ज्ञानचन्द्र १७४६ जेसलमेर
२६३ ,, सुत चौपई राजहर्ष P/. ललितकीर्त्ति १७०३ (१७०७) वीकानेर आचार्यशाखा भं० वी० सुमेर भीनासर
२६४ डंभक्रिया चौपई धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १७४४ प्र०
२६५ दयादीपिका ,, धर्ममन्दिर P/. दयाकुशल १७४० मुलतान अनूप
२६६ दश दृष्टान्त ,, वीरविजय P/. तेजसार १७वीं केशरिया जोधपुर
२६७ दशार्णभद्र इन्द्र संवाद छंद आणंद P/. कनकसोम १६६८ वीकानेर अभय वीकानेर
२६८ दशार्णभद्र चौपई धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १७५७ मेड़ता मुद्रित
२६६ ,, नवढालिया समयप्रमोद P/. ज्ञानविलास १६६०
२७० ,, भास हेमाणंद P/. हीरकलश १६५८ अभय
२७१ दानादि चौढालिया समयसुंदरोपाध्याय १६६६ संगानेरप्र० अभय वीकानेर विनयकोटा, राप्राविप्र० जोधपुर
२७२ दामनक चौपई गुणनन्दन P/. ज्ञानप्रमोद १६६७ सरसा अभय वीकानेर
२७३ दामनक ,, ज्ञानधर्म P/. राजसार १७३५ आचार्य शाखा वीकानेर
२७४ ,, ,, ज्ञानहर्ष P/. सुमतिशेखर १७१० नोखा अभय वीकानेर
२७५ दुमुह प्रत्येकबुद्ध ,, गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १७वीं रामलालजी वीकानेर
२७६ दुर्गा सातसी ,, कुशललाभ १७वीं स्टेट लाइब्रेरी वीकानेर
२७७ दुर्जन दमन-चौपई ज्ञानहर्ष P/. सुमतिशेखर १७०७ पूगल सुराणा-लाइब्रेरी चूरू

२७८ देवकी छ पुत्र रास   लावण्यकीर्ति P/. ज्ञानविलास   १७वीं   अभय बीकानेर
२७९ देवकी रास   मतिवर्द्धन P/. सुमतिहंस आद्यप० १८ वीं रा० जयपुर, चारित्र रामाविग्र० बीकानेर
२८० देवकुमार चौपई   लालचंद P/. हीरनन्दन   १६७२   खजांची बीकानेर यति सूर्यमल
२८१ देवराज वच्छराज चौपई आनन्दनिधान P/. मतिवर्द्धन आचार्यीय १७४९ सोजत महिमा बीकानेर
२८२   „ „ „   कनकविलास P/. कनककुमार १७३८ जेसलमेर
२८३   „ „ „   परमाणंद P/. जीवसुन्दर १६७५ मरोट आचार्यशाखा भं० बीकानेर
२८४   „ „ „   मतिकुशल P/. मतिवल्लभ   १७२१ तलवाड उदयचन्द जोधपुर
२८५   „ „ „   सत्यरत्न   १९वीं   मुकनजी बीकानेर
२८६   „ „ „   महजकीर्ति P/. हेमनन्दन   १६७२ सोमवार खजांची बीकानेर बाल चित्तोड २१८
२८७   „ „ प्रबंध   विनयमेरु P/. हेमधर्म   १६९४ रिणी „   ,
२८८ दोहा कथा चौपई   विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक ?   १८वीं   अभय बीकानेर
२८९ द्रौपदी चौपई   जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि बेगड १६९८ जेसलमेर   „
२९०   „ „   विनयमेरु P/. हेमधर्म   १६९८   यति प्रेमसुन्दर
२९१   „ „   समयसुन्दरोपाध्याय   १७०० अहमदाबाद
२९२ धंपमती „ „   हीरकलश P/. हर्षप्रभ   १६५६   —
२९३   „ रास   कनककीर्ति P/. जयमंदिर   १६९३ बीकानेर अभय-खामा-बीकानेर विनय ७६५
२९४ धनंजय रास   भुवनसोम P/. धनकीर्ति   १७०३ नवानगर केशरिया जोधपुर
२९५ धनदत्त चौपई   समयसुन्दरोपाध्याय   १६९६ अहमदाबाद अभय बीकानेर हरिलोहावट
२९६ धन्ना „   कमलहर्ष P/. मानविजय   १७२५ सोजत
२९७   „ „   जिनवर्द्धमानसूरि पिप्पलक   १७१० खंभात रामलालजी बीकानेर
२९८   „ चरित्र „   पुण्यकीर्ति P/. हंसप्रमोद १६९८ बीलपुर
२९९ धन्य „ „   राजसार P/. धर्मसोम   १७०९
३०० धन्ना चौपई   हितधीर P/. कुशलभक्ति   १८२६   पार्श्वनाथ पुस्तकालय सूरतगढ
३०१   „ रास (संधि)   कल्याणतिलक P/. जिनसमुद्रसूरि १६वीं जेसलमेर अभय बीकानेर
३०२   „ „   दयातिलक P/. रत्नजय १७१७
३०३ धन्ना शालिभद्र चौपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसाम १६७४   महिमा बीकानेर
३०४   „ „ „   यशोरंग P/. हीररत्न   १७३४   पूनमचन्द दूधेडिया छापर
३०५   „ „ „   राजलाभ P/. राजहर्ष   १७२६ वणाड दान बीकानेर
३०६   „ „ रास   जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि   १६७८   अभय बीकानेर विनय ३० कोटा मुद्रित
३०७ धर्मदत्त चन्द्रधवल चौपई   क्षमाप्रमोद P/. रत्नसमुद्र १८२६ जेसलमेर वृद्धि जेसलमेर स्वयं लिखितप्रति
३०८ धर्मदत्त चौपई   अमरविजय P/. उदयतिलक   १८०३ राहुसर जयचन्द भंडार बीकानेर

३०९ धर्मदत्त चौपई जिनरंगसूरि P/. जिनराजसूरि १७३७ किसनगढ़ कांतिसागरजी
३१० धर्मदत्त धनपति रास जयनिधान P/. राजचन्द्र १६५८ अहमदाबाद क्षमा बीकानेर
३११. धर्मबुद्धि चौपई कुशललाभ P/. कुशलधीर १७४८ नवलखी अभय बीकानेर
३१२ धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपई चन्द्रकीर्त्ति P/. हर्षकल्लोल १६८२ घडसीसर केशरिया जोधपुर
३१३ ,, ,, ,, प्रीतिसागर P/. प्रीतिलाभ जिनरंगीय १७६३ उदयपुर प्रेमसुन्दरयति विनयचन्द ज्ञान भं० जयपुर
३१४ ,, ,, रास लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष १७४२ सरसा दान-अभय-बीकानेर
३१५ ,, मंत्री चोपई विद्याकीर्त्ति P/. पुण्यतिलक १६७२ बीकानेर अभय बीकानेर
३१६ ,, रास मतिकीर्त्ति P/. गुणविनय १६९७ राजनगर
३१७ धर्ममंजरी चौपई समयराजोपाध्याय P/. जिनचन्द्रसूरि १६६२ बीकानेर खजांची जयपुर अभय बीकानेर
३१८ धर्मसेन ,, यशोलाभ १७४० नापासर सेठिया बीकानेर
३१९ ध्यानदीपिका चौपई देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र १७६६ मुलतान प्र०
३२० ध्वजभंगकुमार चौपई लब्धिसागर (लालचन्द) P/. जयनन्दन जिनरंगीय १७७० चूहाग्राम उदयचन्द जोधपुर
३२१ नंदन मणिहार संधि चारुचन्द्र P/. भक्तिलाभ १५८७ आचार्य भंडार जैसलमेर हरिलोहावट
३२२ नंदिषेण चौपई दानविनय P/. धर्मसुन्दर १६६५ नागोर अभय बीकानेर
३२३ ,, ,, रघुपति P/. विद्याविलास १८०३ केसरदेसर क्षमा बीकानेर
३२४ ,, फाग ज्ञानतिलक P/. पद्मराज १७वीं
३२५ नमि राजर्षि चौपई क्षेमराज P/. सोमध्वज १६वीं कांतिसागरजी
३२६ ,, ,, ,, साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य १६३६ नागोर
३२७ ,, ,, संबंध गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६६० बनेरापुर पुण्य अहमदावाद
३२८ नरदेव चौपई सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६८२ पाली केशरिया जोधपुर
३२९ नरवर्म चतुष्पदी विद्याकीर्त्ति P/. पुण्यतिलक १६६९ हिम्मत राप्राविप्र बीकानेर
३३० नर्मदासुन्दरी चौपई भुवनसोम P/. धनकीर्त्ति १७०१ नवानगर
३३१ ,, रास जिनहर्ष P/. शांतिहर्ष १७६१ पाटण
३३२ नल दमयंती चौपई ज्ञानसागर P/. क्षमालाभ १७५८ अभय बीकानेर
३३३ ,, ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६७३ मेडता अभय बीकानेर ख० जयपुर हरिलोहावट विनय २११
३३४ ,, ,, प्रबंध गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६६५ नवानगर अभय बीकानेर
३३५ नवकार महात्म्य चौपई जिनलब्धिसूरि P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १७५० जयतारण खजांची बीकानेर
३३६ नवकार रास धर्ममन्दिर P/. दयाकुशल १८वीं अभय बीकानेर
३३६A ,, ,, विजयमूर्त्ति P/. १७५५ विनय ७६८
३३७ नागश्री चौपई श्रीदेव P/. ज्ञानचन्द्र ,,
३३८ नारद चौपई लब्धिरत्न P/. धर्ममेरु १६७६ नवहर खजांची बीकानेर

३३९ नेमिनाथ कलश नयकुंजर P/. जिनराजसूरि १५वीं

३३९A ,, छन्द शिवसुन्दर P/. क्षेमराज १६वीं अभय बीकानेर

३४० नेमिनाथ धमाल ज्ञानतिलक P/. पद्मराज १७वीं अभय बीकानेर

३४१ ,, फाग कनकसोम १७वीं रणथंभोर

३४१A ,, ,, कल्याणकमल १७वीं आचार्यशाखा भंडार बीकानेर

३४२ ,, ,, जयनिधान P/. राजचन्द्र ,, चारित्र रत्नाविप्र बीकानेर

३४२A ,, ,, जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड १६९८ साचोर

३४३ ,, ,, महिमामेरु P/. सुखनिधान ,, नागोर केशरिया जोधपुर

३४४ ,, ,, राजहर्ष P/. ललितकीर्त्ति १८वीं अभय बीकानेर

३४५ ,, फागु समधर १४वीं

३४६ ,, रास कनककीर्त्ति P/. जयमंदिर १६९२ बीकानेर

३४७ ,, ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७७६ (?) पाटण

३४८ ,, ,, दानविनय P/. धर्मसुन्दर १७वीं कांतिसागरजी १६८७ लिखितप्रति

३४९ ,, ,, धर्मकीर्त्ति P/. धर्मनिधान १६७५ बड़ोदा इन्स्टीट्यूट

३५० ,, ,, सुमतिगणि P/. जिनपतिसूरि १३वीं जेसलमेर भंडार

३५१ ,, राजीमती ,, समयप्रमोद P/. ज्ञानविलास १६६३ जिनविजयजी

३५२ ,, विवाहलो जयसागरोपाध्याय, जिनराजसूरि १५वीं

३५३ ,, ,, महिमसुन्दर P/. साधुकीर्त्ति १६६५ सरस्वतीपत्तन महिमा कांतिसागर १६६६ ज्ञानमेरु लि०

३५४ पदमण रासो गिरधरलाल १८३२ जोधपुर बड़ा भंडार बीकानेर

३५५ पद्मरथ चौपई स्थिरहर्ष P/. मुनिमेरु १७०८ शेरगढ दान बीकानेर

३५६ पद्मावती चतुष्पदिका जिनप्रभसूरि P/ जिनसिंहसूरि १४वीं प्र०

३५७ पद्मिनी चौपई लब्धोदय P/. ज्ञानराज १७०६-७ उदयपुर मुद्रित बाल ४५७

३५८ परमात्मप्रकाश चौपई धर्ममन्दिर P/. दयाकुशल १७४२ जेसलमेर विनय १६५ कोटा रामा बीकानेर

३५९ पवनाभ्यास चौपई आनंदवर्द्धनसूरि (धनवर्द्धनसूरि) भावहर्षीय १६७८

३६० पाण्डवचरित्र चौपई लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष १७६७ बोल्हावास अभय सेठिया बीकानेर हरिलोहावट वि० १५६

३६१ ,, ,, रास कमलहर्ष P/. मानविजय १७२८ मेड़ता हूंबड़ मंदिर भंडार उदयपुर

३६२ पार्श्वनाथ धवल भुवनकीर्त्ति P/. ज्ञानमन्दिर १६९२ जेसलमेर कांतिसागरजी लावण्यकीर्त्ति लिखित गुटका

३६३ पार्श्वनाथ फाग समयध्वज P/ सागरतिलक लघुखरतर १७वीं अभय बीकानेर

३६४ ,, रास जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड १७११ गाजीपुर जेसलमेर भंडार

३६५ ,, ,, श्रीसारोपाध्याय P/. रत्नहर्ष १६८३ जेसलमेर

३६६ पाल्हणपुर वासुपूज्य बोली जिनेश्वरसूरि P/. जिनपतिसूरि १३वीं

३६७ पुंजाऋषि रास समयसुन्दरोपाध्याय १६६८ मुद्रित
३६८ पुंडरीक कंडरीक संधि राजसार P/. धर्मसोम १७०१ अहमदाबाद अभय बीकानेर हरिलोहावट
३६९ पुण्यदत्त सुभद्रा चौपई पूर्णप्रभ P/. शान्तिकुशल १७८६ धरणावास अनंतनाथ ज्ञान भंडार बम्बई
३७० पुण्यपाल श्रेष्ठि चौपई क्षेमहर्ष P/. विशालकीर्त्ति १७०४ तपागच्छ भंडार सिरोही
३७१ पुण्यरंग चौपई लब्धिसागर (लालचंद) P/. जयनंदन जिनरंगीय १७६४ अभय बीकानेर
३७२ पुण्यसार चौपई लक्ष्मीप्रभ P/. कनकसोम १७वीं जिनविजयजी
३७३ ,, रास पुण्यकीर्त्ति P/. हंसप्रमोद १६६२ सांगानेर अभय बीकानेर विनय ११३
३७४ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १६७२ अभय सेठिया बीकानेर हरिलोहावट
३७५ पुरंदर चौपई रत्नविमल P/. कनकसागर १८२७ फालाऊना सजाँचो बीकानेर
३७६ पुष्पोदय धवल लावण्यकीर्त्ति P/. ज्ञानविलास १७वीं तेरापंथी सभा सरदारशहर
३७७ प्रतिमा रास जयचन्द्र P/. कपूरचन्द्र १८७८ बागोलाई महरचन्द बीकानेर
३७८ प्रतिमा स्थापन रास शिवमन्दिर १६०५ जेसलमेर भंडार
३७९ प्रदेशी चौपई अमरसिंधुर P/. जयसार १८६२ बम्बई धरणेन्द्र जयपुर
३८० ,, ,, ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर १७वीं अभय-सजांची बीकानेर विनय ११७
३८१ ,, संधि कनकविलास P/. कनककुमार १७४२ बाड़मेर अभय बीकानेर
३८२ ,, संबंध तिलकचंद P/. जयरंग १७४१ जालोर अभय बीकानेर
३८३ प्रभाकर गुणाकर चौपई धर्मसमुद्र P/. विवेकसिंह पिप्पलक १५७३ लजिलाणा
३८४ प्रवचन रचनावेलो जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड १८वीं जेसलमेर भंडार
३८५ प्रश्नोत्तर चौपई जिनसुन्दरसूरि वेगड १७६२ आगरा
३८६ प्रश्नोत्तरमालिका (पार्श्वचन्द्रमतदलन) चौपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६७३ सांगानेर ख० ज० याहरु जेस०
३८७ फलवर्द्धिपार्श्वनाथ रास क्षेमराज P/. सोमध्वज १६वीं अभय बीकानेर
३८८ बारह भावना संधि जयसोमोपाध्याय १६४६ बीकानेर अभय बीकानेर
३८९ बारहव्रत रास आनन्दकीर्त्ति P/. हेममन्दिर १६८० धर्मआगरा
३९० ,, ,, कमलसोम P/. धर्मसुन्दर १६२० सारंगपुर अभय-बड़ा भंडार बीकानेर
३९१ ,, ,, गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६५५ संघभंडार पाटण
३९२ ,, ,, जयसोमोपाध्याय १६४७ तथा १६५० अभय बीकानेर
३९३ ,, ,, विमलकीर्त्ति P/. विमलतिलक १६७९
३९४ बारहव्रत रास ! समयसुन्दरोपाध्याय १६८५ लूणकरणसर मुद्रित
३९५ ,, ,, P/. यु० जिनचन्द्रसूरि १६३३
३९६ बुड्ढा रास फकीरचन्द १८३६ महर-चतुर-महिमा बीकानेर
३९७ ब्रह्मसेन चौपई दयामेरु १८८० भागनगर जयचन्द भंडार बीकानेर

३६८ भद्रनंद संधि राजलाभ P/. राजहर्ष १७२५ चारित्र राप्राविप्र बीकानेर
३९९ भरतसंधि पद्मचन्द्र P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड १८वीं वृद्धि जेसलमेर
४०० भरत बाहुबली रास भुवनकीर्ति P/. ज्ञाननंदि १६७५ जेसलमेर अ०
४०१ भवदत्त भविष्यदत्त चोपई दयातिलक P/. रत्नजय १७४१ फतेहपुर अभय बीकानेर
४०२ भीमसेन चौपई जिनसुन्दरसूरि बेगड १७५८ सवालख कुंडपारा ग्राम
४०३ „ „ विद्यासागर P/. सुमतिकल्लोल १७वीं आचार्यशाखा भंडार बीकानेर
४०४ भुवनानन्द „ सुमतिधर्म P/. श्रीसोम १७२५ आसनीकोट दान बीकानेर
४०५ भृगुपुरोहित „ जयरंग P/. नेमचन्द १८७२ लखनऊ अभय बीकानेर
४०६ भोज चरित्र „ हेमाणंद P/. हीरकलश १६५४ मदाणइ
४०७ भोज चौपई कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १७२६ सोजत विनय ४८६
४०८ भोसउ रासो खेता P/. दयावल्लभ १७५७ अभय-आचार्यशाखा भंडार बीकानेर
४०९ मंगलकलश चोपई जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७१४ अभय बीकानेर हरिलोहावट विनय २३६
४१० „ „ रंगविनय P/. जिनरंगसूरि जिनरंगीय १७१४ अमयपुर पाटोदी दि० भंडार जयपुर
४११ „ „ रत्नविमल P/. कनकसागर १८३२ बेनातट अभय बीकानेर
४१२ „ „ लखपत S/. तेजसी १६९१ थट्टा तपा भंडार जेसलमेर
४१३ „ रास कनकसोम १६४९ मुलतान अभय बीकानेर विनय १६७
४१४ मणिरेखा चौपई हर्षवल्लभ P/. जिनचन्द्रसूरि १६६२ महिमावती
४१५ मतिमूर्तिमंडन चौढालिया हेमविलास P/. ज्ञानकीर्ति १९वीं हरिलोहावट
४१६ मतिसागर (रसिकमनोहर) चौपई विद्याकीर्ति P/. पुण्यतिलक १६७३ सरसा अभय बीकानेर
४१७ मत्स्योदर चौपई पुण्यकीर्ति P/. हंसप्रमोद १६८२ बोलपुर „
४१८ „ „ लब्धोदय P/. ज्ञानराज १७०२ बाल राप्राविप्र चित्तौड़
४१९ „ „ समयमाणिक्य (समरथ) P/. मतिरत्न १७३२ नागार
४२० „ रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७१८ बाडमेर सेठिया बीकानेर
४२१ मयणरेहा „ विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक ? १८वीं
४२२ मलयसुन्दरी चौपई लब्धोदय P/. ज्ञानराज १७४३ गोघूंदा अभय बीकानेर क्षमा बीकानेर
४२३ महाबल मलयसुन्दरी रास चारुचन्द्र P/. भक्तिलाभ १६वीं अभय बीकानेर
४२४ „ „ „ जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५१ पाटण अभय सेठिया बीकानेर बाल २२५
४२५ महाराजा अजितसिंहजी री नीसाणी लाभवर्द्धन P/. „ १७६३ वेदरिया जोधपुर
४२६ महावीर रास अभयतिलकोपाध्याय P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० १३०७ मुद्रित जेसलमेर भंडार
४२७ महावीर विवाहलो कीर्तिरत्नसूरि १५वीं
४२८ महाशतक श्रावक संधि धर्मप्रमोद P/. कल्याणधीर १७वीं

४२९ महीपाल चरित्र चोपई कमलकीर्त्ति P/. कल्याणलाभ १६७६ हाजी खानदेरा
४३० मांकड रास कीर्त्तिसुन्दर P/. धर्मवर्द्धन १७५७ मेड़ता प्र०
४३१ माताजी री वचनिका जयचन्द P/. चतुरभुज १७७६ कुनेरा मुद्रित
४३२ माधवानल कामकंदला रास कुशललाभ १६१६ जैसलमेर मुद्रित
४३३ मानतुंग मानवती चोपई अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७२७ अभय बीकानेर चारित्र राज्ञाविप्र बीकानेर
४३४ ,, ,, ,, जिनसुन्दरसूरि वेगड़ १७५० मगधर छठोपाटण जैनरत्नपुस्तकालय जोधपुर
४३५ ,, ,, रास पुण्यविलास P/. पुण्यचन्द्र १७८० लूणकरणसर विनयचन्द ज्ञानभंडार जयपुर
४३६ मुनिपति चोपई धर्ममन्दिर P/. दयाकुशल १७२५ पाटण अभय-सेठिया बीकानेर विनय १८३
४३७ ,, ,, नयरंग १६१५ डूंगर जैसलमेर
४३८ ,, ,, हीरकलश P/. हर्षप्रभ १६१८ बीकानेर
४३९ मुनिमालिका चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १६३६ रिणी अभय-क्षमा-बीकानेर खजांची जयपुर
४४० ,, पुण्यसागरोपाध्याय P/. जिनहंससूरि १७वीं अभय बीकानेर
४४१ मूलदेव चोपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६७३ सांगानेर सुकनजी बीकानेर
४४२ ,, ,, रामचन्द्र P/. पद्मरंग १७११ नवहर कंडियाला गुरु भंडार
४४३ मृगध्वज ,, पद्मकुमार P/. पूर्णचन्द्र १७वीं सुकनजी बीकानेर जिनविजयजी
४४४ मृगांक पद्मावती चोपई धर्मकीर्त्ति P/. धर्मनिधान १६९१ सोवनगिरी अभय बीकानेर
४४५ मृगांकलेखा चोपई भानुचन्द्र लघुखरतर १६६३ जौनपुर दिगंबर भंडार अजमेर
४४६ ,, ,, सुमतिधर्म P/. श्रीसोम १८वीं अभय बीकानेर
४४७ ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४८ पाटण
४४८ ,, ,, लखपत S/. तेजसी लूकड़ चोपड़ा १६९४ तपा भंडार जैसलमेर
४४९ मृगापुत्र चोपई श्रीसारोपाध्याय P/. रत्नहर्ष १६७७ बीकानेर विनय कोटा ७७९
४५० ,, संधि जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७१५ साचोर चतुरभुज वी ख० जयपुर
४५१ ,, ,, सुमतिकल्लोल १६७३ महिमनगर अभय बीकानेर
४५२ ,, ,, कल्याणतिलक P/. जिनसमुद्रसूरि १५५० ,,
४५३ ,, ,, लक्ष्मीप्रभ P/. कनकसोम १६७७ मुलतान खजांची बीकानेर
४५४ मृगावती रास समयसुन्दरोपाध्याय १६६८ मुलतान अभय-सेठिया बीकानेर हरिलोहावट विनय ९१, ६८१
४५५ मेघकुमार चौढालिया अमरविजय P/. उदयतिलक १७७४ बगसेऊ अभय बीकानेर
४५६ ,, ,, कविकनक १७वीं अभय-क्षमा बीकानेर हरि लोहावट
४५७ ,, ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १८वीं खजांची जयपुर मुद्रित
४५८ ,, चोपई जिनचन्द्रसूरि P/. जिनरंगसूरि जिनरंगीय १७२७
४५९ ,, ,, सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १६८६ पीपाड

४६० मेघकुमार रास कनकसोम P/. १७वीं विनय २२१
४६१ मेतार्य ऋषि चौपई महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान १६७० पुष्कर
४६२ ,, मुनि , अमरविजय P/. उदयतिलक १७८६ सरसा जयचन्द भंडार बीकानेर
४६३ ,, , , उदयहर्ष P/. हीरराज १७०८ अभय बीकानेर
४६४ ,, ,, ,, क्षेमराज P/. सोमध्वज १६वीं कांतिसागरजी
४६५ मोती कपासिया छंद श्रीसारोपाध्याय P/. रत्नहर्ष १६८७ फलोधी अभय क्षमा बीकानेर
४६६ ,, ,, संवाद हीरकलश P/. हर्षप्रभ १६३२ स्टेट लायब्रेरी
४६७ मोहविवेक रास धर्ममंदिर P/ दयाकुशल १७४१ मुलतान अभय बीकानेर ल० जयपुर हरिलोहावट
४६८ ,, , (ज्ञानशृंगार चोपई) सुमतिरंग P/. चन्द्रकीर्ति १७२२ मुलतान अभय क्षमा बीकानेर
४६९ मौन एकादशी चोपई आनन्दनिधान P/. मतिवर्द्धन आद्यपक्षीय १७२७ जाध० ज्य० भंडार बीकानेर विनय २०७
४७० ,, , ,, आलमचंद P/. आसकरण १८१४ मकसूदाबाद अभय क्षमा बीकानेर
४७१ ,, ,, ,, वनतमूर्ति P/. गजानद १७६५ जेस०मेर अभय बीकानेर
४७२ यशोधर रास जयनिधान P/ राजचन्द्र १६४३ अभय बीकानेर धरणेन्द्र जयपुर
४७३ ,, ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४७ पाटण
४७४ ,, ,, विमलकीर्ति P/. विमलतिलक १६६५ अमरसर
४७५ यामिनी भानु मृगावती चोपई चन्द्रकीर्ति P/. हर्षकल्लोल १६८९ बाडमेर नाहर कलकत्ता
४७६ युगप्रधान चतुष्पदिका ठ० फेरु S/. चन्द्र १३४७ कन्नाणा मुद्रित
४७७ युवराज चोपई शोभाचन्द्र P/. विनयकीर्ति (वेणीदास) आद्य० १८२२ मेडता कोटड़ी भंडार जोधपुर
४७८ योगशास्त्रभाषा चोपई सुमतिरंग P/. चन्द्रकीर्ति १७२४ यूपा०
४७९ रतिसार केवली चोपई चारुचन्द्र P/. भक्तिलाभ १६वीं अभय बीकानेर
४८० रत्नकुमार चतुष्पदिका सुमतिकल्लोल १६७९ मुलतान हुबड़ मं० भंडार उदयपुर
४८१ रत्नकेतु चोपई सुमतिमेरु P/. हेमधर्म १६६८
४८२ रत्नचूड ,, हीरकलश P/. हर्षप्रभ १६३६ तपा भंडार जेसलमेर
४८३ ,, रास जिनहर्ष P/ शान्तिहर्ष १७५७ पाटण
४८४ ,, मणिचूड चोपई लब्धोदय P/. ज्ञानराज १७३९ उदयपुर
४८५ ,, व्यवहारी रास कमलनिधान P/. चारुदत्त १७२८ अभय बीकानेर विनय ३
४८६ रत्नपाल चोपई गुणरत्न P/. विनयसमुद्र १६६२ महिमावती तपाभंडार जेसलमेर
४८७ ,, ,, रघुपति P/. विद्यानिधान १८१९ कालु क्षमा बीकानेर
४८८ ,, ,' रत्नविशाल P/. गुणरत्न १६६२ महिमावती अभय बीकानेर
४८९ रत्नशेखर रत्नावती रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५९ अ० बाल चित्तोड़ २५१
४९० रत्नसार नृप रास ,, ,, ,, १७५९ पाटण

४९१ रत्नसिंह राजर्षि रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४१ पाटण

४९२ रत्नहास चौपई यशोवर्द्धन P/. रत्नवल्लभ १७३२

४९३ ,, ,, लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७१५ सेठिया बीकानेर

४९४ रमतियाल शिष्य प्रबंध बालावबोध रत्नाकर P/. मेघनंदन १७वीं अभय बीकानेर

४९५ रसमंजरी चौपई समयमाणिक्य (समरथ) P/. मतिरत्न १७६४ अभय बीकानेर

४९६ राजप्रश्नीय उद्धार चौपई सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६७६ हीराचंदसूरि बनारस

४९७ ,, सूत्र चौपई जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि वेगड १७०६ सक्कीनगर वन्नूदेश जेसलमेर भंडार

४९८ राजर्षि कृतवर्म चौपई कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १७२८ सोजत

४९९ राजसिंह चौपई जिनचन्द्रसूरि P/. जिनेश्वरसूरि वेगड १६८७ जेसलमेर भंडार

५०० राठौड़ वंशावली (अनूपसिंहवर्णनादि) सवैयाबद्ध जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड यतिइन्द्रचंद बाड़मेर

५०१ रात्रिभोजन चौपई अमरविजय P/. उदयतिलक १७८७ नापासर जयचन्द भंडार बीकानेर

५०२ ,, ,, कमलहर्ष P/. मानविजय १७५० लूणकरणसर सेठिया बीकानेर

५०३ ,, ,, लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७३८ बीकानेर अभय-सेठिया बीकानेर

५०४ ,, ,, सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि आद्यपक्षीय १७१० जयतारण अभय बीकानेर छत्तीबाई उपाश्रय बीकानेर

५०५ ,, ,, (हंसकेशव चौपई) जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७९८ राधनपुर बद्रीदास कलकत्ता

५०६ रामकृष्ण चौपई लावण्यकीर्त्ति P/. ज्ञाननन्दी १६७७ बीकानेर अभय ख० जयपुर हरिलो० बाल ४६२

५०७ रामायण चौपई विद्याकुशल–चारित्रधर्म P/. आनन्दनिधान, आद्यपक्षीय १९११ [illegible]

५०८ रिपुमर्दन भुवनानन्दरास ज्ञानसुन्दर P/. १७०८ सुराणा लायब्रेरी चूरू

५०९ ,, ,, लब्धिकल्लोल P/. विमलरंग १६४९ पालनपुर जेसलमेर भण्डार अभय बी०

५१० रुक्मिणी चरित्र चौपई जिनसमुद्रसूरि P/. जिनसमुद्रसूरि वेगड १८वीं जेसलमेर

५११ रुघरास रघुपति P/. विद्यानिधान १८वीं

५१२ रूपसेन राज चौपई पुण्यकीर्ति P/. हंसप्रमोद १६८१ मेड़ता आचार्य भं० जेसलमेर फूलचन्द झाबक फ०

५१३ रूपसेन राज चतुष्पदी लालचन्द P/. हीरनन्दन १६९३ मेडता मेडता भण्डार

५१४ ललितांग रास मतिकीर्ति P/. गुणविनय १७वीं अभय बीकानेर

५१५ लीलावती रास कुशलधीर P/. कल्याणलाभ १७२८ सोजत

५१६ ,, ,, लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष १७२८ सेत्रावा केशरिया जोधपुर विनय २०१

५१७ ,, गणित ,, ,, १७३६ बीकानेर अभय बीकानेर

५१८ लुंपकमततमोदिनकर चौपई गुणविनयोपाध्याय P/. जयसोम १६७५ सांगानेर हरि लो०, ख० ज० बड़ा० भं० बी०

५१९ लुंपकमतनिर्लोठनरास शिवसुन्दर P/. क्षेमराज १५९५ अभय बीकानेर

५२० वंकचूल चौपई जिनोदयसूरि P/. जिनसुन्दरसूरि वेगड १७८० यति ऋद्धिकरण जैनरत्न पुस्तकालय जोधपुर

५२१ ,, रास गंगदास १६७१ पाली ख० जयपुर

५८४ शीलवती रास    कुशलधीर P/. कल्याणलाभ  १७२२ साचोर   अभय बीकानेर
५८५  ,, ,,    जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष   १७५८
५८६  ,, ,,    दयासार P/. धर्मकीर्ति   १७०५ फतेपुर  केशरिया जोधपुर
५८७ शीलरास    धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष   १८वीं बीकानेर मुद्रित अभय बीकानेर ख० जयपुर १७७७ लि०
५८८  ,,    सिद्धिविलास P/. सिद्धिवर्द्धन  १८१० लाहोर आचार्यशाखा भंडार बीकानेर
५८९ शुकराज चौपई    जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष   १७३७ पाटण
५९०  ,, ,,    सुमतिकल्लोल    १६६२ बीकानेर खजांची बीकानेर विनय ५८३
५९१ श्रावकगुणचतुष्पदिका    समयराजोपाध्याय P/. जिनचन्द्रसूरि १७वीं केशरिया जोधपुर पाटण भंडार
५९२ श्रावकविधि चौपई    क्षेमकुशल P/. क्षेमराज   १५४१   अभय बीकानेर
५९३ श्रावकविधि चौपई    क्षेमराज P/. सोमध्वज   १५४६   अभय क्षमा बीकानेर ख० जयपुर
५९४ श्रीपाल चौपई    जिनहर्ष P/. शांतिहर्ष   १७४० पाटण मुद्रित विनय ६७
५९५  ,, ,,    गुणरत्न P/. विनयसमुद्र   १७वीं   राप्राविप्र जोधपुर
५९६  ,, ,,    तत्वकुमार P/. दर्शनलाभ   १९वीं   मु०
५९७  ,, ,,    रघुपति P/. विद्यानिधान   १८०६ पडसीसर
५९८  ,, ,,    रामचन्द्र P/. पद्मरंग   १७१५ बीकमनयर
५९९  ,, रास (लघु)  जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष   १७४२ पाटण
६००  ,, ,,    महिमोदय P/. मतिहंस   १७२२ जहाणाबाद हीराचंद्रसूरि बनारस
६०१  ,, ,,    रत्नलाभ P/. क्षमारंग   १६६२
६०२  ,, ,,  लालचंद (लावण्यकमल) P/. रत्नकुशल १८१७ अजीमगंज अभय बीकानेर
६०३ श्रीमती चौढालिया    धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष  १८वीं    मुद्रित
६०४  ,, रास    जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष   १७६१ पाटण रामलालजी बीकानेर
६०५ श्रेणिक चौपई  जयसार P/. मुक्तिसेन १८७२ जेसलमेर बद्रीदास कलकत्ता धरणेन्द्र विनयचन्द ज्ञान भंडार जयपुर
६०६  ,, ,,    धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष   १७१९ षदेरीपुर हरि लोहावट
६०७  ,, रास    भुवनसोम P/. धनकीर्ति   १७०२ अंजार केशरिया जोधपुर
६०८ षट्स्थान० प्रकरण संधि    चारित्रसिंह P/. मतिभद्र १६३१ जेसलमेर
६०९ सम्प्रति चौपई    आलमचंद P/.    १८२२ मकसूदाबाद विनय ७०४
६१० संप्रति चौपई    चारित्रसुन्दर P/.    १९वीं   चतुर्भुज बीकानेर
६११ सत्यविजयनिर्वाण रास    जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष  १७५६ पाटण मुद्रित
६१२ संयति संधि    गुणरत्न P/. विनयसमुद्र   १६३०   डूंगर जेसलमेर अभय बीका०
६१३ संघपति सोमजी वेलि    समयसुन्दरोपाध्याय   १७वीं   मुद्रित बीकानेर
६१४ सदयवच्छ सावलिंगा चौपई    कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्न सावणसीय १६९७ मु०

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ६१५ | सनत्कुमार चौपई | कल्याणकमल P/. | १७वीं | सुमेरमलजी भीनासर |
| ६१६ | ,, ,, | यशोलाभ P/. | १७३६ | अभय बीकानेर |
| ६१७ | ,, रास | पद्मराज P/. पुण्यसागरोपाध्याय | १६६६ | |
| ६१८ | सम्मेतशिखर रास | बालचन्द्र (विजयविमल) P/. अमृतसमुद्र | १६०७ अजीमगंज मु० | अभय बीकानेर |
| ६१९ | ,, ,, | सत्यरत्न | १८८० | क्षमा बीकानेर खजांची जयपुर विनय ४८६ |
| ६२० | सम्यक्त्व कौमुदी | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १८वीं | ख० जयपुर |
| ६२१ | ,, ,, चौपई | आलमचंद P/. आसकरण | १८२२ मकसूदाबाद | हरि लोहावट |
| ६२२ | ,, ,, रास | हीरकलश P/. हर्षप्रभ | १६२४ | |
| ६२३ | सम्यक्त्वमाइ चौपई | जगडू | १३३१ | मु० |
| ६२४ | सत्वत्यवेलि | साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य | १७वीं | अभय बीकानेर |
| ६२५ | सहज बीठल दूहा | मतिकुशल | १८३२ | अभय बीकानेर |
| ६२६ | साधुगुणमाला | कल्याणधीर P/. जिनमाणिक्यसूरि | १७वीं | |
| ६२७ | साधुवंदना | जयसोमोपाध्याय | १७वीं | अभय बीकानेर |
| ६२८ | ,, | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि बेगड | १८वीं | जेसलमेर भंडार |
| ६२९ | ,, ,, | देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द्र | १८वीं | अभय बीकानेर |
| ६२९A | ,, | पुण्यसागरोपाध्याय | १७वीं | विनय ७५८ |
| ६३० | ,, | भावहर्षसूरि भावहर्षीय | १६२६ जोधपुर | केशरिया जोधपुर |
| ६३१ | ,, | श्रीदेव P/. ज्ञानचन्द्र | १८वीं | अ० विनय १०८ |
| ६३२ | ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १६६७ | अभय बीकानेर कांतिसागरजी |
| ६३३ | सागरसेठ चौपई | सहजकीर्त्ति P/. हेमनंदन | १६७५ बीकानेर | ,, विनय ६६४, ७६४ |
| ६३४ | सिंहलसुत प्रियमेलक रास | समयसुन्दरोपाध्याय | १६७२ | ,, मु० विनय कोटा २१७ |
| ६३५ | सिंहासन बत्तीसी चौपई | विनयलाभ P/. विनयप्रमोद | १७४८ फलोदी | ,, |
| ६३६ | सिद्धाचल रास | जिनमहेन्द्रसूरि P/. जिनहर्षसूरि मंडोवरा | २०वीं | ,, |
| ६३७ | सीताराम चौपई | समयसुन्दरोपाध्याय | १६७७ मेडता | मु० ,, विनय कोटा ४९० बाल २२६ |
| ६३८ | सीता सती ,, | समयध्वज P/. सागरतिलक लघुखरतर | १६११ | कांति बड़ोदा |
| ६३९ | सीमंधर वीनती चौढालिया | अगरचन्द P/. हर्षचन्द्र | १८९४ राजपुर | विनय कोटा |
| ६४० | सुकमाल चौपई | अमरविजय P/. उदयतिलक | १७६० आगरा | ताराचन्द तातेड़ हनुमानगढ |
| ६४१ | सुकोशल ,, | ,, ,, | १७६० आगरा | |
| ६४२ | सुख दुःख विपाक संधि | धर्ममेरु P/. चरणधर्म | १६०४ बीकानेर | खजांची जयपुर |
| ६४३ | सुखमाला सती रास | जीवराज P/. राजकलश | १६६३ | |
| ६४४ | सुदर्शन चौपई | कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्न आद्यपक्षीय | १७०३ | कांतिसागरजी |

५२२ वच्छराज चौपई   महिमाहर्ष P/. जिनसमुद्रसूरि बेगड   १८वीं   सेठिया बीकानेर

५२३ ,, देवराज ,,   कल्याणदेव P/. चरणोदय   १६४३ बीकानेर

५२४ ,, ,, ,,   विनयलाभ P/. विनयप्रमोद   १७३० मुलतान

५२५ धन राजर्षि चौपई   कुशललाभ P/. कुशलधीर   १७५० भटनेर   अभय बीकानेर

५२६ वयरस्वामी चौपई   जयसोमोपाध्याय   १६५९ जोधपुर   खजांची बीकानेर दान बीकानेर

५२७ वयरस्वामी चौपई   जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष   १७५६   धरणेन्द्र जयपुर

५२८ ,, रास   जयसागरोपाध्याय   १४८९ जूनागढ   विनय ४१६ अंतिमपत्र

५२९ वल्कलचीरी रास   समयसुन्दरोपाध्याय   १६८१ जेसलमेर अ० ची० हरिलोहावट, बाल ५६३

५३० वसुदेव चौपाई   जिनसमुद्रसूरिP/. जिनचन्द्र बेगड़ १८वीं   जेसलमेर भण्डार

५३१ ,, रास   जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष   १७६२ पाटण

५३२ वस्तुपाल तेजपाल रास   अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७२९

५३३ ,, ,, ,,   समयसुन्दरोपाध्याय   १६८२ तिमरी   मुद्रित

५३४ विक्रमचरित्र लीलावती चौपई अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७२४   अभय बीकानेर

५३५ विक्रमादित्य चौपई   दयातिलक P/. रत्नजय   १८वीं

५३६ ,, ,,   विजयराज P/. ललितकीर्ति   १७वीं   ख० जयपुर

५३७ विक्रमादित्य खापरा चोर चौपई   राजशील P/. साधुहर्ष १५६३ चितोड़ बड़ोदा इन्स्टीट्यूट

५३८ ,, ,, ,, ,,   लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष १७२३ जयतारण अभय बीकानेर

५३९ विक्रमादित्य ९०० कन्या चौपई   ,,   ,,   १७२३   क्षमा बीकानेर

५४० विक्रमादित्य पंचदण्ड चौपई   ,,   ,,   १७३३   सेठिया बीकानेर

५४१ ,, ,, रास   लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय P/. लक्ष्मीकीर्त्ति १७२८ अ० बी० ख० जयपुर विनय ५३

५४२ विजयसेठ चौपई   राजहंस P/. कमललाभ   १६८२ मुलतान   अभय बीकानेर

५४३ ,, रास   गंगविजय P/. यशोवर्द्धन   १७८१   अभय बीकानेर

५४४ विजयसेठ विजया चौपई उदयकमल P/. रत्नकुशल   १८२१ कमालपुर

५४५ ,, ,, प्रबन्ध ज्ञानमेरु P/. महिमसुन्दर   १६६५ सरसा   अभय बीकानेर

५४६ विजयसेन राजकुमार चतुष्पदिका सुमतिसेन P/.रत्नभक्ति जिनरं० १७०७   पंचायती मंदिर दिल्ली

५४७ विद्याविलास चौपई   जिनोदयसूरि P/. जिनतिलक०मालह० १६६२ सुजनजा, खजांची बीकानेर

५४८ ,, रास   जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष   १७११ सरसा   अ०बी० जैन भ० कलकत्ता

५४९ ,, ,,   जिनसमुद्रसूरि P/.जिनचन्द्र बेगड़   १८वीं   विनय २५३

५५० ,, ,,   यशोवर्द्धन P/. रत्नवल्लभ   १७५८ बेनातट   ख० जयपुर

५५१ ,, ,,   रामसिंह P/. विमलविनय   १६७९ चंपावती

५५२ विद्यानरेन्द्र (विद्याविलास) चौपई   आज्ञासुन्दर जिनवर्द्धन शि०   १५१६ आ० भ० जै० अ० बी० विनय ३८५

५५३ बीजलपुर वासुपूज्य बोली जिनेश्वरसूरि P/. जिनपतिसूरि १३वीं

५५४ वीर जन्माभिषेक „ „ „ जिनहर्ष भंडार बीकानेर

५५५ वीरभाण उदयभाण चोपई कुशलसागर P/. लावण्यरत्न (केशवदास) १७४२ नवानगर जैनरत्नपुस्तकालय जोधपुर

५५६ वीसस्थानक-पुण्यविलास रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४८ पाटण मुद्रित

५५७ वृद्धदन्त शुद्धदंत (केसवो) रास जिनोदयसूरि P/. जिनतिलकसूरि भावहर्षीय १८वीं गोकुलदासलालजी राजकोट

५५८ वैदर्भी चोपई अभयसोम P/. सोमसुन्दर १७११

५५९ „ „ सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि १७१३ जयतारण अभय–रामलालजी बीकानेर

५६० वैद्यविरहिणी प्रबंध उदयराज S/. भद्रसार श्रावक भावहर्षीय १८वीं अभय बीकानेर

५६१ शकुनदीपिका चोपई लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष १७७० तपाभंडार जेसलमेर बाल चित्तोड ६४१

५६२ शकुन्तला रास धर्मसमुद्र P/. विवेकसिंह पिप्पलक १६वीं मुद्रित

५६३ शत्रुञ्जय रास पूर्णप्रभ P/. शान्तिकुशल १७६० अनंतनाथ ज्ञानभंडार बंबई

५६४ „ „ समयसुन्दरोपाध्याय १६८२ नागोर मुद्रित

५६५ „ उद्धार „ भीमराज P/. गुलाबचन्द जिनसागरसूरिशाखा १८१६ सूरत

५६६ „ माहात्म्य „ जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५५ पाटण मुद्रित क्षमाबीकानेर हरिलोहावट बाल २३३

५६७ „ „ „ सहजकीर्त्ति P/. हेमनंदन १६८४ आसनीकोट अभय बीकानेर

५६८ „ यात्रा „ कुशललाभ P/. १७वीं अभय बीकानेर ख० जयपुर

५६९ „ „ विनयमेरु P/. हेमधर्म १६७६ जालोर अभय बीकानेर

५७० शान्तिनाथ कलश रामचन्द्र ‿ १४वीं पुण्य-अहमदाबाद

५७१ „ बोली जिनेश्वरसूरि P/. जिनपतिसूरि १३वीं अभय बीकानेर राप्राविप्र जोधपुर १०१६७

५७२ „ रास रंगसार P/. भावहर्षसूरि भावहर्षीय १६२०

५७३ „ देव „ लक्ष्मीतिलकोपाध्याय P/. जिनेश्वरसूरि १४वीं

५७४ „ प्रबंध „ लब्धिविमल P/. लब्धिरंग १८वीं झूंझनू भंडार

५७५ „ विवाहलो सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन १६७८ बालसीसर तेरापंथी सभा सरदारशहर

५७६ शांब प्रद्युम्न चोपई समयसुन्दरोपाध्याय १६५९ खंभात अभय-क्षमा बीकानेर

५७७ शालिभद्र कक्क कवि पद्म १४वीं

५७८ „ रास राजतिलक P/. जिनेश्वरसूरि १४वीं मुद्रित

५७९ „ सिलोको सिंह P/. कनकप्रिय १७८१ मुद्रित

५८० शीलनववाड रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७२९ मु० क्षमाबीकानेर हरिलोहावट विनय २१२

५८१ शील फाग लब्धिराज P/. धर्ममेरु १६७६ नवहर खजांची रामलालजी बीकानेर

५८२ शील रास सहजकीर्त्ति P/. हेमनंदन १६८६ अभय बीकानेर

५८३ शीलवती चोपई देवरत्न P/. देवकीर्ति १६९८ बालसीसर खजांची-चारित्र राप्राविप्र बीकानेर

६४५ सुदर्शन चौपई सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन १६६१ बगडीपुर ···वि० उ० अहमदाबाद भंडार
६४६ ,, रास धर्मसमुद्र P/. विवेकसिंह, पिप्पलक १६वीं अभय बीकानेर
६४७ ,, सेठ चौपई अमरविजय P/. उदयतिलक १७९९ सापासर
६४८ ,, ,, ,, जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७४६ पाटण
६४९ सुदर्शन चौपई विनयमेरु P/. हेमधर्म १६७८ जोधपुर अभय बीकानेर
६५० सुप्रतिष्ठ चौपई अमरविजय P/. उदयतिलक १७९४ मरोट
६५१ सुबाहु संधि पुण्यसागरोपाध्याय P/. जिनहंससूरि १६०४ अभय-सेठिया बीकानेर ख० जयपुर, विनय ७००
६५२ सुभद्रा चौपई जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७वीं, हरि लोहावट
६५३ ,, ,, रघुपति P/. विद्यानिधान १८२५ तोलियासर क्षमा बीकानेर
६५४ ,, ,, विद्याकीर्ति P/. पुण्यतिलक १६७५ जैनशाला भंडार, खंभात
६५५ ,, ,, हेमनन्दन १६४५ ख० जयपुर,
६५६ सुमंगल रास अमरविजय P/. उदयतिलक १७७१ जयचन्दजी भं० बीकानेर,
६५७ सुमति नागिला सम्बन्ध चौपई धर्ममन्दिर P/. दयाकुशल १७३६ बीकानेर
६५८ सुमित्रकुमार रास धर्मसमुद्र P/. विवेकसिंह पिप्पलक १५६७ जालोर,
६५९ सुरप्रिय चौपई दीपचन्द्र P/. धर्मचंद्र, बेगड १७८१ जयचन्द भं० बीकानेर
६६० ,, रास जयनिधान P/. राजचन्द १६६५ मुलतान केशरिया जोधपुर
६६१ सुरसुन्दरी अमरकुमार रास जिनोदयसूरि P/. जिनसुन्दरसूरि बेगड़ १७६९
६६२ सुरसुन्दरी चौपई मतिकुशल P/. मतिवल्लभ १७३१ धरणेन्द्र जयपुर
६६३ ,, रास धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष १७३६ वेनातट अभय-क्षमा-बीकानेर विनय ५५,१६६
६६४ सुसड. चौपई समयनिधान P/. राजसोम जिनसागरसूरि शाखा १७३१ अकबराबाद सेठिया बीकानेर
६६५ ,, रास राजसोम P/. जयकीर्ति, जिनसागरसूरि शाखा १८वीं, आचार्य शाखा भं० बीकानेर
६६६ सोमचन्द राजा चौपई विनयसागर P/. सुमतिकलश पिप्पलक १६७० जोनपुर
६६७ सोलह स्वप्न चौढालिया अमरसिन्धुर P/. जयसार १९वीं तपा-भंडार जेसलमेर
६६८ सौभाग्यपंचमी चौपई जिनरंगसूरि P/. जिनराजसूरि १७३८ जयचन्द भंडार बीकानेर
६६९ स्तम्भन पार्श्वनाथ फाग मुनिमेरु P/. १७वीं केशरिया जोधपुर
६७० स्थूलिभद्र चौपई चारित्रसुन्दर P/. १८२४ अजीमगंज जयचन्द भं० बीकानेर
६७१ ,, छन्द मेरुनन्दन P/. जिनोदयसूरि १५वीं
६७२ ,, फागु जिनपद्मसूरि P/. जिनकुशलसूरि १४वीं मुद्रित
६७३ ,, रास जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष १७५६ पाटण क्षमा बीकानेर
६७४ ,, ,, रंगकुशल P/. कनकसोम १६४४ जिनविजयजी
६७५ ,, ,, समयसुन्दरोपाध्याय १७वीं महावीर विद्यालय बंबई

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ६७६ | स्थूलिभद्र चौपई | साधुकीर्त्ति P/. अमरमाणिक्य | १७वीं | वर्द्धमान भं० बीकानेर |
| ६७७ | हंसराज वच्छराज चौपई | महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान | १६७५ कोटड़ा | |
| ६७८ | „ „ प्रबन्ध | विनयमेरु P/. हेमधर्म | १६६६ लाहोर | अभय बीकानेर |
| ६७९ | „ „ रास | जिनोदयसूरि P/. जिनतिलक० भावहर्ष० | १६८० | अभय बी०ख० जयपुर बि०१२०, २२८ |
| ६८० | हरिकेशी संधि | कनकसोम | १६४० वैराट | |
| ६८१ | „ „ | सुमतिरंग P/. कनककीर्त्ति | १७२७ मुलतान | |
| ६८२ | „ साधु „ | सुखलाभ P/. सुमतिरंग | १७२७ | बड़ौदा इन्स्टीच्यूट |
| ६८३ | हरिबल चौपाई | चारुचन्द्र P/. भक्तिलाभ | १५८१ | जयचन्द भं० बीकानेर |
| ६८४ | „ „ | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचंद्र० वेगड | १७०१ | जेसलमेर भंडार |
| ६८५ | „ „ | दयारत्न P/. हर्षकुशल आद्यपक्षीय | १६६१ जोधपुर | नाहर कलकत्ता |
| ६८६ | „ „ | पुण्यहर्ष P/. ललितकीर्त्ति | १७३५ सरसा | खजांची बीकानेर |
| ६८७ | „ „ | राजशील P/. साधुहर्ष | १५९९ | हरि लोहावट |
| ६८८ | „ „ | लावण्यकीर्ति P/. ज्ञानविलास | १६७१ जेसलमेर | यति नेमिचंद बाडमेर |
| ६८९ | „ मच्छी चौपई | राजरत्नसूरि P/. विवेकरत्नसूरि पिप्पलक | १५९९ | खजांची बीकानेर |
| ६९० | „ „ रास | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७४६ पाटण | मुद्रित |
| ६९१ | „ संधि | कनकसोम | १७वीं | |
| ६९२ | हरिवाहन चौपई | P/. जिनसिंहसूरि | १९वीं | महिमा बीकानेर |
| ६९३ | हरिश्चन्द्र रास | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७४४ पाटण | |
| ६९४ | „ „ | लालचन्द P/. हीरनन्दन | १६७९ गंगाणी | |
| ६९५ | „ „ | सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन | १६९७ | अभय बीकानेर, विनय ७६३ |

## वीसो, चौवोसो, पच्चोसो, बत्तोसो, छत्तीसी, बावनो सित्तरी बारहमासा आदि

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | विहरमान वोसो | जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १७वीं | मुद्रित विनय ३८३ स्वयंलिखित |
| २ | „ | जिनसागरसूरि P/. „ | „ | अभय बीकानेर सेठिया बीकानेर |
| ३ | „ | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७२७ | मुद्रित |
| ४ | „ | „ „ | १७४५ | मुद्रित |
| ५ | „ | देवचन्द्र P/. दीपचन्द्र | १८वीं | " |
| ६ | „ | राजलाभ P/. राजहर्ष | „ | जयकरण जी बीकानेर |
| ७ | „ | रामचन्द्र P/. कीर्त्तिकुशल जिनसागर | „ | आचार्य शाखा भं० बीकानेर |
| ८ | „ | लालचन्द P/. हीरनन्दन | १६९२ पालडी | अभय बीकानेर |
| ९ | „ | विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक जिनसागर | १७५४ राजनगर | मुद्रित |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १० | विहरमान बीसी | सबलसिंह श्रावक | १८११ मकसूदाबाद | महिमा बीकानेर |
| ११ | ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १६६७ अहमदाबाद-मुद्रित | |
| १२ | ,, | हर्षकुशल | १७वीं | अभय बीकानेर |
| १३ | ,, | ज्ञानसार | १८७८ बीकानेर मुद्रित | |

## चौवीसी

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १ | चौवीसी | आनन्दवर्द्धन P/. महिमासागर | १७१२ | अभय बीकानेर |
| २ | ,, | कुशलधीर P/. कल्याणलाभ | १७२६ सोजत | जेसलमेर भंडार |
| ३ | ,, | गुणविलास P/. सिद्धिवर्द्धन | १७९२ जेसलमेर | अभय बीकानेर |
| ४ | ,, | चारित्रनन्दी P/. नवनिधि | २०वीं | खजांची जयपुर |
| ५ | ,, | जयसागरोपाध्याय P/. जिनराजसूरि | १५वीं | अभय बीकानेर |
| ६ | ,, | जिनकीर्तिसूरि जिनसागरसूरिशाखा | १८०८ बीकानेर | |
| ७ | ,, | जिनमहेन्द्रसूरि मंडोवरा P/. जिनहर्षसूरि | १८९८ | धरणेन्द्र जयपुर |
| ८ | ,, | जिनरत्नसूरि P/. जिनराजसूरि | १८वीं | अभय बीकानेर |
| ९ | ,, | जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १७वीं | मुद्रित |
| १० | ,, (बड़ी) | जिनलाभसूरि P/. जिनभक्तिसूरि | १९वीं | अभय बीकानेर |
| ११ | ,, (छोटी) | ,, ,, | ,, | ,, |
| १२ | ,, | जिनसुखसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि | १७६४ खंभात | ,, |
| १३ | ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७३८ | मुद्रित |
| १४ | ,, | ,, ,, | १८वीं | ,, |
| १५ | ,, | दयासुन्दर P/. दयावल्लभ | १७४३ | विनय कोटा |
| १६ | ,, बालावबोध सह | देवचन्द्र P/. दीपचन्द्र | १७९८ | मुद्रित |
| १७ | ,, | धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष | १७७१ जेसलमेर | मुद्रित |
| १८ | ,, | अमरचन्दबोथरा | २०१८ | मुद्रित |
| १९ | ,, | ,, ,, | | ,, ,, |
| २० | ,, | राजसुन्दर P/. राजलाभ | १७७२ | महिमा बीकानेर |
| २१ | ,, | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्ति | १८वीं | अभय बीकानेर |
| २२ | ,, | विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक जिनसागरसूरिशाखा | १७५५ राजनगर | मुद्रित अभय बीकानेर हरिसोहाबट |
| २३ | ,, | सबलसिंहश्रावक | १८६१ मकसूदाबाद | अजीमगंज बड़ामन्दिर |
| २४ | ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १६९८ अहमदाबाद | मुद्रित |
| २५ | ,, | सिद्धितिलक P/. सिद्धिविलास | १७६६ जैसलमेर | आचार्यशालाभंडार बीकानेर |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २६ | चौवीसी | सिद्धिविलास P/. सिद्धिवर्धन | २०वीं ,, ,, |
| २७ | ,, | सुमतिमण्डन P/. धर्मानन्द | २०वीं |
| २८ | ,, | सुमतिहंस P/. जिनहर्षसूरि, आद्यपक्षीय | १६६७ मेडता |
| २९ | ,, | हीरसागर P/. जिनचन्द्रसूरि, पिप्पलक | १८१७ पीपलिया उदयचन्द जोधपुर, |
| ३० | ,, | क्षेमराज P/. सोमध्वज | १६वीं थाहरु जेसलमेर |
| ३१ | ,, | ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर | १७०१ मुकनजी बीकानेर |
| ३२ | ,, | ज्ञानसार | १८७५ बीकानेर मुद्रित |
| ३३ | अतीतचौवीसी के २१ स्तवन | देवचन्द्र P/. दीपचन्द्र | १८वीं, मु० ख० जयपुर, |
| ३४ | ऐरवत क्षेत्रस्थ चौवीसी | समयसुन्दरोपाध्याय | १६६७ मुद्रित |
| ३५ | सवैया चौवीसी | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति | १८वीं |
| ३६ | सैंतालीस बोलगर्भित चौवीसी | ज्ञानसार P/. रत्नराज | १८५८ |
| ३७ | बावीसी | आनंदघन (लाभानंद) | १७वीं–१८वीं मु० |

## सोलही

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | मूर्खसोलही | लाभवर्द्धन P/. शान्तिहर्ष | १८वीं |

## पच्चीसी

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | अध्यात्म पच्चीसी | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड | १८वीं, |
| २ | उपदेश ,, | रघुपति P/. विद्यानिधान | ,, |
| ३ | कुगुरु ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १८वीं मुद्रित |
| ४ | कौतुक ,, | कीर्त्तिसुन्दर P/. धर्मवर्द्धन | १७६१ अभय बीकानेर |
| ५ | खरतर ,, | रत्नसोम P/. | १८५६ ,, |
| ६ | गौतम ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १८वीं मुद्रित |
| ७ | छिनाल ,, | लाभवर्द्धनP/. ,, | ,, |
| ८ | भाव ,, | अमरविजय P/. उदयतिलक | १७६१ जयचन्द्रजी भंडार बीकानेर |
| ९ | राजुल ,, | लालचन्द P/. हीरनन्दन | १७वीं हरिलोहवट, ख० जयपुर |
| १० | सुगुरु ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १८वीं ख० जयपुर मुद्रित |
| ११ | सप्तभंगी ,,हिन्दी | भीमराज P/. गुलावचन्द जिनसागरीय | १९२९ जेसलमेर मुद्रित |

## बत्तीसी

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | अक्षर बत्तीसी | अमरविजय P/. उदयतिलक | १८०० आगरा अभय बीकानेर |
| २ | ,, ,, | विद्याविलास P/. कमलहर्ष | १८वीं महिमा बीकानेर |
| ३ | उपदेश ,, | अमरविजय P/. उदयतिलक | १८०० आगरा अभय बीकानेर |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ४ उपदेश बत्तीसी | रघुपति P/. विद्यानिधान | १८वीं | |
| ५ ,, ,, | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्ति | ,, | अभय बीकानेर |
| ६ ,, रसाल ,, | रघुपति P/. विद्यानिधान | ,, | |
| ७ ऋषि ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | ,, | मुद्रित |
| ८ कर्म ,, | जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १६६९ | मुद्रित |
| ९ चेतन ,, | (राजबत्तीसी) लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्ति | १७१६ | अभय बीकानेर |
| १० जीभ ,, | गुणलाभ P/. जिनसिंहसूरि, पिप्पलक | १६५७ | अलवर अभय बीकानेर |
| ११ दीपक ,, | कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्न, आद्यपक्षीय | १७वीं | विनय कोटा |
| १२ दूहा ,, | क्षेमराज P/. सोमध्वज | १६वीं | भुवनभक्ति भं० बीकानेर |
| १३ नवकार ,, | जयचन्द्र P/. सकलहर्ष | १७६५ | बोलावास कांतिसागरजी |
| १४ परिहाँ (अक्षर),, | धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष | १८वीं | मुद्रित |
| १५ पवन ,, | क्षेमराज P/. सोमध्वज | १६वीं | भुवनभक्ति भं० बीकानेर |
| १६ पूजा ,, | अमरविजय P/. उदयतिलक | १७९९ | फलोधी जयचन्दजी भं० बीकानेर |
| १७ ,, ,, | श्रीसार P/. रत्नहर्ष | १७वीं | अभय बीकानेर |
| १८ पृथ्वी ,, | क्षेमराज P/. सोमध्वज | १६वीं | भुवनभक्ति भं० बीकानेर |
| १९ भ्रमर ,, | कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्न आद्यपक्षीय | १७वीं | मु० विनय कोटा |
| २० राज ,, | राजलाभ P/. राजहर्ष | १७३८ | अभय बीकानेर |
| २१ विचार ,, | जयकुशल P/. ज्ञाननिधान | १७२६ ,, | ,, |
| २२ शील ,, | जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १७वीं | मुद्रित |
| २३ ,, ,, | ज्ञानकीर्ति P/ जिनराजसूरि | ,, | अभय बीकानेर |
| २४ सामायिक दोष ,, | गुणरंग P/. प्रमोदमाणिक्य | ,, | अभय बीकानेर |
| २५ सुगण ,, | रघुपति P/. विद्यानिधान | १८वीं | ,, |
| २६ हितशिक्षा ,, | क्षमाकल्याण P/. अमृतधर्म | १९वीं | ,, |

## छत्तीसी

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ अक्षर छत्तीसी | ज्ञानसुन्दर P/. कल्याणविनय | १७८६ | |
| २ आगम ,, | श्रीसार P/. रत्नहर्ष | १७वीं | अभय बीकानेर |
| ३ आत्मप्रबोध ,, | ज्ञानसार | १९वीं | मुद्रित |
| ४ आलोयणा ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १६९८ | मुद्रित अमदावाद |
| ५ आहारदोष ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७२७ | क्षमा बीकानेर |
| ६ उपदेश ,, | सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन | १७वीं | अभय बीकानेर |

| | | |
|---|---|---|
| ७ उपदेश छत्तीसी वारहखडी | खुश्यालचन्द P/. जयराम | १८३१ सवाई पार्श्वनाथजैन पुस्तकभवन सूरतगढ़ |
| ८ ,, ,, सवैया | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७१३ मुद्रित |
| ९ कर्म ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १६६८ मुद्रित |
| १० कुगुरु ,, | ज्ञानमेरु P/. महिमसुन्दर | १७वीं |
| ११ गुरु ,, | श्रीसार P/. रत्नहर्ष | ,, हरिलोहावट |
| १२ गुरुशिष्यदृष्टान्त ,, | धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष | १८वीं |
| १३ चारित्र ,, | ज्ञानसार | १९वीं मुद्रित |
| १४ जिनप्रतिमा ,, | नयरंग P/. गुणशेखर | १७वीं अभय बीकानेर |
| १५ तप ,, | गंगदास | १६७५ मसूदा ,, |
| १६ तीर्थभास,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १७वीं मु० पालणपुर भंडार |
| १७ दया ,, | चिदानन्द (कपूरचन्द) | १९०५ भावनगर मु० |
| १८ ,, ,, | साधुरंग P/. सुमतिसागर | १६८५ अमदावाद अभय बीकानेर |
| १९ दान ,, | राजलाभ P/. राजहर्ष | १७२३ |
| २० दृष्टान्त ,, | धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष | १८वीं मुद्रित |
| २१ दोधक ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | ,, ,, |
| २२ धर्म ,, | श्रीसार P/. रत्नहर्ष | १७वीं आचार्यशाखा भं० बीकानेर |
| २३ परमात्म ,, | चिदानन्द (कपूरचन्द) | २०वीं मुद्रित |
| २४ पार्श्वनाथ दोधक ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १८वीं मुद्रित |
| २५ पुण्य ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १६६९ सिद्धपुर मुद्रित |
| २६ प्रस्ताव सवैया ,, | ,, | १६९० खंभात ,, |
| २७ प्रीति ,, | कीर्त्तिवर्द्धन (केशव) P/. दयारत्न आद्यपक्षीय | १७वीं विनय कोटा |
| २८ ,, ,, | सहजकीर्ति P/. हेमनन्दन | १६८८ सांगानेर |
| २९ भजन ,, | उदयराज S/. भद्रसार श्रावक, भावहर्षीय | १६६७ मांडावार |
| ३० भाव ,, | ज्ञानसार | १८६५ किसनगढ़ मुद्रित |
| ३१ मतिप्रबोध ,, | ,, | १९वीं मुद्रित |
| ३२ मद ,, | पुण्यकीर्ति P/. हंसप्रमोद | १६८५ मेडता महिमा बीकानेर |
| ३३ मोह छत्तीसी | पुण्यकीर्त्ति P/. हंसप्रमोद | १६८४ नागोर महिमा बीकानेर |
| ३४ विशेष ,, | धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष | १८वीं |
| ३५ वैराग्य ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७२७ |
| ३६ शिक्षा ,, | महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान | १७वीं |
| ३७ शील ,, | राजलाभ P/. राजहर्ष | १७२९ जोधपुर अभय बीकानेर |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ३८ शील छत्तीसी | समयसुन्दरोपाध्याय | १६६९ | मुद्रित |
| ३९ सत्यासीयादुष्कालवर्णन ,, | ,, | १७वीं | ,, |
| ४० सन्तोष ,, | ,, | १६८४ | ,, |
| ४१ सवासौ सीख ,, | धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष | १८वीं | ,, |
| ४२ सुगुरु ,, | हर्षकुशल | १७वीं अभय बीकानेर | |
| ४३ ज्ञान ,, | कीर्तिसुन्दर P/.धर्मवर्द्धन | १७५१ जयतारण जेसलमेर भंडार | |
| ४४ ,, ,, | ज्ञानसमुद्र P/. गुणरत्न, आंचलीय | १७०३ | |
| ४५ क्षमा ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | १७वीं नागौर | मुद्रित |

## पंचाशिका

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ चौवीसजिन पंचाशिका | क्षमाप्रमोद P/. रत्नसमुद्र | १९वीं | क्ष० जयपुर |

## बावनी

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ बावनी | सेता P/. दयावल्लभ | १७४३ दहरवास अभय बीकानेर | |
| २ ,, | जिनसिंहसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि | १७वीं | ,, |
| ३ ,, | राजलाभ P/. राजहर्ष | १८वीं मुजनगर ,, | |
| ४ ,, | समरथ (समयमाणिक्य) P/. मतिरत्न | १८वीं | आचार्यशाखा भंडार बीकानेर |
| ५ अध्यात्म बावनी | जिनोदयसूरि P/. जिनसुन्दरसूरि बेगड | १७७० | राप्राविप्र जोधपुर |
| ६ ,, प्रबोध ,, | जिनरंगसूरि P/. जिनराजसूरि | १७३१ | दान-अभय बीकानेर |
| ७ अन्योक्ति ,, | मुनिवस्ता (वस्तुपाल विनयभक्ति) | १८२२ | अभय बीकानेर |
| ८ अष्टापदतीर्थ ,, | जयसागरोपाध्याय P/. जिनराजसूरि | १५वीं | |
| ९ आलोयणा ,, | कमलहर्ष P/. मानविजय | १८वीं | हरि लोहावट |
| १० कवित्त ,, | जयचंद P/. सकलहर्ष | १७३० सेपणा कांतिसागरजी | |
| ११ ,, ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १८वीं | अभय बीकानेर |
| १२ कवित्त बावनी | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्ति | १८वीं | अभय खजांची बीकानेर |
| १३ कुंडलिया ,, | धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष | ,, | मुद्रित |
| १४ ,, ,, | रघुपति P/. विद्यानिधान | १८०८ | |
| १५ ,, ,, | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्ति | १८वीं | सुदनभक्ति भंडार बीकानेर |
| १६ केशव ,, | केशवदास (कुशलसागर) P/. लावण्यरत्न | १७३६ | अभय बीकानेर |
| १७ गुण ,, | उदयराज P/. भद्रसार श्रावक मावहर्ष | १६७६ बवेरद | ,, |
| १८ गूढ (निहाल बावनी) ,, | ज्ञानसार P/. रत्नराज | १८८१ | मुद्रित |
| १९ छप्पय ,, | धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष | १८वीं | मुद्रित |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| २० छप्पय बावनी | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति | १८वीं | | खजांची बीकानेर |
| २१ जसराज ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७३८ मु० | | अभय बीकानेर |
| २२ जैनसार ,, | रघुपति P/. विद्यानिधान | १८०२ नापासर | | ,, |
| २३ दूहा ,, | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति | १८वीं | | अभय-खजांची बीकानेर |
| २४ दोहा ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७३० | | मुद्रित |
| २५ धर्म ,, | धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष | १७वीं | | मुद्रित |
| २६ प्रास्ताविक छप्पय ,, | रघुपति P/. विद्यानिधान | १८२५ तोलियासर | | |
| २७ मनोरथमाला ,, | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड | १७०८ | | |
| २८ मातृका ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७३८ | | मुद्रित |
| २९ योग ,, | महिमसिंह (मानकवि) P/. शिवनिधान | १७वीं | | बद्रीदास कलकत्ता विनय कोटा |
| ३० लोद्रवा चिन्तामणि पार्श्वनाथ ,, | वादीहर्षनन्दन P/. समयसुन्दर | १७वीं मु० | | आचार्यशाखा भंडार बीकानेर |
| ३१ वैराग्य ,, | लालचंद P/. हीरनंदन | १६९५ | | अभय बीकानेर |
| ३२ शाश्वत जिन ,, | हर्षप्रिय | १७वीं | ,, | विनय कोटा |
| ३३ सवैया ,, | चिदानन्द (कपूरचन्द) | २०वीं | | मु० |
| ३४ ,, ,, | जयचन्द P/. सकलहर्ष | १७३३ जोधपुर | | कांतिसागरजी |
| ३५ ,, ,, | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति | १८वीं | | अभय खजांची बीकानेर |
| ३६ ,, , | विनयलाभ P/. विनयप्रमोद | | | अभय बीकानेर |
| ३७ सार ,, | श्रीसार P/. रत्नहर्ष | १६८९ पाली | | अनूप सं० ला० बीकानेर |
| ३८ सीमन्धर ,, | ,, ,, | १७वीं | | नाहर कलकत्ता |
| ३९ ज्ञान ,, | हंसराज पिप्पलक | १७वीं | | मु० जयचंद भं० बीकानेर |

## सत्तरी

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ उपदेशसत्तरी | श्रीसार P/. रत्नहर्ष | १७वीं | मु० क्षमा बीकानेर ख० जयपुर |
| २ व्यसन सत्तरी | सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन | १६६८ नागोर | ब० |
| ३ समकित सत्तरी | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७३६ पाटण | मु० |

## बहुत्तरी

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ उत्पत्ति बहुत्तरी | श्रीसार P/. रत्नहर्ष | १७वीं | हरि लोहावट |
| २ नंद ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७१४ बीलावास | मुद्रित |
| ३ पद ,, | चिदानन्द (कपूरचन्द) | २०वीं | मु० |
| ४ ,, ,, | आनंदघन | १८वीं | मु० |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ५ पद बहुत्तरी (७४पद) | ज्ञानसार | १९वीं | मुद्रित |
| ६ रंग ,, | जिनरंगसूरि P/. जिनराजसूरि | १८वीं | अभय बीकानेर |

## सईकी

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ सईकी | जयचंद्र | | मु० कान्तिसागर |

## बारहमासा

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ बारहमासा | केशवदास (कुशलसागर) P/. लावण्यरत्न | १८वीं | पूनमचन्द दूधेड़िया छापर |
| २ ,, | लक्ष्मीवल्लभ P/. लक्ष्मीकीर्त्ति | ,, | |
| ३ ,, | लाभोदय P/. भुवनकीर्त्ति | १६८६ | अभय बीकानेर |
| ४ बारहमास रा दूहा | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १८वीं | मुद्रित |
| ५ जिनसिंहसूरि बारहमासा | जिनराजसूरि P/. जिनसिंहसूरि | १७वीं | मुद्रित |
| ६ नेमिनाथ बारहमासा | खुस्यालचंद P/. नगराज | १७६८ | अभय बीकानेर |
| ७ ,, ,, | जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड | १८वीं | |
| ८ ,, ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १७३२ | कांतिसागरजी |
| ९ ,, ,, | ,, ,, | १८वीं | मुद्रित |
| १० ,, ,, | धर्मकीर्त्ति P/. धर्मनिधान | १७वीं | जेसलमेर भंडार |
| ११ ,, ,, | माल | ,, | कांतिसागरजी गुटका धर्मकीर्त्ति लि० |
| १२ ,, ,, | श्रीसार P/. रत्नहर्ष | ,, | अभय बीकानेर |
| १३ ,, ,, | समयसुन्दरोपाध्याय | ,, | मुद्रित |
| १४ ,, राजीमती ,, | धर्मवर्द्धन P/. विजयहर्ष | १८वीं | मुद्रित |
| १५ ,, ,, ,, | ,, ,, | ,, | ,, |
| १६ ,, ,, ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | ,, | ,, |
| १७ ,, ,, ,, | ,, ,, | ,, | ,, |
| १८ ,, राजुल ,, | विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक जिनसागर | ,, | ,, |
| १९ ,, ,, ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | ,, | ,, |
| २० पार्श्वनाथ ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | ,, | ,, |
| २१ राजुल ,, | केशवदास (कुशलसागर) P/. लावण्यरत्न | १७३४ | |
| २२ ,, ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १८वीं | मुद्रित |
| २३ स्थूलिभद्र ,, | जिनहर्ष P/. शान्तिहर्ष | १८वीं | मुद्रित |
| २४ ,, ,, | ,, ,, | ,, | ,, |
| २५ ,, ,, | ,, ,, | ,, | ,, |

२६ स्थूलिभद्र बारहमासा विनयचन्द्र P/. ज्ञानतिलक १८वीं मुद्रित
२७ नेमिराजुल बारहमासा लब्धिकल्लोल P/. विमलरंग १७वीं अभय बीकानेर

## अष्टोत्तरी

१ प्रास्ताविक अष्टोत्तरी ज्ञानसार P/. रत्नराज १८८० बीकानेर मुद्रित
२ संबोध अष्टोत्तरी ,, P/. ,, १८८८ ,,

## पूजा

१ अष्टप्रकारी पूजा देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द १८वीं मु०
२ अष्टप्रवचनमाता पूजा सुमतिमण्डन (सुगनजी) P/. धर्मानन्द १९४० बीकानेर मु०
३ अष्टापद ,, ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान २०वीं मु०
४ आबू ,, सुमतिमण्डन (सुगनजी) P/. धर्मानन्द १९४० बीकानेर मु०
५ इक्कीसप्रकारी ,, चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १८९५ बनारस अ० विनय कोटा हरिलोहावट
६ ,, ,, शिवचन्द्रोपाध्याय P/. समयसुन्दर १८७८ मु०
७ ऋषिमण्डल २४ जिन ,, ,, ,, १८७९ जयपुर मु०
८ एकादश अंग ,, चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १८९५ अ० नाहर कलकत्ता
९ एकादश गणधर ,, सुमतिमण्डन (सुगनजी) P/. धर्मानन्द १९५५ बीकानेर मु०
१० गिरनार ,, जिनकृपाचन्द्रसूरि १९७२ बंबई मु०
११ ,, ,, सुमतिमण्डन (सुगनजी) P/. धर्मानन्द २०वीं
१२ गौतमगणधर ,, ,, ,, २०वीं
१३ चौदह पूर्व ,, चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १८९५ अ० नाहर कलकत्ता
१४ चौदह राजलोक ,, सुमतिमण्डन (सुगनजी) १९५३ बीकानेर मु०
१५ चौबीस जिन ,, जिनचन्द्रसूरि P/. जिनयशोभद्र पिप्पलक १९वीं अ० केशरिया जोधपुर
१६ जम्बूद्वीप ,, सुमतिमण्डन (सुगनजी) १९५८ बीकानेर मु०
१७ दादाजी अष्टप्रकारी ,, जिनचन्द्रसूरि P/. जिनलाभसूरि १८५३ अ० अभय बीकानेर
१८ दादाजी की पूजा रामलाल (ऋद्धिसार) P/. कुशलनिधान १९५३ बीकानेर मु०
१९ दादाजिनकुशलसूरि अष्टकारी पूजा ज्ञानसार १९वीं अ० अभय बीकानेर, मुद्रित
२० दादाजिनकुशलसूरि पूजा जिनहरिसागरसूरि P/. भगवानसागरजी २०वीं मु०
२१ दादाजिनदत्तसूरि ,, ,, ,, मु०
२२ ध्वजपूजा मु०
२३ नन्दीश्वर द्वीप पूजा जैनचन्द्र १९वीं
२४ ,, ,, शिवचन्द्रोपाध्याय P/. पुण्यशील मु०

२५ नवपदपूजा चारित्रनन्दी P/. नवनिधि २०वीं

२६ „ „ ज्ञानसार P/. रत्नराज १८७१ बीकानेर अ० स० जयपुर मुद्रित

२७ नवपदपूजा उल्लाला देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द १८वीं मु०

२८ नवपदलघुपूजा लालचन्द्रोपाध्याय १९वीं मु०

२९ नवाणुंप्रकारीपूजा अमरसिन्धुर P/. जयसार १८८८ बम्बई मु०

३० पञ्चकल्याणकपूजा चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १८८९ कलकत्ता अ० कुशलचन्द्र पुस्तकालय बीकानेर हरिलोहावट

३१ „ „ बालचन्द्र (विजयविमल) P/. अमृतसमुद्र १९११ बीकानेर मु०

३२ पञ्चज्ञानपूजा चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १९वीं अ० विनय कोटा

३३ पञ्च ज्ञानपूजा सुमतिमंडन (सुगनजी) १९४० बीकानेर मु०

३४ पञ्च परमेष्ठि „ „ „ १९५३ „ मु०

३५ पार्श्वनाथप्रभु „ जिनकवीन्द्रसागरसूरि P/. जिनहरिसागरसूरि २०१३ मेड़तारोड़ मु०

३६ पैंतालीस आगम „ ऋद्धिसार (रामलाल) P/. कुशलनिधान १९३० बीकानेर मु०

३७ बारहव्रत „ कपूरचन्द (कुशलसार) १९३६ „ मु०

३८ मणिधारी जिनचन्द्रसूरि „ जिनहरिसागरसूरि P/ भगवानसागर „ मु०

३९ महावीरषट्कल्याणकपूजा विनयसागर P/. जिनमणिसागरसूरि २०१२ महासमुंद मु०

४० महावीरस्वामी ६४ प्रकारीपूजा जिनकवीन्द्रसागरसूरि P/. जिनहरिसागरसूरि २०१३ मेड़तारोड मु०

४१ युगप्रधानजिनचन्द्रसूरि पूजा जिनहरिसागरसूरि P/. भगवानसागर मु०

४२ रत्नत्रयआराधन पूजा जिनकवीन्द्रसागरसूरि P/. जिनहरिसागरसूरि २०१२ बीकानेर मु०

४३ बीस विहरमान पूजा ऋद्धिसार (रामलाल) P/ कुशलनिधान १९४४ मु०

४४ बीस स्थानक पूजा जिनहर्षसूरि १८७१ बालूचर मु०

४५ „ „ शिवचन्द्रोपाध्याय १८७१ अजीमगंज

४६ शासनपति पूजा चतुरसागर P/. जिनकृपाचंद्रसूरि मु०

४७ श्रुतज्ञान पूजा राजसोम १९वीं

४८ संघ पूजा सुमतिमण्डन (सुगनजी) १९६१ बीकानेर मु०

४९ सतरहभेदी पूजा नयरंग १६१८ खंभात अ० उदयचन्द जोधपुर

५० „ „ चिदानन्द उज्जैन सिन्धिया

५१ „ „ धीरविजय P/. तेजसार १६५३ राजधामपुर अ० अभय बीकानेर

५२ „ „ साधुकीर्ति P/. अमरमाणिक्य १६१८ पाटण मु०

५३ „ „ पद ४८ जिनसमुद्रसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि वेगड़ १७१८ अ० जेसलमेर भंडार

५४ समवसरण पूजा चारित्रनन्दी P/. नवनिधि १९१... खंभात अ० नाहर कलकत्ता

५५ सम्मेतशिखर पूजा बालचन्द्र (विजयविमल) P/. अमृतसुन्दर १९०८ मु० अभय बीकानेर

५६ सहस्रकूट पूजा सुमतिमंडन (सुगनजी) १९४० बीकानेर अ० दफ्मा बीकानेर

५७ सिद्धाचल पूजा „ „ १९३० „ मु०

५८ स्नात्र पूजा देवचन्द्रोपाध्याय P/. दीपचन्द १८वीं मु०

## देशवर्णन एवं चैत्यपरिपाटियाँ

१ कजलगिरिचैत्यपरिपाटी स्तवन शुभवर्द्धन (शिवदास) P/. गजसार १६०५ पूनमचन्द दूधेड़िया छापर

२ उदयपुर गजल खेता P/. दयावल्लभ १७५७ अभय बीकानेर विनय ७७०

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ३ कापरहेड़ा रास | दयारत्न P/. हर्षकुशल नाघपक्षीय | १६६५ | | केशरिया जोधपुर |
| ४ ,, ,, | लक्ष्मीरत्न P/. ,, | १६८३ सोजत | | अभय बीकानेर |
| ५ गिरनार गजल | कल्याण P/. | १८२८ | | हीराचन्दसूरि बनारस |
| ६ गिरनार चैत्यपरिपाटी | रंगसार P/. भावहर्षसूरि भावहर्षी | १७वीं | | अभय बीकानेर |
| ७ चित्तोड़ गजल | खेता P/. दयावल्लभ | १७४८ | | अभय बीकानेर |
| ८ जेसलमेर चैत्यपरिपाटी स्त० | जिनसुखसूरि P/. जिनचन्द्रसूरि | १७७१ | | मु० ,, |
| ९ ,, ,, ,, | गुणविनय P/ जयसोम | १७वीं | | ,, |
| १० ,, ,, ,, | सहजकीर्त्ति P/. हेमनन्दन | १६७९ | | |
| ११ ,, पटवासंघ वर्णन | अमरसिंधुर P/. जयसार | १८९८ | | बद्रीदास कलकत्ता |
| १२ ,, ,, ,, तीर्थमाला स्तवन | ,, ,, | १८९३ | | मुद्रित |
| १३ ,, ,, ,, यात्रावर्णन | केशरीचन्द P/. जिनमहेन्द्रसूरि | १८९६ | | कांति छाणी |
| १४ डीसा गजल | देवहर्ष | १९वीं | | अभय बीकानेर |
| १५ तीर्थचैत्यपरिपाटी स्तवन | लब्धिकल्लोल P/. विमलरंग | १७वीं | | ,, |
| १६ तीर्थमाला स्तवन | देवचन्द्र P/. दीपचन्द्र | १८वीं | | ,, |
| १६^ ,, ,, | समयसुन्दर | १७वीं | | मुद्रित |
| १७ तीर्थराज चैत्यपरिपाटी | साधुचन्द्र | १५३३ | | मुद्रित |
| १८ तीर्थयात्रा स्तवन | जयसागरोपाध्याय P/. जिनराजसूरि | १५वीं | | मु० |
| १९ नगरकोट महातीर्थ चैत्यपरिपाटी | ,, ,, | ,, | | मु० |
| २० पत्तनचैत्यपरिपाटी स्तवन | शुभवर्द्धन (शिवदास) P/. गजसार | १६०५ | | पूनमचन्द दूधेड़िया छापर |
| २१ पाटण गजल | देवहर्ष | १८५९ | | अभय बीकानेर |
| २२ पूर्वदेश चैत्यपरिपाटी | जिनवर्द्धनसूरि P/. जिनराजसूरि पिप्पलक | १५वीं | | |
| २३ पूरबदेश वर्णनछंद | ज्ञानसार P/. रत्नराज | १९वीं | | मुद्रित |
| २४ बीकानेर गजल | उदयचन्द्र (मथेन) | १७६५ | | अभय बीकानेर |
| २५ ,, चैत्यपरिपाटी | धर्मवर्द्धन विजयहर्ष | १८वीं | | मुद्रित |
| २६ मण्डपाचल चैत्यपरिपाटी | क्षेमराज P/. सोमध्वज | १६वीं | | मुद्रित |
| २७ मरोट गजल | दुर्गादास P/. विनयाणंद | १७६५ | | |
| २८ शत्रुंजय चैत्यपरिपाटी | गुणविनय P/. जयसोम | १६४४ | | अभय बीकानेर |
| २९ ,, ,, स्तवन | देवचन्द्र P/. दीपचन्द्र | १८वीं | | धर्म० आगरा |
| ३० ,, ,, स्तवन | वादीहर्षनन्दन P/. समयसुन्दर | १६७१ | | अभय बीकानेर |
| ३१ ,, तीर्थपरवाड़ी | सोमप्रभ P/. जिनेश्वरसूरि द्वि० | १४वीं | | जेसलमेर भंडार अभय बीकानेर |
| ३२ ,, संघयात्रा परिपाटी | गुणरंग P/. प्रमोदमाणिक्य | १७वीं | | |
| ३३ सिद्धाचल गजल | कल्याण | १८६४ | | हीराचन्द्रसूरि बनारस |
| ३४ सम्मेतशिखर चैत्यपरिपाटी स्त० | वीरविजय P/. तेजसार | १६६१ | | मुद्रित केशरिया जोधपुर |
| ३५ तीर्थमाला स्तवन | समयसुन्दर | | | मुद्रित |
| ३६ तीर्थमाला (ईडर से आबू यात्रा) | सुमतिकल्लोल P/. विमलरंग | १६५४ | गा० १७ | अभय बीकानेर |
| ३७ शत्रुंजय तीर्थचैत्यप्रवाड स्तवन | ज्ञानचन्द्र P/. सुमतिसागर P/. पुण्यप्रधान | १८वीं | गा० ४१ | राजविप्र जो० ३०३६७ |